महाभारत

संस्कृत मूल

हिन्दी अनुवाद

संस्कृत मूल

हिन्दी अनुवाद

वर्ष ३

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या ६

ॐ श्रीपरमात्मने नमः
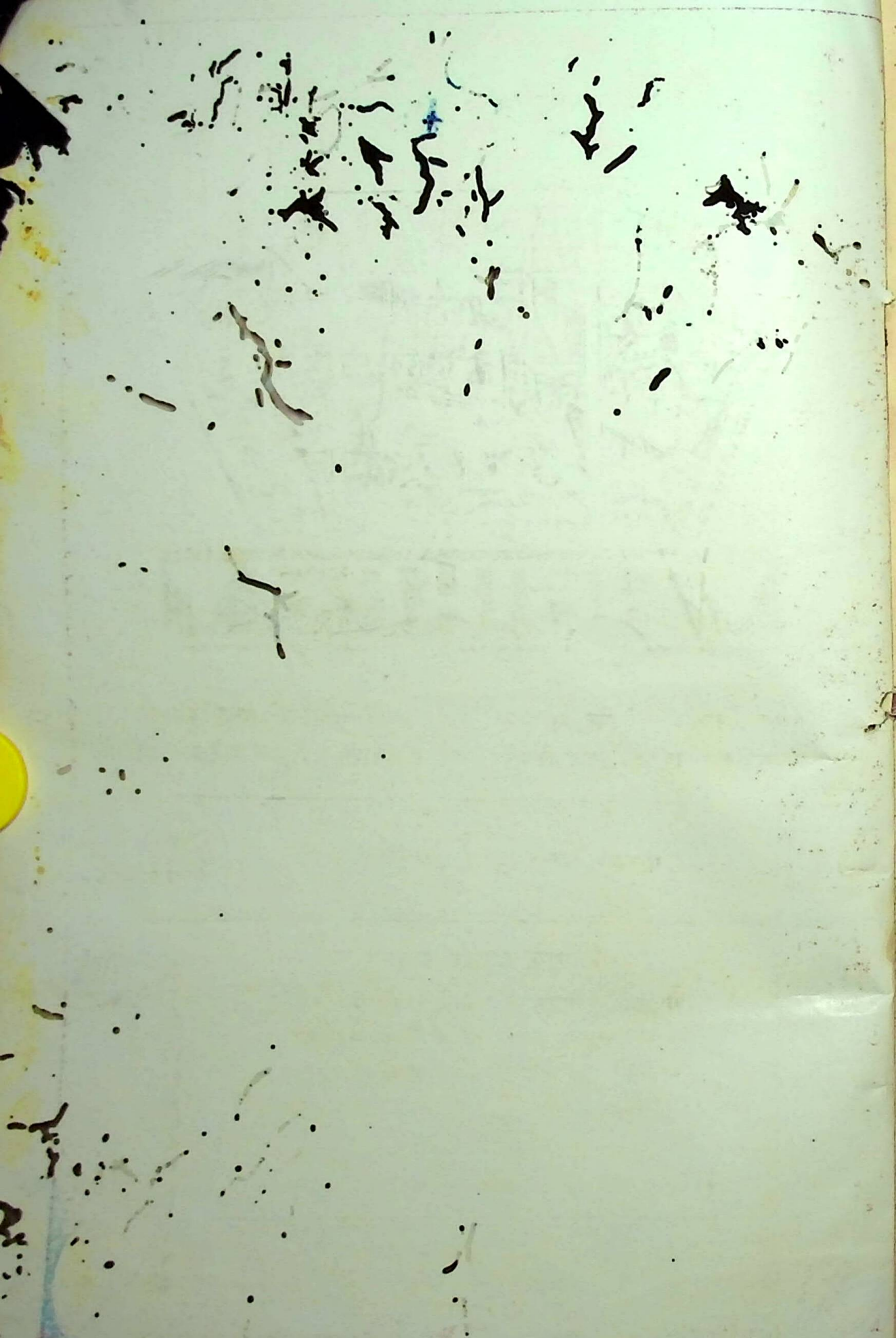
महाभारत

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे । नमो वै ब्रह्महृदये वासिष्ठाय नमो नमः ॥

वर्ष ३ } गोरखपुर, आषाढ़ २०१५, जुलाई १९५८ { संख्या ९ पूर्ण संख्या ३३

मोक्षके आश्रय मुकुन्द

योऽशिशुः शिशुरूपेण भाति भक्तकृते हरिः ।
स पीतवासः श्रीकान्तो नितान्तरससागरः ॥
अभिरामो घनश्यामो वामदेवादिवन्दितः ।
नन्दनन्दन आनन्दो मुकुन्दो मोक्षगोचरः ॥

जो शिशु न होकर भी भक्तोंके लिये शिशु (बालमुकुन्द) रूपसे सदा प्रकाशित होते हैं, वे वामदेव आदि मुनियोंसे वन्दित, अनन्त रस-सिन्धु, श्रीवल्लभ, पीताम्बरधारी, नयनाभिराम, घनश्याम, आनन्दस्वरूप नन्दनन्दन मुकुन्द ही मोक्षके आश्रय हैं ।

श्रीहरिः

विषय-सूची (आश्रमवासिकपर्व)

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
२१–	धृतराष्ट्र आदिके लिये पाण्डवों तथा पुरवासियोंकी चिन्ता ··· ··· ···	६४२५
२२–	माताके लिये पाण्डवोंकी चिन्ता, युधिष्ठिरकी वनमें जानेकी इच्छा, सहदेव और द्रौपदीका साथ जानेका उत्साह तथा रनिवास और सेना-सहित युधिष्ठिरका वनको प्रस्थान ···	६४२६
२३–	सेनासहित पाण्डवोंकी यात्रा और उनका कुरुक्षेत्रमें पहुँचना ··· ···	६४२८
२४–	पाण्डवों तथा पुरवासियोंका कुन्ती, गान्धारी और धृतराष्ट्रके दर्शन करना ···	६४२९
२५–	संजयका ऋषियोंसे पाण्डवों, उनकी पत्नियों तथा अन्यान्य स्त्रियोंका परिचय देना ···	६४३०
२६–	धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरकी बातचीत तथा विदुरजीका युधिष्ठिरके शरीरमें प्रवेश ···	६४३२
२७–	युधिष्ठिर आदिका ऋषियोंके आश्रम देखना, कलश आदि बाँटना और धृतराष्ट्रके पास आकर बैठना, उन सबके पास अन्यान्य ऋषियोंसहित महर्षि व्यासका आगमन ···	६४३५
२८–	महर्षि व्यासका धृतराष्ट्रसे कुशल पूछते हुए विदुर और युधिष्ठिरकी धर्मरूपताका प्रतिपादन करना और उनसे अभीष्ट वस्तु माँगनेके लिये कहना ··· ··· ···	६४३७
	(पुत्रदर्शनपर्व)	
२९–	धृतराष्ट्रका मृत बान्धवोंके शोकसे दुखी होना तथा गान्धारी और कुन्तीका व्यासजीसे अपने मरे हुए पुत्रोंके दर्शन करनेका अनुरोध ···	६४३९
३०–	कुन्तीका कर्णके जन्मका गुप्त रहस्य बताना और व्यासजीका उन्हें सान्त्वना देना ···	६४४२
३१–	व्यासजीके द्वारा धृतराष्ट्र आदिके पूर्वजन्मका परिचय तथा उनके कहनेसे सब लोगोंका गङ्गा-तटपर जाना ··· ···	६४४४
३२–	व्यासजीके प्रभावसे कुरुक्षेत्रके युद्धमें मारे गये कौरव-पाण्डव-वीरोंका गङ्गाजीके जलसे प्रकट होना ··· ··· ···	६४४५
३३–	परलोकसे आये हुए व्यक्तियोंका परस्पर राग-द्वेषसे रहित होकर मिलना और रात बीतनेपर अदृश्य हो जाना, व्यासजीकी आज्ञासे विधवा क्षत्राणियोंका गङ्गाजीमें गोता लगाकर अपने-अपने पतिके लोकको प्राप्त करना तथा इस पर्वके श्रवणकी महिमा ··· ···	६४४७
३४–	मरे हुए पुरुषोंका अपने पूर्व शरीरसे ही यहाँ पुनः दर्शन देना कैसे सम्भव है ? जनमेजयकी इस शंकाका वैशम्पायनद्वारा समाधान ···	६४४९
३५–	व्यासजीकी कृपासे जनमेजयको अपने पिताका दर्शन प्राप्त होना ··· ···	६४५१
३६–	व्यासजीकी आज्ञासे धृतराष्ट्र आदिका पाण्डवोंको विदा करना और पाण्डवोंका सदलबल हस्तिनापुरमें आना ··· ···	६४५२
	(नारदागमनपर्व)	
३७–	नारदजीसे धृतराष्ट्र आदिके दावानलमें दग्ध हो जानेका हाल जानकर युधिष्ठिर आदिका शोक ···	६४५६
३८–	नारदजीके सम्मुख युधिष्ठिरका धृतराष्ट्र आदिके लौकिक अग्निमें दग्ध हो जानेका वर्णन करते हुए विलाप और अन्य पाण्डवोंका भी रोदन ··· ··· ···	६४५९
३९–	राजा युधिष्ठिरद्वारा धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती—इन तीनोंकी हड्डियोंको गङ्गामें प्रवाहित कराना तथा श्राद्धकर्म करना ···	६४६१

चित्र-सूची

१–महाभारत लेखन ··· (तिरंगा) मुख-पृष्ठ

२–विदुरका सूक्ष्मशरीरसे युधिष्ठिरमें प्रवेश ··· (एकरंगा) ६४२५

३–व्यासजीके द्वारा कौरव-पाण्डव-पक्षके मरे हुए सम्बन्धियोंका सेनासहित परलोकसे आवाहन ··· (,,) ६४४६

४–(४ लाइन चित्र फरमोंमें)

विषय-सूची (मौसलपर्व)

१–युधिष्ठिरका अपशकुन देखना, यादवोंके विनाशका समाचार सुनना, द्वारकामें ऋषियोंके शापवश साम्बके पेटसे मूसलकी उत्पत्ति तथा मदिराके निषेधकी कठोर आज्ञा ··· ६४६३

२–द्वारकामें भयंकर उत्पात देखकर भगवान् श्रीकृष्णका यदुवंशियोंको तीर्थयात्राके लिये आदेश देना ··· ६४६५

३–कृतवर्मा आदि समस्त यादवोंका परस्पर संहार ६४६७

४–दारुकका अर्जुनको सूचना देनेके लिये हस्तिनापुर जाना, बभ्रुका देहावसान एवं बलराम और श्रीकृष्णका परमधाम-गमन ··· ६४७०

५–अर्जुनका द्वारकामें आना और द्वारका तथा श्रीकृष्ण-पत्नियोंकी दशा देखकर दुखी होना ६४७४

६–द्वारकामें अर्जुन और वसुदेवजीकी बातचीत ६४७५

७–वसुदेवजी तथा मौसल युद्धमें मरे हुए यादवोंका अन्त्येष्टि-संस्कार करके अर्जुनका द्वारकासे स्त्री-पुरुषोंको अपने साथ ले जाना, समुद्रका द्वारकाको डुबो देना और मार्गमें अर्जुनपर डाकुओंका आक्रमण, अवशिष्ट यादवोंको अपनी राजधानीमें बसा देना ··· ६४७७

८–अर्जुन और व्यासजीकी बातचीत ··· ६४८१

चित्र-सूची

१–साम्बके पेटसे यदुवंश-विनाशके लिये मूसल पैदा होनेका ऋषियोंद्वारा शाप ··· (एकरंगा) ६४६३

२–बलरामजीका परमधाम-गमन ··· (तिरंगा) ६४७२

३–वसुदेवजी अर्जुनको यादव-विनाशका वृत्तान्त और श्रीकृष्णका संदेश सुना रहे हैं ··· (एकरंगा) ६४७६

४–(६ लाइन चित्र फरमोंमें)

विषय-सूची (महाप्रस्थानिकपर्व)

१–वृष्णिवंशियोंका श्राद्ध करके प्रजाजनोंकी अनुमति ले द्रौपदीसहित पाण्डवोंका महाप्रस्थान ६४८५

२–मार्गमें द्रौपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन और भीमसेनका गिरना तथा युधिष्ठिरद्वारा प्रत्येकके गिरनेका कारण बताया जाना ··· ६४८८

३–युधिष्ठिरका इन्द्र और धर्म आदिके साथ वार्तालाप, युधिष्ठिरका अपने धर्ममें दृढ़ रहना तथा सदेह स्वर्गमें जाना ··· ६४९०

चित्र-सूची

१–अग्निकी प्रेरणासे अर्जुन अपने गाण्डीव धनुष और अक्षय तरकसको जलमें डाल रहे हैं (सादा) ··· ६४८५

२–(२ लाइन चित्र फरमोंमें)

विषय-सूची (स्वर्गारोहणपर्व)

१–स्वर्गमें नारद और युधिष्ठिरकी बातचीत ··· ६४९३

२–देवदूतका युधिष्ठिरको नरकका दर्शन कराना तथा भाइयोंका करुणक्रन्दन सुनकर उनका वहीं रहनेका निश्चय करना ··· ६४९५

३–इन्द्र और धर्मका युधिष्ठिरको सान्त्वना देना तथा युधिष्ठिरका शरीर त्यागकर दिव्य लोकको जाना ··· ६४९९

४–युधिष्ठिरका दिव्यलोकमें श्रीकृष्ण, अर्जुन आदिका दर्शन करना ··· ६५०२

५–भीष्म आदि वीरोंका अपने-अपने मूलस्वरूपमें मिलना और महाभारतका उपसंहार तथा माहात्म्य ··· ६५०४

१–महाभारतश्रवणविधिः ··· ६५०९

२–महाभारत-माहात्म्य ··· ६५१७

३–सम्पूर्ण महाभारतकी श्लोक-संख्या (अनुष्टुप् छन्दके अनुसार) ··· ६५२०

४–महाभारतके सब पर्वोंके प्रत्येक अध्यायकी पूरी विषयसूची ··· १

५–महाभारतकी नामानुक्रमणिका संक्षिप्त परिचयसहित ··· १

चित्र-सूची

१–युधिष्ठिरका अपने आश्रित कुत्तेके लिये त्याग (तिरंगा) ··· ६४९३

२–देवदूतका युधिष्ठिरको मायामय नरकका दर्शन कराना (एकरंगा) ··· ६४९७

३–(१ लाइन चित्र फर्मेमें)

विदुरका सूक्ष्मशरीरसे युधिष्ठिरमें प्रवेश

एकविंशोऽध्यायः

धृतराष्ट्र आदिके लिये पाण्डवों तथा पुरवासियोंकी चिन्ता

वैशम्पायन उवाच

वनं गते कौरवेन्द्रे दुःखशोकसमन्विताः।
बभूवुः पाण्डवा राजन् मातृशोकेन चान्विताः॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! कौरवराज धृतराष्ट्रके वनमें चले जानेपर पाण्डव दुःख और शोकसे संतप्त रहने लगे । माताके विछोहका शोक उनके हृदयको दग्ध किये देता था ॥ १ ॥

तथा पौरजनः सर्वः शोचन्नास्ते जनाधिपम्।
कुर्वाणाश्च कथास्तत्र ब्राह्मणा नृपतिं प्रति॥ २॥

इसी प्रकार समस्त पुरवासी मनुष्य भी राजा धृतराष्ट्रके लिये निरन्तर शोकमग्न रहते थे तथा ब्राह्मणलोग सदा उन वृद्ध नरेशके विषयमें वहाँ इस प्रकार चर्चा किया करते थे ॥ २॥

कथं नु राजा वृद्धः स वने वसति निर्जने।
गान्धारी च महाभागा सा च कुन्ती पृथा कथम्॥ ३॥

'हाय ! हमारे बूढ़े महाराज उस निर्जन वनमें कैसे रहते होंगे ? महाभागा गान्धारी तथा कुन्तिभोजकुमारी पृथा देवी भी किस तरह वहाँ दिन बिताती होंगी ? ॥ ३ ॥

सुखार्हः स हि राजर्षिरसुखी तद् वनं महत्।
किमवस्थः समासाद्य प्रज्ञाचक्षुर्हतात्मजः॥ ४॥

'जिनके सारे पुत्र मारे गये, वे प्रज्ञाचक्षु राजर्षि धृतराष्ट्र सुख भोगनेके योग्य होकर भी उस विशाल वनमें जाकर किस अवस्थामें दुःखके दिन बिताते होंगे ? ॥ ४ ॥

सुदुष्कृतं कृतवती कुन्ती पुत्रानपश्यती।
राज्यश्रियं परित्यज्य वनं सा समरोचयत्॥ ५॥

'कुन्तीदेवीने तो बड़ा ही दुष्कर कर्म किया । अपने पुत्रोंके दर्शनसे वञ्चित हो राज्यलक्ष्मीको ठुकराकर उन्होंने वनमें रहना पसंद किया है ॥ ५ ॥

विदुरः किमवस्थश्च भ्रातुः शुश्रूषुरात्मवान्।
स च गावल्गणिर्धीमान् भर्तृपिण्डानुपालकः॥ ६॥

'अपने भाईकी सेवामें लगे रहनेवाले मनस्वी विदुरजी किस अवस्थामें होंगे ? अपने स्वामीके शरीरकी रक्षा करनेवाले बुद्धिमान् संजय भी कैसे होंगे ?' ॥ ६ ॥

आकुमारं च पौरास्ते चिन्ताशोकसमाहताः।
तत्र तत्र कथाश्चक्रुः समासाद्य परस्परम्॥ ७॥

बच्चेसे लेकर बूढ़ेतक समस्त पुरवासी चिन्ता और शोकसे पीड़ित हो जहाँ-तहाँ एक दूसरेसे मिलकर उपर्युक्त बातें ही किया करते थे ॥ ७ ॥

पाण्डवास्त्वेव ते सर्वे भृशं शोकपरायणाः।
शोचन्तो मातरं वृद्धामूषुर्नातिचिरं पुरे॥ ८॥

समस्त पाण्डव तो निरन्तर अत्यन्त शोकमें ही डूबे रहते थे । वे अपनी बूढ़ी माताके लिये इतने चिन्तित हो गये कि अधिक कालतक नगरमें नहीं रह सके ॥ ८ ॥

तथैव वृद्धं पितरं हतपुत्रं जनेश्वरम्।
गान्धारीं च महाभागां विदुरं च महामतिम्॥ ९॥
नैषां बभूव सम्प्रीतिस्तान् विचिन्तयतां तदा।
न राज्ये न च नारीषु न वेदाध्ययनेषु च॥ १०॥

जिनके पुत्र मारे गये थे, उन बूढ़े ताऊ महाराज धृतराष्ट्रकी, महाभागा गान्धारीकी और परम बुद्धिमान् विदुरकी अधिक चिन्ता करनेके कारण उन्हें कभी चैन नहीं पड़ती थी । न तो राजकाजमें उनका मन लगता था न स्त्रियोंमें । वेदाध्ययनमें भी उनकी रुचि नहीं होती थी ॥ ९-१० ॥

परं निर्वेदमगमंश्चिन्तयन्तो नराधिपम्।
तं च ज्ञातिवधं घोरं संस्मरन्तः पुनः पुनः॥ ११॥

राजा धृतराष्ट्रको याद करके वे अत्यन्त खिन्न एवं विरक्त हो उठते थे । भाई-बन्धुओंके उस भयंकर वधका उन्हें बारंबार स्मरण हो आता था ॥ ११ ॥

अभिमन्योश्च बालस्य विनाशं रणमूर्धनि।
कर्णस्य च महाबाहो संग्रामेष्वपलायिनः॥ १२॥

महाबाहु जनमेजय ! युद्धके मुहानेपर जो बालक अभिमन्युका अन्यायपूर्वक विनाश किया गया, संग्राममें कभी पीठ न दिखानेवाले कर्णका (परिचय न होनेसे)जो वध किया गया—इन घटनाओंको याद करके वे बेचैन हो जाते थे॥ १२॥

तथैव द्रौपदेयानामन्येषां सुहृदामपि।
वधं संस्मृत्य ते वीरा नातिप्रमनसोऽभवन्॥ १३॥

इसी प्रकार द्रौपदीके पुत्रों तथा अन्यान्य सुहृदोंके वधकी बात याद करके उनके मनकी सारी प्रसन्नता भाग जाती थी ॥ १३ ॥

हतप्रवीरां पृथिवीं हतरत्नां च भारत।
सदैव चिन्तयन्तस्ते न शान्तिमुपलेभिरे॥ १४॥

भरतनन्दन ! जिसके प्रमुख वीर मारे गये तथा रत्नोंका अपहरण हो गया, उस पृथ्वीकी दुर्दशाका सदैव चिन्तन करते हुए पाण्डव कभी थोड़ी देरके लिये भी शान्ति नहीं पाते थे ॥ १४ ॥

द्रौपदी हतपुत्रा च सुभद्रा चैव भाविनी।
नातिप्रीतियुते देव्यौ तदाऽऽस्तामप्रहृष्टवत् ॥ १५ ॥

जिनके बेटे मारे गये थे, वे द्रुपदकुमारी कृष्णा और भाविनी सुभद्रा दोनों देवियाँ निरन्तर अप्रसन्न और हर्षशून्य-सी होकर चुपचाप बैठी रहती थीं ॥ १५ ॥

वैराट्यास्तनयं दृष्ट्वा पितरं ते परिक्षितम्।
धारयन्ति स्म ते प्राणांस्तव पूर्वपितामहाः ॥ १६ ॥

जनमेजय! उन दिनों तुम्हारे पूर्व पितामह पाण्डव उत्तराके पुत्र और तुम्हारे पिता परीक्षित्‌को देखकर ही अपने प्राणोंको धारण करते थे ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

माताके लिये पाण्डवोंकी चिन्ता, युधिष्ठिरकी वनमें जानेकी इच्छा, सहदेव और द्रौपदीका साथ जानेका उत्साह तथा रनिवास और सेनासहित युधिष्ठिरका वनको प्रस्थान

वैशम्पायन उवाच

एवं ते पुरुषव्याघ्राः पाण्डवा मातृनन्दनाः।
स्मरन्तो मातरं वीरा बभूवुर्भृशदुःखिताः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अपनी माताको आनन्द प्रदान करनेवाले वे पुरुषसिंह वीर पाण्डव इस प्रकार माताकी याद करते हुए अत्यन्त दुखी हो गये थे ॥ १ ॥

ये राजकार्येषु पुरा व्यासक्ता नित्यशोऽभवन्।
ते राजकार्याणि तदा नाकार्षुः सर्वतः पुरे ॥ २ ॥
प्रविष्टा इव शोकेन नाभ्यनन्दन्त किंचन।
सम्भाष्यमाणा अपि ते न किंचित् प्रत्यपूजयन् ॥ ३ ॥

जो पहले प्रतिदिन राजकीय कार्योंमें निरन्तर आसक्त रहते थे, वे ही उन दिनों नगरमें कहीं कोई राजकाज नहीं करते थे। मानो उनके हृदयमें शोकने घर बना लिया था। वे किसी भी वस्तुको पाकर प्रसन्न नहीं होते थे। किसीके बातचीत करनेपर भी वे उस बातकी ओर न तो ध्यान देते और न उसकी सराहना करते थे ॥ २-३ ॥

ते स्म वीरा दुराधर्षा गाम्भीर्ये सागरोपमाः।
शोकोपहतविज्ञाना नष्टसंज्ञा इवाभवन् ॥ ४ ॥

समुद्रके समान गाम्भीर्यशाली दुर्धर्ष वीर पाण्डव उन दिनों शोकसे सुध-बुध खो जानेके कारण अचेत-से हो गये थे ॥ ४ ॥

अचिन्तयंश्च जननीं ततस्ते पाण्डुनन्दनाः।
कथं नु वृद्धमिथुनं वहत्यतिकृशा पृथा ॥ ५ ॥

तदनन्तर एक दिन पाण्डव अपनी माताके लिये इस प्रकार चिन्ता करने लगे—'हाय! मेरी माता कुन्ती अत्यन्त दुबली हो गयी होंगी। वे उन बूढ़े पति-पत्नी गान्धारी और धृतराष्ट्रकी सेवा कैसे निभाती होंगी? ॥ ५ ॥

कथं च स महीपालो हतपुत्रो निराश्रयः।
पत्न्या सह वसत्येको वने श्वापदसेविते ॥ ६ ॥

'शिकारी जन्तुओंसे भरे हुए उस जंगलमें आश्रयहीन एवं पुत्ररहित राजा धृतराष्ट्र अपनी पत्नीके साथ अकेले कैसे रहते होंगे? ॥ ६ ॥

सा च देवी महाभागा गान्धारी हतबान्धवा।
पतिमन्धं कथं वृद्धमन्वेति विजने वने ॥ ७ ॥

'जिनके बन्धु-बान्धव मारे गये हैं, वे महाभागा गान्धारी देवी, उस निर्जन वनमें अपने अन्धे और बूढ़े पतिका अनुसरण कैसे करती होंगी? ॥ ७ ॥

एवं तेषां कथयतामौत्सुक्यमभवत् तदा।
गमने चाभवद् बुद्धिर्धृतराष्ट्रदिदृक्षया ॥ ८ ॥

इस प्रकार बात करते-करते उनके मनमें बड़ी उत्कण्ठा हो गयी और उन्होंने धृतराष्ट्रके दर्शनकी इच्छासे वनमें जानेका विचार कर लिया ॥ ८ ॥

सहदेवस्तु राजानं प्रणिपत्येदमब्रवीत्।
अहो मे भवतो दृष्टं हृदयं गमनं प्रति ॥ ९ ॥

उस समय सहदेवने राजा युधिष्ठिरको प्रणाम करके कहा—'भैया, मुझे ऐसा दिखायी देता है कि आपका हृदय तपोवनमें जानेके लिये उत्सुक है—यह बड़े हर्षकी बात है ॥ ९ ॥

न हि त्वां गौरवेणाहमशकं वक्तुमञ्जसा।
गमनं प्रति राजेन्द्र तदिदं समुपस्थितम् ॥ १० ॥

'राजेन्द्र! मैं आपके गौरवका ख्याल करके संकोचवश वहाँ जानेकी बात स्पष्टरूपसे कह नहीं पाता था। आज सौभाग्यवश वह अवसर अपने आप उपस्थित हो गया ॥ १० ॥

दिष्ट्या द्रक्ष्यामि तां कुन्तीं
वर्तयन्तीं तपस्विनीम्।

जटिलां तापसीं वृद्धां कुशकाशपरिक्षताम् ॥ ११ ॥

'मेरा अहोभाग्य कि मैं तपस्यामें लगी हुई माता कुन्तीका दर्शन करूँगा। उनके सिरके बाल जटारूपमें परिणत हो गये होंगे ! वे तपस्विनी बूढ़ी माता कुश और काशके आसनोंपर शयन करनेके कारण क्षत-विक्षत हो रही होंगी ॥ ११ ॥

प्रासादहर्म्यसंवृद्धामत्यन्तसुखभागिनीम् ।
कदा नु जननीं श्रान्तां द्रक्ष्यामि भृशदुःखिताम् ॥ १२ ॥

'जो महलों और अट्टालिकाओंमें पलकर बड़ी हुई हैं, अत्यन्त सुखकी भागिनी रही हैं, वे ही माता कुन्ती अब थककर अत्यन्त दुःख उठाती होंगी ! मुझे कब उनके दर्शन होंगे ? ॥ १२ ॥

अनित्याः खलु मर्त्यानां गतयो भरतर्षभ ।
कुन्ती राजसुता यत्र वसत्यसुखिता वने ॥ १३ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! मनुष्योंकी गतियाँ निश्चय ही अनित्य होती हैं, जिनमें पड़कर राजकुमारी कुन्ती सुखोंसे वञ्चित हो वनमें निवास करती हैं' ॥ १३ ॥

सहदेववचः श्रुत्वा द्रौपदी योषितां वरा ।
उवाच देवी राजानमभिपूज्याभिनन्द्य च ॥ १४ ॥

सहदेवकी बात सुनकर नारियोंमें श्रेष्ठ महारानी द्रौपदी राजाका सत्कार करके उन्हें प्रसन्न करती हुई बोली—॥१४॥

कदा द्रक्ष्यामि तां देवीं यदि जीवति सा पृथा ।
जीवन्त्या ह्यद्य मे प्रीतिर्भविष्यति जनाधिप ॥ १५ ॥

'नरेश्वर ! मैं अपनी सास कुन्तीदेवीका दर्शन कब करूँगी ? क्या वे अबतक जीवित होंगी ? यदि वे जीवित हों तो आज उनका दर्शन पाकर मुझे असीम प्रसन्नता होगी॥१५॥

एषा तेऽस्तु मतिर्नित्यं धर्मे ते रमतां मनः ।
योऽद्य त्वमस्मान् राजेन्द्र श्रेयसा योजयिष्यसि ॥१६॥

'राजेन्द्र ! आपकी बुद्धि सदा ऐसी ही बनी रहे। आपका मन धर्ममें ही रमता रहे; क्योंकि आज आप हमलोगोंको माता कुन्तीका दर्शन कराकर परम कल्याणकी भागिनी बनायेंगे ॥ १६ ॥

अग्रपादस्थितं चेमं विद्धि राजन् वधूजनम् ।
काङ्क्षन्तं दर्शनं कुन्त्या गान्धार्याः श्वशुरस्य च ॥ १७ ॥

'राजन् ! आपको विदित हो कि अन्तःपुरकी सभी बहुएँ वनमें जानेके लिये पैर आगे बढ़ाये खड़ी हैं। वे सब-की-सब कुन्ती, गान्धारी तथा ससुरजीके दर्शन करना चाहती हैं' ॥ १७ ॥

इत्युक्तः स नृपो देव्या द्रौपद्या भरतर्षभ ।
सेनाध्यक्षान् समानाय्य सर्वानिदमुवाच ह ॥ १८ ॥

'भरतभूषण ! द्रौपदीदेवीके ऐसा कहनेपर राजा युधिष्ठिरने समस्त सेनापतियोंको बुलाकर कहा—॥ १८ ॥

निर्यातयत मे सेनां प्रभूतरथकुञ्जराम् ।
द्रक्ष्यामि वनसंस्थं च धृतराष्ट्रं महीपतिम् ॥ १९ ॥

'तुमलोग बहुत-से रथ और हाथी-घोड़ोंसे सुसज्जित सेनाको कूच करनेकी आज्ञा दो । मैं वनवासी महाराज धृतराष्ट्रके दर्शन करनेके लिये चलूँगा' ॥ १९ ॥

स्त्र्यध्यक्षांश्चाब्रवीद् राजा यानानि विविधानि मे ।
सज्जीक्रियन्तां सर्वाणि शिबिकाश्च सहस्रशः ॥ २० ॥

इसके बाद राजाने रनिवासके अध्यक्षोंको आज्ञा दी—'तुम सब लोग हमारे लिये भाँति-भाँतिके वाहन और पालकियोंको हजारोंकी संख्यामें तैयार करो ॥ २० ॥

शकटापणवेशाश्च कोशः शिल्पिन एव च ।
निर्यान्तु कोषपालाश्च कुरुक्षेत्राश्रमं प्रति ॥ २१ ॥

'आवश्यक सामानोंसे लदे हुए छकड़े, बाजार, दुकानें, खजाना, कारीगर और कोषाध्यक्ष—ये सब कुरुक्षेत्रके आश्रमकी ओर रवाना हो जायँ ॥ २१ ॥

यश्च पौरजनः कश्चिद् द्रष्टुमिच्छति पार्थिवम् ।
अनावृतः सुविहितः स च यातु सुरक्षितः ॥ २२ ॥

'नगरवासियोंमेंसे जो कोई भी महाराजका दर्शन करना चाहता हो, उसे बेरोक-टोक सुविधापूर्वक सुरक्षितरूपसे चलने दिया जाय ॥ २२ ॥

सूदाः पौरोगवाश्चैव सर्वं चैव महानसम् ।
विविधं भक्ष्यभोज्यं च शकटैरुह्यतां मम ॥ २३ ॥

'पाकशालाके अध्यक्ष और रसोइये भोजन बनानेके सब सामानों तथा भाँति-भाँतिके भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंको मेरे छकड़ोंपर लादकर ले चलें ॥ २३ ॥

प्रयाणं घुष्यतां चैव श्वोभूत इति मा चिरम् ।
क्रियतां पथि चाप्यद्य वेश्मानि विविधानि च ॥ २४ ॥

'नगरमें यह घोषणा करा दी जाय कि 'कल सबेरे यात्रा की जायगी; इसलिये चलनेवालोंको विलम्ब नहीं करना चाहिये।' मार्गमें हमलोगोंके ठहरनेके लिये आज ही कई तरहके डेरे तैयार कर दिये जायँ ॥ २४ ॥

एवमाज्ञाप्य राजा स भ्रातृभिः सहपाण्डवः ।
श्वोभूते निर्ययौ राजन् सस्त्रीवृद्धपुरःसरः ॥ २५ ॥

राजन् ! इस प्रकार आज्ञा देकर सबेरा होते ही अपने भाई पाण्डवोंसहित राजा युधिष्ठिरने स्त्री और बूढ़ोंको आगे करके नगरसे प्रस्थान किया ॥ २५ ॥

स बहिर्दिवसानेव जनौघं परिपालयन् ।

न्यवसन्नृपतिः पञ्च ततोऽगच्छद् वनं प्रति ॥ २६ ॥

बाहर जाकर पुरवासी मनुष्योंकी प्रतीक्षा करते हुए वे पाँच दिनोंतक एक ही स्थानपर टिके रहे। फिर सबको साथ लेकर-वनमें गये ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि युधिष्ठिरयात्रायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें युधिष्ठिरकी वनको यात्राविषयक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

सेनासहित पाण्डवोंकी यात्रा और उनका कुरुक्षेत्रमें पहुँचना

वैशम्पायन उवाच

आज्ञापयामास ततः सेनां भरतसत्तमः।
अर्जुनप्रमुखैर्गुप्तां लोकपालोपमैर्नरैः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर भरतकुलभूषण राजा युधिष्ठिरने लोकपालोंके समान पराक्रमी अर्जुन आदि वीरोंद्वारा सुरक्षित अपनी सेनाको कूच करनेकी आज्ञा दी ॥ १ ॥

योगो योग इति प्रीत्या ततः शब्दो महानभूत्।
क्रोशतां सादिनां तत्र युज्यतां युज्यतामिति ॥ २ ॥

'चलनेको तैयार हो जाओ, तैयार हो जाओ' इस प्रकार उनका प्रेमपूर्ण आदेश प्राप्त होते ही घुड़सवार सब ओर पुकार-पुकारकर कहने लगे, 'सवारियोंको जोतो, जोतो!' इस तरहकी घोषणा करनेसे वहाँ महान् कोलाहल मच गया ॥ २ ॥

केचिद् यानैर्नरा जग्मुः केचिदश्वैर्महाजवैः।
काञ्चनैश्च रथैः केचिज्ज्वलितज्वलनोपमैः ॥ ३ ॥

कुछ लोग पालकियोंपर सवार होकर चले और कुछ लोग महान् वेगशाली घोड़ोंद्वारा यात्रा करने लगे। कितने ही मनुष्य प्रज्वलित अग्निके समान चमकीले सुवर्णमय रथोंपर आरूढ़ होकर वहाँसे प्रस्थित हुए ॥ ३ ॥

गजेन्द्रैश्च तथैवान्ये केचिदुष्ट्रैर्नराधिप।
पदातिनस्तथैवान्ये नखरप्रासयोधिनः ॥ ४ ॥

नरेश्वर ! कुछ लोग गजराजोंपर सवार थे और कुछ ऊँटोंपर। कितने ही बघनखों और भालोंसे युद्ध करनेवाले वीर पैदल ही चल रहे थे ॥ ४ ॥

पौरजानपदाश्चैव यानैर्बहुविधैस्तथा।
अन्वयुः कुरुराजानं धृतराष्ट्रं दिदृक्षवः ॥ ५ ॥

नगर और जनपदके लोग भी राजा धृतराष्ट्रको देखनेकी इच्छासे नाना प्रकारके वाहनोंद्वारा कुरुराज युधिष्ठिरका अनुसरण करते थे ॥ ५ ॥

स चापि राजवचनादाचार्यो गौतमः कृपः।
सेनामादाय सेनानीः प्रययावाश्रमं प्रति ॥ ६ ॥

राजा युधिष्ठिरके आदेशसे सेनापति कृपाचार्य भी सेनाको साथ लेकर आश्रमकी ओर चल दिये ॥ ६ ॥

ततो द्विजैः परिवृतः कुरुराजो युधिष्ठिरः।
संस्तूयमानो बहुभिः सूतमागधबन्दिभिः ॥ ७ ॥
पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि।
रथानीकेन महता निर्जगाम कुरूद्वहः ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् ब्राह्मणोंसे घिरे हुए कुरुराज युधिष्ठिर बहुसंख्यक सूत, मागध और बन्दीजनोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए मस्तकपर श्वेत छत्र धारण किये विशाल रथसेनाके साथ वहाँसे चले ॥ ७-८ ॥

गजैश्चाचलसंकाशैर्भीमकर्मा वृकोदरः।
सज्जयन्त्रायुधोपेतैः प्रययौ पवनात्मजः ॥ ९ ॥

भयंकर पराक्रम करनेवाले पवनपुत्र भीमसेन पर्वताकार गजराजोंकी सेनाके साथ जा रहे थे। उन गजराजोंकी पीठपर अनेकानेक यन्त्र और आयुध सुसज्जित किये गये थे ॥ ९ ॥

माद्रीपुत्रावपि तथा हयारोहौ सुसंवृतौ।
जग्मतुः शीघ्रगमनौ संनद्धकवचध्वजौ ॥ १० ॥

माद्रीकुमार नकुल और सहदेव भी घोड़ोंपर सवार थे और घुड़सवारोंसे ही घिरे हुए शीघ्रतापूर्वक चल रहे थे। उन्होंने अपने शरीरमें कवच और घोड़ोंकी पीठपर ध्वज बाँध रक्खे थे ॥ १० ॥

अर्जुनश्च महातेजा रथेनादित्यवर्चसा।
वशी श्वेतैर्हयैर्युक्तैर्दिव्येनान्वगमन्नृपम् ॥ ११ ॥

महातेजस्वी जितेन्द्रिय अर्जुन श्वेत घोड़ोंसे जुते हुए सूर्यके समान तेजस्वी दिव्य रथपर आरूढ़ हो राजा युधिष्ठिरका अनुसरण करते थे ॥ ११ ॥

द्रौपदीप्रमुखाश्चापि स्त्रीसंघाः शिबिकायुताः।
स्त्र्यध्यक्षगुप्ताः प्रययुर्विसृजन्तोऽमितं वसु ॥ १२ ॥

द्रौपदी आदि स्त्रियाँ भी शिबिकाओंमें बैठकर दीन-दुखियोंको असंख्य धन बाँटती हुई जा रही थीं। रनिवासके अध्यक्ष सब ओरसे उनकी रक्षा कर रहे थे ॥ १२ ॥

समृद्धरथहस्त्यश्वं वेणुवीणानुनादितम्।
शुशुभे पाण्डवं सैन्यं तत् तदा भरतर्षभ ॥ १३ ॥

पाण्डवोंकी सेनामें रथ, हाथी और घोड़ोंकी अधिकता

थी। उसमें कहीं वंशी बजती थी और कहीं वीणा। भरतश्रेष्ठ ! इन वाद्योंकी ध्वनिसे निनादित होनेके कारण वह पाण्डव-सेना उस समय बड़ी शोभा पा रही थी ॥१३॥

नदीतीरेषु रम्येषु सरःसु च विशाम्पते।
वासान् कृत्वा क्रमेणाथ जग्मुस्ते कुरुपुङ्गवाः ॥ १४॥

प्रजानाथ ! वे कुरुश्रेष्ठ वीर नदियोंके रमणीय तटों तथा अनेक सरोवरोंपर पड़ाव डालते हुए क्रमशः आगे बढ़ते गये ॥ १४ ॥

युयुत्सुश्च महातेजा धौम्यश्चैव पुरोहितः।
युधिष्ठिरस्य वचनात् पुरगुप्तिं प्रचक्रतुः ॥ १५॥

महातेजस्वी युयुत्सु और पुरोहित धौम्य मुनि युधिष्ठिरके आदेशसे हस्तिनापुरमें ही रहकर राजधानीकी रक्षा करते थे ॥ १५ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा कुरुक्षेत्रमवातरत्।
क्रमेणोत्तीर्य यमुनां नदीं परमपावनीम् ॥ १६ ॥

उधर राजा युधिष्ठिर क्रमशः आगे बढ़ते हुए परम पावन यमुना नदीको पार करके कुरुक्षेत्रमें जा पहुँचे ॥१६॥

स ददर्शाश्रमं दूराद् राजर्षेस्तस्य धीमतः।
शतयूपस्य कौरव्य धृतराष्ट्रस्य चैव ह ॥ १७॥

कुरुनन्दन ! वहाँ पहुँचकर उन्होंने दूरसे ही बुद्धिमान् राजर्षि शतयूप तथा धृतराष्ट्रके आश्रमको देखा ॥ १७ ॥

ततः प्रमुदितः सर्वो जनस्तद् वनमञ्जसा।
विवेश सुमहानादैरापूर्य भरतर्षभ ॥ १८॥

भरतभूषण ! इससे उन सब लोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने उस वनमें महान् कोलाहल फैलाते हुए अनायास ही प्रवेश किया ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि धृतराष्ट्राश्रमगमने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें युधिष्ठिर आदिका धृतराष्ट्रके आश्रमपर गमनविषयक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

पाण्डवों तथा पुरवासियोंका कुन्ती, गान्धारी और धृतराष्ट्रके दर्शन करना

वैशम्पायन उवाच

ततस्ते पाण्डवा दूरादवतीर्य पदातयः।
अभिजग्मुर्नरपतेराश्रमं विनयानताः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर वे समस्त पाण्डव दूरसे ही अपनी सवारियोंसे उतर पड़े और पैदल चलकर बड़ी विनयके साथ राजाके आश्रमपर आये ॥ १ ॥

स च योधजनः सर्वो ये च राष्ट्रनिवासिनः।
स्त्रियश्च कुरुमुख्यानां पद्भिरेवान्वयुस्तदा ॥ २ ॥

साथ आये हुए समस्त सैनिक, राज्यके निवासी मनुष्य तथा कुरुवंशके प्रधान पुरुषोंकी स्त्रियाँ भी पैदल ही आश्रमतक गयीं ॥ २ ॥

आश्रमं ते ततो जग्मुर्धृतराष्ट्रस्य पाण्डवाः।
शून्यं मृगगणाकीर्णं कदलीवनशोभितम् ॥ ३ ॥
ततस्तत्र समाजग्मुस्तापसा नियतव्रताः।
पाण्डवानागतान् द्रष्टुं कौतूहलसमन्विताः ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्रका वह पवित्र आश्रम मनुष्योंसे सूना था। उसमें सब ओर मृगोंके झुंड विचर रहे थे और केलेका सुन्दर उद्यान उस आश्रमकी शोभा बढ़ाता था । पाण्डव लोग ज्यों ही उस आश्रममें पहुँचे त्यों ही वहाँ नियमपूर्वक व्रतोंका पालन करनेवाले बहुत-से तपस्वी कौतूहलवश वहाँ पधारे हुए पाण्डवोंको देखनेके लिये आ गये ॥ ३-४ ॥

तानपृच्छत् ततो राजा क्वासौ कौरववंशभृत्।
पिता ज्येष्ठो गतोऽस्माकमिति बाष्पपरिप्लुतः ॥ ५ ॥

उस समय राजा युधिष्ठिरने उन सबको प्रणाम करके नेत्रोंमें आँसू भरकर उन सबसे पूछा—'मुनिवरो ! कौरववंशका पालन करनेवाले हमारे ज्येष्ठ पिता इस समय कहाँ गये हैं ?' ॥

ते तमूचुस्ततो वाक्यं यमुनामवगाहितुम्।
पुष्पाणामुदकुम्भस्य चार्थे गत इति प्रभो ॥ ६ ॥

उन्होंने उत्तर दिया—'प्रभो ! वे यमुनामें स्नान करने, फूल लाने और पानीका घड़ा भरनेके लिये गये हुए हैं' ॥ ६ ॥

तैराख्यातेन मार्गेण ततस्ते जग्मुरञ्जसा।
ददृशुश्चाविदूरे तान् सर्वानथ पदातयः ॥ ७ ॥

यह सुनकर उन्हींके बताये हुए मार्गसे वे सब-के-सब पैदल ही यमुनातटकी ओर चल दिये । कुछ ही दूर जानेपर उन्होंने उन सब लोगोंको वहाँसे आते देखा ॥ ७ ॥

ततस्ते सत्वरा जग्मुः पितुर्दर्शनकाङ्क्षिणः।
सहदेवस्तु वेगेन प्राधावद् यत्र सा पृथा ॥ ८ ॥
सुस्वरं रुरुदे धीमान् मातुः पादावुपस्पृशन्।

फिर तो समस्त पाण्डव अपने ताऊके दर्शनकी इच्छासे

बड़ी उतावलीके साथ आगे बढ़े । बुद्धिमान् सहदेव तो बड़े वेगसे दौड़े और जहाँ कुन्ती थी, वहाँ पहुँचकर माताके दोनों चरण पकड़कर फूट-फूटकर रोने लगे ॥ ८½ ॥

सा च बाष्पाकुलमुखी ददर्श दयितं सुतम् ॥ ९ ॥
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य समुन्नाम्य च पुत्रकम् ।
गान्धार्याः कथयामास सहदेवमुपस्थितम् ॥ १० ॥
अनन्तरं च राजानं भीमसेनमथार्जुनम् ।
नकुलं च पृथा दृष्ट्वा त्वरमाणोपचक्रमे ॥ ११ ॥

कुन्तीने भी जब अपने प्यारे पुत्र सहदेवको देखा तो उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह चली । उन्होंने दोनों हाथोंसे पुत्रको उठाकर छातीसे लगा लिया और गान्धारीसे कहा—'दीदी ! सहदेव आपकी सेवामें उपस्थित है' । तदनन्तर राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन तथा नकुलको देखकर कुन्तीदेवी बड़ी उतावलीके साथ उनकी ओर चलीं ॥ ९–११ ॥

सा ह्यग्रे गच्छति तयोर्दम्पत्योर्हतपुत्रयोः ।
कर्षन्ती तौ ततस्ते तां दृष्ट्वा संन्यपतन् भुवि ॥ १२ ॥

वे आगे-आगे चलती थीं और उन पुत्रहीन दम्पतिको अपने साथ खींचे लाती थीं । उन्हें देखते ही पाण्डव उनके चरणोंमें पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १२ ॥

राजा तान् स्वरयोगेन स्पर्शेन च महामनाः ।
प्रत्यभिज्ञाय मेधावी समाश्वासयत प्रभुः ॥ १३ ॥

महामना बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रने बोलनेके स्वरसे और स्पर्शसे पाण्डवोंको पहचानकर उन सबको आश्वासन दिया ॥ १३ ॥

ततस्ते बाष्पमुत्सृज्य गान्धारीसहितं नृपम् ।
उपतस्थुर्महात्मानो मातरं च यथाविधि ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् अपने नेत्रोंके आँसू पोंछकर महात्मा पाण्डवोंने गान्धारीसहित राजा धृतराष्ट्र तथा माता कुन्तीको विधिपूर्वक प्रणाम किया ॥ १४ ॥

सर्वेषां तोयकलशाञ्जगृहुस्ते स्वयं तदा ।
पाण्डवा लब्धसंज्ञास्ते मात्रा चाश्वासिताः पुनः ॥ १५ ॥

इसके बाद मातासे बार-बार सान्त्वना पाकर जब पाण्डव कुछ स्वस्थ एवं सचेत हुए तब उन्होंने उन सबके हाथसे जलके भरे हुए कलश स्वयं ले लिये ॥ १५ ॥

तथा नार्यो नृसिंहानां सोऽवरोधजनस्तदा ।
पौरजानपदाश्चैव ददृशुस्तं जनाधिपम् ॥ १६ ॥

तदनन्तर उन पुरुषसिंहोंकी स्त्रियों तथा अन्तःपुरकी दूसरी स्त्रियोंने और नगर एवं जनपदके लोगोंने भी क्रमशः राजा धृतराष्ट्रका दर्शन किया ॥ १६ ॥

निवेदयामास तदा जनं तन्नामगोत्रतः ।
युधिष्ठिरो नरपतिः स चैनं प्रत्यपूजयत् ॥ १७ ॥

उस समय स्वयं राजा युधिष्ठिरने एक-एक व्यक्तिका नाम और गोत्र बताकर परिचय दिया और परिचय पाकर धृतराष्ट्रने उन सबका वाणीद्वारा सत्कार किया ॥ १७ ॥

स तैः परिवृतो मेने हर्षबाष्पाविलेक्षणः ।
राजाऽऽत्मानं गृहगतं पुरेव गजसाह्वये ॥ १८ ॥

उन सबसे घिरे हुए राजा धृतराष्ट्र अपने नेत्रोंसे हर्षके आँसू बहाने लगे । उस समय उन्हें ऐसा जान पड़ा मानो मैं पहलेकी ही भाँति हस्तिनापुरके राजमहलमें बैठा हूँ ॥ १८ ॥

अभिवादितो वधूभिश्च कृष्णाद्याभिः स पार्थिवः ।
गान्धार्या सहितो धीमान् कुन्त्या च प्रत्यनन्दत ॥ १९ ॥

तत्पश्चात् द्रौपदी आदि बहुओंने गान्धारी और कुन्तीसहित बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रको प्रणाम किया और उन्होंने भी उन सबको आशीर्वाद देकर प्रसन्न किया ॥ १९ ॥

ततश्चाश्रममागच्छत् सिद्धचारणसेवितम् ।
दिदृक्षुभिः समाकीर्णं नभस्तारागणैरिव ॥ २० ॥

इसके बाद वे सबके साथ सिद्ध और चारणोंसे सेवित अपने आश्रमपर आये । उस समय उनका आश्रम तारोंसे व्याप्त हुए आकाशकी भाँति दर्शकोंसे भरा था ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि युधिष्ठिरादिधृतराष्ट्रसमागमे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें युधिष्ठिर आदिका धृतराष्ट्रसे मिलनविषयक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

संजयका ऋषियोंसे पाण्डवों, उनकी पत्नियों तथा अन्यान्य स्त्रियोंका परिचय देना

वैशम्पायन उवाच

स तैः सह नरव्याघ्रैर्भ्रातृभिर्भरतर्षभ ।
राजा रुचिरपद्माक्षैरासांचक्रे तदाश्रमे ॥ १ ॥
तापसैश्च महाभागैर्नानादेशसमागतैः ।
द्रष्टुं कुरुपतेः पुत्रान् पाण्डवान् पृथुवक्षसः ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! जब राजा

धृतराष्ट्र सुन्दर कमलके-से नेत्रोंवाले पुरुषसिंह युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयोंके साथ आश्रममें विराजमान हुए, उस समय वहाँ अनेक देशोंसे आये हुए महाभाग तपस्वीगण कुरुराज पाण्डुके पुत्र—विशाल वक्षःस्थलवाले पाण्डवोंको देखनेके लिये पहलेसे उपस्थित थे ॥ १-२ ॥

ते त्वब्रुवञ्ज्ञातुमिच्छामः कतमोऽत्र युधिष्ठिरः ।
भीमार्जुनौ यमौ चैव द्रौपदी च यशस्विनी ॥ ३ ॥

उन्होंने पूछा—'हमलोग यह जानना चाहते हैं कि यहाँ आये हुए लोगोंमें महाराज युधिष्ठिर कौन हैं ? भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और यशस्विनी द्रौपदीदेवी कौन हैं ?' ॥ ३ ॥

तानाचख्यौ तदा सूतः सर्वांस्तानभिनामतः ।
संजयो द्रौपदीं चैव सर्वाश्चान्याः कुरुस्त्रियः ॥ ४ ॥

उनके इस प्रकार पूछनेपर सूत संजयने उन सबके नाम बताकर पाण्डवों, द्रौपदी तथा कुरुकुलकी अन्य स्त्रियोंका इस प्रकार परिचय दिया ॥ ४ ॥

संजय उवाच

य एष जाम्बूनदशुद्धगौर-
स्तनुर्महासिंह इव प्रवृद्धः ।
प्रचण्डघोणः पृथुदीर्घनेत्र-
स्ताम्रायताक्षः कुरुराज एषः ॥ ५ ॥

संजय बोले—ये जो विशुद्ध सुवर्णके समान गोरे और सबसे बड़े हैं, देखनेमें महान् सिंहके समान जान पड़ते हैं, जिनकी नासिका नुकीली तथा नेत्र बड़े-बड़े और कुछ-कुछ लालिमा लिये हुए हैं, ये कुरुराज युधिष्ठिर हैं ॥ ५ ॥

अयं पुनर्मत्तगजेन्द्रगामी
प्रतप्तचामीकरशुद्धगौरः ।
पृथ्वायतांसः पृथुदीर्घबाहु-
र्वृकोदरः पश्यत पश्यतेमम् ॥ ६ ॥

जो मतवाले गजराजके समान चलनेवाले, तपाये हुए सुवर्णके समान विशुद्ध गौरवर्ण तथा मोटे और चौड़े कन्धे-वाले हैं, जिनकी भुजाएँ मोटी और बड़ी-बड़ी हैं, ये ही भीमसेन हैं । आप लोग इन्हें अच्छी तरह देख लें, देख लें ॥

यस्त्वेष पार्श्वेऽस्य महाधनुष्मान्
श्यामो युवा वारणयूथपाभः ।
सिंहोन्नतांसो गजखेलगामी
पद्मायताक्षोऽर्जुन एष वीरः ॥ ७ ॥

इनके बगलमें जो ये महाधनुर्धर और श्याम रंगके नव-युवक दिखायी देते हैं, जिनके कंधे सिंहके समान ऊँचे हैं, जो हाथियोंके यूथपति गजराजके समान प्रतीत होते हैं और हाथीके ही समान मस्तानी चालसे चलते हैं, ये कमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाले वीरवर अर्जुन हैं ॥ ७ ॥

कुन्तीसमीपे पुरुषोत्तमौ तु
यमाविमौ विष्णुमहेन्द्रकल्पौ ।
मनुष्यलोके सकले समोऽस्ति
ययोर्न रूपे न बले न शीले ॥ ८ ॥

कुन्तीके पास जो ये दो श्रेष्ठ पुरुष बैठे दिखायी देते हैं, ये एक ही साथ उत्पन्न हुए नकुल और सहदेव हैं । ये दोनों भाई भगवान् विष्णु और इन्द्रके समान शोभा पाते हैं । रूप, बल और शीलमें इन दोनोंकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है ॥ ८ ॥

इयं पुनः पद्मदलायताक्षी
मध्यं वयः किंचिदिव स्पृशन्ती ।
नीलोत्पलाभा सुरदेवतेव
कृष्णा स्थिता मूर्तिमतीव लक्ष्मीः ॥ ९ ॥

ये जो किंचित् मध्यम वयका स्पर्श करती हुई, नील कमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाली एवं नील उत्पलकी-सी श्यामकान्तिसे सुशोभित होनेवाली सुन्दरी मूर्तिमती लक्ष्मी तथा देवताओंकी देवी-सी जान पड़ती हैं, ये ही महारानी द्रुपद-कुमारी कृष्णा हैं ॥ ९ ॥

अस्यास्तु पार्श्वे कनकोत्तमाभा
यैषा प्रभा मूर्तिमतीव सौमी ।
मध्ये स्थिता सा भगिनी द्विजाग्र्या-
श्चक्रायुधस्याप्रतिमस्य तस्य ॥ १० ॥

विप्रवरो ! इनके बगलमें जो ये सुवर्णसे भी उत्तम कान्तिवाली देवी चन्द्रमाकी मूर्तिमती प्रभा-सी विराजमान हो रही हैं और सब स्त्रियोंके बीचमें बैठी हैं, ये अनुपम प्रभाव-शाली चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्णकी बहिन सुभद्रा हैं ॥ १० ॥

इयं च जाम्बूनदशुद्धगौरी
पार्थस्य भार्या भुजगेन्द्रकन्या ।
चित्राङ्गदा चैव नरेन्द्रकन्या
यैषा सवर्णार्द्रमधूकपुष्पैः ॥ ११ ॥

ये जो विशुद्ध जाम्बूनद नामक सुवर्णके समान गौर वर्ण-वाली सुन्दरी देवी बैठी हैं, ये नागराजकन्या उलूपी हैं तथा जिनकी अङ्गकान्ति नूतन मधूक-पुष्पोंके समान प्रतीत होती है, ये राजकुमारी चित्राङ्गदा हैं । ये दोनों भी अर्जुनकी ही पत्नियाँ हैं ॥ ११ ॥

इयं स्वसा राजचमूपतेश्च
प्रवृद्धनीलोत्पलदामवर्णा ।
पस्पर्ध कृष्णेन सदा नृपो यो
वृकोदरस्यैष परिग्रहोऽग्र्यः ॥ १२ ॥

ये जो इन्दीवरके समान श्यामवर्णवाली राजमहिला विराजमान हैं, भीमसेनकी श्रेष्ठ पत्नी हैं । ये उस राजसेनापति

एवं नरेशकी बहन हैं, जो सदा भगवान् श्रीकृष्णसे टक्कर लेनेका हौसला रखता था ॥ १२ ॥

इयं च राज्ञो मगधाधिपस्य
सुता जरासन्ध इति श्रुतस्य ।
यवीयसो माद्रवतीसुतस्य
भार्या मता चम्पकदामगौरी ॥ १३ ॥

साथ ही यह जो चम्पाकी मालाके समान गौरवर्णवाली सुन्दरी बैठी हुई है, यह सुविख्यात मगधनरेश जरासंधकी पुत्री एवं माद्रीके छोटे पुत्र सहदेवकी भार्या है ॥ १३ ॥

इन्दीवरश्यामतनुः स्थिता तु
यैषा परासन्नमहीतले च ।
भार्या मता माद्रवतीसुतस्य
ज्येष्ठस्य सेयं कमलायताक्षी ॥ १४ ॥

इसके पास जो नीलकमलके समान श्याम रंगवाली महिला है, वह कमलनयनी सुन्दरी माद्रीके ज्येष्ठ पुत्र नकुलकी पत्नी है ॥ १४ ॥

इयं तु निष्टप्तसुवर्णगौरी
राज्ञो विराटस्य सुता सपुत्रा ।
भार्याभिमन्योर्निहतो रणे यो
द्रोणादिभिस्तैर्विरथो रथस्थैः ॥ १५ ॥

यह जो तपाये हुए कुन्दनके समान कान्तिवाली तरुणी गोदमें बालक लिये बैठी है, यह राजा विराटकी पुत्री उत्तरा है। यह उस वीर अभिमन्युकी धर्मपत्नी है, जो महाभारत-युद्धमें रथपर बैठे हुए द्रोणाचार्य आदि अनेक महारथियोंद्वारा रथहीन कर दिया जानेपर मारा गया था ॥ १५ ॥

एतास्तु सीमन्तशिरोरुहा याः
शुक्लोत्तरीया नरराजपत्न्यः ।
राज्ञोऽस्य वृद्धस्य परं शताख्याः
स्नुषा नृवीराहतपुत्रनाथाः ॥ १६ ॥

इन सबके सिवा ये जितनी स्त्रियाँ सफेद चादर ओढ़े बैठी हुई हैं, जिनकी माँगोंमें सिन्दूर नहीं है, ये सब दुर्योधन आदि सौ भाइयोंकी पत्नियाँ और इन बूढ़े महाराजकी सौ पुत्रवधुएँ हैं। इनके पति और पुत्र रणमें नरवीरोंद्वारा मारे गये हैं ॥ १६ ॥

एता यथामुख्यमुदाहृता वो
ब्राह्मण्यभावादृजुबुद्धिसत्त्वाः ।
सर्वा भवद्भिः परिपृच्छ्यमाना
नरेन्द्रपत्न्यः सुविशुद्धसत्त्वाः ॥ १७ ॥

ब्राह्मणत्वके प्रभावसे सरल बुद्धि और विशुद्ध अन्तःकरणवाले महर्षियो ! आपने सबका परिचय पूछा था; इसलिये मैंने इनमेंसे मुख्य-मुख्य व्यक्तियोंका परिचय दे दिया है। ये सभी राजपत्नियाँ विशुद्ध हृदयवाली हैं ॥ १७ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं स राजा कुरुवृद्धवर्यः
समागतस्तैर्नरदेवपुत्रैः ।
पप्रच्छ सर्वं कुशलं तदानीं
गतेषु सर्वेष्वथ तापसेषु ॥ १८ ॥

इस प्रकार संजयके मुखसे सबका परिचय पाकर जब सभी तपस्वी अपनी-अपनी कुटियामें चले गये, तब कुरुकुलके वृद्ध एवं श्रेष्ठ पुरुष राजा धृतराष्ट्र इस प्रकार उन नरदेव कुमारोंसे मिलकर उस समय सबका कुशल-मङ्गल पूछने लगे।

योधेषु वाप्याश्रममण्डलं तं
मुक्त्वा निविष्टेषु विमुच्य पत्रम् ।
स्त्रीवृद्धबाले च सुसंनिविष्टे
यथार्हतस्तान् कुशलान्यपृच्छत् ॥ १९ ॥

पाण्डवोंके सैनिकोंने आश्रममण्डलकी सीमाको छोड़कर कुछ दूरपर समस्त वाहनोंको खोल दिया और वहीं पड़ाव डाल दिया तथा स्त्री, वृद्ध और बालकोंका समुदाय छावनीमें सुखपूर्वक विश्राम लेने लगा । उस समय राजा धृतराष्ट्र पाण्डवोंसे मिलकर उनका कुशल-समाचार पूछने लगे ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि ऋषीन् प्रति युधिष्ठिरादिकथने पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें ऋषियोंके प्रति युधिष्ठिर आदिका परिचयविषयक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरकी बातचीत तथा विदुरजीका युधिष्ठिरके शरीरमें प्रवेश

धृतराष्ट्र उवाच

युधिष्ठिर महाबाहो कच्चित् त्वं कुशली ह्यसि ।
सहितो भ्रातृभिः सर्वैः पौरजानपदैस्तथा ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—महाबाहो युधिष्ठिर ! तुम नगर तथा जनपदकी समस्त प्रजाओं और भाइयोंसहित कुशलसे तो हो न ? ॥ १ ॥

ये च त्वामनुजीवन्ति कच्चित् तेऽपि निरामयाः ।
सचिवा भृत्यवर्गाश्च गुरवश्चैव ते नृप ॥ २ ॥

नरेश्वर ! जो तुम्हारे आश्रित रहकर जीवन-निर्वाह करते हैं, वे मन्त्री, भृत्यवर्ग और गुरुजन भी सुखी और स्वस्थ तो हैं न ? ॥ २ ॥

कच्चित् तेऽपि निरातङ्का वसन्ति विषये तव ।
कच्चिद् वर्तसि पौराणीं वृत्तिं राजर्षिसेविताम् ॥ ३ ॥

क्या वे भी तुम्हारे राज्यमें निर्भय होकर रहते हैं ? क्या तुम प्राचीन राजर्षियोंसे सेवित पुरानी रीति-नीतिका पालन करते हो ? ॥ ३ ॥

कच्चिन्न्यायाननुच्छिद्य कोशस्तेऽभिप्रपूर्यते ।
अरिमध्यस्थमित्रेषु वर्तसे चानुरूपतः ॥ ४ ॥

क्या तुम्हारा खजाना न्यायमार्गका उल्लङ्घन किये बिना ही भरा जाता है । क्या तुम शत्रु, मित्र और उदासीन पुरुषोंके प्रति यथायोग्य बर्ताव करते हो ? ॥ ४ ॥

ब्राह्मणानग्रहारैर्वा यथावदनुपश्यसि ।
कच्चित् ते परितुष्यन्ति शीलेन भरतर्षभ ॥ ५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! क्या तुम ब्राह्मणोंको माफी जमीन देकर उनपर यथोचित दृष्टि रखते हो ? क्या तुम्हारे शील-स्वभावसे वे संतुष्ट रहते हैं ? ॥ ५ ॥

शत्रवोऽपि कुतः पौरा भृत्या वा स्वजनोऽपि वा ।
कच्चिद् यजसि राजेन्द्र श्रद्धावान् पितृदेवताः ॥ ६ ॥

राजेन्द्र ! पुरवासी स्वजनों और सेवकोंकी तो बात ही क्या है, क्या शत्रु भी तुम्हारे बर्तावसे संतुष्ट रहते हैं ? क्या तुम श्रद्धापूर्वक देवताओं और पितरोंका यजन करते हो ? ॥

अतिथीनन्नपानेन कच्चिदर्चसि भारत ।
कच्चिन्नयपथे विप्राः स्वकर्मनिरतास्तव ॥ ७ ॥
क्षत्रिया वैश्यवर्गा वा शूद्रा वापि कुटुम्बिनः ।

भारत ! क्या तुम अन्न और जलके द्वारा अतिथियोंका सत्कार करते हो ? क्या तुम्हारे राज्यमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा कुटुम्बीजन न्यायमार्गका अवलम्बन करते हुए अपने कर्तव्यके पालनमें तत्पर रहते हैं ? ॥ ७½ ॥

कच्चित् स्त्रीबालवृद्धं ते न शोचति न याचते ॥ ८ ॥
जामयः पूजिताः कच्चित् तव गेहे नरर्षभ ।

नरश्रेष्ठ ! तुम्हारे राज्यमें स्त्रियों, बालकों और वृद्धोंको दुःख तो नहीं भोगना पड़ता ? वे जीविकाके लिये भीख तो नहीं माँगते हैं ? तुम्हारे घरमें सौभाग्यवती बहू-बेटियोंका आदर-सत्कार तो होता है न ? ॥ ८½ ॥

कच्चिद् राजर्षिवंशोऽयं त्वामासाद्य महीपतिम् ॥ ९ ॥
यथोचितं महाराज यशसा नावसीदति ।

महाराज ! राजर्षियोंका यह वंश तुम-जैसे राजाको पाकर यथोचित प्रतिष्ठाको प्राप्त होता है न ? इसे यशसे वञ्चित होकर अपयशका भागी तो नहीं होना पड़ता है ? ॥ ९½ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्येवंवादिनं तं स न्यायवित् प्रत्यभाषत ॥ १० ॥
कुशलप्रश्नसंयुक्तं कुशलो वाक्यकर्मणि ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! धृतराष्ट्रके इस प्रकार कुशल-समाचार पूछनेपर बातचीत करनेमें कुशल न्याय-वेत्ता राजा युधिष्ठिरने इस प्रकार कहा ॥ १०½ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कच्चित् ते वर्धते राजंस्तपो दमशमौ च ते ॥ ११ ॥
अपि मे जननी चेयं शुश्रूषुर्विगतक्लमा ।
अथास्याः सफलो राजन् वनवासो भविष्यति ॥ १२ ॥

युधिष्ठिर बोले—राजन् ! (मेरे यहाँ सब कुशल है) आपके तप, इन्द्रियसंयम और मनोनिग्रह आदि सद्गुणोंकी वृद्धि तो हो रही है न ? ये मेरी माता कुन्ती आपकी सेवा-शुश्रूषा करनेमें क्लेशका अनुभव तो नहीं करतीं ? क्या इनका वनवास सफल होगा ? ॥ ११-१२ ॥

इयं च माता ज्येष्ठा मे शीतवाताध्वकर्शिता ।
घोरेण तपसा युक्ता देवी कच्चिन्न शोचति ॥ १३ ॥
हतान् पुत्रान् महावीर्यान् क्षत्रधर्मपरायणान् ।
नापध्यायति वा कच्चिदस्मान् पापकृतः सदा ॥ १४ ॥

ये मेरी बड़ी माता गान्धारीदेवी सर्दी, हवा और रास्ता चलनेके परिश्रमसे कष्ट पाकर अत्यन्त दुबली हो गयी हैं और घोर तपस्यामें लगी हुई हैं । ये देवी युद्धमें मारे गये अपने क्षत्रिय-धर्मपरायण महापराक्रमी पुत्रोंके लिये कभी शोक तो नहीं करतीं ? और हम अपराधियोंका कभी कोई अनिष्ट तो नहीं सोचती हैं ? ॥ १३-१४ ॥

क्व चासौ विदुरो राजन् नेमं पश्यामहे वयम् ।
सञ्जयः कुशली चायं कच्चिन्नु तपसि स्थिरः ॥ १५ ॥

राजन् ! ये संजय तो कुशलपूर्वक स्थिरभावसे तपस्यामें लगे हुए हैं न ? इस समय विदुरजी कहाँ हैं ? इन्हें हमलोग नहीं देख पा रहे हैं ॥ १५ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं धृतराष्ट्रो जनाधिपम् ।
कुशली विदुरः पुत्र तपो घोरं समाश्रितः ॥ १६ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजा युधिष्ठिरके इस प्रकार पूछनेपर धृतराष्ट्रने उनसे कहा—'बेटा ! विदुरजी कुशलपूर्वक हैं । वे बड़ी कठोर तपस्यामें लगे हैं ॥ १६ ॥

वायुभक्षो निराहारः कृशो धमनिसन्ततः ।
कदाचिद् दृश्यते विप्रैः शून्येऽस्मिन् कानने क्वचित् ॥

'वे निरन्तर उपवास करते और वायु पीकर रहते हैं, इसलिये अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं । उनके सारे शरीरमें व्याप्त हुई नस-नाड़ियाँ स्पष्ट दिखायी देती हैं । इस सूने वनमें ब्राह्मणोंको कभी-कभी कहीं उनके दर्शन हो जाया करते हैं' ॥

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य जटी वीटामुखः कृशः ।

दिग्वासा मलदिग्धाङ्गो धनरेणुसमुक्षितः ॥ १८ ॥
दूरादालक्षितः क्षत्ता तत्राख्यातो महीपतेः ।
निवर्तमानः सहसा राजन् दृष्ट्वाऽऽश्रमं प्रति ॥ १९ ॥

राजा धृतराष्ट्र इस प्रकार कह ही रहे थे कि मुखमें पत्थरका टुकड़ा लिये जटाधारी कृशकाय विदुरजी दूरसे आते दिखायी दिये। वे दिगम्बर (वस्त्रहीन) थे। उनके सारे शरीरमें मैल जमी हुई थी। वे वनमें उड़ती हुई धूलोंसे नहा गये थे। राजा युधिष्ठिरको उनके आनेकी सूचना दी गयी। राजन्! विदुरजी उस आश्रमकी ओर देखकर सहसा पीछेकी ओर लौट पड़े ॥ १८-१९ ॥

तमन्वधावन्नृपतिरेक एव युधिष्ठिरः ।
प्रविशन्तं वनं घोरं लक्ष्यालक्ष्यं कचित् कचित् ॥ २० ॥
भो भो विदुर राजाहं दयितस्ते युधिष्ठिरः ।
इति ब्रुवन्नरपतिस्तं यत्नादभ्यधावत ॥ २१ ॥

यह देख राजा युधिष्ठिर अकेले ही उनके पीछे-पीछे दौड़े। विदुरजी कभी दिखायी देते और कभी अदृश्य हो जाते थे। जब वे एक घोर वनमें प्रवेश करने लगे, तब राजा युधिष्ठिर यत्नपूर्वक उनकी ओर दौड़े और इस प्रकार कहने लगे—'ओ विदुरजी! मैं आपका परमप्रिय राजा युधिष्ठिर आपके दर्शनके लिये आया हूँ' ॥ २०-२१ ॥

ततो विविक्त एकान्ते तस्थौ बुद्धिमतां वरः ।
विदुरो वृक्षमाश्रित्य कंचित्तत्र वनान्तरे ॥ २२ ॥

तब बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विदुरजी वनके भीतर एक परम पवित्र एकान्त प्रदेशमें किसी वृक्षका सहारा लेकर खड़े हो गये ॥ २२ ॥
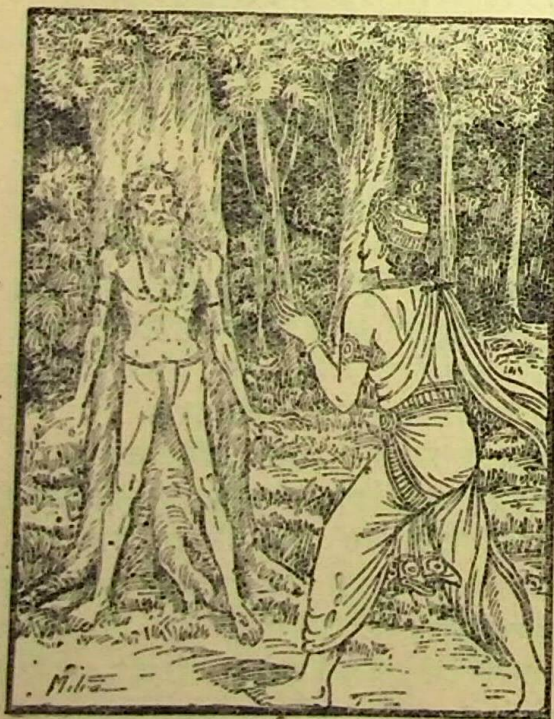
तं राजा क्षीणभूयिष्ठमाकृतीमात्रसूचितम् ।
अभिजज्ञे महाबुद्धिं महाबुद्धिर्युधिष्ठिरः ॥ २३ ॥

वे बहुत ही दुर्बल हो गये थे। उनके शरीरका ढाँचामात्र रह गया था, इतनेहीसे उनके जीवित होनेकी सूचना मिलती थी। परम बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरने उन महाबुद्धिमान् विदुरको पहचान लिया ॥ २३ ॥

युधिष्ठिरोऽहमस्मीति वाक्यमुक्त्वाग्रतः स्थितः ।
विदुरस्य श्रवे राजा तं च प्रत्यभ्यपूजयत् ॥ २४ ॥

'मैं युधिष्ठिर हूँ' ऐसा कहकर वे उनके आगे खड़े हो गये। यह बात उन्होंने उतनी ही दूरसे कही थी, जहाँसे विदुरजी सुन सकें; फिर पास जाकर राजाने उनका बड़ा सत्कार किया ॥ २४ ॥

ततः सोऽनिमिषो भूत्वा राजानं तमुदैक्षत ।
संयोज्य विदुरस्तस्मिन् दृष्टिं दृष्ट्या समाहितः ॥ २५ ॥

तदनन्तर महात्मा विदुरजी राजा युधिष्ठिरकी ओर एकटक देखने लगे। वे अपनी दृष्टिको उनकी दृष्टिसे जोड़कर एकाग्र हो गये ॥ २५ ॥

विवेश विदुरो धीमान् गात्रैर्गात्राणि चैव ह ।
प्राणान् प्राणेषु च दधदिन्द्रियाणीन्द्रियेषु च ॥ २६ ॥

बुद्धिमान् विदुर अपने शरीरको युधिष्ठिरके शरीरमें, प्राणोंको प्राणोंमें और इन्द्रियोंको उनकी इन्द्रियोंमें स्थापित करके उनके भीतर समा गये ॥ २६ ॥

स योगबलमास्थाय विवेश नृपतेस्तनुम् ।
विदुरो धर्मराजस्य तेजसा प्रज्वलन्निव ॥ २७ ॥

उस समय विदुरजी तेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। उन्होंने योगबलका आश्रय लेकर धर्मराज युधिष्ठिरके शरीरमें प्रवेश किया ॥ २७ ॥

विदुरस्य शरीरं तु तथैव स्तब्धलोचनम् ।
वृक्षाश्रितं तदा राजा ददर्श गतचेतनम् ॥ २८ ॥

राजाने देखा, विदुरजीका शरीर पूर्ववत् वृक्षके सहारे खड़ा है। उनकी आँखें अब भी उसी तरह निर्निमेष हैं, किंतु अब उनके शरीरमें चेतना नहीं रह गयी है ॥ २८ ॥

बलवन्तं तथाऽऽत्मानं मेने बहुगुणं तदा ।
धर्मराजो महातेजास्तच्च सस्मार पाण्डवः ॥ २९ ॥
पौराणमात्मनः सर्वं विद्यावान् स विशाम्पते ।
योगधर्मं महातेजा व्यासेन कथितं यथा ॥ ३० ॥

इसके विपरीत उन्होंने अपनेमें विशेष बल और अधिक गुणोंका अनुमान किया। प्रजानाथ! इसके बाद महातेजस्वी पाण्डुपुत्र विद्यावान् धर्मराज युधिष्ठिरने अपने समस्त पुरातन स्वरूपका स्मरण किया। (मैं और विदुरजी एक ही धर्मके अंशसे प्रकट हुए थे, इस बातका अनुभव किया)। इतना

ही नहीं, उन महातेजस्वी नरेशने व्यासजीके बताये हुए योगधर्मका भी स्मरण कर लिया ॥ २९-३० ॥

धर्मराजश्च तत्रैव संचस्कारयिषुस्तदा ।
दग्धुकामोऽभवद् विद्वानथ वागभ्यभाषत ॥ ३१ ॥
भो भो राजन्न दग्धव्यमेतद् विदुरसंज्ञकम् ।
कलेवरमिहैवं ते धर्म एष सनातनः ॥ ३२ ॥
लोकाः सान्तानिका नाम भविष्यन्त्यस्य भारत ।
यतिधर्ममवाप्तोऽसौ नैष शोच्यः परंतप ॥ ३३ ॥

अब विद्वान् धर्मराजने वहीं विदुरके शरीरका दाह-संस्कार करनेका विचार किया। इतनेहीमें आकाशवाणी हुई—'राजन् ! शत्रुसंतापी भरतनन्दन ! इस विदुर नामक शरीरका यहाँ दाह-संस्कार करना उचित नहीं है; क्योंकि वे संन्यास-धर्मका पालन करते थे। यहाँ उनका दाह न करना ही तुम्हारे लिये सनातन धर्म है। विदुरजीको सान्तानिक नामक लोकोंकी प्राप्ति होगी; अतः उनके लिये शोक नहीं करना चाहिये' ॥ ३१-३३ ॥

इत्युक्तो धर्मराजः स विनिवृत्य ततः पुनः ।
राज्ञो वैचित्रवीर्यस्य तत् सर्वं प्रत्यवेदयत् ॥ ३४ ॥

आकाशवाणीद्वारा ऐसी बात कही जानेपर धर्मराज युधिष्ठिर फिर वहाँसे लौट गये और राजा धृतराष्ट्रके पास जाकर उन्होंने वे सारी बातें उनसे बतायीं ॥ ३४ ॥

ततः स राजा द्युतिमान् स च सर्वो जनस्तदा ।
भीमसेनादयश्चैव परं विस्मयमागताः ॥ ३५ ॥
तच्छ्रुत्वा प्रीतिमान् राजा भूत्वा धर्मजमब्रवीत् ।
आपो मूलं फलं चैव ममेदं प्रतिगृह्यताम् ॥ ३६ ॥

विदुरजीके देहत्यागका यह अद्भुत समाचार सुनकर तेजस्वी राजा धृतराष्ट्र तथा भीमसेन आदि सब लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ। इसके बाद राजाने प्रसन्न होकर धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा—'बेटा ! अब तुम मेरे दिये हुए इस फल-मूल और जलको ग्रहण करो ॥ ३५-३६ ॥

यदन्नो हि नरो राजंस्तदन्नोऽस्यातिथिः स्मृतः ।
इत्युक्तः स तथेत्येवं प्राह धर्मात्मजो नृपम् ॥ ३७ ॥
फलं मूलं च बुभुजे राज्ञा दत्तं सहानुजः ।
ततस्ते वृक्षमूलेषु कृतवासपरिग्रहाः ।
तां रात्रिमवसन् सर्वे फलमूलजलाशनाः ॥ ३८ ॥

'राजन् ! मनुष्य जिन वस्तुओंका स्वयं उपयोग करता है, उन्हीं वस्तुओंसे वह अतिथिका भी सत्कार करे—ऐसी शास्त्रकी आज्ञा है।' उनके ऐसा कहनेपर धर्मराज युधिष्ठिरने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और उनके दिये हुए फल-मूलका भाइयोंसहित भोजन किया। तदनन्तर उन सब लोगोंने फल-मूल और जलका ही आहार करके वृक्षोंके नीचे ही रहनेका निश्चय कर वहीं वह रात्रि व्यतीत की ॥ ३७-३८ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि विदुरनिर्याणे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें विदुरका देहत्यागविषयक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

युधिष्ठिर आदिका ऋषियोंके आश्रम देखना, कलश आदि बाँटना और धृतराष्ट्रके पास आकर बैठना, उन सबके पास अन्यान्य ऋषियोंसहित महर्षि व्यासका आगमन

वैशम्पायन उवाच

ततस्तु राजन्नेतेषामाश्रमे पुण्यकर्मणाम् ।
शिवा नक्षत्रसम्पन्ना सा व्यतीयाय शर्वरी ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर उस आश्रमपर निवास करनेवाले इन समस्त पुण्यकर्मा मनुष्योंकी नक्षत्र-मालाओंसे सुशोभित वह मङ्गलमयी रात्रि सकुशल व्यतीत हुई ॥ १ ॥

ततस्तत्र कथाश्चासंस्तेषां धर्मार्थलक्षणाः ।
विचित्रपदसंचारा नानाश्रुतिभिरन्विताः ॥ २ ॥

उस समय उन लोगोंमें विचित्र पदों और नाना श्रुतियोंसे युक्त धर्म और अर्थसम्बन्धी चर्चाएँ होती रहीं ॥ २ ॥

पाण्डवास्त्वभितो मातुर्धरण्यां सुषुपुस्तदा ।
उत्सृज्य तु महार्हाणि शयनानि नराधिप ॥ ३ ॥

नरेश्वर ! पाण्डवलोग बहुमूल्य शय्याओंको छोड़कर अपनी माताके चारों ओर धरतीपर ही सोये थे ॥ ३ ॥

यदाहारोऽभवद् राजा धृतराष्ट्रो महामनाः ।
तदाहारा नृवीरास्ते न्यवसंस्तां निशां तदा ॥ ४ ॥

महामनस्वी राजा धृतराष्ट्रने जिस वस्तुका आहार किया था, उसी वस्तुका आहार उस रातमें उन नरवीर पाण्डवोंने भी किया था ॥ ४ ॥

व्यतीतायां तु शर्वर्यां कृतपौर्वाह्णिकक्रियः ।
भ्रातृभिः सहितो राजा ददर्शाश्रममण्डलम् ॥ ५ ॥
सान्तःपुरपरीवारः सभृत्यः सपुरोहितः ।
यथासुखं यथोद्देशं धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञया ॥ ६ ॥

रात बीत जानेपर पूर्वाह्णकालिक नैत्यिक नियम पूरे करके राजा युधिष्ठिरने धृतराष्ट्रकी आज्ञा ले भाइयों, अन्तःपुरकी स्त्रियों, सेवकों और पुरोहितोंके साथ सुखपूर्वक भिन्न-भिन्न स्थानोंमें घूम-फिरकर मुनियोंके आश्रम देखे ॥ ५-६ ॥

ददर्श तत्र वेदीश्च संप्रज्वलितपावकाः ।
कृताभिषेकैर्मुनिभिर्हुताग्निभिरुपस्थिताः ॥ ७ ॥
वानेयपुष्पनिकरैराज्यधूमोद्गमैरपि ।
ब्राह्मेण वपुषा युक्ता युक्ता मुनिगणस्य ताः ॥ ८ ॥

उन्होंने देखा, वहाँ आश्रमोंमें यज्ञकी वेदियाँ बनी हैं, जिनपर अग्निदेव प्रज्वलित हो रहे हैं। मुनिलोग स्नान करके उन वेदियोंके पास बैठे हैं और अग्निमें आहुति दे रहे हैं। वनके फूलों और घृतकी आहुतिसे उठे हुए धूमोंसे भी उन वेदियोंकी शोभा हो रही है। वहाँ निरन्तर वेदध्वनि होनेके कारण मानो वे वेदियाँ वेदमय शरीरसे संयुक्त जान पड़ती थीं। मुनियोंके समुदाय सदा उनसे सम्पर्क बनाये रखते थे ॥ ७-८ ॥

मृगयूथैरनुद्विग्नैस्तत्र तत्र समाश्रितैः ।
अशङ्कितैः पक्षिगणैः प्रगीतैरिव च प्रभो ॥ ९ ॥

प्रभो! उन आश्रमोंमें जहाँ-तहाँ मृगोंके झुंड निर्भय एवं शान्तचित्त होकर आरामसे बैठे थे। पक्षियोंके समुदाय निःशङ्क होकर उच्च स्वरसे कलरव करते थे ॥ ९ ॥

केकाभिर्नीलकण्ठानां दात्यूहानां च कूजितैः ।
कोकिलानां कुहुरवैः सुखैः श्रुतिमनोहरैः ॥ १० ॥
प्राधीतद्विजघोषैश्च क्वचित् क्वचिदलंकृतम् ।
फलमूलसमाहारैर्महद्भिश्चोपशोभितम् ॥ ११ ॥

मोरोंके मधुर केकारव, दात्यूह नामक पक्षियोंके कल-कूजन और कोयलोंकी कुहू-कुहू ध्वनि हो रही थी। उनके शब्द बड़े ही सुखद तथा कानों और मनको हर लेनेवाले थे। कहीं-कहीं स्वाध्यायशील ब्राह्मणोंके वेद-मन्त्रोंका गम्भीर घोष गूँज रहा था और इन सबके कारण उन आश्रमोंकी शोभा बहुत बढ़ गयी थी एवं वह आश्रम फल-मूलका आहार करनेवाले महापुरुषोंसे सुशोभित हो रहा था ॥ १०-११ ॥

ततः स राजा प्रददौ तापसार्थमुपाहृतान् ।
कलशान् काञ्चनान् राजंस्तथैवौदुम्बरानपि ॥ १२ ॥
अजिनानि प्रवेणीश्च स्रुक्स्रुवं च महीपतिः ।
कमण्डलूंश्च स्थालीश्च पिठराणि च भारत ॥ १३ ॥
भाजनानि च लौहानि पात्रीश्च विविधा नृप ।
यद् यदिच्छति यावच्च यच्चान्यदपि भाजनम् ॥ १४ ॥

राजन्! उस समय राजा युधिष्ठिरने तपस्वियोंके लिये लाये हुए सोने और ताँबेके कलश, मृगचर्म, कम्बल, स्रुक्, स्रुवा, कमण्डलु, बटलोई, कड़ाही, अन्यान्य लोहेके बने हुए पात्र तथा और भी भाँति-भाँतिके बर्तन बाँटे। जो जितना और जो-जो बर्तन चाहता था, उसको उतना ही और वही बर्तन दिया जाता था। दूसरा भी आवश्यक पात्र दे दिया जाता था ॥ १२-१४ ॥

एवं स राजा धर्मात्मा परीत्याश्रममण्डलम् ।
वसु विश्राण्य तत् सर्वं पुनरायान्महीपतिः ॥ १५ ॥

इस प्रकार धर्मात्मा राजा पृथ्वीपति युधिष्ठिर आश्रमोंमें घूम-घूमकर वह सारा धन बाँटनेके पश्चात् धृतराष्ट्रके आश्रमपर लौट आये ॥ १५ ॥

कृताह्निकं च राजानं धृतराष्ट्रं महीपतिम् ।
ददर्शासीनमव्यग्रं गान्धारीसहितं तदा ॥ १६ ॥
मातरं चाविदूरस्थां शिष्यवत् प्रणतां स्थिताम् ।
कुन्तीं ददर्श धर्मात्मा शिष्टाचारसमन्विताम् ॥ १७ ॥

वहाँ आकर उन्होंने देखा कि राजा धृतराष्ट्र नित्य कर्म करके गान्धारीके साथ शान्त भावसे बैठे हुए हैं और उनसे थोड़ी ही दूरपर शिष्टाचारका पालन करनेवाली माता कुन्ती शिष्याकी भाँति विनीत भावसे खड़ी है ॥ १६-१७ ॥

स तमभ्यर्च्य राजानं नाम संश्राव्य चात्मनः ।
निषीदेत्यभ्यनुज्ञातो बृस्यामुपविवेश ह ॥ १८ ॥

युधिष्ठिरने अपना नाम सुनाकर राजा धृतराष्ट्रका प्रणामपूर्वक पूजन किया और 'बैठो' यह आज्ञा मिलनेपर वे कुशके आसनपर बैठ गये ॥ १८ ॥

भीमसेनादयश्चैव पाण्डवा भरतर्षभ ।
अभिवाद्योपसंगृह्य निषेदुः पार्थिवाज्ञया ॥ १९ ॥

भरतश्रेष्ठ! भीमसेन आदि पाण्डव भी राजाके चरण छूकर प्रणाम करनेके पश्चात् उनकी आज्ञासे बैठ गये ॥ १९ ॥

स तैः परिवृतो राजा शुशुभेऽतीव कौरवः ।
बिभ्रद् ब्राह्मीं श्रियं दीप्तां देवैरिव बृहस्पतिः ॥ २० ॥

उनसे घिरे हुए कुरुवंशी राजा धृतराष्ट्र वैसी ही शोभा पा रहे थे, जैसे उज्ज्वल ब्रह्मतेज धारण करनेवाले बृहस्पति देवताओंसे घिरे हुए सुशोभित होते हैं ॥ २० ॥

तथा तेषूपविष्टेषु समाजग्मुर्महर्षयः ।
शतयूपप्रभृतयः कुरुक्षेत्रनिवासिनः ॥ २१ ॥

वे सब लोग इस प्रकार बैठे ही थे कि कुरुक्षेत्रनिवासी शतयूप आदि महर्षि वहाँ आ पहुँचे ॥ २१ ॥

व्यासश्च भगवान् विप्रो देवर्षिगणसेवितः ।
वृतः शिष्यैर्महातेजा दर्शयामास पार्थिवम् ॥ २२ ॥

देवर्षियोंसे सेवित महातेजस्वी विप्रवर भगवान् व्यासने भी शिष्योंसहित आकर राजाको दर्शन दिया ॥ २२ ॥

ततः स राजा कौरव्यः कुन्तीपुत्रश्च वीर्यवान् ।
भीमसेनादयश्चैव प्रत्युत्थायाभ्यवादयन् ॥ २३ ॥

उस समय कुरुवंशी राजा धृतराष्ट्र, पराक्रमी कुन्तीकुमार युधिष्ठिर तथा भीमसेन आदिने उठकर समागत महर्षियोंको प्रणाम किया ॥ २३ ॥

समागतस्ततो व्यासः शतयूपादिभिर्वृतः ।
धृतराष्ट्रं महीपालमास्यतामित्यभाषत ॥ २४ ॥

तदनन्तर शतयूप आदिसे घिरे हुए नवागत महर्षि व्यास राजा धृतराष्ट्रसे बोले—'बैठ जाओ' ॥ २४ ॥

वरं तु विष्टरं कौश्यं कृष्णाजिनकुशोत्तरम् ।
प्रतिपेदे तदा व्यासस्तदर्थमुपकल्पितम् ॥ २५ ॥

इसके बाद व्यासजी स्वयं एक सुन्दर कुशासनपर, जो काले मृगचर्मसे आच्छादित तथा उन्हींके लिये बिछाया गया था, विराजमान हुए ॥ २५ ॥

ते च सर्वे द्विजश्रेष्ठा विष्टरेषु समन्ततः ।
द्वैपायनाभ्यनुज्ञाता निषेदुर्विपुलौजसः ॥ २६ ॥

फिर व्यासजीकी आज्ञासे अन्य सब महातेजस्वी श्रेष्ठ द्विजगण चारों ओर बिछे हुए कुशासनोंपर बैठ गये ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि व्यासागमने सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें व्यासका आगमनविषयक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

महर्षि व्यासका धृतराष्ट्रसे कुशल पूछते हुए विदुर और युधिष्ठिरकी धर्मरूपताका प्रतिपादन करना और उनसे अभीष्ट वस्तु माँगनेके लिये कहना

वैशम्पायन उवाच

ततः समुपविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।
व्यासः सत्यवतीपुत्र इदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर महात्मा पाण्डवोंके बैठ जानेपर सत्यवतीनन्दन व्यासने इस प्रकार पूछा ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र महाबाहो कच्चित् ते वर्धते तपः ।
कच्चिन्मनस्ते प्रीणाति वनवासे नराधिप ॥ २ ॥

'महाबाहु धृतराष्ट्र ! तुम्हारी तपस्या बढ़ी रही है न ? नरेश्वर ! वनवासमें तुम्हारा मन तो लगता है न ? ॥ २ ॥

कच्चिद्धृदि न ते शोको राजन् पुत्रविनाशजः ।
कच्चिज्ज्ञानानि सर्वाणि सुप्रसन्नानि तेऽनघ ॥ ३ ॥

'राजन् ! अब कभी तुम्हारे मनमें अपने पुत्रोंके मारे जानेका शोक तो नहीं होता ? निष्पाप नरेश ! तुम्हारी समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ निर्मल तो हो गयी हैं न ? ॥ ३ ॥

कच्चिद् बुद्धिं दृढां कृत्वा चरस्यारण्यकं विधिम् ।
कच्चिद् वधूश्च गान्धारी न शोकेनाभिभूयते ॥ ४ ॥

'क्या तुम अपनी बुद्धिको दृढ़ करके वनवासके कठोर नियमोंका पालन करते हो ? बहू गान्धारी कभी शोकके वशीभूत तो नहीं होती ? ॥ ४ ॥

महाप्रज्ञा बुद्धिमती देवी धर्मार्थदर्शिनी ।
आगमापायतत्त्वज्ञा कच्चिदेषा न शोचति ॥ ५ ॥

'गान्धारी बड़ी बुद्धिमती और महाविदुषी है । यह देवी धर्म और अर्थको समझनेवाली तथा जन्म-मरणके तत्त्वको जाननेवाली है । इसे तो कभी शोक नहीं होता है ॥ ५ ॥

कच्चित् कुन्ती च राजंस्त्वां शुश्रूषत्यनहंकृता ।
या परित्यज्य स्वं पुत्रं गुरुशुश्रूषणे रता ॥ ६ ॥

'राजन् ! जो अपने पुत्रोंको त्यागकर गुरुजनोंकी सेवामें लगी हुई है, वह कुन्ती क्या अहंकारशून्य होकर तुम्हारी सेवा-शुश्रूषा करती है ? ॥ ६ ॥

कच्चिद् धर्मसुतो राजा त्वया प्रत्यभिनन्दितः ।
भीमार्जुनयमाश्चैव कच्चिदेतेऽपि सान्त्विताः ॥ ७ ॥

'क्या तुमने धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरका अभिनन्दन किया है ? भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवको भी धीरज बँधाया है ? ॥ ७ ॥

कच्चिन्नन्दसि दृष्ट्वैतान् कच्चित् ते निर्मलं मनः ।
कच्चिच्च शुद्धभावोऽसि जातज्ञानो नराधिप ॥ ८ ॥

'नरेश्वर ! क्या इन्हें देखकर तुम प्रसन्न होते हो ? क्या इनकी ओरसे तुम्हारे मनकी मैल दूर हो गयी है ? क्या ज्ञान-सम्पन्न होनेके कारण तुम्हारे हृदयका भाव शुद्ध हो गया है ? ॥ ८ ॥

एतद्धि त्रितयं श्रेष्ठं सर्वभूतेषु भारत ।
निर्वैरता महाराज सत्यमक्रोध एव च ॥ ९ ॥

'महाराज ! भरतनन्दन ! किसीसे वैर न रखना, सत्य बोलना और क्रोधको सर्वथा त्याग देना—ये तीन गुण सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ माने गये हैं ॥ ९ ॥

कच्चित् ते न च मोहोऽस्ति वनवासेन भारत ।
स्ववशे वन्यमन्नं वा उपवासोऽपि वा भवेत् ॥ १० ॥

'भारत ! वनमें उत्पन्न हुआ अन्न तुम्हारे वशमें रहे

अथवा तुम्हें उपवास करना पड़े, सभी दशाओंमें वनवाससे तुम्हें मोह तो नहीं होता है ? ॥ १० ॥

विदितं चापि राजेन्द्र विदुरस्य महात्मनः ।
गमनं विधिनानेन धर्मस्य सुमहात्मनः ॥ ११ ॥

'राजेन्द्र ! महात्मा विदुरके, जो साक्षात् महामना धर्मके स्वरूप थे, इस विधिसे परलोकगमनका समाचार तो तुम्हें ज्ञात हुआ ही होगा ॥ ११ ॥

माण्डव्यशापाद्धि स वै धर्मो विदुरतां गतः ।
महाबुद्धिर्महायोगी महात्मा सुमहामनाः ॥ १२ ॥

'माण्डव्यमुनिके शापसे धर्म ही विदुररूपमें अवतीर्ण हुए थे । वे परम बुद्धिमान्, महान् योगी, महात्मा और महामनस्वी थे ॥ १२ ॥

बृहस्पतिर्वा देवेषु शुक्रो वाप्यसुरेषु च ।
न तथा बुद्धिसम्पन्नो यथा स पुरुषर्षभः ॥ १३ ॥

'देवताओंमें बृहस्पति और असुरोंमें शुक्राचार्य भी वैसे बुद्धिमान् नहीं हैं, जैसे पुरुषप्रवर विदुर थे ॥ १३ ॥

तपोबलव्ययं कृत्वा सुचिरात् सम्भृतं तदा ।
माण्डव्येनर्षिणा धर्मो ह्यभिभूतः सनातनः ॥ १४ ॥

'माण्डव्य ऋषिने चिरकालसे संचित किये हुए तपोबलका क्षय करके सनातन धर्मदेवको (शाप देकर) पराभूत किया था ॥ १४ ॥

नियोगाद् ब्रह्मणः पूर्वं मया स्वेन बलेन च ।
वैचित्रवीर्यके क्षेत्रे जातः स सुमहामतिः ॥ १५ ॥

'मैंने पूर्वकालमें ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार अपने तपोबलसे विचित्रवीर्यके क्षेत्र (भार्या) में उस परम बुद्धिमान् विदुरको उत्पन्न किया था ॥ १५ ॥

भ्राता तव महाराज देवदेवः सनातनः ।
धारणान्मनसा ध्यानाद् यं धर्मं कवयो विदुः ॥ १६ ॥

'महाराज ! तुम्हारे भाई विदुर देवताओंके भी देवता सनातन धर्म थे । मनके द्वारा धर्मका धारण और ध्यान किया जाता है, इसलिये विद्वान् पुरुष उन्हें धर्मके नामसे जानते हैं ॥ १६ ॥

सत्येन संवर्धयति यो दमेन शमेन च ।
अहिंसया च दानेन तप्यमानः सनातनः ॥ १७ ॥

'जो सत्य, इन्द्रियसंयम, मनोनिग्रह, अहिंसा और दानके रूपमें सेवित होनेपर जगत्के अभ्युदयका साधक होता है, वह सनातनधर्म विदुरसे भिन्न नहीं है ॥ १७ ॥

येन योगबलाज्जातः कुरुराजो युधिष्ठिरः ।
धर्म इत्येष नृपते प्राज्ञेनामितबुद्धिना ॥ १८ ॥

'जिस अमित बुद्धिमान् और प्राज्ञ देवताने योगबलसे कुरुराज युधिष्ठिरको जन्म दिया था, वह धर्म विदुरका ही स्वरूप है ॥ १८ ॥

यथा वह्निर्यथा वायुर्यथाऽऽपः पृथिवी यथा ।
यथाऽऽकाशं तथा धर्म इह चामुत्र च स्थितः ॥ १९ ॥

'जैसे अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी और आकाशकी सत्ता इहलोक और परलोकमें भी है, उसी प्रकार धर्म भी उभय लोकमें व्याप्त है ॥ १९ ॥

सर्वगश्चैव राजेन्द्र सर्वं व्याप्य चराचरम् ।
दृश्यते देवदेवैः स सिद्धैर्निर्मुक्तकल्मषैः ॥ २० ॥

'राजेन्द्र ! धर्मकी सर्वत्र गति है तथा वह सम्पूर्ण चराचर जगत्को व्याप्त करके स्थित है । जिनके समस्त पाप धुल गये हैं, वे सिद्ध पुरुष तथा देवताओंके देवता ही धर्मका साक्षात्कार करते हैं ॥ २० ॥

यो हि धर्मः स विदुरो विदुरो यः स पाण्डवः ।
स एष राजन् दृश्यस्ते पाण्डवः प्रेष्यवत् स्थितः ॥ २१ ॥

'जिन्हें धर्म कहते हैं वे ही विदुर थे और जो विदुर थे वे ही ये पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर हैं, जो इस समय तुम्हारे सामने दासकी भाँति खड़े हैं ॥ २१ ॥

प्रविष्टः स महात्मानं भ्राता ते बुद्धिसत्तमः ।
दृष्ट्वा महात्मा कौन्तेयं महायोगबलान्वितः ॥ २२ ॥

'महान् योगबलसे सम्पन्न और बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ तुम्हारे भाई महात्मा विदुर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरको सामने देखकर इन्हींके शरीरमें प्रविष्ट हो गये हैं ॥ २२ ॥

त्वां चापि श्रेयसा योक्ष्ये न चिराद् भरतर्षभ ।
संशयच्छेदनार्थाय प्राप्तं मां विद्धि पुत्रक ॥ २३ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! अब तुम्हें भी मैं शीघ्र ही कल्याणका भागी बनाऊँगा । बेटा ! तुम्हें ज्ञात होना चाहिये कि इस समय मैं तुम्हारे संशयोंका निवारण करनेके लिये आया हूँ ॥ २३ ॥

न कृतं यैः पुरा कैश्चित् कर्म लोके महर्षिभिः ।
आश्चर्यभूतं तपसः फलं तद् दर्शयामि वः ॥ २४ ॥

'पूर्वकालके किन्हीं महर्षियोंने संसारमें अबतक जो चमत्कारपूर्ण कार्य नहीं किया था, वह भी आज मैं कर दिखाऊँगा । आज मैं तुम्हें अपनी तपस्याका आश्चर्यजनक फल दिखलाता हूँ ॥ २४ ॥

किमिच्छसि महीपाल मत्तः प्राप्तुमभीप्सितम् ।
द्रष्टुं स्प्रष्टुमथ श्रोतुं तत्कर्ताऽस्मि तवानघ ॥ २५ ॥

'निष्पाप महीपाल ! बताओ, तुम मुझसे कौन-सी अभीष्ट वस्तु पाना चाहते हो ? किसको देखने, सुनने अथवा स्पर्श करनेकी तुम्हारी इच्छा है ? मैं उसे पूर्ण करूँगा' ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि व्यासवाक्ये अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें व्यासवाक्यविषयक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८ ॥

(पुत्रदर्शनपर्व)

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका मृत बान्धवोंके शोकसे दुखी होना तथा गान्धारी और कुन्तीका व्यासजीसे अपने मरे हुए पुत्रोंके दर्शन करनेका अनुरोध

जनमेजय उवाच

वनवासं गते विप्र धृतराष्ट्रे महीपतौ।
सभार्ये नृपशार्दूले वध्वा कुन्त्या समन्विते ॥ १ ॥
विदुरे चापि संसिद्धे धर्मराजं व्यपाश्रिते।
वसत्सु पाण्डुपुत्रेषु सर्वेष्वाश्रममण्डले ॥ २ ॥
यत् तदाश्चर्यमिति वै करिष्यामीत्युवाच ह।
व्यासः परमतेजस्वी महर्षिस्तद् वदस्व मे ॥ ३ ॥

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! जब अपनी धर्मपत्नी गान्धारी और बहू कुन्तीके साथ नृपश्रेष्ठ पृथ्वीपति धृतराष्ट्र वनवासके लिये चले गये, विदुरजी सिद्धिको प्राप्त होकर धर्मराज युधिष्ठिरके शरीरमें प्रविष्ट हो गये और समस्त पाण्डव आश्रममण्डलमें निवास करने लगे, उस समय परम तेजस्वी व्यासजीने जो यह कहा था कि 'मैं आश्चर्यजनक घटना प्रकट करूँगा' वह किस प्रकार हुई ? यह मुझे बताइये ? ॥

वनवासे च कौरव्यः कियन्तं कालमच्युतः।
युधिष्ठिरो नरपतिर्न्यवसत् सजनस्तदा ॥ ४ ॥

अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले कुरुवंशी राजा युधिष्ठिर कितने दिनोंतक सब लोगोंके साथ वनमें रहे थे ? ॥

किमाहाराश्च ते तत्र ससैन्या न्यवसन् प्रभो।
सान्तःपुरा महात्मान इति तद् ब्रूहि मेऽनघ ॥ ५ ॥

प्रभो ! निष्पाप मुने ! सैनिकों और अन्तःपुरकी स्त्रियों-के साथ वे महात्मा पाण्डव क्या आहार करके वहाँ निवास करते थे ? ॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच

तेऽनुज्ञातास्तदा राजन् कुरुराजेन पाण्डवाः।
विविधान्यन्नपानानि विश्राम्यानुभवन्ति ते ॥ ६ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! कुरुराज धृतराष्ट्रने पाण्डवोंको नाना प्रकारके अन्न-पान ग्रहण करनेकी आज्ञा दे दी थी; अतः वे वहाँ विश्राम पाकर सभी तरहके उत्तम भोजन करते थे॥ ६ ॥

मासमेकं विजह्रुस्ते ससैन्यान्तःपुरा वने।
अथ तत्रागमद् व्यासो यथोक्तं ते मयानघ ॥ ७ ॥

वे सेनाओं तथा अन्तःपुरकी स्त्रियोंके साथ वहाँ एक मासतक वनमें विहार करते रहे। अनघ ! इसी बीचमें जैसा कि मैंने तुम्हें बताया है, वहाँ व्यासजीका आगमन हुआ ॥

तथा च तेषां सर्वेषां कथाभिर्नृपसंनिधौ।
व्यासमन्वासयतां राजन्नाजग्मुर्मुनयो परे ॥ ८ ॥

राजन् ! राजा धृतराष्ट्रके समीप व्यासजीके पीछे बैठे हुए उन सबलोगोंमें जब उपर्युक्त बातें होती रहीं, उसी समय वहाँ दूसरे-दूसरे मुनि भी आये ॥ ८ ॥

नारदः पर्वतश्चैव देवलश्च महातपाः।
विश्वावसुस्तुम्बुरुश्च चित्रसेनश्च भारत ॥ ९ ॥

भारत ! उनमें नारद, पर्वत, महातपस्वी देवल, विश्वा-वसु, तुम्बुरु तथा चित्रसेन भी थे ॥ ९ ॥

तेषामपि यथान्यायं पूजां चक्रे महातपाः।
धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातः कुरुराजो युधिष्ठिरः ॥ १० ॥

धृतराष्ट्रकी आज्ञासे महातपस्वी कुरुराज युधिष्ठिरने उन सबकी भी यथोचित पूजा की ॥ १० ॥

निषेदुस्ते ततः सर्वे पूजां प्राप्य युधिष्ठिरात्।
आसनेषु च पुण्येषु बर्हिणेषु वरेषु च ॥ ११ ॥

युधिष्ठिरसे पूजा ग्रहण करके वे सब-के-सब मोरपंखके बने हुए पवित्र एवं श्रेष्ठ आसनोंपर विराजमान हुए ॥ ११॥

तेषु तत्रोपविष्टेषु स तु राजा महामतिः।
पाण्डुपुत्रैः परिवृतो निषसाद कुरूद्वह ॥ १२ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! उन सबके बैठ जानेपर पाण्डवोंसे घिरे हुए परम बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्र बैठे ॥ १२ ॥

गान्धारी चैव कुन्ती च द्रौपदी सात्वती तथा।
स्त्रियश्चान्यास्तथान्याभिः सहोपविविशुस्ततः ॥ १३ ॥

गान्धारी, कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा तथा दूसरी स्त्रियाँ अन्य स्त्रियोंके साथ आसपास ही एक साथ बैठ गयीं ॥१३॥

तेषां तत्र कथा दिव्या धर्मिष्ठाश्चाभवन् नृप।
ऋषीणां च पुराणानां देवासुरविमिश्रिताः ॥ १४ ॥

नरेश्वर ! उस समय उन लोगोंमें धर्मसे सम्बन्ध रखने-वाली दिव्य कथाएँ होने लगीं। प्राचीन ऋषियों तथा देव-ताओं और असुरोंसे सम्बन्ध रखनेवाली चर्चाएँ छिड़ गयीं ॥

ततः कथान्ते व्यासस्तं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम्।
प्रोवाच वदतां श्रेष्ठः पुनरेव स तद् वचः ॥ १५ ॥
प्रीयमाणो महातेजाः सर्ववेदविदां वरः।

बातचीतके अन्तमें सम्पूर्ण वेदवेत्ताओं और वक्ताओंमें

श्रेष्ठ महातेजस्वी महर्षि व्यासजीने प्रसन्न होकर प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्रसे पुनः वही बात कही ॥ १५½ ॥

विदितं मम राजेन्द्र यत् ते हृदि विवक्षितम् ॥ १६ ॥
दह्यमानस्य शोकेन तव पुत्रकृतेन वै ।

'राजेन्द्र ! तुम्हारे हृदयमें जो कहनेकी इच्छा हो रही है, उसे मैं जानता हूँ। तुम निरन्तर अपने मरे हुए पुत्रोंके शोकसे जलते रहते हो ॥ १६½ ॥

गान्धार्याश्चैव यद् दुःखं हृदि तिष्ठति नित्यदा ॥ १७ ॥
कुन्त्याश्च यन्महाराज द्रौपद्याश्च हृदि स्थितम् ।

'महाराज ! गान्धारी, कुन्ती और द्रौपदीके हृदयमें भी जो दुःख सदा बना रहता है, वह भी मुझे ज्ञात है ॥ १७½ ॥

यच्च धारयते तीव्रं दुःखं पुत्रविनाशजम् ॥ १८ ॥
सुभद्रा कृष्णभगिनी तच्चापि विदितं मम ।

'श्रीकृष्णकी बहिन सुभद्रा अपने पुत्र अभिमन्युके मारे जानेका जो दुःसह दुःख हृदयमें धारण करती है, वह भी मुझसे अज्ञात नहीं है ॥ १८½ ॥

श्रुत्वा समागममिमं सर्वेषां वस्तुतो नृप ॥ १९ ॥
संशयच्छेदनार्थाय प्राप्तः कौरवनन्दन ।

'कौरवनन्दन ! नरेश्वर ! वास्तवमें तुम सब लोगोंका यह समागम सुनकर तुम्हारे मानसिक संदेहोंका निवारण करनेके लिये मैं यहाँ आया हूँ ॥ १९½ ॥

इमे च देवगन्धर्वाः सर्वे चेमे महर्षयः ॥ २० ॥
पश्यन्तु तपसो वीर्यमद्य मे चिरसम्भृतम् ।

'ये देवता, गन्धर्व और महर्षि सब लोग आज मेरी चिरसंचित तपस्याका प्रभाव देखें ॥ २०½ ॥

तदुच्यतां महाप्राज्ञ कं कामं प्रददामि ते ॥ २१ ॥
प्रवणोऽस्मि वरं दातुं पश्य मे तपसः फलम् ।

'महाप्राज्ञ नरेश ! बोलो, मैं तुम्हें कौन-सा अभीष्ट मनोरथ प्रदान करूँ ? आज मैं तुम्हें मनोवाञ्छित वर देनेको तैयार हूँ। तुम मेरी तपस्याका फल देखो' ॥ २१½ ॥

एवमुक्तः स राजेन्द्रो व्यासेनामितबुद्धिना ॥ २२ ॥
मुहूर्तमिव संचिन्त्य वचनायोपचक्रमे ।

अमित बुद्धिमान् महर्षि व्यासके ऐसा कहनेपर महाराज धृतराष्ट्रने दो घड़ीतक विचार करके इस प्रकार कहना आरम्भ किया ॥ २२½ ॥

धन्योऽस्म्यनुगृहीतश्च सफलं जीवितं च मे ॥ २३ ॥
यन्मे समागमोऽद्येह भवद्भिः सह साधुभिः ।

'भगवन् ! आज मैं धन्य हूँ, आपलोगोंकी कृपाका पात्र हूँ तथा मेरा यह जीवन भी सफल है; क्योंकि आज यहाँ आप-जैसे साधु-महात्माओंका समागम मुझे प्राप्त हुआ है २३½

अद्य चाप्यवगच्छामि गतिमिष्टामिहात्मनः ॥ २४ ॥
ब्रह्मकल्पैर्भवद्भिर्यत् समेतोऽहं तपोधनाः ।

'तपोधनो ! आप ब्रह्मतुल्य महात्माओंका जो संग मुझे प्राप्त हुआ उससे मैं समझता हूँ कि यहाँ अपने लिये अभीष्ट गति मुझे प्राप्त हो गयी ॥ २४½ ॥

दर्शनादेव भवतां पूतोऽहं नात्र संशयः ॥ २५ ॥
विद्यते न भयं चापि परलोकान्ममानघाः ।

'इसमें संदेह नहीं कि मैं आपलोगोंके दर्शनमात्रसे पवित्र हो गया। निष्पाप महर्षियो ! अब मुझे परलोकसे कोई भय नहीं है ॥ २५½ ॥

किं तु तस्य सुदुर्बुद्धेर्मन्दस्यापनयैर्भृशम् ॥ २६ ॥
दूयते मे मनो नित्यं स्मरतः पुत्रगृद्धिनः ।

'परंतु अत्यन्त खोटी बुद्धिवाले उस मन्दमति दुर्योधनके अन्यायोंसे जो मेरे सारे पुत्र मारे गये हैं, उन्हें पुत्रोंमें आसक्त रहनेवाला मैं सदा याद करता हूँ; इसलिये मेरे मनमें बड़ा दुःख होता है ॥ २६½ ॥

अपापाः पाण्डवा येन निकृताः पापबुद्धिना ॥ २७ ॥
घातिता पृथिवी येन सहया सनरद्विपा ।

पापपूर्ण विचार रखनेवाले उस दुर्योधनने निरपराध पाण्डवोंको सताया तथा घोड़ों, मनुष्यों और हाथियोंसहित इस सारी पृथ्वीके वीरोंका विनाश करा डाला ॥ २७½ ॥

राजानश्च महात्मानो नानाजनपदेश्वराः ॥ २८ ॥
आगम्य मम पुत्रार्थे सर्वे मृत्युवशं गताः ।

अनेक देशोंके स्वामी महामनस्वी नरेश मेरे पुत्रकी सहायताके लिये आकर सब-के-सब मृत्युके अधीन हो गये ॥

ये ते पितॄंश्च दारांश्च प्राणांश्च मनसः प्रियान् ॥ २९ ॥
परित्यज्य गताः शूराः प्रेतराजनिवेशनम् ।

वे सब शूरवीर भूपाल अपने पिताओं, पत्नियों, प्राणों और मनको प्रिय लगनेवाले भोगोंका परित्याग करके यमलोकको चले गये ॥ २९½ ॥

का नु तेषां गतिर्ब्रह्मन् मित्रार्थे ये हता मृधे ॥ ३० ॥
तथैव पुत्रपौत्राणां मम ये निहता युधि ।

'ब्रह्मन् ! जो मित्रके लिये युद्धमें मारे गये उन राजाओंकी क्या गति हुई होगी ? तथा जो रणभूमिमें वीरगतिको प्राप्त हुए हैं, उन मेरे पुत्रों और पौत्रोंको किस गतिकी प्राप्ति हुई होगी ? ॥ ३०½ ॥

दूयते मे मनोऽभीक्ष्णं घातयित्वा महाबलम् ॥ ३१ ॥
भीष्मं शान्तनवं वृद्धं द्रोणं च द्विजसत्तमम् ।

'महाबली शान्तनुनन्दन भीष्म तथा वृद्ध ब्राह्मणप्रवर द्रोणाचार्यका वध कराकर मेरे मनको बारंवार दुःसह संताप प्राप्त होता है ॥ ३१½ ॥

मम पुत्रेण मूढेन पापेनाकृतबुद्धिना ॥ ३२ ॥
क्षयं नीतं कुलं दीप्तं पृथिवीराज्यमिच्छता ।

'अपवित्र बुद्धिवाले मेरे पापी एवं मूर्ख पुत्रने समस्त भूमण्डलके राज्यका लोभ करके अपने दीप्तिमान् कुलका विनाश कर डाला ॥ ३२½ ॥

एतत् सर्वमनुस्मृत्य दह्यमानो दिवानिशम् ॥ ३३ ॥
न शान्तिमधिगच्छामि दुःखशोकसमाहतः ।
इति मे चिन्तयानस्य पितः शान्तिर्न विद्यते ॥ ३४ ॥

'ये सारी बातें याद करके मैं दिन-रात जलता रहता हूँ । दुःख और शोकसे पीड़ित होनेके कारण मुझे शान्ति नहीं मिलती है। पिताजी ! इन्हीं चिन्ताओंमें पड़े-पड़े मुझे कभी शान्ति नहीं प्राप्त होती' ॥ ३३-३४ ॥

वैशम्पायन उवाच

तच्छ्रुत्वा विविधं तस्य राजर्षेः परिदेवितम् ।
पुनर्नवीकृतः शोको गान्धार्या जनमेजय ॥ ३५ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं——जनमेजय ! राजर्षि धृतराष्ट्रका वह भाँति-भाँतिसे विलाप सुनकर गान्धारीका शोक फिरसे नया-सा हो गया ॥ ३५ ॥

कुन्त्या द्रुपदपुत्र्याश्च सुभद्रायास्तथैव च ।
तासां च वरनारीणां वधूनां कौरवस्य ह ॥ ३६ ॥

कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा तथा कुरुराजकी उन सुन्दरी बहुओंका शोक भी फिरसे उमड़ आया ॥ ३६ ॥

पुत्रशोकसमाविष्टा गान्धारी त्विदमब्रवीत् ।
श्वशुरं बद्धनयना देवी प्राञ्जलिरुत्थिता ॥ ३७ ॥

आँखोंपर पट्टी बाँधे गान्धारी देवी श्वशुरके सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो गयीं और पुत्रशोकसे संतप्त होकर इस प्रकार बोलीं ॥ ३७ ॥

षोडशेमानि वर्षाणि गतानि मुनिपुङ्गव ।
अस्य राज्ञो हतान् पुत्राञ्शोचतो न शमो विभो ॥ ३८ ॥

मुनिवर ! प्रभो ! इन महाराजको अपने मरे हुए पुत्रोंके लिये शोक करते आज सोलह वर्ष बीत गये; किंतु अबतक इन्हें शान्ति नहीं मिली ॥ ३८ ॥

पुत्रशोकसमाविष्टो निःश्वसन् ह्येष भूमिपः ।
न शेते वसतीः सर्वा धृतराष्ट्रो महामुने ॥ ३९ ॥

'महामुने ! ये भूमिपाल धृतराष्ट्र पुत्रशोकसे संतप्त हो सदा लम्बी साँस खींचते और आहें भरते रहते हैं । इन्हें रातभर कभी नींद नहीं आती ॥ ३९ ॥

लोकानन्यान् समर्थोऽसि स्रष्टुं सर्वांस्तपोबलात् ।
किमु लोकान्तरगतान् राज्ञो दर्शयितुं सुतान् ॥ ४० ॥

'आप अपने तपोबलसे इन सब लोकोंकी दूसरी सृष्टि करनेमें समर्थ हैं, फिर लोकान्तरमें गये हुए पुत्रोंको एक बार राजासे मिला देना आपके लिये कौन बड़ी बात है ? ॥ ४० ॥

इयं च द्रौपदी कृष्णा हतज्ञातिसुता भृशम् ।
शोचत्यतीव सर्वासां स्नुषाणां दयिता स्नुषा ॥ ४१ ॥

'यह द्रुपदकुमारी कृष्णा मुझे अपनी समस्त पुत्र-वधुओंमें सबसे अधिक प्रिय है। इस बेचारीके भाई-बन्धु और पुत्र सभी मारे गये हैं; जिससे यह अत्यन्त शोकमग्न रहा करती है॥

तथा कृष्णस्य भगिनी सुभद्रा भद्रभाषिणी ।
सौभद्रवधसंतप्ता भृशं शोचति भाविनी ॥ ४२ ॥

'सदा मङ्गलमय वचन बोलनेवाली श्रीकृष्णकी बहिन भाविनी सुभद्रा सर्वदा अपने पुत्र अभिमन्युके वधसे संतप्त हो निरन्तर शोकमें ही डूबी रहती है ॥ ४२ ॥

इयं च भूरिश्रवसो भार्या परमसम्मता ।
भर्तृव्यसनशोकार्ता भृशं शोचति भाविनी ॥ ४३ ॥
यस्यास्तु श्वशुरो धीमान् बाह्लिकः स कुरूद्वहः ।
निहतः सोमदत्तश्च पित्रा सह महारणे ॥ ४४ ॥

'ये भूरिश्रवाकी परमप्यारी पत्नी बैठी है, जो पतिकी मृत्युके शोकसे व्याकुल हो अत्यन्त दुःखमें मग्न रहती है । इसके बुद्धिमान् श्वशुर कुरुश्रेष्ठ बाह्लिक भी मारे गये हैं । भूरिश्रवाके पिता सोमदत्त भी अपने पिताके साथ ही उस महासमरमें वीरगतिको प्राप्त हुए थे ॥ ४३–४४ ॥

श्रीमतोऽस्य महाबुद्धेः संग्रामेष्वपलायिनः ।
पुत्रस्य ते पुत्रशतं निहतं यद् रणाजिरे ॥ ४५ ॥
तस्य भार्याशतमिदं दुःखशोकसमाहतम् ।
पुनः पुनर्वर्धयानं शोकं राज्ञो ममैव च ॥ ४६ ॥
तेनारम्भेण महता मामुपास्ते महामुने ।

'आपके पुत्र, संग्राममें कभी पीठ न दिखानेवाले, परम बुद्धिमान् जो ये श्रीमान् महाराज हैं, इनके जो सौ पुत्र समराङ्गणमें मारे गये थे, उनकी ये सौ स्त्रियाँ बैठी हैं । ये मेरी बहुएँ दुःख और शोकके आघात सहन करती हुई मेरे और महाराजके भी शोकको बारंबार बढ़ा रही हैं । महामुने ! ये सब-की-सब शोकके महान् आवेगसे रोती हुई मुझे ही घेरकर बैठी रहती हैं ॥

ये च शूरा महात्मानः श्वशुरा मे महारथाः ॥ ४७ ॥
सोमदत्तप्रभृतयः का नु तेषां गतिः प्रभो ।

'प्रभो ! जो मेरे महामनस्वी श्वशुर शूरवीर महारथी सोमदत्त आदि मारे गये हैं, उन्हें कौन-सी गति प्राप्त हुई है ?॥

तव प्रसादाद् भगवन् विशोकोऽयं महीपतिः ॥ ४८ ॥
यथा स्याद् भविता चाहं कुन्ती चेयं वधूस्तव ।

'भगवन् ! आपके प्रसादसे ये महाराज, मैं और आपकी बहू कुन्ती—ये सब-के-सब जैसे भी शोकरहित हो जायँ, ऐसी कृपा कीजिये ॥ ४८½ ॥

इत्युक्तवत्यां गान्धार्यां कुन्ती व्रतकृशानना ॥ ४९ ॥
प्रच्छन्नजातं पुत्रं तं सस्मारादित्यसंनिभम् ।

जब गान्धारीने इस प्रकार कहा, तब व्रतसे दुर्बल मुखवाली कुन्तीने गुप्तरूपसे उत्पन्न हुए अपने सूर्यतुल्य तेजस्वी पुत्र कर्णका स्मरण किया ॥ ४९½ ॥

तामृषिर्वरदो व्यासो दूरश्रवणदर्शनः ॥ ५० ॥
अपश्यद् दुःखितां देवीं मातरं सव्यसाचिनः ।

दूरतककी देखने-सुनने और समझनेवाले वरदायक ऋषि व्यासने अर्जुनकी माता कुन्तीदेवीको दुःखमें डूबी हुई देखा ॥ ५०½ ॥

तामुवाच ततो व्यासो यत् ते कार्यं विवक्षितम् ॥ ५१ ॥
तद् ब्रूहि त्वं महाभागे यत् ते मनसि वर्तते ।

तब भगवान् व्यासने उनसे कहा—'महाभागे ! तुम्हें किसी कार्यके लिये यदि कुछ कहनेकी इच्छा हो, तुम्हारे मनमें यदि कोई बात उठी हो, तो उसे कहो ॥ ५१½ ॥

श्वशुराय ततः कुन्ती प्रणम्य शिरसा तदा ॥ ५२ ॥
उवाच वाक्यं सव्रीडा विवृण्वाना पुरातनम् ॥ ५३ ॥

तब कुन्तीने मस्तक झुकाकर श्वशुरको प्रणाम किया और लज्जित हो प्राचीन गुप्त रहस्यको प्रकट करते हुए कहा ॥ ५२-५३ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि धृतराष्ट्रादिकृतप्रार्थने एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत पुत्रदर्शनपर्वमें धृतराष्ट्र आदिकी की हुई प्रार्थना-विषयक उन्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

कुन्तीका कर्णके जन्मका गुप्त रहस्य बताना और व्यासजीका उन्हें सान्त्वना देना

कुन्त्युवाच

भगवञ्श्वशुरो मेऽसि दैवतस्यापि दैवतम् ।
स मे देवातिदेवस्त्वं शृणु सत्यां गिरं मम ॥ १ ॥

कुन्ती बोली—भगवन् ! आप मेरे श्वशुर हैं, मेरे देवताके भी देवता हैं; अतः मेरे लिये देवताओंसे भी बढ़कर हैं (आज मैं आपके सामने अपने जीवनका एक गुप्त रहस्य प्रकट करती हूँ) । मेरी यह सच्ची बात सुनिये ॥ १ ॥

तपस्वी कोपनो विप्रो दुर्वासा नाम मे पितुः ।
भिक्षामुपागतो भोक्तुं तमहं पर्यतोषयम् ॥ २ ॥

एक समयकी बात है, परम क्रोधी तपस्वी ब्राह्मण दुर्वासा मेरे पिताके यहाँ भिक्षाके लिये आये थे । मैंने उन्हें अपने द्वारा की गयी सेवाओंसे संतुष्ट कर लिया ॥ २ ॥

शौचेन त्वागसस्त्यागैः शुद्धेन मनसा तथा ।
कोपस्थानेष्वपि महत्स्वकुप्यन्न कदाचन ॥ ३ ॥

मैं शौचाचारका पालन करती, अपराधसे बची रहती और शुद्ध हृदयसे उनकी आराधना करती थी । क्रोधके बड़े-से-बड़े कारण उपस्थित होनेपर भी मैंने कभी उनपर क्रोध नहीं किया ॥ ३ ॥

स प्रीतो वरदो मेऽभूत् कृतकृत्यो महामुनिः ।
अवश्यं ते गृहीतव्यमिति मां सोऽब्रवीद् वचः ॥ ४ ॥

इससे वे वरदायक महामुनि मुझपर बहुत प्रसन्न हुए । जब उनका कार्य पूरा हो गया तब वे बोले—'तुम्हें मेरा दिया हुआ वरदान अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा' ॥ ४ ॥

ततः शापभयाद् विप्रमवोचं पुनरेव तम् ।
एवमस्त्विति च प्राह पुनरेव स मे द्विजः ॥ ५ ॥

उनकी बात सुनकर मैंने शापके भयसे पुनः उन ब्राह्मणसे कहा—'भगवन् ! ऐसा ही हो ।' तब वे ब्राह्मणदेवता मुझसे बोले— ॥ ५ ॥

धर्मस्य जननी भद्रे भवित्री त्वं शुभानने ।
वशे स्थास्यन्ति ते देवा यांस्त्वमावाहयिष्यसि ॥ ६ ॥

'भद्रे ! तुम धर्मकी जननी होओगी । शुभानने ! जिन देवताओंका आवाहन करोगी वे तुम्हारे वशमें हो जायँगे' ॥ ६ ॥

इत्युक्त्वान्तर्हितो विप्रस्ततोऽहं विस्मिताभवम् ।
न च सर्वास्ववस्थासु स्मृतिर्मे विप्रणश्यति ॥ ७ ॥

यों कहकर वे ब्रह्मर्षि अन्तर्धान हो गये । उस समय मैं वहाँ आश्चर्यसे चकित हो गयी । किसी भी अवस्थामें उनकी बात मुझे भूलती नहीं थी ॥ ७ ॥

अथ हर्म्यतलस्थाहं रविमुद्यन्तमीक्षती ।
संस्मृत्य तदृषेर्वाक्यं स्पृहयन्ती दिवानिशम् ॥ ८ ॥

एक दिन जब मैं अपने महलकी छतपर खड़ी थी, उगते हुए सूर्यपर मेरी दृष्टि पड़ी । महर्षि दुर्वासाके वचनोंका स्मरण करके मैं दिन-रात सूर्यदेवको चाहने लगी ॥ ८ ॥

स्थिताऽहं बालभावेन तत्र दोषमबुद्ध्यती ।
अथ देवः सहस्रांशुर्मत्समीपगतोभवत् ॥ ९ ॥

उस समय मैं बाल-स्वभावसे युक्त थी । सूर्यदेवके आगमनसे किस दोषकी प्राप्ति होगी, इसे मैं नहीं समझ सकी ।

इधर मेरे आवाहन करते ही भगवान् सूर्य पास आकर खड़े हो गये ॥ ९ ॥

द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहं भूमौ च गगनेऽपि च।
तताप लोकानेकेन द्वितीयेनागमत् स माम् ॥ १० ॥

वे अपने दो शरीर बनाकर एकसे आकाशमें रहकर सम्पूर्ण विश्वको प्रकाशित करने लगे और दूसरेसे पृथ्वीपर मेरे पास आ गये ॥ १० ॥

स मामुवाच वेपन्तीं वरं मत्तो वृणीष्व ह।
गम्यतामिति तं चाहं प्रणम्य शिरसावदम् ॥ ११ ॥

मैं उन्हें देखते ही काँपने लगी। वे बोले—'देवि! मुझसे कोई वर माँगो।' तब मैंने सिर झुकाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'कृपया यहाँसे चले जाइये।'

स मामुवाच तिग्मांशुर्वृथाऽऽह्वानं न मे क्षमम्।
धक्ष्यामि त्वां च विप्रं च येन दत्तो वरस्तव ॥ १२ ॥

तब उन प्रचण्डरश्मि सूर्यने मुझसे कहा—'मेरा आवाहन व्यर्थ नहीं हो सकता। तुम कोई-न-कोई वर अवश्य माँग लो अन्यथा मैं तुमको और जिसने तुम्हें वर दिया है, उस ब्राह्मणको भी भस्म कर डालूँगा' ॥ १२ ॥

तमहं रक्षती विप्रं शापादनपकारिणम्।
पुत्रो मे त्वत्समो देव भवेदिति ततोऽब्रवम् ॥ १३ ॥
ततो मां तेजसाऽऽविश्य मोहयित्वा च भानुमान्।
उवाच भविता पुत्रस्तवेत्यभ्यगमद् दिवम् ॥ १४ ॥

तब मैं उन निरपराध ब्राह्मणको शापसे बचाती हुई बोली—'देव! मुझे आपके समान पुत्र प्राप्त हो।' इतना कहते ही सूर्यदेव मुझे मोहित करके अपने तेजके द्वारा मेरे शरीरमें प्रविष्ट हो गये। तत्पश्चात् बोले—'तुम्हें एक तेजस्वी पुत्र प्राप्त होगा।' ऐसा कहकर वे आकाशमें चले गये ॥

ततोऽहमन्तर्भवने पितुर्वृत्तान्तरक्षिणी।
गूढोत्पन्नं सुतं बालं जले कर्णमवासृजम् ॥ १५ ॥

तबसे मैं इस वृत्तान्तको पिताजीसे छिपाये रखनेके लिये महलके भीतर ही रहने लगी और जब गुप्तरूपसे बालक उत्पन्न हुआ तो उसे मैंने पानीमें बहा दिया। वही मेरा पुत्र कर्ण था॥

नूनं तस्यैव देवस्य प्रसादात् पुनरेव तु।
कन्याहमभवं विप्र यथा प्राह स मामृषिः ॥ १६ ॥

विप्रवर! उसके जन्मके बाद पुनः उन्हीं भगवान् सूर्यकी कृपासे मैं कन्याभावको प्राप्त हो गयी। जैसा कि उन महर्षिने कहा था, वैसा ही हुआ ॥ १६ ॥

स मया मूढया पुत्रो ज्ञायमानोऽप्युपेक्षितः।
तन्मां दहति विप्रर्षे यथा सुविदितं तव ॥ १७ ॥

ब्रह्मर्षे! मुझ मूढ़ नारीने अपने पुत्रको पहचान लिया तो भी उसकी उपेक्षा कर दी। यह भूल मुझे शोकाग्निसे दग्ध करती रहती है। आपको तो यह बात अच्छी तरह ज्ञात ही है ॥ १७ ॥

यदि पापमपापं वा तवैतद् विवृतं मया।
तन्मे दहन्तं भगवन् व्यपनेतुं त्वमर्हसि ॥ १८ ॥

भगवन्! मेरा यह कार्य पाप हो या पुण्य, मैंने इसे आपके सामने प्रकट कर दिया। आप मेरे उस दाहक शोकको दूर कर दें ॥ १८ ॥

यच्चास्य राज्ञो विदितं हृदिस्थं भवतोऽनघ।
तं चायं लभतां काममद्यैव मुनिसत्तम ॥ १९ ॥

निष्पाप मुनिश्रेष्ठ! इन महाराजके हृदयमें जो बात है, वह भी आपको विदित ही है। ये अपने मनोरथको आज ही प्राप्त करें, ऐसी कृपा कीजिये ॥ १९ ॥

इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं व्यासो वेदविदां वरः।
साधु सर्वमिदं भाव्यमेवमेतद् यथाऽऽत्थ माम् ॥ २० ॥

कुन्तीके इस प्रकार कहनेपर वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महर्षि व्यासने कहा—'बेटी! तुमने जो कुछ कहा है, वह सब ठीक है, ऐसी ही होनहार थी ॥ २० ॥

अपराधश्च ते नास्ति कन्याभावं गता ह्यसि।
देवाश्चैश्वर्यवन्तो वै शरीराण्याविशन्ति वै ॥ २१ ॥

'इसमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं है; क्योंकि उस समय तुम अभी कुमारी बालिका थी। देवतालोग अणिमा आदि ऐश्वर्योंसे सम्पन्न होते हैं; अतः दूसरेके शरीरोंमें प्रविष्ट हो जाते हैं ॥ २१ ॥

सन्ति देवनिकायाश्च संकल्पाज्जनयन्ति ये।
वाचा दृष्ट्या तथा स्पर्शात् संघर्षेणेति पञ्चधा ॥ २२ ॥

'बहुत-से ऐसे देवसमुदाय हैं, जो संकल्प, वचन, दृष्टि, स्पर्श तथा समागम—इन पाँचों प्रकारोंसे पुत्र उत्पन्न करते हैं॥

मनुष्यधर्मो दैवेन धर्मेण हि न दुष्यति।
इति कुन्ति विजानीहि व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ २३ ॥

'कुन्ती! देवधर्मके द्वारा मनुष्यधर्म दूषित नहीं होता, इस बातको जान लो। अब तुम्हारी मानसिक चिन्ता दूर हो जानी चाहिये ॥ २३ ॥

सर्वं बलवतां पथ्यं सर्वं बलवतां शुचि।
सर्वं बलवतां धर्मः सर्वं बलवतां स्वकम् ॥ २४ ॥

'बलवानोंका सब कुछ ठीक या लाभदायक है। बलवानोंका सारा कार्य पवित्र है। बलवानोंका सब कुछ धर्म है और बलवानोंके लिये सारी वस्तुएं अपनी हैं' ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि व्यासकुन्तीसंवादे त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत पुत्रदर्शनपर्वमें व्यास और कुन्तीका संवादविषयक तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

व्यासजीके द्वारा धृतराष्ट्र आदिके पूर्वजन्मका परिचय तथा उनके कहनेसे सब लोगोंका गङ्गा-तटपर जाना

व्यास उवाच

भद्रे द्रक्ष्यसि गान्धारि पुत्रान् भ्रातॄन् सखींस्तथा।
वधूश्च पतिभिः सार्धं निशि सुप्तोत्थिता इव ॥ १ ॥

व्यासजीने कहा—भद्रे गान्धारि ! आज रातमें तुम अपने पुत्रों, भाइयों और उनके मित्रोंको देखोगी। तुम्हारी बहुएँ तुम्हें पतियोंके साथ-साथ सोकर उठी हुई-सी दिखायी देंगी ॥ १ ॥

कर्णं द्रक्ष्यति कुन्ती च सौभद्रं चापि यादवी।
द्रौपदी पञ्च पुत्रांश्च पितॄन् भ्रातॄंस्तथैव च ॥ २ ॥

कुन्ती कर्णको, सुभद्रा अभिमन्युको तथा द्रौपदी पाँचों पुत्रोंको, पिताको और भाइयोंको भी देखेगी ॥ २ ॥

पूर्वमेवैष हृदये व्यवसायोऽभवन्मम।
यदास्मि चोदितो राज्ञा भवत्या पृथयैव च ॥ ३ ॥

जब राजा धृतराष्ट्रने, तुमने और कुन्तीने भी मुझे इसके लिये प्रेरित किया था, उससे पहले ही मेरे हृदयमें यह (मृत व्यक्तियोंके दर्शन करानेका) निश्चय हो गया था ॥ ३ ॥

न ते शोच्या महात्मानः सर्व एव नरर्षभाः।
क्षत्रधर्मपराः सन्तस्तथा हि निधनं गताः ॥ ४ ॥

तुम्हें क्षत्रिय-धर्मपरायण होकर तदनुसार ही वीरगतिको प्राप्त हुए उन समस्त महामनस्वी, नरश्रेष्ठ वीरोंके लिये कदापि शोक नहीं करना चाहिये ॥ ४ ॥

भवितव्यमवश्यं तत् सुरकार्यमनिन्दिते।
अवतेरुस्ततः सर्वे देवभागा महीतलम् ॥ ५ ॥

सती-साध्वी देवि ! यह देवताओंका कार्य था और इसी रूपमें अवश्य होनेवाला था; इसलिये सभी देवताओंके अंश इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए थे ॥ ५ ॥

गन्धर्वाप्सरसश्चैव पिशाचा गुह्यराक्षसाः।
तथा पुण्यजनाश्चैव सिद्धा देवर्षयोऽपि च ॥ ६ ॥
देवाश्च दानवाश्चैव तथा देवर्षयोऽमलाः।
त एते निधनं प्राप्ताः कुरुक्षेत्रे रणाजिरे ॥ ७ ॥

गन्धर्व, अप्सरा, पिशाच, गुह्यक, राक्षस, पुण्यजन, सिद्ध, देवर्षि, देवता, दानव तथा निर्मल देवर्षिगण—ये सभी यहाँ अवतार लेकर कुरुक्षेत्रके समराङ्गणमें वधको प्राप्त हुए हैं॥

गन्धर्वराजो यो धीमान् धृतराष्ट्र इति श्रुतः।
स एव मानुषे लोके धृतराष्ट्रः पतिस्तव ॥ ८ ॥

गन्धर्वोंके लोकमें जो बुद्धिमान् गन्धर्वराज धृतराष्ट्रके नामसे विख्यात हैं, वे ही मनुष्यलोकमें तुम्हारे पति धृतराष्ट्रके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं ॥ ८ ॥

पाण्डुं मरुद्गणाद् विद्धि विशिष्टतममच्युतम्।
धर्मस्यांशोऽभवत् क्षत्ता राजा चैव युधिष्ठिरः॥ ९ ॥

अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले राजा पाण्डुको तुम मरुद्गणोंसे भी श्रेष्ठतम समझो। विदुर धर्मके अंश थे राजा युधिष्ठिर भी धर्मके ही अंश हैं ॥ ९ ॥

कलिं दुर्योधनं विद्धि शकुनिं द्वापरं तथा।
दुःशासनादीन् विद्धि त्वं राक्षसाञ्शुभदर्शने ॥ १० ॥

दुर्योधनको कलियुग समझो और शकुनिको द्वापर शुभदर्शने ! अपने दुःशासन आदि पुत्रोंको राक्षस जानो

मरुद्गणाद् भीमसेनं बलवन्तमरिंदमम्।
विद्धि त्वं तु नरमृषिमिमं पार्थं धनंजयम् ॥ ११ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले बलवान् भीमसेनको मरुद्गणके अंशसे उत्पन्न मानो। इन कुन्तीपुत्र धनंजयको तुम पुरातन ऋषि 'नर' समझो ॥ ११ ॥

नारायणं हृषीकेशमश्विनौ यमजौ तथा।
यः स वैरार्थमुद्भूतः संघर्षजननस्तथा।
तं कर्णं विद्धि कल्याणि भास्करं शुभदर्शने ॥ १२ ॥
यश्च पाण्डवदायादो हतः षड्भिर्महारथैः।
स सोम इह सौभद्रो योगादेवाभवद् द्विधा ॥ १३ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण नारायण ऋषिके अवतार हैं। नकुल और सहदेव दोनोंको अश्विनीकुमार समझो। कल्याणि ! जो केवल वैर बढ़ानेके लिये उत्पन्न हुआ था और कौरव पाण्डवोंमें संघर्ष पैदा करानेवाला था, उस कर्णको सूर्य समझो जिस पाण्डवपुत्रको छः महारथियोंने मिलकर मारा था, उस सुभद्राकुमार अभिमन्युके रूपमें साक्षात् चन्द्रमा ही इस भूतलपर अवतीर्ण हुए थे। वे अपने योगबलसे दो रूपोंमें प्रकट हो गये थे (एक रूपसे चन्द्रलोकमें रहते थे और दूसरेसे भूतलपर) ॥ १२-१३ ॥

द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमादित्यं तपतां वरम्।
लोकांश्च तापयानं वै विद्धि कर्णं च शोभने ॥ १४ ॥

शोभने ! तपनेवालोंमें श्रेष्ठ सूर्यदेव अपने शरीरके दो भाग करके एकसे सम्पूर्ण लोकोंको ताप देते रहे और दूसरे भागसे कर्णके रूपमें अवतीर्ण हुए। इस तरह कर्णको तुम सूर्यरूप जानो ॥ १४ ॥

द्रौपद्या सह सम्भूतं धृष्टद्युम्नं च पावकात्।
अग्नेर्भागं शुभं विद्धि राक्षसं तु शिखण्डिनम् ॥ १५ ॥

तुम्हें यह भी ज्ञात होना चाहिये कि जो द्रौपदीके साथ अग्निसे प्रकट हुआ था, वह धृष्टद्युम्न अग्निका शुभ अंश था और शिखण्डीके रूपमें एक राक्षसने अवतार लिया था ॥ १५ ॥

द्रोणं बृहस्पतेर्भागं विद्धि द्रौणिं च रुद्रजम्।
भीष्मं च विद्धि गाङ्गेयं वसुं मानुषतां गतम् ॥ १६ ॥

द्रोणाचार्यको बृहस्पतिका और अश्वत्थामाको रुद्रका अंश जानो। गङ्गापुत्र भीष्मको मनुष्ययोनिमें अवतीर्ण हुआ एक वसु समझो ॥ १६ ॥

एवमेते महाप्राज्ञे देवा मानुष्यमेत्य हि।
ततः पुनर्गताः स्वर्गं कृते कर्मणि शोभने ॥ १७ ॥

महाप्राज्ञे! शोभने! इस प्रकार ये देवता कार्यवश मानव-शरीरमें जन्म ले अपना काम पूरा कर लेनेपर पुनः स्वर्गलोकको चले गये हैं ॥ १७ ॥

यच्च वै हृदि सर्वेषां दुःखमेतच्चिरं स्थितम्।
तदद्य व्यपनेष्यामि परलोककृताद् भयात् ॥ १८ ॥

तुम सब लोगोंके हृदयमें इनके लिये पारलौकिक भयके कारण जो चिरकालसे दुःख भरा हुआ है, उसे आज दूर कर दूँगा ॥ १८ ॥

सर्वे भवन्तो गच्छन्तु नदीं भागीरथीं प्रति।
तत्र द्रक्ष्यथ तान् सर्वान् ये हतास्तत्र संयुगे ॥ १९ ॥

इस समय तुम सब लोग गङ्गाजीके तटपर चलो। वहीं सबको समराङ्गणमें मारे गये अपने सभी सम्बन्धियोंके दर्शन होंगे ॥ १९ ॥

वैशम्पायन उवाच

इति व्यासस्य वचनं श्रुत्वा सर्वो जनस्तदा।
महता सिंहनादेन गङ्गामभिमुखो ययौ ॥ २० ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! महर्षि व्यासका यह वचन सुनकर सब लोग महान् सिंहनाद करते हुए प्रसन्नतापूर्वक गङ्गातटकी ओर चल दिये ॥ २० ॥

धृतराष्ट्रश्च सामात्यः प्रययौ सह पाण्डवैः।
सहितो मुनिशार्दूलैर्गन्धर्वैश्च समागतैः ॥ २१ ॥

राजा धृतराष्ट्र अपने मन्त्रियों, पाण्डवों, मुनिवरों तथा वहाँ आये हुए गन्धर्वोंके साथ गङ्गाजीके समीप गये ॥ २१ ॥

ततो गङ्गां समासाद्य क्रमेण स जनार्णवः।
निवासमकरोत् सर्वो यथाप्रीति यथासुखम् ॥ २२ ॥

क्रमशः वह सारा जनसमुद्र गङ्गातटपर जा पहुँचा और सब लोग अपनी-अपनी रुचि तथा सुख-सुविधाके अनुसार जहाँ-तहाँ ठहर गये ॥ २२ ॥

राजा च पाण्डवैः सार्धमिष्टे देशे सहानुगः।
निवासमकरोद् धीमान् सस्त्रीवृद्धपुरःसरः ॥ २३ ॥

बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्र स्त्रियों और वृद्धोंको आगे करके पाण्डवों तथा सेवकोंके साथ वहाँ अभीष्ट स्थानमें ठहरे ॥ २३ ॥

जगाम तदहश्चापि तेषां वर्षशतं यथा।
निशां प्रतीक्षमाणानां दिदृक्षूणां मृतान् नृपान् ॥ २४ ॥

मृत राजाओंको देखनेकी इच्छासे सभी लोग वहाँ रात होनेकी प्रतीक्षा करते रहे; अतः वह दिन उनके लिये सौ वर्षोंके समान जान पड़ा तो भी वह धीरे-धीरे बीत ही गया ॥ २४ ॥

अथ पुण्यं गिरिवरमस्तमभ्यगमद् रविः।
ततः कृताभिषेकास्ते नैशं कर्म समाचरन् ॥ २५ ॥

तदनन्तर सूर्यदेव परम पवित्र अस्ताचलको जा पहुँचे। उस समय सब लोग स्नान करके सायंकालोचित संध्यावन्दन आदि कर्म करने लगे ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि गङ्गातीरगमने एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत पुत्रदर्शनपर्वमें सबका गङ्गातीरपर गमनविषयक एकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

व्यासजीके प्रभावसे कुरुक्षेत्रके युद्धमें मारे गये कौरव-पाण्डववीरोंका गङ्गाजीके जलसे प्रकट होना

वैशम्पायन उवाच

ततो निशायां प्राप्तायां कृतसायाह्निकक्रियाः।
व्यासमभ्यगमन् सर्वे ये तत्रासन् समागताः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर जब रात होनेको आयी, तब जो लोग वहाँ आये थे, वे सब सायंकालोचित नित्य-नियम पूर्ण करके भगवान् व्यासके समीप गये ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रस्तु धर्मात्मा पाण्डवैः सहितस्तदा।
शुचिरेकमना सार्धमृषिभिस्तैरुपाविशत् ॥ २ ॥
गान्धार्या सह नार्यस्तु सहिताः समुपाविशन्।
पौरजानपदश्चापि जनः सर्वो यथावयः ॥ ३ ॥

पाण्डवोंसहित धर्मात्मा धृतराष्ट्र पवित्र एवं एकाग्रचित्त हो उन ऋषियोंके साथ व्यासजीके निकट जा बैठे। कुरुकुलकी सारी स्त्रियाँ एक साथ हो गान्धारीके समीप बैठ

गयीं तथा नगर और जनपदके निवासी भी अवस्थाके अनुसार यथास्थान विराजमान हो गये ॥ २-३ ॥

ततो व्यासो महातेजाः पुण्यं भागीरथीजलम् ।
अवगाह्याजुहावाथ सर्वान् लोकान् महामुनिः ॥ ४ ॥

तत्पश्चात् महातेजस्वी महामुनि व्यासजीने भागीरथीके पवित्र जलमें प्रवेश करके पाण्डव तथा कौरवपक्षके सब लोगोंका आवाहन किया ॥ ४ ॥
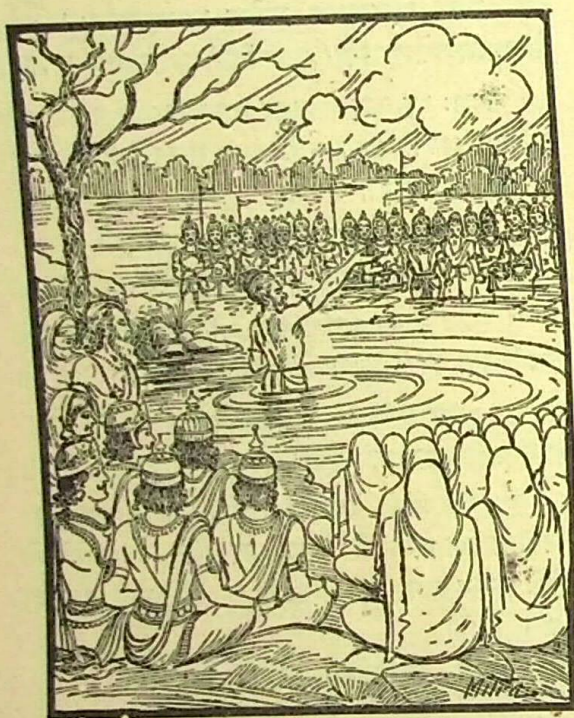
पाण्डवानां च ये योधाः कौरवाणां च सर्वशः ।
राजानश्च महाभागा नानादेशनिवासिनः ॥ ५ ॥

पाण्डवों तथा कौरवोंके पक्षमें जो नाना देशोंके निवासी महाभाग नरेश योद्धा बनकर आये थे, उन सबका व्यासजीने आह्वान किया ॥ ५ ॥

ततः सुतुमुलः शब्दो जलान्ते जनमेजय ।
प्रादुरासीद् यथापूर्वं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ६ ॥

जनमेजय ! तदनन्तर जलके भीतरसे कौरवों और पाण्डवोंकी सेनाओंका पहले-जैसा ही भयङ्कर शब्द प्रकट होने लगा ॥ ६ ॥

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे भीष्मद्रोणपुरोगमाः ।
ससैन्याः सलिलात् तस्मात् समुत्तस्थुः सहस्रशः ॥

फिर तो भीष्म-द्रोण आदि समस्त राजा अपनी सेनाओंके साथ सहस्रोंकी संख्यामें उस जलसे बाहर निकलने लगे ॥ ७ ॥

विराटद्रुपदौ चैव सहपुत्रौ ससैनिकौ ।
द्रौपदेयाश्च सौभद्रो राक्षसश्च घटोत्कचः ॥ ८ ॥

पुत्रों और सैनिकोंसहित विराट और द्रुपद पानीसे बाहर आये । द्रौपदीके पाँचों पुत्र, अभिमन्यु तथा राक्षस घटोत्कच—ये सभी जलसे प्रकट हो गये ॥ ८ ॥

कर्णदुर्योधनौ चैव शकुनिश्च महारथः ।
दुःशासनादयश्चैव धार्तराष्ट्रा महाबलाः ॥ ९ ॥
जारासंधिर्भगदत्तो जलसंधश्च वीर्यवान् ।
भूरिश्रवाः शलः शल्यो वृषसेनश्च सानुजः ॥ १० ॥
लक्ष्मणो राजपुत्रश्च धृष्टद्युम्नस्य चात्मजाः ।
शिखण्डिपुत्राः सर्वे च धृष्टकेतुश्च सानुजः ॥ ११ ॥
अचलो वृषकश्चैव राक्षसश्चाप्यलायुधः ।
बाह्लिकः सोमदत्तश्च चेकितानश्च पार्थिवः ॥ १२ ॥
एते चान्ये च बहवो बहुत्वाद् ये न कीर्तिताः ।
सर्वे भासुरदेहास्ते समुत्तस्थुर्जलात्ततः ॥ १३ ॥

कर्ण, दुर्योधन, महारथी, शकुनि, धृतराष्ट्रके पुत्र महाबली दुःशासन आदि, जरासन्धकुमार सहदेव, भगदत्त, पराक्रमी जलसन्ध, भूरिश्रवा, शल, शल्य, भाइयोंसहित वृषसेन, राजकुमार लक्ष्मण, धृष्टद्युम्नके पुत्र, शिखण्डीके सभी पुत्र, भाइयोंसहित धृष्टकेतु, अचल, वृषक, राक्षस अलायुध, राजा बाह्लिक, सोमदत्त और चेकितान—ये तथा दूसरे बहुत-से क्षत्रियवीर, जो संख्यामें अधिक होनेके कारण नाम लेकर नहीं बताये गये हैं, सभी देदीप्यमान शरीर धारण करके उस जलसे प्रकट हुए ॥ ९-१३ ॥

यस्य वीरस्य यो वेषो यो ध्वजो यच्च वाहनम् ।
तेन तेन व्यदृश्यन्त समुपेता नराधिपाः ॥ १४ ॥
दिव्याम्बरधराः सर्वे सर्वे भ्राजिष्णुकुण्डलाः ।
निर्वैरा निरहंकारा विगतक्रोधमत्सराः ॥ १५ ॥

जिस वीरका जैसा वेष, जैसी ध्वजा और जैसा वाहन था, वह उसीसे युक्त दिखायी दिया । वहाँ प्रकट हुए सभी नरेश दिव्य वस्त्र धारण किये हुए थे । सबके कानोंमें चमकीले कुण्डल शोभा पाते थे । उस समय वे वैर, अहंकार, क्रोध और मात्सर्य छोड़ चुके थे ॥ १४-१५ ॥

गन्धर्वैरुपगीयन्तः स्तूयमानाश्च वन्दिभिः ।
दिव्यमाल्याम्बरधरा वृताश्चाप्सरसां गणैः ॥ १६ ॥

गन्धर्व उनके गुण गाते और बन्दीजन स्तुति करते थे । उन सबने दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण कर रक्खे थे और सभी अप्सराओंसे घिरे हुए थे ॥ १६ ॥

धृतराष्ट्रस्य च तदा दिव्यं चक्षुर्नराधिप ।
मुनिः सत्यवतीपुत्रः प्रीतः प्रादात् तपोबलात् ॥ १७ ॥

नरेश्वर ! उस समय सत्यवतीनन्दन मुनिवर व्यासजीने प्रसन्न होकर अपने तपोबलसे धृतराष्ट्रको दिव्य नेत्र प्रदान किये ॥ १७ ॥

व्यासजीके द्वारा कौरव-पाण्डव-पक्षके मरे हुए सम्बन्धियोंका सेनासहित परलोकसे आवाहन
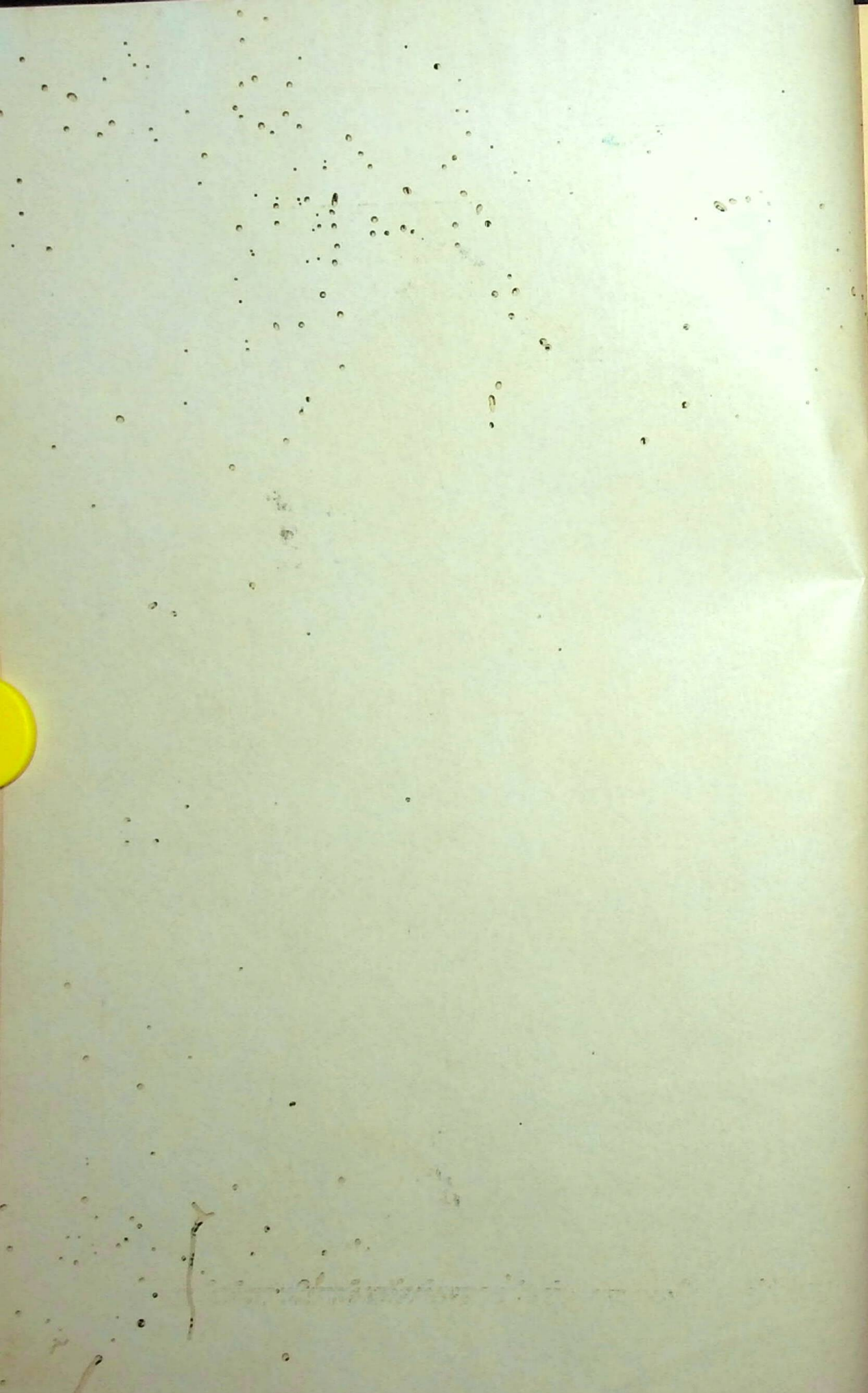
दिव्यज्ञानबलोपेता गान्धारी च यशस्विनी।
ददर्श पुत्रांस्तान् सर्वान् ये चान्येऽपि मृधे हताः॥ १८॥

यशस्विनी गान्धारी भी दिव्य ज्ञानबलसे सम्पन्न हो गयी थीं। उन दोनोंने युद्धमें मारे गये अपने पुत्रों तथा अन्य सब सम्बन्धियोंको देखा॥ १८॥

तदद्भुतमचिन्त्यं च सुमहल्लोमहर्षणम्।
विस्मितः स जनः सर्वो ददर्शानिमिषेक्षणः॥ १९॥

वहाँ आये हुए सब लोग आश्चर्यचकित हो एकटक दृष्टिसे उस अद्भुत, अचिन्त्य एवं अत्यन्त रोमाञ्चकारी दृश्यको देख रहे थे॥ १९॥

तदुत्सवमहोदग्रं हृष्टनारीनराकुलम्।
आश्चर्यभूतं ददृशे चित्रं पटगतं यथा॥ २०॥

वह हर्षोत्फुल्ल नर-नारियोंसे भरा हुआ महान् आश्चर्य-जनक उत्सव कपड़ेपर अङ्कित किये गये चित्रकी भाँति दिखायी देता था॥ २०॥

धृतराष्ट्रस्तु तान् सर्वान् पश्यन् दिव्येन चक्षुषा।
मुमुदे भरतश्रेष्ठ प्रसादात् तस्य वै मुनेः॥ २१॥

भरतश्रेष्ठ! राजा धृतराष्ट्र मुनिवर व्यासकी कृपासे मिले हुए दिव्य नेत्रोंद्वारा अपने समस्त पुत्रों और सम्बन्धियोंको देखते हुए आनन्दमग्न हो गये॥ २१॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि भीष्मादिदर्शने द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत पुत्रदर्शनपर्वमें भीष्म आदिका दर्शनविषयक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३२॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

परलोकसे आये हुए व्यक्तियोंका परस्पर रागद्वेषसे रहित होकर मिलना और रात बीतनेपर अदृश्य हो जाना, व्यासजीकी आज्ञासे विधवा क्षत्राणियोंका गङ्गाजीमें गोता लगाकर अपने-अपने पतिके लोकको प्राप्त करना तथा इस पर्वके श्रवणकी महिमा

वैशम्पायन उवाच

ततस्ते पुरुषश्रेष्ठाः समाजग्मुः परस्परम्।
विगतक्रोधमात्सर्याः सर्वे विगतकल्मषाः॥ १॥
विधिं परममास्थाय ब्रह्मर्षिविहितं शुभम्।
संहृष्टमनसः सर्वे देवलोक इवामराः॥ २॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—क्रोध और मात्सर्यसे रहित तथा पापशून्य हुए वे सभी श्रेष्ठ पुरुष ब्रह्मर्षियोंकी बनायी हुई उत्तम प्रणालीका आश्रय ले एक-दूसरेसे प्रेमपूर्वक मिले। उस समय देवलोकमें रहनेवाले देवताओंकी भाँति उन सबके मनमें हर्षोल्लास छा रहा था॥ १-२॥

पुत्रः पित्रा च मात्रा च
भार्याश्च पतिभिः सह।
भ्रात्रा भ्राता सखा चैव
सख्या राजन् समागताः॥ ३॥

राजन्! पुत्र पिता-माताके साथ, स्त्री पतिके साथ, भाई भाईके साथ और मित्र मित्रके साथ मिले॥ ३॥

पाण्डवास्तु महेष्वासं कर्णं सौभद्रमेव च।
सम्प्रहर्षात् समाजग्मुर्द्रौपदेयांश्च सर्वशः॥ ४॥

पाण्डव महाधनुर्धर कर्ण, सुभद्राकुमार अभिमन्यु और द्रौपदीके पाँचों पुत्र—इन सबके साथ अत्यन्त हर्षपूर्वक मिले॥

ततस्ते प्रीयमाणा वै कर्णेन सह पाण्डवाः।
समेत्य पृथिवीपाल सौहृद्ये च स्थिता भवन्॥ ५॥

भूपाल! तत्पश्चात् सब पाण्डवोंने कर्णसे प्रसन्नता-पूर्वक मिलकर उनके साथ सौहार्दपूर्ण बर्ताव किया॥ ५॥

परस्परं समागम्य योधास्ते भरतर्षभ।
मुनेः प्रसादात् ते ह्येवं क्षत्रिया नष्टमन्यवः॥ ६॥
असौहृदं परित्यज्य सौहृदे पर्यवस्थिताः।

भरतभूषण! वे समस्त योद्धा एक-दूसरेसे मिलकर बड़े प्रसन्न हुए। इस प्रकार मुनिकी कृपासे वे सभी क्षत्रिय अपने क्रोधको भुलाकर शत्रुभाव छोड़कर परस्पर सौहार्द स्थापित करके मिले॥ ६½॥

एवं समागताः सर्वे गुरुभिर्बान्धवैः सह॥ ७॥
पुत्रैश्च पुरुषव्याघ्राः कुरवोऽन्ये च पार्थिवाः।

इस तरह वे सब पुरुषसिंह कौरव तथा अन्य नरेश गुरु-जनों, बान्धवों और पुत्रोंके साथ मिले॥ ७½॥

तां रात्रिमखिलामेवं विहृत्य प्रीतमानसाः॥ ८॥
मेनिरे परितोषेण नृपाः स्वर्गसदो यथा।

सारी रात एक-दूसरेके साथ घूमने-फिरनेके कारण उन सबके मनमें बड़ी प्रसन्नता थी। स्वर्गवासियोंके समान ही उन्हें वहाँ परम संतोषका अनुभव हुआ॥ ८½॥

नात्र शोको भयं त्रासो नारतिर्नायशोऽभवत्॥ ९॥
परस्परं समागम्य योधानां भरतर्षभ।

भरतश्रेष्ठ ! एक-दूसरेसे मिलकर उन योद्धाओंके मनमें शोक, भय, त्रास, उद्वेग और अपयशको स्थान नहीं मिला ॥

समागतास्ताः पितृभिर्भ्रातृभिः पतिभिः सुतैः ॥ १० ॥
मुदं परमिकां प्राप्य नार्यो दुःखमथात्यजन् ।

वहाँ आयी हुई स्त्रियाँ अपने पिताओं, भाइयों, पतियों और पुत्रोंसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुईं । उनका सारा दुःख दूर हो गया ॥ १०½ ॥

एकां रात्रिं विहृत्यैव ते वीरास्ताश्च योषितः ॥ ११ ॥
आमन्त्र्यान्योन्यमाश्लिष्य ततो जग्मुर्यथागतम् ।

वे वीर और उनकी वे तरुणी स्त्रियाँ एक रात साथ-साथ विहार करके अन्तमें एक-दूसरेकी अनुमति ले परस्पर गले मिलकर जैसे आये थे, उसी प्रकार चले जानेको उद्यत हुए ॥

ततो विसर्जयामास लोकांस्तान् मुनिपुङ्गवः ॥ १२ ॥
क्षणेनान्तर्हिताश्चैव प्रेक्षतामेव तेऽभवन् ।
अवगाह्य महात्मानः पुण्यां भागीरथीं नदीम् ॥ १३ ॥
सरथाः सध्वजाश्चैव स्वानि वेश्मानि भेजिरे ।

तब मुनिवर व्यासजीने उन सब लोगोंका विसर्जन कर दिया और वे महामना नरेश एक ही क्षणमें सबके देखते-देखते पुण्यसलिला भागीरथीमें गोता लगाकर अदृश्य हो गये । रथों और ध्वजाओंसहित अपने-अपने लोकोंमें चले गये ॥

देवलोकं ययुः केचित् केचिद् ब्रह्मसदस्तथा ॥ १४ ॥
केचिच्च वारुणं लोकं केचित् कौबेरमाप्नुवन् ।
ततो वैवस्वतं लोकं केचिच्चैवाप्नुवन्नृपाः ॥ १५ ॥

कोई देवलोकमें गये, कोई ब्रह्मलोकमें, कुछ वरुणलोकमें पधारे और कुछ कुबेरके लोकमें । कितने ही नरेश भगवान् सूर्यके लोकमें चले गये ॥ १४-१५ ॥

राक्षसानां पिशाचानां केचिच्चाप्युत्तरान् कुरून् ।
विचित्रगतयः सर्वे यानवाप्यामरैः सह ॥ १६ ॥
आजग्मुस्ते महात्मानः सवाहाः सपदानुगाः ।

कितने ही राक्षसों और पिशाचोंके लोकोंमें चले गये और कितने ही उत्तरकुरुमें जा पहुँचे । इस प्रकार सबको विचित्र-विचित्र गतियोंकी प्राप्ति हुई थी और वे महामना वहींसे देवताओंके साथ अपने-अपने वाहनों और अनुचरोंसहित आये थे ॥ १६½ ॥

गतेषु तेषु सर्वेषु सलिलस्थो महामुनिः ॥ १७ ॥
धर्मशीलो महातेजाः कुरूणां हितकृत् तथा ।
ततः प्रोवाच ताः सर्वाः क्षत्रिया निहतेश्वराः ॥ १८ ॥
या याः पतिकृतान् लोका-
निच्छन्ति परमस्त्रियः ।
ता जाह्नवीजलं क्षिप्र-
मवगाहन्त्वतन्द्रिताः ॥ १९ ॥

ततस्तस्य वचः श्रुत्वा श्रद्दधाना वराङ्गनाः ।
श्वशुरं समनुज्ञाप्य विविशुर्जाह्नवीजलम् ॥ २० ॥

उन सबके अदृश्य हो जानेपर कौरवोंके हितकारी महातेजस्वी धर्मशील महामुनि व्यासजीने जलमें खड़े-खड़े उन सब विधवा क्षत्राणियोंसे कहा—'देवियो ! तुम लोगोंमेंसे जो-जो सती-साध्वी स्त्रियाँ अपने-अपने पतिके लोकको जाना चाहती हों, वे आलस्य त्यागकर तुरंत गङ्गाजीके जलमें गोता लगावें ।' उनकी बात सुनकर उनमें श्रद्धा रखनेवाली वे सती स्त्रियाँ अपने श्वशुर धृतराष्ट्रकी आज्ञा ले गङ्गाजीके जलमें समा गयीं ॥ १७-२० ॥

विमुक्ता मानुषैर्देहैस्ततस्ता भर्तृभिः सह ।
समाजग्मुस्तदा साध्व्यः सर्वा एव विशाम्पते ॥ २१ ॥

प्रजानाथ ! वहाँ वे सभी साध्वी स्त्रियाँ मनुष्य-शरीरसे छुटकारा पाकर अपने-अपने पतिके साथ जा मिलीं ॥ २१ ॥

एवं क्रमेण सर्वास्ताः शीलवत्यः पतिव्रताः ।
प्रविश्य क्षत्रिया मुक्ता जग्मुर्भर्तृसलोकताम् ॥ २२ ॥

इस प्रकार क्रमशः वे सभी शीलवती पतिव्रता क्षत्राणियाँ इस शरीरसे मुक्त हो पतिलोकको चली गयीं ॥ २२ ॥

दिव्यरूपसमायुक्ता दिव्याभरणभूषिताः ।
दिव्यमाल्याम्बरधरा यथाऽऽसां पतयस्तथा ॥ २३ ॥

जैसे उनके पति थे, उसी प्रकार वे भी दिव्यरूपसे सम्पन्न हो गयीं । दिव्य आभूषण उनके अङ्गोंकी शोभा बढ़ाने लगे तथा उन्होंने दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण कर लिये ॥

ताः शीलगुणसम्पन्ना विमानस्था गतक्लमाः ।
सर्वाः सर्वगुणोपेताः स्वस्थानं प्रतिपेदिरे ॥ २४ ॥

शील और सद्गुणसे सम्पन्न हुई वे सभी क्षत्रियवालाएँ समस्त सद्गुणोंसे अलंकृत हो विमानपर बैठकर अपने-अपने योग्य स्थानको चली गयीं । उनका सारा कष्ट दूर हो गया ॥

यस्य यस्य तु यः कामस्तस्मिन् काले बभूव ह ।
तं तं विसृष्टवान् व्यासो वरदो धर्मवत्सलः ॥ २५ ॥

उस समय जिसके-जिसके मनमें जो-जो कामना उत्पन्न हुई, धर्मवत्सल वरदायक भगवान् व्यासने वह सब पूर्ण की ॥

तच्छ्रुत्वा नरदेवानां पुनरागमनं नराः ।
जहृषुर्मुदिताश्चासन् नानादेशगता अपि ॥ २६ ॥

संग्राममें मरे हुए राजाओंके पुनरागमनका वृत्तान्त सुनकर भिन्न-भिन्न देशके मनुष्योंको बड़ा आश्चर्य और आनन्द हुआ ॥ २६ ॥

प्रियैः समागमं तेषां यः सम्यक् शृणुयान्नरः ।
प्रियाणि लभते नित्यमिह च प्रेत्य चैव सः ॥ २७ ॥

जो मनुष्य कौरव-पाण्डवोंके प्रियजन समागमका वह

वृत्तान्त भलीभाँति सुनेगा, उसे इहलोक और परलोकमें भी प्रिय वस्तुकी प्राप्ति होगी ॥ २७ ॥

इष्टबान्धवसंयोगमनायासमनामयम् ।
यश्चैतच्छ्रावयेद् विद्वान् विदुषो धर्मवित्तमः ॥ २८ ॥
स यशः प्राप्नुयाल्लोके परत्र च शुभां गतिम् ।

इतना ही नहीं, उसे अनायास ही इष्ट बन्धुओंसे मिलन होगा तथा कोई दुःख-शोक नहीं सतावेगा । धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ जो विद्वान् विद्वानोंको यह प्रसङ्ग सुनायेगा, वह इस लोकमें यश और परलोकमें शुभ गति प्राप्त करेगा ॥ २८½ ॥

स्वाध्याययुक्ता मनुजास्तपोयुक्ताश्च भारत ॥ २९ ॥
साध्वाचारा दमोपेता दाननिर्धूतकल्मषाः ।
ऋजवः शुचयः शान्ता हिंसानृतविवर्जिताः ॥ ३० ॥
आस्तिकाः श्रद्दधानाश्च धृतिमन्तश्च मानवाः ।
श्रुत्वाऽऽश्चर्यमिदं पर्व ह्यवाप्स्यन्ति परां गतिम् ॥ ३१ ॥

भारत ! जो मनुष्य स्वाध्यायपरायण, तपस्वी, सदाचारी, जितेन्द्रिय, दानके द्वारा पापरहित, सरल, शुद्ध, शान्त, हिंसा और असत्यसे दूर, आस्तिक, श्रद्धालु और धैर्यवान् हैं, वे इस आश्चर्यजनक पर्वको सुनकर उत्तम गति प्राप्त करेंगे ।२९-३१।

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि स्त्रीणां स्वस्वपतिलोकगमने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत पुत्रदर्शनपर्वमें स्त्रियोंका अपने-अपने पतिके लोकमें गमनविषयक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

मरे हुए पुरुषोंका अपने पूर्व शरीरसे ही यहाँ पुनः दर्शन देना कैसे सम्भव है, जनमेजयकी इस शङ्काका वैशम्पायनद्वारा समाधान

सौतिरुवाच

एतच्छ्रुत्वा नृपो विद्वान् हृष्टोऽभूज्जनमेजयः
पितामहानां सर्वेषां गमनागमनं तदा ॥ १ ॥

सौति कहते हैं—अपने समस्त पितामहोंके इस प्रकार परलोकसे आने और जानेका वृत्तान्त सुनकर विद्वान् राजा जनमेजय बड़े प्रसन्न हुए ॥ १ ॥

अब्रवीच्च मुदा युक्तः पुनरागमनं प्रति ।
कथं नु त्यक्तदेहानां पुनस्तद्रूपदर्शनम् ॥ २ ॥

प्रसन्न होकर वे पुनरागमनके विषयमें संदेह करते हुए बोले—'भला, जिन्होंने अपने शरीरका परित्याग कर दिया है, उन पुरुषोंका उसी रूपमें दर्शन कैसे हो सकता है ?' ॥

इत्युक्तः स द्विजश्रेष्ठो व्यासशिष्यः प्रतापवान् ।
प्रोवाच वदतां श्रेष्ठस्तं नृपं जनमेजयम् ॥ ३ ॥

उनके ऐसा कहनेपर वक्ताओंमें श्रेष्ठ प्रतापी व्यासशिष्य विप्रवर वैशम्पायनने उन राजा जनमेजयसे कहा ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच

अविप्रणाशः सर्वेषां कर्मणामिति निश्चयः ।
कर्मजानि शरीराणि तथैवाकृतयो नृप ॥ ४ ॥

वैशम्पायनजी बोले—नरेश्वर ! यह सिद्धान्त है कि समस्त कर्मोंका फल भोग किये बिना उनका नाश नहीं होता । जीवात्माको जो शरीर और नाना प्रकारकी आकृतियाँ प्राप्त होती हैं, वे सब कर्मजनित ही हैं ॥ ४ ॥

महाभूतानि नित्यानि भूताधिपतिसंश्रयात् ।
तेषां च नित्यसंवासो न विनाशो वियुज्यताम् ॥ ५ ॥

भूतनाथ भगवान्के आश्रयसे पाँचों महाभूत हमारे शरीरोंकी अपेक्षा नित्य हैं । उन नित्य महाभूतोंका अनित्य शरीरोंके साथ संसार-दशामें नित्य संयोग है । अनित्य शरीरोंका नाश होनेपर इन नित्य महाभूतोंका उनसे वियोगमात्र होता है, विनाश नहीं ॥ ५ ॥

अनायासकृतं कर्म सत्यः श्रेष्ठः फलागमः ।
आत्मा चैभिः समायुक्तः सुखदुःखमुपाश्नुते ॥ ६ ॥

कर्तृत्व-अभिमानके बिना अनायास किये जानेवाले कर्मका जो फल प्राप्त होता है, वह सत्य और श्रेष्ठ है अर्थात् मुक्तिदायक है । कर्तृत्व-अभिमान और परिश्रमपूर्वक किये हुए कर्मोंसे बँधा हुआ जीवात्मा सुख-दुःखका उपभोग करता है ॥

अविनाश्यस्तथायुक्तः क्षेत्रज्ञ इति निश्चयः ।
भूतानामात्मको भावो यथासौ न वियुज्यते ॥ ७ ॥

क्षेत्रज्ञ इस प्रकार कर्मोंसे संयुक्त होकर भी वास्तवमें अविनाशी ही है, यह निश्चित है । किंतु भूतोंके साथ तादात्म्य-भाव स्वीकार कर लेनेके कारण वह ज्ञानके बिना उनसे अलग नहीं हो पाता ॥ ७ ॥

यावन्न क्षीयते कर्म तावत् तस्य स्वरूपता ।
क्षीणकर्मा नरो लोके रूपान्यत्वं नियच्छति ॥ ८ ॥

जबतक शरीरके प्रारब्ध कर्मोंका क्षय नहीं होता तबतक उस जीवकी उस शरीरसे एकरूपता रहती है । जब कर्मोंका

क्षय हो जाता है, तब वह दूसरे स्वरूपको प्राप्त हो जाता है ॥ ८ ॥

नानाभावास्तथैकत्वं शरीरं प्राप्य संहताः ।
भवन्ति ते तथा नित्याः पृथग्भावं विजानताम् ॥ ९ ॥

भूत-इन्द्रिय आदि नाना प्रकारके पदार्थ शरीरको पाकर एकत्वको प्राप्त हो गये हैं । जो देह आदिको आत्मासे पृथक् जानते हैं, उन योगियोंके लिये वे सारे पदार्थ नित्य आत्म-स्वरूप हो जाते हैं ॥ ९ ॥

अश्वमेधे श्रुतिश्चेयमश्वसंज्ञपनं प्रति ।
लोकान्तरगता नित्यं प्राणा नित्यं शरीरिणाम् ॥ १० ॥

अश्वमेध यज्ञमें जब अश्वका वध किया जाता है, उस समय जो 'सूर्यं ते चक्षुः वातं प्राणः (तुम्हारे नेत्र सूर्यको और प्राण वायुको प्राप्त हों)' इत्यादि मन्त्र पढ़े जाते हैं, उनसे यह सूचित होता है कि देहधारियोंके प्राण–इन्द्रियाँ निश्चितरूपसे सर्वदा लोकान्तरमें स्थित होती हैं । (अतः परलोकमें गये हुए जीवोंका वैसे ही रूपसे इस लोकमें पुनः प्रकट हो जाना असम्भव नहीं है)॥१० ॥

अहं हितं वदाम्येतत् प्रियं चेत् तव पार्थिव ।
देवयाना हि पन्थानः श्रुतास्ते यज्ञसंस्तरे ॥ ११ ॥

पृथ्वीनाथ ! तुम्हें प्रिय लगे तो मैं तुम्हारे हितकी बात बताता हूँ । यज्ञ आरम्भ करते समय तुमने देवयान-मार्गोंकी बात सुनी होगी । वे ही तुम्हारे योग्य हैं ॥ ११ ॥

आहुतो यत्र यज्ञस्ते तत्र देवा हितास्तव ।
यदा समन्विता देवाः पशूनां गमनेश्वराः ॥ १२ ॥

जब तुमने यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ किया, तभीसे देवतालोग तुम्हारे हितैषी सुहृद् हो गये । जब इस प्रकार देवता मित्रभावसे युक्त होते हैं, तब वे जीवोंको लोकान्तरकी प्राप्ति करानेमें समर्थ होनेके कारण उनपर अनुग्रह करके उन्हें अभीष्ट लोकोंकी प्राप्ति करा देते हैं ॥ १२ ॥

गतिमन्तश्च तेनेष्ट्वा नान्ये नित्या भवन्त्युत ।
नित्येऽस्मिन् पञ्चके वर्गे नित्ये चात्मनि पूरुषः ॥ १३ ॥
अस्य नानासमायोगं यः पश्यति वृथामतिः ।
वियोगे शोचतेऽत्यर्थं स बाल इति मे मतिः ॥ १४ ॥

इसलिये नित्य जीव यज्ञोंद्वारा देवताओंकी आराधना करके लोकान्तरमें जानेकी शक्ति पाते हैं । जो यज्ञ नहीं करते, वे वैसे नहीं हो पाते । यह पाञ्चभौतिक वर्ग नित्य है और आत्मा भी नित्य है । ऐसी दशामें जो मनुष्य उस आत्माका अनेक प्रकारके देहोंसे सम्बन्ध तथा उनके जन्म और नाशसे आत्माका भी जन्म और नाश समझता है, उसकी बुद्धि व्यर्थ है । इसी प्रकार किसीसे किसीका वियोग हो जानेपर जो अत्यन्त शोक करता है, वह भी मेरे मतमें बालक ही है ॥ १३-१४ ॥

वियोगे दोषदर्शी यः संयोगं स विसर्जयेत् ।
असङ्गे सङ्गमो नास्ति दुःखं भुवि वियोगजम् ॥ १५ ॥

जो वियोगमें दोष देखता है, वह संयोगका त्याग कर दे, क्योंकि असंग आत्मामें संगम या संयोग नहीं है । जो उसमें संयोगका आरोप करता है, उसीको इस भूतलपर वियोगका दुःख सहना पड़ता है ॥ १५ ॥

परापरज्ञस्त्वपरो नाभिमानादुदीरितः ।
अपरज्ञः परां बुद्धिं ज्ञात्वा मोहाद् विमुच्यते ॥ १६ ॥

दूसरा जो अपने-परायेके ज्ञानमें ही उलझा रहता है, वह अभिमानसे ऊपर नहीं उठ पाता । जो किसीके लिये पराया नहीं है, उस परमात्माको जाननेवाला पुरुष उत्तम बुद्धिको पाकर मोहसे मुक्त हो जाता है ॥ १६ ॥

अदर्शनादापतितः पुनश्चादर्शनं गतः ।
नाहं तं वेद्मि नासौ मां न च मेऽस्ति विरागता ॥ १७ ॥

वह मुक्त पुरुष अव्यक्तसे ही प्रकट हुआ था और पुनः अव्यक्तमें ही लीन हो गया । न मैं उसे जानता हूँ* न वह मुझे † । (फिर तुम भी वैसे ही बन्धनमुक्त क्यों न हो गये ? ऐसा प्रश्न होनेपर कहते हैं ।) मुझमें वैराग्य नहीं है (पर वैराग्य ही मोक्षका मुख्य साधन है ।) ॥ १७ ॥

येन येन शरीरेण करोत्ययमनीश्वरः ।
तेन तेन शरीरेण तदवश्यमुपाश्नुते ।
मानसं मनसाऽऽप्नोति शरीरं च शरीरवान् ॥ १८ ॥

यह पराधीन जीव जिस-जिस शरीरसे कर्म करता है, उस शरीरसे उसका फल अवश्य भोगता है । मानस कर्मका फल मनसे और शारीरिक कर्मका फल शरीर धारण करके भोगता है ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि जनमेजयं प्रति वैशम्पायनवाक्ये चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत पुत्रदर्शनपर्वमें जनमेजयके प्रति वैशम्पायनका वाक्यविषयक चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३४ ॥

* क्योंकि वह इन्द्रियोंका विषय नहीं रहा ।
† क्योंकि उसके लिये मुझे जाननेका कोई कारण नहीं रहा ।

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

व्यासजीकी कृपासे जनमेजयको अपने पिताका दर्शन प्राप्त होना

वैशम्पायन उवाच

अदृष्टां तु नृपः पुत्रान् दर्शनं प्रतिलब्धवान् ।
ऋषेः प्रसादात् पुत्राणां स्वरूपाणां कुरूद्वह ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—कुरुश्रेष्ठ जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्रने पहले कभी अपने पुत्रोंको नहीं देखा था, परंतु महर्षि व्यासके प्रसादसे उन्होंने उनके स्वरूपका दर्शन प्राप्त कर लिया ॥ १ ॥

स राजा राजधर्मांश्च ब्रह्मोपनिषदं तथा ।
अवाप्तवान्नरश्रेष्ठो बुद्धिनिश्चयमेव च ॥ २ ॥
विदुरश्च महाप्राज्ञो ययौ सिद्धिं तपोबलात् ।
धृतराष्ट्रः समासाद्य व्यासं चैव तपस्विनम् ॥ ३ ॥

उन नरश्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्रने राजधर्म, ब्रह्मविद्या तथा बुद्धिका यथार्थ निश्चय भी पा लिया था। महाज्ञानी विदुरने तो अपने तपोबलसे सिद्धि प्राप्त की थी; परंतु धृतराष्ट्रने तपस्वी व्यासका आश्रय लेकर सिद्धिलाभ किया था ॥ २-३ ॥

जनमेजय उवाच

ममापि वरदो व्यासो दर्शयेत् पितरं यदि ।
तद्रूपवेषवयसं श्रद्दध्यां सर्वमेव ते ॥ ४ ॥
प्रियं मे स्यात् कृतार्थश्च स्यामहं कृतनिश्चयः ।
प्रसादादृषिमुख्यस्य मम कामः समृध्यताम् ॥ ५ ॥

जनमेजयने कहा—ब्रह्मन् ! यदि वरदायक भगवान् व्यास मुझे भी मेरे पिताका उसी रूप, वेश और अवस्थामें दर्शन करा दें तो मैं आपकी बतायी हुई सारी बातोंपर विश्वास कर सकता हूँ। उस अवस्थामें मैं कृतार्थ होकर दृढ़ निश्चयको प्राप्त हो जाऊँगा । इससे मेरा अत्यन्त प्रिय कार्य सिद्ध होगा। आज मुनिश्रेष्ठ, व्यासजीके प्रसादसे मेरी इच्छा भी पूर्ण होनी चाहिये ॥ ४-५ ॥

सौतिरुवाच

इत्युक्तवचने तस्मिन् नृपे व्यासः प्रतापवान् ।
प्रसादमकरोद् धीमानानयच्च परीक्षितम् ॥ ६ ॥

सौति कहते हैं—राजा जनमेजयके इस प्रकार कहने-पर परम प्रतापी बुद्धिमान् महर्षि व्यासने उनपर भी कृपा की। उन्होंने राजा परीक्षित्को उस यज्ञभूमिमें बुला दिया ॥ ६ ॥

ततस्तद्रूपवयसमागतं नृपतिं दिवः ।
श्रीमन्तं पितरं राजा ददर्श जनमेजयः ॥ ७ ॥

स्वर्गसे उसी रूप और अवस्थामें (आये हुए) अपने तेजस्वी पिता राजा परीक्षित्का भूपाल जनमेजयने दर्शन किया ॥ ७ ॥

शमीकं च महात्मानं पुत्रं तं चास्य शृङ्गिणम् ।
अमात्या ये बभूवुश्च राज्ञस्तांश्च ददर्श ह ॥ ८ ॥

उनके साथ ही महात्मा शमीक और उनके पुत्र शृङ्गी-ऋषि भी थे। राजा परीक्षित्के जो मन्त्री थे, उनका भी जनमेजयने दर्शन किया ॥ ८ ॥

ततः सोऽवभृथे राजा मुदितो जनमेजयः ।
पितरं स्नापयामास स्वयं सस्नौ च पार्थिवः ॥ ९ ॥
(परीक्षिदपि तत्रैव बभूव स तिरोहितः ।)

तदनन्तर राजा जनमेजयने प्रसन्न होकर यज्ञान्तस्नानके समय पहले अपने पिताको नहलाया; फिर स्वयं स्नान किया। फिर राजा परीक्षित् वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ ९ ॥

स्नात्वा स नृपतिर्विप्रमास्तीकमिदमब्रवीत् ।
यायावरकुलोत्पन्नं जरत्कारुसुतं तदा ॥ १० ॥

स्नान करके उन नरेशने यायावरकुलमें उत्पन्न जरत्कारुकुमार आस्तीक मुनिसे इस प्रकार कहा—॥ १० ॥

आस्तीक विविधाश्चर्यो यज्ञोऽयमिति मे मतिः ।
यद्वायं पिता प्राप्तो मम शोकप्रणाशनः ॥ ११ ॥

'आस्तीकजी ! मुझे तो ऐसा जान पड़ता है, मेरा यह यज्ञ नाना प्रकारके आश्चर्योंका केन्द्र हो रहा है; क्योंकि आज मेरे शोकोंका नाश करनेवाले ये पिताजी भी यहाँ उपस्थित हो गये थे' ॥ ११ ॥

आस्तीक उवाच

ऋषिर्द्वैपायनो यत्र पुराणस्तपसो निधिः ।
यज्ञे कुरुकुलश्रेष्ठ तस्य लोकावुभौ जितौ ॥ १२ ॥

आस्तीक बोले—कुरुकुलश्रेष्ठ ! राजन् ! जिसके यज्ञमें तपस्याकी निधि पुरातन ऋषि महर्षि द्वैपायन व्यास विराज-मान हों, उसकी तो दोनों लोकोंमें विजय है ॥ १२ ॥

श्रुतं विचित्रमाख्यानं त्वया पाण्डवनन्दन ।
सर्पाश्च भस्मसान्नीता गताश्च पदवीं पितुः ॥ १३ ॥

पाण्डवनन्दन ! तुमने यह विचित्र उपाख्यान सुना। तुम्हारे शत्रु सर्पगण भस्म होकर तुम्हारे पिताकी ही पदवीको पहुँच गये ॥ १३ ॥

कथंचित् तक्षको मुक्तः सत्यत्वात् तव पार्थिव ।
ऋषयः पूजिताः सर्वे गतिर्दृष्टा महात्मनः ॥ १४ ॥

पृथ्वीनाथ ! तुम्हारी सत्यपरायणताके कारण किसी तरह तक्षकके प्राण बच गये हैं। तुमने समस्त ऋषियोंकी

पूजा की और महात्मा व्यासकी कहाँतक पहुँच है, इसे प्रत्यक्ष देख लिया ॥ १४ ॥

प्राप्तः सुविपुलो धर्मः श्रुत्वा पापविनाशनम् ।
विमुक्तो हृदयग्रन्थिरुदारजनदर्शनात् ॥ १५ ॥

इस पापनाशक कथाको सुनकर तुम्हें महान् धर्मकी प्राप्ति हुई है । उदार हृदयवाले संतोंके दर्शनसे तुम्हारे हृदयकी गाँठ खुल गयी—तुम्हारा सारा संशय दूर हो गया ॥ १५ ॥

ये च पक्षधरा धर्मे सद्वृत्तरुचयश्च ये ।
यान् दृष्ट्वा हीयते पापं तेभ्यः कार्या नमस्क्रिया ॥ १६ ॥

जो लोग धर्मके पक्षपाती हैं, जो सदाचारके पालनमें रुचि रखते हैं तथा जिनके दर्शनसे पापका नाश होता है, उन महात्माओंको अब तुम्हें नमस्कार करना चाहिये ॥ १६ ॥

सौतिरुवाच

एतच्छ्रुत्वा द्विजश्रेष्ठात् स राजा जनमेजयः ।
पूजयामास तमृषिमनुमान्य पुनः पुनः ॥ १७ ॥

सौति कहते हैं—शौनक ! विप्रवर आस्तीकके मुखसे यह बात सुनकर राजा जनमेजयने उन महर्षि व्यासका बारंबार पूजन और सत्कार किया ॥ १७ ॥

पप्रच्छ तमृषिं चापि वैशम्पायनमच्युतम् ।
कथावशेषं धर्मज्ञो वनवासस्य सत्तम ॥ १८ ॥

साधुशिरोमणे ! तत्पश्चात् उन धर्मज्ञ नरेशने धर्मसे कभी च्युत न होनेवाले महर्षि वैशम्पायनसे पुनः धृतराष्ट्रके वनवासकी अवशिष्ट कथा पूछी ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि जनमेजयस्य स्वपितृदर्शने पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत पुत्रदर्शनपर्वमें जनमेजयके द्वारा अपने पिताका दर्शनविषयक पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

व्यासजीकी आज्ञासे धृतराष्ट्र आदिका पाण्डवोंको विदा करना और पाण्डवोंका सदलबल हस्तिनापुरमें आना

जनमेजय उवाच

दृष्ट्वा पुत्रांस्तथा पौत्रान् सानुबन्धान् जनाधिपः ।
धृतराष्ट्रः किमकरोद् राजा चैव युधिष्ठिरः ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! राजा धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरने परलोकसे आये हुए पुत्रों, पौत्रों तथा सगे-सम्बन्धियोंके दर्शन करके क्या किया ? ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच

तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं पुत्राणां दर्शनं नृप ।
वीतशोकः स राजर्षिः पुनराश्रममागमत् ॥ २ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—नरेश्वर ! मरे हुए पुत्रोंका दर्शन एक महान् आश्चर्यकी घटना थी । उसे देखकर राजर्षि धृतराष्ट्रका दुःख-शोक दूर हो गया । वे फिर अपने आश्रमपर लौट आये ॥ २ ॥

इतरस्तु जनः सर्वस्ते चैव परमर्षयः ।
प्रतिजग्मुर्यथाकामं धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञया ॥ ३ ॥

दूसरे सब लोग तथा महर्षिगण धृतराष्ट्रकी अनुमति ले अपने-अपने अभीष्ट स्थानोंको चले गये ॥ ३ ॥

पाण्डवास्तु महात्मानो लघुभूयिष्ठसैनिकाः ।
पुनर्जग्मुर्महात्मानं सदारास्तं महीपतिम् ॥ ४ ॥

महात्मा पाण्डव छोटे-बड़े सैनिकों और अपनी स्त्रियोंके साथ पुनः महामना राजा धृतराष्ट्रके पीछे-पीछे गये ॥ ४ ॥

तत्राश्रमपदं धीमान् ब्रह्मर्षिर्लोकपूजितः ।
मुनिः सत्यवतीपुत्रो धृतराष्ट्रमभाषत ॥ ५ ॥

उस समय लोकपूजित बुद्धिमान् सत्यवतीनन्दन ब्रह्मर्षि व्यास भी उस आश्रमपर गये तथा इस प्रकार बोले—॥ ५ ॥

धृतराष्ट्र महाबाहो शृणु कौरवनन्दन ।
श्रुतं ते ज्ञानवृद्धानामृषीणां पुण्यकर्मणाम् ॥ ६ ॥
श्रद्धाभिजनवृद्धानां वेदवेदाङ्गवेदिनाम् ।
धर्मज्ञानां पुराणानां वदतां विविधाः कथाः ॥ ७ ॥
मा स्म शोके मनः कार्षीर्दिष्टे न व्यथते बुधः ।

'कौरवनन्दन महाबाहु धृतराष्ट्र ! तुमने श्रद्धा और कुलमें बढ़े-चढ़े, वेद-वेदाङ्गवेत्ता, ज्ञानवृद्ध, पुण्यकर्मा एवं धर्मज्ञ प्राचीन महर्षियोंके मुखसे नाना प्रकारकी कथाएँ सुनी हैं; अतः अपने मनसे शोकको निकाल दो; क्योंकि विद्वान् पुरुष प्रारब्धके विधानमें दुःख नहीं मानते हैं ॥ ६-७½ ॥

श्रुतं देवरहस्यं ते नारदाद् देवदर्शनात् ॥ ८ ॥
गतास्ते क्षत्रधर्मेण शस्त्रपूतां गतिं शुभाम् ।
यथा दृष्टास्त्वया पुत्रास्तथा कामविहारिणः ॥ ९ ॥

'तुमने देवदर्शी नारद मुनिसे देवताओंका गुप्त रहस्य

भी सुन लिया है। वे सब वीर क्षत्रिय धर्मके अनुसार शास्त्रोंसे पवित्र हुई शुभ गतिको प्राप्त हुए हैं। जैसा कि तुमने देखा है, तुम्हारे सभी पुत्र इच्छानुसार विहार करनेवाले स्वर्गवासी हुए हैं ॥ ८-९ ॥

युधिष्ठिरः स्वयं धीमान् भवन्तमनुरुध्यते ।
सहितो भ्रातृभिः सर्वैः सदारः ससुहृज्जनः ॥ १० ॥

'ये बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिर अपने समस्त भाइयों, घरकी स्त्रियों और सुहृदोंके साथ स्वयं तुम्हारी सेवामें लगे हुए हैं ॥ १० ॥

विसर्जयैनं यात्वेष स्वराज्यमनुशासताम् ।
मासः समधिकस्तेषामतीतो वसतां वने ॥ ११ ॥

'अब इन्हें विदा कर दो। ये जायँ और अपने राज्यका काम सँभालें। इन लोगोंको वनमें रहते एक महीनेसे अधिक हो गया ॥ ११ ॥

एतद्धि नित्यं यत्नेन पदं रक्ष्यं नराधिप ।
बहुप्रत्यर्थिकं ह्येतद् राज्यं नाम कुरूद्वह ॥ १२ ॥

'कुरुश्रेष्ठ! नरेश्वर! राज्यके बहुत-से शत्रु होते हैं; अतः इसकी सदा ही यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये' ॥ १२ ॥

इत्युक्तः कौरवो राजा व्यासेनातुलतेजसा ।
युधिष्ठिरमथाहूय वाग्मी वचनमब्रवीत् ॥ १३ ॥

अनुपम तेजस्वी व्यासजीके ऐसा कहनेपर प्रवचनकुशल कुरुराज धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरको बुलाकर इस प्रकार कहा—॥ १३॥

अजातशत्रो भद्रं ते श‍ृणु मे भ्रातृभिः सह ।
त्वत्प्रसादान्महीपाल शोको नास्मान् प्रबाधते ॥ १४ ॥

'अजातशत्रो! तुम्हारा कल्याण हो। तुम अपने भाइयोंसहित मेरी बात सुनो। भूपाल! तुम्हारे प्रसादसे अब हमलोगोंको किसी प्रकारका शोक कष्ट नहीं दे रहा है ॥ १४ ॥

रमे चाहं त्वया पुत्र पुरेव गजसाह्वये ।
नाथेनानुगतो विद्वन् प्रियेषु परिवर्तिना ॥ १५ ॥
प्राप्तं पुत्रफलं त्वत्तः प्रीतिर्मे परमा त्वयि ।
न मे मन्युर्महाबाहो गम्यतां पुत्र मा चिरम् ॥ १६ ॥

'बेटा! तुम्हारे साथ रहकर तथा तुम-जैसे रक्षकसे सुरक्षित होकर मैं उसी तरह आनन्दका अनुभव कर रहा हूँ, जैसे पहले हस्तिनापुरमें करता था। विद्वन्! प्रियजनोंकी सेवामें लगे रहनेवाले तुम्हारे द्वारा मुझे पुत्रका फल प्राप्त हो गया। तुमपर मेरा बहुत प्रेम है। महाबाहो! पुत्र! मेरे मनमें तुम्हारे प्रति किंचिन्मात्र भी क्रोध नहीं है; अतः तुम राजधानीको जाओ, अब विलम्ब न करो ॥ १५-१६ ॥

भवन्तं चेह सम्प्रेक्ष्य तपो मे परिहीयते ।
तपोयुक्तं शरीरं च त्वां दृष्ट्वा धारितं पुनः ॥ १७ ॥

'तुमको यहाँ देखकर मेरी तपस्यामें बाधा पड़ रही है। यह शरीर तपस्यामें लगा दिया था, परंतु तुम्हें देखकर फिर इसकी रक्षा करने लगा ॥ १७ ॥

मातरौ ते तथैवेमे शीर्णपर्णकृताशने ।
मम तुल्यव्रते पुत्र न चिरं वर्तयिष्यतः ॥ १८ ॥

बेटा! मेरी ही तरह तुम्हारी ये दोनों माताएँ भी व्रत-धारणपूर्वक सूखे पत्ते चबाकर रहा करती हैं। अब ये अधिक दिनोंतक जीवन धारण नहीं कर सकतीं ॥ १८ ॥

दुर्योधनप्रभृतयो दृष्टा लोकान्तरं गताः ।
व्यासस्य तपसो वीर्याद् भवतश्च समागमात् ॥ १९ ॥
प्रयोजनं च निर्वृत्तं जीवितस्य ममानघ ।
उग्रं तपः समास्थास्ये त्वमनुज्ञातुमर्हसि ॥ २० ॥

'तुम्हारे समागम और व्यासजीके तपोबलसे मुझे अपने परलोकवासी पुत्र दुर्योधन आदिके दर्शन हो गये; इसलिये मेरे जीवित रहनेका प्रयोजन पूरा हो गया। अनघ! अब मैं कठोर तपस्यामें संलग्न होऊँगा। तुम इसके लिये मुझे अनुमति दे दो ॥ १९-२० ॥

त्वय्यद्य पिण्डः कीर्तिश्च कुलं चेदं प्रतिष्ठितम् ।
श्वो वाद्य वा महाबाहो गम्यतां पुत्र मा चिरम् ॥ २१ ॥

'महाबाहो! आजसे पितरोंके पिण्डका, सुयशका और इस कुलका भार भी तुम्हारे ही ऊपर है। पुत्र! आज या कल अवश्य चले जाओ; विलम्ब न करना ॥ २१ ॥

राजनीतिः सुबहुशः श्रुता ते भरतर्षभ ।
संदेष्टव्यं न पश्यामि कृतं मे भवता विभो ॥ २२ ॥

'भरतश्रेष्ठ! प्रभो! तुमने राजनीति बहुत बार सुनी है; अतः तुम्हें संदेश देने लायक कोई बात मुझे नहीं दिखायी देती। तुमने मेरे लिये बहुत कुछ किया है ॥ २२ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्तवचनं तं तु नृपो राजानमब्रवीत् ।
न मामर्हसि धर्मज्ञ परित्यक्तुमनागसम् ॥ २३ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब राजा धृतराष्ट्रने वैसी बात कही, तब युधिष्ठिरने उनसे इस प्रकार कहा—'धर्मके ज्ञाता महाराज! आप मेरा परित्याग न करें, क्योंकि मैं सर्वथा निरपराध हूँ ॥ २३ ॥

कामं गच्छन्तु मे सर्वे भ्रातरोऽनुचरास्तथा ।
भवन्तमहमन्विष्ये मातरौ च यतव्रतः ॥ २४ ॥

'मेरे ये सब भाई और सेवक इच्छा हो तो चले जायँ; किंतु मैं नियम और व्रतका पालन करता हुआ आपकी तथा इन दोनों माताओंकी सेवा करूँगा ॥ २४ ॥

तमुवाचाथ गान्धारी मैवं पुत्र शृणुष्व च ।
त्वय्यधीनं कुरुकुलं पिण्डश्च श्वशुरस्य मे ॥ २५ ॥
गम्यतां पुत्र पर्याप्तमेतावत् पूजिता वयम् ।
राजा यदाह तत् कार्यं त्वया पुत्र पितुर्वचः ॥ २६ ॥

यह सुनकर गान्धारीने कहा—'बेटा ! ऐसी बात न कहो । मैं जो कहती हूँ उसे सुनो । यह सारा कुरुकुल तुम्हारे ही अधीन है । मेरे श्वशुरका पिण्ड भी तुमपर ही अवलम्बित है; अतः पुत्र ! तुम जाओ; तुमने हमारे लिये जितना किया है, वही बहुत है । तुम्हारे द्वारा हमलोगोंका स्वागत-सत्कार भलीभाँति हो चुका है । इस समय महाराज जो आज्ञा दे रहे हैं, वही करो; क्योंकि पिताका वचन मानना तुम्हारा कर्तव्य है' ॥ २५-२६ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्तः स तु गान्धार्या कुन्तीमिदमभाषत ।
स्नेहवाष्पाकुले नेत्रे प्रमृज्य रुदतीं वचः ॥ २७ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! गान्धारीके इस प्रकार आदेश देनेपर राजा युधिष्ठिरने अपने आँसूभरे नेत्रोंको पोंछकर रोती हुई कुन्तीसे कहा—॥ २७ ॥

विसर्जयति मां राजा गान्धारी च यशस्विनी ।
भवत्यां बद्धचित्तस्तु कथं यास्यामि दुःखितः ॥ २८ ॥

'माँ ! राजा और यशस्विनी गान्धारीदेवी मुझे घर लौटनेकी आज्ञा दे रही हैं; किंतु मेरा मन आपमें लगा हुआ है । जानेका नाम सुनकर ही मैं बहुत दुखी हो जाता हूँ । ऐसी दशामें मैं कैसे जा सकूँगा ? ॥ २८ ॥

न चोत्सहे तपोविघ्नं कर्तुं ते धर्मचारिणि ।
तपसो हि परं नास्ति तपसा विन्दते महत् ॥ २९ ॥

'धर्मचारिणि ! मैं आपकी तपस्यामें विघ्न डालना नहीं चाहता; क्योंकि तपसे बढ़कर कुछ नहीं है । (निष्काम भावपूर्वक) तपस्यासे परब्रह्म परमात्माकी भी प्राप्ति हो जाती है ॥

ममापि न तथा राज्ञि राज्ये बुद्धिर्यथा पुरा ।
तपस्येवानुरक्तं मे मनः सर्वात्मना तथा ॥ ३० ॥

'रानी माँ ! अब मेरा मन भी पहलेकी तरह राजकाजमें नहीं लगता है । हर तरहसे तपस्या करनेको ही जी चाहता है ॥

शून्येयं च मही कृत्स्ना न मे प्रीतिकरी शुभे ।
बान्धवा नः परिक्षीणा बलं नो न यथा पुरा ॥ ३१ ॥

'शुभे ! यह सारी पृथ्वी मेरे लिये सूनी हो गयी है; अतः इससे मुझे प्रसन्नता नहीं होती । हमारे सगे-सम्बन्धी नष्ट हो गये; अब हमारे पास पहलेकी तरह सैन्यबल भी नहीं है ॥

पञ्चालाः सुभृशं क्षीणाः कथामात्रावशेषिताः ।
न तेषां कुलकर्तारं कंचित् पश्याम्यहं शुभे ॥ ३२ ॥

'पाञ्चालोंका तो सर्वथा नाश ही हो गया । उनकी कथामात्र शेष रह गयी है । शुभे ! अब मुझे कोई ऐसा नहीं दिखायी देता, जो उनके वंशको चलानेवाला हो ॥ ३२ ॥

सर्वे हि भस्मसान्नीतास्ते द्रोणेन रणाजिरे ।
अवशिष्टाश्च निहता द्रोणपुत्रेण वै निशि ॥ ३३ ॥

'प्रायः द्रोणाचार्यने ही सबको समराङ्गणमें भस्म कर डाला था । जो थोड़े-से बच गये थे, उन्हें द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने रातको सोते समय मार डाला ॥ ३३ ॥

चेदयश्चैव मत्स्याश्च दृष्टपूर्वास्तथैव नः ।
केवलं वृष्णिचक्रं च वासुदेवपरिग्रहात् ॥ ३४ ॥

'हमारे सम्बन्धी चेदि और मत्स्यदेशके लोग भी जैसे पहले देखे गये थे, वैसे ही अब नहीं रहे । केवल भगवान् श्रीकृष्णके आश्रयसे वृष्णिवंशी वीरोंका समुदाय अबतक सुरक्षित है ।

यद् दृष्ट्वा स्थातुमिच्छामि धर्मार्थं नार्थहेतुतः ।
शिवेन पश्य नः सर्वान् दुर्लभं तव दर्शनम् ॥ ३५ ॥
अविषह्यं च राजा हि तीव्रं चारप्स्यते तपः ।

'उसे ही देखकर अब मैं केवल धर्मसम्पादनकी इच्छासे यहाँ रहना चाहता हूँ, धनके लिये नहीं । तुम हम सब लोगोंकी ओर कल्याणमयी दृष्टिसे देखो; क्योंकि तुम्हारा दर्शन हमलोगोंके लिये अब दुर्लभ हो जायगा । कारण कि राजा धृतराष्ट्र अब बड़ी कठोर और असह्य तपस्या आरम्भ करेंगे ।

एतच्छ्रुत्वा महाबाहुः सहदेवो युधां पतिः ॥ ३६ ॥
युधिष्ठिरमुवाचेदं बाष्पव्याकुललोचनः ।

यह सुनकर योद्धाओंके स्वामी महाबाहु सहदेव अपने दोनों नेत्रोंमें आँसू भरकर युधिष्ठिरसे इस प्रकार बोले—

नोत्सहेऽहं परित्यक्तुं मातरं भरतर्षभ ॥ ३७ ॥
प्रतियातु भवान् क्षिप्रं तपस्तप्स्याम्यहं विभो ।
इहैव शोषयिष्यामि तपसेदं कलेवरम् ॥ ३८ ॥
पादशुश्रूषणे रक्तो राज्ञो मात्रोस्तथानयोः ।

'भरतश्रेष्ठ ! मुझमें माताजीको छोड़कर जानेका उत्साह नहीं है । प्रभो ! आप शीघ्र लौट जायँ । मैं यहीं रहकर तपस्या करूँगा और तपके द्वारा अपने शरीरको सुखा डालूँगा । मैं यहाँ महाराज और इन दोनों माताओंके चरणोंकी सेवामें ही अनुरक्त रहना चाहता हूँ' ॥ ३७-३८½ ॥

तमुवाच ततः कुन्ती परिष्वज्य महाभुजम् ॥ ३९ ॥
गम्यतां पुत्र मैवं त्वं वोचः कुरु वचो मम ।
आगमा वः शिवाः सन्तु स्वस्था भवत पुत्रकाः ॥ ४० ॥

यह सुनकर कुन्तीने महाबाहु सहदेवको छातीसे

लिया और कहा—'बेटा ! ऐसा न कहो । तुम मेरी बात मानो और चले जाओ । पुत्रो ! तुम्हारे मार्ग कल्याणकारी हों और तुम सदा स्वस्थ रहो ॥ ३९-४० ॥

उपरोधो भवेदेवमस्माकं तपसः कृते ।
त्वत्स्नेहपाशबद्धा च हीयेयं तपसः परात् ॥ ४१ ॥
तस्मात् पुत्रक गच्छ त्वं शिष्टमल्पं च नः प्रभो ।

'तुम लोगोंके रहनेसे हमलोगोंकी तपस्यामें विघ्न पड़ेगा । मैं तुम्हारे स्नेहपाशमें बँधकर उत्तम तपस्यासे गिर जाऊँगी, अतः सामर्थ्यशाली पुत्र ! चले जाओ । अब हमलोगोंकी आयु बहुत थोड़ी रह गयी है' ॥ ४१½ ॥

एवं संस्तम्भितं वाक्यैः कुन्त्या बहुविधैर्मनः ॥ ४२ ॥
सहदेवस्य राजेन्द्र राज्ञश्चैव विशेषतः ।

राजेन्द्र ! इस तरह अनेक प्रकारकी बातें कहकर कुन्तीने सहदेव तथा राजा युधिष्ठिरके मनको धीरज बँधाया ॥ ४२½ ॥

ते मात्रा समनुज्ञाता राज्ञा च कुरुपुङ्गवाः ॥ ४३ ॥
अभिवाद्य कुरुश्रेष्ठमामन्त्रयितुमारभन् ।

माता तथा धृतराष्ट्रकी आज्ञा पाकर कुरुश्रेष्ठ पाण्डवोंने कुरुकुलतिलक धृतराष्ट्रको प्रणाम किया और उनसे विदा लेनेके लिये इस प्रकार कहा ॥ ४३½ ॥

युधिष्ठिर उवाच

राज्यं प्रतिगमिष्यामः शिवेन प्रतिनन्दिताः ॥ ४४ ॥
अनुज्ञातास्त्वया राजन् गमिष्यामो विकल्मषाः ।

युधिष्ठिर बोले—महाराज ! आपके आशीर्वादसे आनन्दित होकर हमलोग कुशलपूर्वक राजधानीको लौट जायँगे । राजन् ! इसके लिये आप हमें आज्ञा दें । आपकी आज्ञा पाकर हम पापरहित हो यहाँसे यात्रा करेंगे ॥ ४४½ ॥

एवमुक्तः स राजर्षिर्धर्मराज्ञा महात्मना ॥ ४५ ॥
अनुजज्ञे स कौरव्यमभिनन्द्य युधिष्ठिरम् ।

महात्मा धर्मराजके ऐसा कहनेपर राजर्षि धृतराष्ट्रने कुरुनन्दन युधिष्ठिरका अभिनन्दन करके उन्हें जानेकी आज्ञा दे दी ॥ ४५½ ॥

भीमं च बलिनां श्रेष्ठं सान्त्वयामास पार्थिवः ॥ ४६ ॥
स चास्य सम्यङ्मेधावी प्रत्यपद्यत वीर्यवान् ।

इसके बाद राजा धृतराष्ट्रने बलवानोंमें श्रेष्ठ भीमसेनको सान्त्वना दी । बुद्धिमान् एवं पराक्रमी भीमसेनने भी उनकी बातोंको यथार्थरूपसे ग्रहण किया—हृदयसे स्वीकार किया ॥

अर्जुनं च समाश्लिष्य यमौ च पुरुषर्षभौ ॥ ४७ ॥
अनुजज्ञे स कौरव्यः परिष्वज्याभिनन्द्य च ।
गान्धार्या चाभ्यनुज्ञाताः कृतपादाभिवादनाः ॥ ४८ ॥
जनन्या समुपाघ्राताः परिष्वक्ताश्च ते नृपम् ।
चक्रुः प्रदक्षिणं सर्वे वत्सा इव निवारणे ॥ ४९ ॥
पुनः पुनर्निरीक्षन्तः प्रचक्रुस्ते प्रदक्षिणम् ।

तदनन्तर धृतराष्ट्रने अर्जुन और पुरुषप्रवर नकुल-सहदेवको छातीसे लगा उनका अभिनन्दन करके विदा किया । इसके बाद उन पाण्डवोंने गान्धारीके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी आज्ञा ली । फिर माता कुन्तीने उन्हें हृदयसे लगाकर उनका मस्तक सूँघा । जैसे बछड़े अपनी माताका दूध पीनेसे रोके जानेपर बार-बार उसकी ओर देखते हुए उसके चारों ओर चक्कर लगाते हैं, उसी प्रकार पाण्डवोंने राजा तथा माताकी ओर बार-बार देखते हुए उन नरेशकी परिक्रमा की ॥ ४७—४९½ ॥

द्रौपदीप्रमुखाश्चैव सर्वाः कौरवयोषितः ॥ ५० ॥
न्यायतः श्वशुरे वृत्तिं प्रयुज्य प्रययुस्ततः ।
श्वश्रूभ्यां समनुज्ञाताः परिष्वज्याभिनन्दिताः ॥ ५१ ॥
संदिष्टाश्चेति कर्तव्यं प्रययुर्भर्तृभिः सह ।

द्रौपदी आदि समस्त कौरवस्त्रियोंने अपने श्वशुरको न्यायपूर्वक प्रणाम किया । फिर दोनों सासुओंने उन्हें गलेसे लगाकर आशीर्वाद दे जानेकी आज्ञा दी और उन्हें उनके कर्तव्यका उपदेश भी दिया । तत्पश्चात् वे अपने पतियोंके साथ चली गयीं ॥ ५०-५१½ ॥

ततः प्रजज्ञे निनदः सूतानां युज्यतामिति ॥ ५२ ॥
उष्ट्राणां क्रोशतां चापि हयानां हेषतामपि ।
ततो युधिष्ठिरो राजा सदारः सहसैनिकः ।

नगरं हास्तिनपुरं पुनरायात् सबान्धवः ॥ ५३ ॥

तदनन्तर सारथियोंने 'रथ जोतो, रथ जोतो' की पुकार मचायी। फिर ऊँटोंके चिग्घाड़ने और घोड़ोंके हिनहिनानेकी आवाज हुई। इसके बाद अपने घरकी स्त्रियों, भाइयों और सैनिकोंके साथ राजा युधिष्ठिर पुनः हस्तिनापुर नगरको लौट आये ॥ ५२-५३ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि युधिष्ठिरप्रत्यागमे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत पुत्रदर्शनपर्वमें युधिष्ठिरका प्रत्यागमनविषयक छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

(नारदागमनपर्व)

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

नारदजीसे धृतराष्ट्र आदिके दावानलमें दग्ध हो जानेका हाल जानकर युधिष्ठिर आदिका शोक

वैशम्पायन उवाच

द्विवर्षोपनिवृत्तेषु पाण्डवेषु यदृच्छया।
देवर्षिर्नारदो राजन्नाजगाम युधिष्ठिरम्॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! पाण्डवोंको तपोवनसे आये जब दो वर्ष व्यतीत हो गये, तब एक दिन देवर्षि नारद दैवेच्छासे घूमते-घामते राजा युधिष्ठिरके यहाँ आ पहुँचे ॥ १ ॥

तमभ्यर्च्य महाबाहुः कुरुराजो युधिष्ठिरः।
आसीनं परिविश्वस्तं प्रोवाच वदतां वरः॥ २ ॥

महाबाहु कुरुराज युधिष्ठिरने नारदजीकी पूजा करके उन्हें आसनपर बिठाया। जब वे आसनपर बैठकर थोड़ी देर विश्राम कर चुके, तब वक्ताओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरने उनसे इस प्रकार पूछा ॥ २ ॥

चिरात्तु नानुपश्यामि भगवन्तमुपस्थितम्।
कच्चित् ते कुशलं विप्र शुभं वा प्रत्युपस्थितम्॥ ३ ॥

'भगवन्! इधर दीर्घकालसे मैं आपकी उपस्थिति यहाँ नहीं देखता हूँ। ब्रह्मन्! कुशल तो है न? अथवा आपको शुभकी ही प्राप्ति होती है न?॥ ३ ॥

के देशाः परिदृष्टास्ते किं च कार्यं करोमि ते।
तद् ब्रूहि द्विजमुख्य त्वं त्वं ह्यस्माकं परा गतिः॥ ४ ॥

'विप्रवर! इस समय आपने किन-किन देशोंका निरीक्षण किया है? बताइये मैं आपकी क्या सेवा करूँ? क्योंकि आप हमलोगोंकी परम गति हैं' ॥ ४ ॥

नारद उवाच

चिरदृष्टोऽसि मेत्येवमागतोऽहं तपोवनात्।
परिदृष्टानि तीर्थानि गङ्गा चैव मया नृप॥ ५ ॥

नारदजीने कहा—नरेश्वर! बहुत दिन पहले मैंने तुम्हें देखा था, इसीलिये मैं तपोवनसे सीधे यहाँ चला आ रहा हूँ। रास्तेमें मैंने बहुत-से तीर्थों और गङ्गाजीका भी दर्शन किया है ॥ ५ ॥

युधिष्ठिर उवाच

वदन्ति पुरुषा मेऽद्य गङ्गातीरनिवासिनः।
धृतराष्ट्रं महात्मानमास्थितं परमं तपः॥ ६ ॥

युधिष्ठिर बोले—भगवन्! गङ्गाके किनारे रहनेवाले मनुष्य मेरे पास आकर कहा करते हैं कि महामनस्वी महाराज धृतराष्ट्र इन दिनों बड़ी कठोर तपस्यामें लगे हुए हैं ॥ ६ ॥

अपि दृष्टस्त्वया तत्र कुशली स कुरूद्वहः।
गान्धारी च पृथा चैव सूतपुत्रश्च संजयः॥ ७ ॥

क्या आपने भी उन्हें देखा है? वे कुरुश्रेष्ठ वहाँ कुशलसे तो हैं न? गान्धारी, कुन्ती तथा सूतपुत्र संजय भी सकुशल हैं न?॥ ७ ॥

कथं च वर्तते चाद्य पिता मम स पार्थिवः।
श्रोतुमिच्छामि भगवन् यदि दृष्टस्त्वया नृपः॥ ८ ॥

आजकल मेरे ताऊ राजा धृतराष्ट्र कैसे रहते हैं? भगवन्! यदि आपने उन्हें देखा हो तो मैं उनका समाचार सुनना चाहता हूँ ॥ ८ ॥

नारद उवाच

स्थिरीभूय महाराज शृणु वृत्तं यथातथम्।
यथा श्रुतं च दृष्टं च मया तस्मिंस्तपोवने॥ ९ ॥

नारदजीने कहा—महाराज! मैंने उस तपोवनमें जो कुछ देखा और सुना है, वह सारा वृत्तान्त ठीक-ठीक बता रहा हूँ। तुम स्थिरचित्त होकर सुनो ॥ ९ ॥

वनवासनिवृत्तेषु भवत्सु कुरुनन्दन।
कुरुक्षेत्रात् पिता तुभ्यं गङ्गाद्वारं ययौ नृप॥ १०॥

गान्धार्या सहितो धीमान् वध्वा कुन्त्या समन्वितः।
संजयेन च सूतेन साग्निहोत्रः सयाजकः ॥ ११ ॥

कुरुकुलको आनन्दित करनेवाले नरेश ! जब तुमलोग वनसे लौट आये, तब तुम्हारे बुद्धिमान् ताऊ राजा धृतराष्ट्र गान्धारी, बहू कुन्ती, सूत सञ्जय, अग्निहोत्र और पुरोहितके साथ कुरुक्षेत्रसे गङ्गाद्वार (हरिद्वार) को चले गये १०-११

आतस्थे स तपस्तीव्रं पिता तव तपोधनः।
वीटां मुखे समाधाय वायुभक्षोऽभवन्मुनिः॥ १२ ॥

वहाँ जाकर तपस्याके धनी तुम्हारे ताऊने कठोर तपस्या आरम्भ की। वे मुँहमें पत्थरका टुकड़ा रखकर वायुका आहार करते और मौन रहते थे ॥ १२ ॥

वने स मुनिभिः सर्वैः पूज्यमानो महातपाः।
त्वगस्थिमात्रशेषः स षण्मासानभवन्नृपः ॥ १३ ॥

उस वनमें जितने ऋषि रहते थे, वे लोग उनका विशेष सम्मान करने लगे। महातपस्वी धृतराष्ट्रके शरीरपर चमड़ेसे ढकी हुई हड्डियोंका ढाँचामात्र रह गया था। उस अवस्थामें उन्होंने छः महीने व्यतीत किये ॥ १३ ॥

गान्धारी तु जलाहारा कुन्ती मासोपवासिनी।
संजयः षष्ठभुक्तेन वर्तयामास भारत ॥ १४ ॥

भारत ! गान्धारी केवल जल पीकर रहने लगीं। कुन्तीदेवी एक महीनेतक उपवास करके एक दिन भोजन करती थीं और संजय छठे समय अर्थात् दो दिन उपवास करके तीसरे दिन संध्याको आहार ग्रहण करते थे ॥ १४॥

अग्नींस्तु याजकास्तत्र जुहुवुर्विधिवत् प्रभो।
दृश्यतोऽदृश्यतश्चैव वने तस्मिन् नृपस्य वै ॥ १५ ॥

प्रभो ! राजा धृतराष्ट्र उस वनमें कभी दिखायी देते और कभी अदृश्य हो जाते थे। यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण वहाँ उनके द्वारा स्थापित की हुई अग्निमें विधिवत् हवन करते रहते थे १५

अनिकेतोऽथ राजा स बभूव वनगोचरः।
ते चापि सहिते देव्यौ संजयश्च तमन्वयुः ॥ १६ ॥

अब राजाका कोई निश्चित स्थान नहीं रह गया। वे वनमें सब ओर विचरते रहते थे। गान्धारी और कुन्ती ये दोनों देवियाँ साथ रहकर राजाके पीछे-पीछे लगी रहती थीं। संजय भी उन्हींका अनुसरण करते थे ॥ १६ ॥

संजयो नृपतेर्नेता समेषु विषमेषु च।
गान्धार्याश्च पृथा चैव चक्षुरासीदनिन्दिता ॥ १७ ॥

ऊँची-नीची भूमि आ जानेपर संजय ही राजा धृतराष्ट्रको चलाते थे और अनिन्दिता सती-साध्वी कुन्ती गान्धारीके लिये नेत्र बनी हुई थीं ॥ १७ ॥

ततः कदाचिद् गङ्गायाः कच्छे स नृपसत्तमः।
गङ्गायामाप्लुतो धीमानाश्रमाभिमुखोऽभवत् ॥ १८ ॥

तदनन्तर एक दिनकी बात है, बुद्धिमान् नृपश्रेष्ठ धृतराष्ट्रने गङ्गाके कछारमें जाकर उनके जलमें डुबकी लगायी और स्नानके पश्चात् वे अपने आश्रमकी ओर चल पड़े ॥१८॥

अथ वायुः समुद्भूतो दावाग्निरभवन्महान्।
ददाह तद् वनं सर्वं परिगृह्य समन्ततः ॥ १९ ॥

इतनेहीमें वहाँ बड़े जोरकी हवा चली। जिससे उस वनमें बड़ी भारी दावाग्नि प्रज्वलित हो उठी। उसने चारों ओरसे उस सारे वनको जलाना आरम्भ किया ॥ १९ ॥

दह्यत्सु मृगयूथेषु द्विजिह्वेषु समन्ततः।
वराहाणां च यूथेषु संश्रयत्सु जलाशयान् ॥ २० ॥

सब ओर मृगोंके झुंड और सर्प दग्ध होने लगे। वनैले सूअर भाग-भागकर जलाशयोंकी शरण लेने लगे ॥ २० ॥

समाविद्धे वने तस्मिन् प्राप्ते व्यसन उत्तमे।
निराहारतया राजन् मन्दप्राणविचेष्टितः ॥ २१ ॥
असमर्थोऽपसरणे सुकृशे मातरौ च ते।

राजन् ! सारा वन आगसे घिर गया और उन लोगोंपर बड़ा भारी संकट आ गया। उपवास करनेसे प्राणशक्ति क्षीण हो जानेके कारण राजा धृतराष्ट्र वहाँसे भागनेमें असमर्थ थे, तुम्हारी दोनों माताएँ भी अत्यन्त दुर्बल हो गयी थीं; अतः वे भी भागनेमें असमर्थ थीं ॥ २१½ ॥

ततः स नृपतिर्दृष्ट्वा वह्निमायान्तमन्तिकात् ॥ २२ ॥
इदमाह ततः सूतं संजयं जयतां वरः।

तदनन्तर विजयी पुरुषोंमें श्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्रने उस अग्निको निकट आती जान सूत संजयसे इस प्रकार कहा—॥ २२½ ॥

गच्छ संजय यत्राग्निर्न त्वां दहति कर्हिचित् ॥ २३ ॥
वयमत्राग्निना युक्ता गमिष्यामः परां गतिम्।

'संजय ! तुम किसी ऐसे स्थानमें भाग जाओ, जहाँ यह दावाग्नि तुम्हें कदापि जला न सके। हमलोग तो अब यहीं अपनेको अग्निमें होम करपरम गति प्राप्त करेंगे' ॥ २३½ ॥

तमुवाच किलोद्विग्नः संजयो वदतां वरः ॥ २४ ॥
राजन् मृत्युरनिष्टोऽयं भविता ते वृथाग्निना।
न चोपायं प्रपश्यामि मोक्षणे जातवेदसः ॥ २५ ॥

तब वक्ताओंमें श्रेष्ठ संजयने अत्यन्त उद्विग्न होकर कहा—'राजन् ! इस लौकिक अग्निसे आपकी मृत्यु होना ठीक नहीं है, (आपके शरीरका दाह-संस्कार तो आहवनीय अग्निमें होना चाहिये।) किंतु इस समय इस दावानलसे छुटकारा पानेका कोई उपाय भी मुझे नहीं दिखायी देता२४-२५

यदत्रानन्तरं कार्यं तद् भवान् वक्तुमर्हति।
इत्युक्तः संजयेनेदं पुनराह स पार्थिवः ॥ २६ ॥

'अब इसके बाद क्या करना चाहिये—यह बतानेकी

कृपा करें।' संजयके ऐसा कहनेपर राजाने फिर कहा—॥ २६॥

नैष मृत्युरनिष्टो नो निःसृतानां गृहात् स्वयम्।
जलमग्निस्तथा वायुरथवापि विकर्षणम् ॥ २७ ॥
तापसानां प्रशस्यन्ते गच्छ संजय मा चिरम्।

'संजय! हमलोग स्वयं गृहस्थाश्रमका परित्याग करके चले आये हैं, अतः हमारे लिये इस तरहकी मृत्यु अनिष्टकारक नहीं हो सकती। जल, अग्नि तथा वायुके संयोगसे अथवा उपवास करके प्राण त्यागना तपस्वियोंके लिये प्रशंसनीय माना गया है; इसलिये अब तुम शीघ्र यहाँसे चले जाओ। विलम्ब न करो' ॥ २७½ ॥

इत्युक्त्वा संजयं राजा समाधाय मनस्तथा ॥ २८ ॥
प्राङ्मुखः सह गान्धार्या कुन्त्या चोपाविशत् तदा।

संजयसे ऐसा कहकर राजा धृतराष्ट्रने मनको एकाग्र किया और गान्धारी तथा कुन्तीके साथ वे पूर्वाभिमुख होकर बैठ गये ॥ २८½ ॥

संजयस्तं तथा दृष्ट्वा प्रदक्षिणमथाकरोत् ॥ २९ ॥
उवाच चैनं मेधावी युङ्क्ष्वात्मानमिति प्रभो।

उन्हें उस अवस्थामें देख मेधावी संजयने उनकी परिक्रमा की और कहा—'महाराज! अब अपनेको योगयुक्त कीजिये ॥ २९½ ॥

ऋषिपुत्रो मनीषी स राजा चक्रेऽस्य तद् वचः॥ ३० ॥
संनिरुध्येन्द्रियग्राममासीत् काष्ठोपमस्तदा।

महर्षि व्यासके पुत्र मनीषी राजा धृतराष्ट्रने संजयकी वह बात मान ली। वे इन्द्रियसमुदायको रोककर काष्ठकी भाँति निश्चेष्ट हो गये ॥ ३०½ ॥
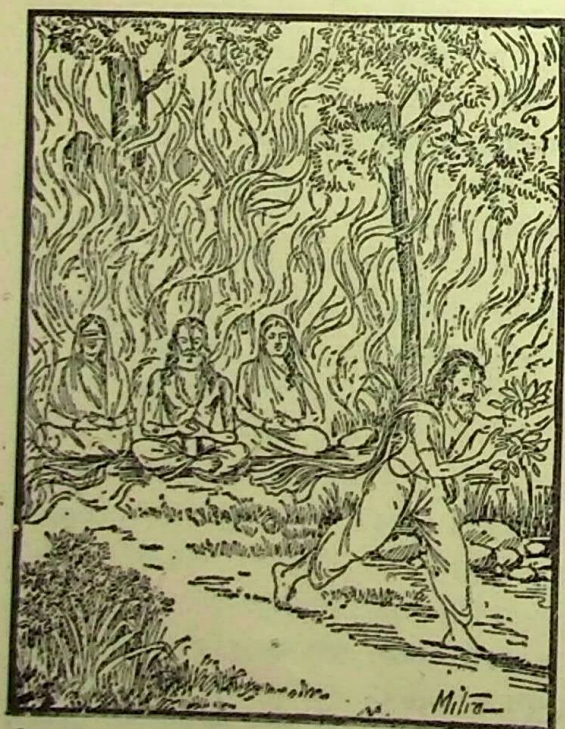
गान्धारी च महाभागा जननी च पृथा तव ॥ ३१ ॥
दावाग्निना समायुक्ते स च राजा पिता तव।
संजयस्तु महामात्रस्तस्माद् दावादमुच्यत ॥ ३२ ॥

इसके बाद महाभागा गान्धारी, तुम्हारी माता कुन्ती तथा तुम्हारे ताऊ राजा धृतराष्ट्र—ये तीनों ही दावाग्निमें जलकर भस्म हो गये; परंतु महामात्य संजय उस दावाग्निसे जीवित बच गये हैं ॥ ३१-३२ ॥

गङ्गाकूले मया दृष्टस्तापसैः परिवारितः।
स तानामन्त्र्य तेजस्वी निवेद्यैतच्च सर्वशः ॥ ३३ ॥
प्रययौ संजयो धीमान् हिमवन्तं महीधरम्।

मैंने संजयको गङ्गातटपर तापसोंसे घिरा देखा है। बुद्धिमान् और तेजस्वी संजय तापसोंको यह सब समाचार बताकर उनसे विदा ले हिमालयपर्वतपर चले गये ॥ ३३½ ॥

एवं स निधनं प्राप्तः कुरुराजो महामनाः ॥ ३४ ॥
गान्धारी च पृथा चैव जनन्यौ ते विशाम्पते।

प्रजानाथ! इस प्रकार महामनस्वी कुरुराज धृतराष्ट्र तथा तुम्हारी दोनों माताएँ गान्धारी और कुन्ती मृत्युको प्राप्त हो गयीं ॥ ३४½ ॥

यदृच्छयानुव्रजता मया राज्ञः कलेवरम् ॥ ३५ ॥
तयोश्च देव्योरुभयोर्मया दृष्टानि भारत।

भरतनन्दन! वनमें घूमते समय अकस्मात् राजा धृतराष्ट्र तथा उन देवियोंके मृत शरीर मेरी दृष्टिमें पड़े थे ॥ ३५½ ॥

ततस्तपोवने तस्मिन् समाजग्मुस्तपोधनाः ॥ ३६ ॥
श्रुत्वा राज्ञस्तदा निष्ठां न त्वशोचन् गतीश्च ते।

तदनन्तर राजाकी मृत्युका समाचार सुनकर बहुत-से तपोधन उस तपोवनमें आये। उन्होंने उनके लिये कोई शोक नहीं किया; क्योंकि उन तीनोंकी सद्गतिके विषयमें उनके मनमें संशय नहीं था ॥ ३६½ ॥

तत्राश्रौषमहं सर्वमेतत् पुरुषसत्तम ॥ ३७ ॥
यथा च नृपतिर्दग्धो देव्यौ ते चेति पाण्डव।

पुरुषप्रवर पाण्डव! जिस प्रकार राजा धृतराष्ट्र तथा उन दोनों देवियोंका दाह हुआ है, यह सारा समाचार मैंने वहीं सुना था ॥ ३७½ ॥

न शोचितव्यं राजेन्द्र स्वतः स पृथिवीपतिः ॥ ३८ ॥
प्राप्तवानग्निसंयोगं गान्धारी जननी च ते।

राजेन्द्र! राजा धृतराष्ट्र, गान्धारी और तुम्हारी माता कुन्ती—तीनोंने स्वतः अग्निसंयोग प्राप्त किया था; अतः उनके लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये ॥ ३८½ ॥

वैशम्पायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा च सर्वेषां पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ ३९ ॥
निर्याणं धृतराष्ट्रस्य शोकः समभवन्महान् ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्रका यह परलोकगमनका समाचार सुनकर उन सभी महामना पाण्डवोंको बड़ा शोक हुआ ॥ ३९½ ॥

अन्तःपुराणां च तदा महानार्तस्वरोऽभवत् ॥ ४० ॥
पौराणां च महाराज श्रुत्वा राज्ञस्तदा गतिम् ।

महाराज ! उनके अन्तःपुरमें उस समय महान् आर्तनाद होने लगा । राजाकी वैसी गति सुनकर पुरवासियोंमें भी हाहाकार मच गया ॥ ४०½ ॥

अहो धिगिति राजा तु विक्रुश्य भृशदुःखितः ॥ ४१ ॥
ऊर्ध्वबाहुः स्मरन् मातुः प्ररुरोद युधिष्ठिरः ।

'अहो ! धिक्कार है !' इस प्रकार अपनी निन्दा करके राजा युधिष्ठिर बहुत दुखी हो गये तथा दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर अपनी माताको याद करके फूट-फूटकर रोने लगे ॥ ४१½ ॥

भीमसेनपुरोगाश्च भ्रातरः सर्व एव ते ॥ ४२ ॥
अन्तःपुरेषु च तदा सुमहान् रुदितस्वनः ।
प्रादुरासीन्महाराज पृथां श्रुत्वा तथागताम् ॥ ४३ ॥

भीमसेन आदि सभी भाई रोने लगे । महाराज ! कुन्तीकी वैसी दशा सुनकर अन्तःपुरमें भी रोने-बिलखनेका महान् शब्द सुनायी देने लगा ॥ ४२-४३ ॥

तं च वृद्धं तथा दग्धं हतपुत्रं नराधिपम् ।
अन्वशोचन्त ते सर्वे गान्धारीं च तपस्विनीम् ॥ ४४ ॥

पुत्रहीन बूढ़े राजा धृतराष्ट्र तथा तपस्विनी गान्धारीदेवीको इस प्रकार दग्ध हुई सुनकर सब लोग बारंबार शोक करने लगे ॥ ४४ ॥

तस्मिन्नुपरते शब्दे मुहूर्तादिव भारत ।
निगृह्य बाष्पं धैर्येण धर्मराजोऽब्रवीदिदम् ॥ ४५ ॥

भरतनन्दन ! दो घड़ी बाद जब रोने-धोनेकी आवाज बंद हुई, तब धर्मराज युधिष्ठिर धैर्यपूर्वक अपने आँसू पोंछकर नारदजीसे इस प्रकार कहने लगे ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नारदागमनपर्वणि दावाग्निना धृतराष्ट्रादिदाहे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत नारदागमनपर्वमें धृतराष्ट्र आदिका दावाग्निसे दाहविषयक सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३७ ॥

अष्टात्रिंशोऽध्यायः

नारदजीके सम्मुख युधिष्ठिरका धृतराष्ट्र आदिके लौकिक अग्निमें दग्ध हो जानेका वर्णन करते हुए विलाप और अन्य पाण्डवोंका भी रोदन

युधिष्ठिर उवाच

तथा महात्मनस्तस्य तपस्युग्रे च वर्ततः ।
अनाथस्येव निधनं तिष्ठत्स्वस्मासु बन्धुषु ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! हम-जैसे बन्धु-बान्धवोंके रहते हुए भी कठोर तपस्यामें लगे हुए महामना धृतराष्ट्रकी अनाथके समान मृत्यु हुई, यह कितने दुःखकी बात है ? ॥ १ ॥

दुर्विज्ञेया गतिर्ब्रह्मन् पुरुषाणां मतिर्मम ।
यत्र वैचित्रवीर्योऽसौ दग्ध एवं वनाग्निना ॥ २ ॥

ब्रह्मन् ! मेरा तो ऐसा मत है कि मनुष्योंकी गतिका ठीक-ठीक ज्ञान होना अत्यन्त कठिन है; जब कि विचित्रवीर्यकुमार धृतराष्ट्रको इस तरह दावानलसे दग्ध होकर मरना पड़ा ॥ २ ॥

यस्य पुत्रशतं श्रीमदभवद् बाहुशालिनः ।
नागायुतबलो राजा स दग्धो हि दवाग्निना ॥ ३ ॥

जिन बाहुबलशाली नरेशके सौ पुत्र थे, जो स्वयं भी दस हजार हाथियोंके समान बलवान् थे, वे ही दावानलसे जलकर मरे हैं, यह कितने दुःखकी बात है ? ॥ ३ ॥

यं पुरा पर्यवीजन्त तालवृन्तैर्वरस्त्रियः ।
तं गृध्राः पर्यवीजन्त दावाग्निपरिकालितम् ॥ ४ ॥

पूर्वकालमें सुन्दरी स्त्रियाँ जिन्हें सब ओरसे ताड़के पंखोंद्वारा हवा करती थीं, उन्हें दावानलसे दग्ध हो जानेपर गीधोंने अपनी पाँखोंसे हवा की है ॥ ४ ॥

सूतमागधसंघैश्च शयानो यः प्रबोध्यते ।
धरण्यां स नृपः शेते पापस्य मम कर्मभिः ॥ ५ ॥

जो बहुमूल्य शय्यापर सोते थे और जिन्हें सूत तथा मागधोंके समुदाय मधुर गीतोंद्वारा जगाया करते थे, वे ही महाराज मुझ पापीकी करतूतोंसे पृथ्वीपर सो रहे हैं ॥ ५ ॥

न च शोचामि गान्धारीं हतपुत्रां यशस्विनीम् ।
पतिलोकमनुप्राप्तां तथा भर्तृव्रते स्थिताम् ॥ ६ ॥

मुझे पुत्रहीना यशस्विनी गान्धारीके लिये उतना शोक

नहीं है; क्योंकि वे पातिव्रत्य-धर्मका पालन करती थीं; अतः पतिलोकमें गयी हैं ॥ ६ ॥

पृथामेव च शोचामि या पुत्रैश्वर्यमृद्धिमत्।
उत्सृज्य सुमहद् दीप्तं वनवासमरोचयत्॥ ७ ॥

मैं तो उन माता कुन्तीके लिये ही अधिक शोक करता हूँ, जिन्होंने पुत्रोंके समृद्धिशाली एवं परम समुज्ज्वल ऐश्वर्यको ठुकराकर वनमें रहना पसंद किया था ॥ ७ ॥

धिग् राज्यमिदमस्माकं धिग् बलं धिक् पराक्रमम्।
क्षत्रधर्मं च धिग् यस्मान्मृता जीवामहे वयम्॥ ८ ॥

हमारे इस राज्यको धिक्कार है, बल और पराक्रमको धिक्कार है तथा इस क्षत्रिय-धर्मको भी धिक्कार है! जिससे आज हमलोग मृतकतुल्य जीवन बिता रहे हैं ॥ ८ ॥

सुसूक्ष्मा किल कालस्य गतिर्द्विजवरोत्तम।
यत् समुत्सृज्य राज्यं सा वनवासमरोचयत्॥ ९ ॥

विप्रवर! कालकी गति अत्यन्त सूक्ष्म है, जिससे प्रेरित होकर माता कुन्तीने राज्य त्यागकर वनमें ही रहना ठीक समझा ॥ ९ ॥

युधिष्ठिरस्य जननी भीमस्य विजयस्य च।
अनाथवत् कथं दग्धा इति मुह्यामि चिन्तयन्॥ १० ॥

युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुनकी माता अनाथकी भाँति कैसे जल गयी, यह सोचकर मैं मोहित हो जाता हूँ ॥

वृथा संतर्पितो वह्निः खाण्डवे सव्यसाचिना।
उपकारमजानन् स कृतघ्न इति मे मतिः॥ ११ ॥

सव्यसाची अर्जुनने जो खाण्डववनमें अग्निदेवको तृप्त किया था, वह व्यर्थ हो गया। वे उस उपकारको याद न रखनेके कारण कृतघ्न हैं—ऐसी मेरी धारणा है ॥ ११ ॥

यत्रादहत् स भगवान् मातरं सव्यसाचिनः।
कृत्वा यो ब्राह्मणच्छद्म भिक्षार्थी समुपागतः॥ १२ ॥
धिगग्निं धिक् च पार्थस्य विश्रुतां सत्यसंधताम्।

जो एक दिन ब्राह्मणका वेश बनाकर अर्जुनसे भीख माँगने आये थे, उन्हीं भगवान् अग्निदेवने अर्जुनकी माँको जलाकर भस्म कर दिया। अग्निदेवको धिक्कार है! अर्जुनकी जो सुप्रसिद्ध सत्यप्रतिज्ञता है, उसको भी धिक्कार है! ॥ १२½ ॥

इदं कष्टतरं चान्यद् भगवन् प्रतिभाति मे॥ १३ ॥
वृथाग्निना समायोगो यदभूत् पृथिवीपतेः।

भगवन्! राजा धृतराष्ट्रके शरीरको जो व्यर्थ (लौकिक) अग्निका संयोग प्राप्त हुआ, यह दूसरी अत्यन्त कष्ट देनेवाली बात जान पड़ती है ॥ १३½ ॥

तथा तपस्विनस्तस्य राजर्षेः कौरवस्य ह॥ १४॥
कथमेवंविधो मृत्युः प्रशास्य पृथिवीमिमाम्।

जिन्होंने पहले इस पृथ्वीका शासन करके अन्तमें कठोर तपस्याका आश्रय लिया था, उन कुरुवंशी राजर्षिको ऐसी मृत्यु क्यों प्राप्त हुई? ॥ १४½ ॥

तिष्ठत्सु मन्त्रपूतेषु तस्याग्निषु महावने॥ १५॥
वृथाग्निना समायुक्तो निष्ठां प्राप्तः पिता मम।

हाय! उस महान् वनमें मन्त्रोंसे पवित्र हुई अग्नियोंके रहते हुए भी मेरे ताऊ लौकिक अग्निसे दग्ध होकर मृत्युको प्राप्त हुए! ॥ १५½ ॥

मन्ये पृथा वेपमाना कृशा धमनिसंतता॥ १६॥
हा तात! धर्मराजेति समाक्रन्दन्महाभये।

मैं तो समझता हूँ कि अत्यन्त दुर्बल हो जानेके कारण जिनके शरीरमें फैली हुई नस-नाड़ियाँतक स्पष्ट दिखायी देती थीं, वे मेरी माता कुन्ती अग्निका महान् भय उपस्थित होनेपर 'हा तात! हा धर्मराज!' कहकर कातर पुकार मचाने लगी होंगी ॥ १६½ ॥

भीम पर्याप्नुहि भयादिति चैवाभिवाशती॥ १७॥
समन्ततः परिक्षिप्ता माताभून्मे दवाग्निना।

'भीमसेन! इस भयसे मुझे बचाओ' ऐसा कहकर चारों ओर चीखती-चिल्लाती हुई मेरी माताको दावानलने जलाकर भस्म कर दिया होगा ॥ १७½ ॥

सहदेवः प्रियस्तस्याः पुत्रेभ्योऽधिक एव तु॥ १८॥
न चैनां मोक्षयामास वीरो माद्रवतीसुतः।

सहदेव मेरी माताको अपने सभी पुत्रोंसे अधिक प्रिय था; परंतु वह वीर माद्रीकुमार भी माको उस संकटसे बचा न सका ॥ १८½ ॥

तच्छ्रुत्वा रुरुदुः सर्वे समालिङ्गय परस्परम्॥ १९॥
पाण्डवाः पञ्च दुःखार्ता भूतानीव युगक्षये।

यह सुनकर समस्त पाण्डव एक दूसरेको हृदयसे लगाकर रोने लगे। जैसे प्रलयकालमें पाँचों भूत पीडित हो जाते हैं, उसी प्रकार उस समय पाँचों पाण्डव दुःखसे आतुर हो उठे।

तेषां तु पुरुषेन्द्राणां रुदतां रुदितस्वनः॥ २०॥
प्रासादाभोगसंरुद्धे अन्वरौत्सीत् स रोदसी॥ २१॥

वहाँ रोदन करते हुए उन पुरुषप्रवर पाण्डवोंके रोनेका शब्द महलके विस्तारसे अवरुद्ध हुए भूतल और आकाशमें गूँजने लगा ॥ २०-२१ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नारदागमनपर्वणि युधिष्ठिरविलापे अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत नारदागमनपर्वमें युधिष्ठिरका विलापविषयक अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

राजा युधिष्ठिरद्वारा धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती—इन तीनोंकी हड्डियोंको गङ्गामें प्रवाहित कराना तथा श्राद्धकर्म करना

नारद उवाच

नासौ वृथाग्निना दग्धो यथा तत्र श्रुतं मया।
वैचित्रवीर्यो नृपतिस्तत् ते वक्ष्यामि सुव्रत ॥ १ ॥

नारदजीने कहा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले नरेश ! विचित्रवीर्यकुमार राजा धृतराष्ट्रका दाह व्यर्थ (लौकिक) अग्निसे नहीं हुआ है। इस विषयमें मैंने वहाँ जैसा सुना था, वह सब तुम्हें बताऊँगा ॥ १ ॥

वनं प्रविशतानेन वायुभक्षेण धीमता।
अग्नयः कारयित्वेष्टिमुत्सृष्टा इति नः श्रुतम् ॥ २ ॥

हमारे सुननेमें आया है कि वायु पीकर रहनेवाले वे बुद्धिमान् नरेश जब घने वनमें प्रवेश करने लगे, उस समय उन्होंने याजकोंद्वारा इष्टि कराकर तीनों अग्नियोंको वहीं त्याग दिया ॥ २ ॥

याजकास्तु ततस्तस्य तानग्नीन्निर्जने वने।
समुत्सृज्य यथाकामं जग्मुर्भरतसत्तम ॥ ३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर उनकी उन अग्नियोंको उसी निर्जन वनमें छोड़कर उनके याजकगण इच्छानुसार अपने-अपने स्थानको चले गये ॥ ३ ॥

स विवृद्धस्तदा वह्निर्वने तस्मिन्नभूत् किल।
तेन तद् वनमादीप्तमिति ते तापसाब्रुवन् ॥ ४ ॥

कहते हैं, वही अग्नि बढ़कर उस वनमें सब ओर फैल गयी और उसीने उस सारे वनको भस्मसात् कर दिया—यह बात मुझसे वहाँके तापसोंने बतायी थी ॥ ४ ॥

स राजा जाह्नवीतीरे यथा ते कथितं मया।
तेनाग्निना समायुक्तः स्वेनैव भरतर्षभ ॥ ५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! वे राजा गङ्गाके तटपर, जैसा कि मैंने तुम्हें बताया है, उस अपनी ही अग्निसे दग्ध हुए हैं ॥ ५ ॥

एवमावेदयामासुर्मुनयस्ते ममानघ।
ये ते भागीरथीतीरे मया दृष्टा युधिष्ठिर ॥ ६ ॥

निष्पाप नरेश ! गङ्गाजीके तटपर मुझे जिनके दर्शन हुए थे, उन मुनियोंने मुझसे ऐसा ही बताया था ॥ ६ ॥

एवं स्वेनाग्निना राजा समायुक्तो महीपते।
मा शोचिथास्त्वं नृपतिं गतः स परमां गतिम् ॥ ७ ॥

पृथ्वीनाथ ! इस प्रकार राजा धृतराष्ट्र अपनी ही अग्निसे दाहको प्राप्त हुए हैं, तुम उन नरेशके लिये शोक न करो। वे परम उत्तम गतिको प्राप्त हुए हैं ॥ ७ ॥

गुरुशुश्रूषया चैव जननी ते जनाधिप।
प्राप्ता सुमहतीं सिद्धिमिति मे नात्र संशयः ॥ ८ ॥

जनेश्वर ! तुम्हारी माता कुन्तीदेवी गुरुजनोंकी सेवाके प्रभावसे बहुत बड़ी सिद्धिको प्राप्त हुई हैं, इस विषयमें मुझे कोई संदेह नहीं है ॥ ८ ॥

कर्तुमर्हसि राजेन्द्र तेषां त्वमुदकक्रियाम्।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैरेतदत्र विधीयताम् ॥ ९ ॥

राजेन्द्र ! अब अपने सब भाइयोंके साथ जाकर तुम्हें उन तीनोंके लिये जलाञ्जलि देनी चाहिये। इस समय यहाँ इसी कर्तव्यका पालन करना चाहिये ॥ ९ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः स पृथिवीपालः पाण्डवानां धुरंधरः।
निर्ययौ सहसोदर्यः सदारश्च नरर्षभः ॥ १० ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तब पाण्डव-धुरन्धर पृथ्वीपाल नरश्रेष्ठ युधिष्ठिर अपने भाइयों और स्त्रियोंके साथ नगरसे बाहर निकले ॥ १० ॥

पौरजानपदाश्चैव राजभक्तिपुरस्कृताः।
गङ्गां प्रजग्मुरभितो वाससैकेन संवृताः ॥ ११ ॥

उनके साथ राजभक्तिको सामने रखनेवाले पुरवासी और जनपदनिवासी भी थे। वे सब एकवस्त्र धारण करके गङ्गाजीके समीप गये ॥ ११ ॥

ततोऽवगाह्य सलिले सर्वे ते नरपुङ्गवाः।
युयुत्सुमग्रतः कृत्वा ददुस्तोयं महात्मने ॥ १२ ॥

उन सभी श्रेष्ठ पुरुषोंने गङ्गाजीके जलमें स्नान करके युयुत्सुको आगे रखते हुए महात्मा धृतराष्ट्रके लिये जलाञ्जलि दी ॥ १२ ॥

गान्धार्याश्च पृथायाश्च विधिवन्नामगोत्रतः।
शौचं निर्वर्तयन्तस्ते तत्रोषुर्नगराद् बहिः ॥ १३ ॥

फिर विधिपूर्वक नाम और गोत्रका उच्चारण करते हुए गान्धारी और कुन्तीके लिये भी उन्होंने जल-दान किया। तत्पश्चात् शौचसम्पादन या अशौचनिवृत्तिके लिये प्रयत्न करते हुए वे सब लोग नगरसे बाहर ही ठहर गये ॥ १३ ॥

प्रेषयामास स नरान् विधिज्ञानाप्तकारिणः।
गङ्गाद्वारं नरश्रेष्ठो यत्र दग्धोऽभवन्नृपः ॥ १४ ॥
तत्रैव तेषां कृत्यानि गङ्गाद्वारेऽन्वशात् तदा।
कर्तव्यानीति पुरुषान् दत्तदेयान्महीपतिः ॥ १५ ॥

नरश्रेष्ठ युधिष्ठिरने, जहाँ राजा धृतराष्ट्र दग्ध हुए थे, उस स्थानपर भी हरद्वारमें विधि-विधानके जाननेवाले विश्वासपात्र मनुष्योंको भेजा और वहीं उनके श्राद्धकर्म करनेकी आज्ञा दी। फिर उन भूपालने उन पुरुषोंको दानमें देनेयोग्य नाना प्रकारकी वस्तुएँ अर्पित कीं ॥ १४-१५ ॥

द्वादशेऽहनि तेभ्यः स कृतशौचो नराधिपः।
ददौ श्राद्धानि विधिवद् दक्षिणावन्ति पाण्डवः ॥ १६ ॥

शौच-सम्पादनके लिये दशाह आदि कर्म कर लेनेके पश्चात् पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिरने बारहवें दिन धृतराष्ट्र आदिके उद्देश्यसे विधिवत् श्राद्ध किया तथा उन श्राद्धोंमें ब्राह्मणोंको पर्याप्त दक्षिणाएँ दीं ॥ १६ ॥

धृतराष्ट्रं समुद्दिश्य ददौ स पृथिवीपतिः।
सुवर्णं रजतं गाश्च शय्याश्च सुमहाधनाः ॥ १७ ॥
गान्धार्याश्चैव तेजस्वी पृथायाश्च पृथक् पृथक्।
संकीर्त्य नामनी राजा ददौ दानमनुत्तमम् ॥ १८ ॥

तेजस्वी राजा युधिष्ठिरने धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्तीके लिये पृथक्-पृथक् उनके नाम ले-लेकर सोना, चाँदी, गौ तथा बहुमूल्य शय्याएँ प्रदान कीं तथा परम उत्तम दान दिया ॥ १७-१८ ॥

यो यदिच्छति यावच्च तावत् स लभते नरः।
शयनं भोजनं यानं मणिरत्नमथो धनम् ॥ १९ ॥
यानमाच्छादनं भोगान् दासीश्च समलंकृताः।
ददौ राजा समुद्दिश्य तयोर्मात्रोर्महीपतिः ॥ २० ॥

उस समय जो मनुष्य जिस वस्तुको जितनी मात्रामें लेना चाहता, वह उस वस्तुको उतनी ही मात्रामें प्राप्त कर लेता था। राजा युधिष्ठिरने अपनी उन दोनों माताओंके उद्देश्यसे शय्या, भोजन, सवारी, मणि, रत्न, धन, वाहन, वस्त्र, नाना प्रकारके भोग तथा वस्त्राभूषणोंसे विभूषित दासियाँ प्रदान कीं ॥ १९-२० ॥

ततः स पृथिवीपालो दत्त्वा श्राद्धान्यनेकशः।
प्रविवेश पुरं राजा नगरं वारणाह्वयम् ॥ २१ ॥

इस प्रकार अनेक बार श्राद्धके दान देकर पृथ्वीपालक राजा युधिष्ठिरने हस्तिनापुरनामक नगरमें प्रवेश किया ॥ २१ ॥

ते चापि राजवचनात् पुरुषा ये गताभवन्।
संकल्प्य तेषां कुल्यानि पुनः प्रत्यागमंस्ततः ॥ २२ ॥
माल्यैर्गन्धैश्च विविधैरर्चयित्वा यथाविधि।
कुल्यानि तेषां संयोज्य तदाचख्युर्महीपतेः ॥ २३ ॥

जो लोग राजाकी आज्ञासे हरद्वारमें भेजे गये थे, वे उन तीनोंकी हड्डियोंको संचित करके वहाँसे फिर गङ्गाजीके तटपर गये। फिर भाँति-भाँतिकी मालाओं और चन्दनसे विधिपूर्वक उनकी पूजा की। पूजा करके उन सबको गङ्गाजीमें प्रवाहित कर दिया। इसके बाद हस्तिनापुरमें लौटकर उन्होंने यह सब समाचार राजाको कह सुनाया ॥ २२-२३ ॥

समाश्वास्य तु राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम्।
नारदोऽप्यगमद् राजन् परमर्षिर्यथेप्सितम् ॥ २४ ॥

राजन्! तदनन्तर देवर्षि नारदजी धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरको आश्वासन देकर अभीष्ट स्थानको चले गये ॥ २४ ॥

एवं वर्षाण्यतीतानि धृतराष्ट्रस्य धीमतः।
वनवासे तथा त्रीणि नगरे दश पञ्च च ॥ २५ ॥
हतपुत्रस्य संग्रामे दानानि ददतः सदा।
ज्ञातिसम्बन्धिमित्राणां भ्रातॄणां स्वजनस्य च ॥ २६ ॥

इस प्रकार जिनके पुत्र रणभूमिमें मारे गये थे, उन राजा धृतराष्ट्रने अपने जाति-भाई, सम्बन्धी, मित्र, बन्धु और स्वजनोंके निमित्त सदा दान देते हुए (युद्ध समाप्त होनेके बाद) पंद्रह वर्ष हस्तिनापुर नगरमें व्यतीत किये थे और तीन वर्ष वनमें तपस्या करते हुए बिताये थे ॥ २६ ॥

युधिष्ठिरस्तु नृपतिर्नातिप्रीतमनास्तदा।
धारयामास तद् राज्यं निहतज्ञातिबान्धवः ॥ २७ ॥

जिनके बन्धु-बान्धव नष्ट हो गये थे, वे राजा युधिष्ठिर मनमें अधिक प्रसन्न न रहते हुए किसी प्रकार राज्यका भार सँभालने लगे ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नारदागमनपर्वणि श्राद्धदाने ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत नारदागमनपर्वमें श्राद्धदानविषयक उन्तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३९ ॥

आश्रमवासिकपर्व सम्पूर्ण

	अनुष्टुप्	(अन्य बड़े छन्द)	बड़े छन्दोंको ३२ अक्षरोंके अनुष्टुप् मानकर गिननेपर	कुल योग
उत्तर भारतीय पाठसे लिये गये	१०६१	(३४)	४६॥।	११०[illegible]
दक्षिण भारतीय पाठसे लिये गये	१॥	×	×	

आश्रमवासिकपर्वकी कुल श्लोकसंख्या—११[illegible]

सांम्बके पेटसे यदुवंश-विनाशके लिये मूसल पैदा होनेका ऋषियोंद्वारा शाप

ॐ
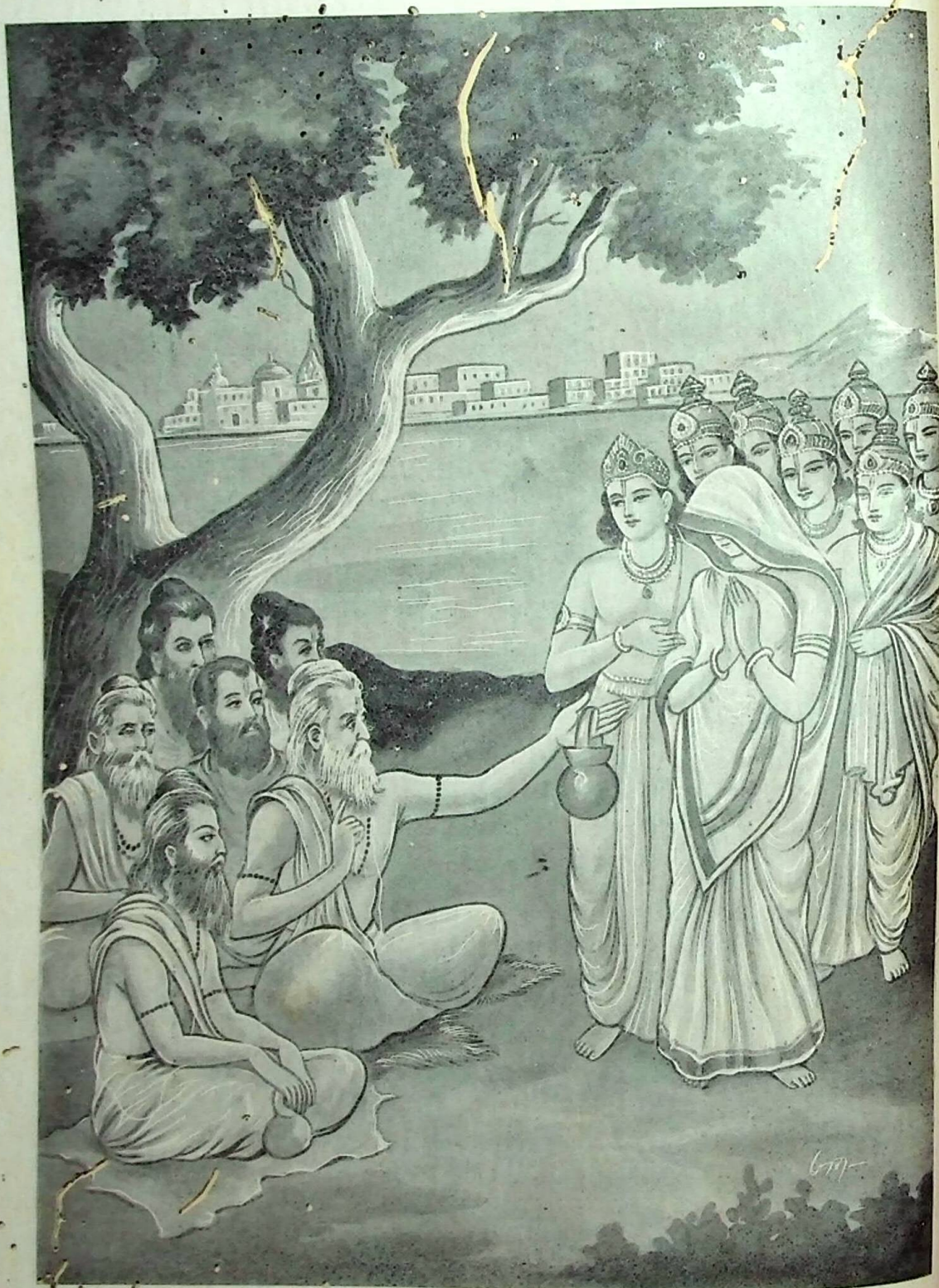
श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतम्

मौसलपर्व

प्रथमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका अपशकुन देखना, यादवोंके विनाशका समाचार सुनना, द्वारकामें ऋषियोंके शापवश साम्बके पेटसे मूसलकी उत्पत्ति तथा मदिराके निषेधकी कठोर आज्ञा

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओंका संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (महाभारत) का पाठ करना चाहिये॥

वैशम्पायन उवाच

षट्त्रिंशे त्वथ सम्प्राप्ते वर्षे कौरवनन्दनः।
ददर्श विपरीतानि निमित्तानि युधिष्ठिरः॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! महाभारत-युद्धके पश्चात् जब छत्तीसवाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ तब कौरवनन्दन राजा युधिष्ठिरको कई तरहके अपशकुन दिखायी देने लगे॥

ववुर्वाताश्च निर्घाता रूक्षाः शर्करवर्षिणः।
अपसव्यानि शकुना मण्डलानि प्रचक्रिरे॥ २॥

बिजलीकी गड़गड़ाहटके साथ बालू और कंकड़ बरसानेवाली प्रचण्ड आँधी चलने लगी। पक्षी दाहिनी ओर मण्डल बनाकर उड़ते दिखायी देने लगे॥ २॥

प्रत्यगूहुर्महानद्यो दिशो नीहारसंवृताः।
उल्काश्चाङ्गारवर्षिण्यः प्रापतन् गगनाद् भुवि॥ ३॥

बड़ी-बड़ी नदियाँ बालूके भीतर छिपकर बहने लगीं। दिशाएँ कुहरेसे आच्छादित हो गयीं। आकाशसे पृथ्वीपर अङ्गार बरसानेवाली उल्काएँ गिरने लगीं॥ ३॥

आदित्यो रजसा राजन् समवच्छन्नमण्डलः।
विरश्मिरुदये नित्यं कबन्धैः समदृश्यत॥ ४॥

राजन्! सूर्यमण्डल धूलसे आच्छन्न हो गया था। उदयकालमें सूर्य तेजोहीन प्रतीत होते थे और उनका मण्डल प्रतिदिन अनेक कबन्धों (बिना सिरके धड़ों) से युक्त दिखायी देता था॥ ४॥

परिवेषाश्च दृश्यन्ते दारुणाश्चन्द्रसूर्ययोः।
त्रिवर्णाः श्यामरूक्षान्तास्तथा भस्मारुणप्रभाः॥ ५॥

चन्द्रमा और सूर्य दोनोंके चारों ओर भयानक घेरे दृष्टिगोचर होते थे। उन घेरोंमें तीन रंग प्रतीत होते थे। उनका किनारेका भाग काला एवं रूखा होता था। बीचमें भस्मके समान धूसर रंग दीखता था और भीतरी किनारेकी कान्ति अरुणवर्णकी दृष्टिगोचर होती थी॥ ५॥

एते चान्ये च बहव उत्पाता भयशंसिनः।
दृश्यन्ते बहवो राजन् हृदयोद्वेगकारकाः॥ ६॥

राजन्! ये तथा और भी बहुत-से भयसूचक उत्पात दिखायी देने लगे, जो हृदयको उद्विग्न कर देनेवाले थे॥

कस्यचित् त्वथ कालस्य कुरुराजो युधिष्ठिरः।
शुश्राव वृष्णिचक्रस्य मौसले कदनं कृतम्॥ ७॥
विमुक्तं वासुदेवं च श्रुत्वा रामं च पाण्डवः।
समानीयाब्रवीद् भ्रातॄन् किं करिष्याम इत्युत॥ ८॥

इसके थोड़े ही दिनों बाद कुरुराज युधिष्ठिरने यह समाचार सुना कि मूसलको निमित्त बनाकर आपसमें महान् युद्ध हुआ है; जिसमें समस्त वृष्णिवंशियोंका संहार हो गया। केवल भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी ही उस विनाशसे बचे हुए हैं। यह सब सुनकर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने अपने समस्त भाइयोंको बुलाया और पूछा—'अब हमें क्या करना चाहिये?'॥

परस्परं समासाद्य ब्रह्मदण्डबलात् कृतान्।
वृष्णीन् विनष्टांस्ते श्रुत्वा व्यथिताः पाण्डवाभवन्॥ ९॥
निधनं वासुदेवस्य समुद्रस्येव शोषणम्।
वीरा न श्रद्दधुस्तस्य विनाशं शार्ङ्गधन्वनः॥ १०॥

ब्राह्मणोंके शापके बलसे विवश हो आपसमें लड़ भिड़कर

सारे वृष्णिवंशी विनष्ट हो गये। यह बात सुनकर पाण्डवोंको बड़ी वेदना हुई। भगवान् श्रीकृष्णका वध तो समुद्रको सोख लेनेके समान असम्भव था; अतः उन वीरोंने भगवान् श्रीकृष्णके विनाशकी बातपर विश्वास नहीं किया॥ ९-१० ॥

मौसलं ते समाश्रित्य दुःखशोकसमन्विताः।
विषण्णा हतसंकल्पाः पाण्डवाः समुपाविशन् ॥ ११ ॥

इस मौसलकाण्डकी बातको लेकर सारे पाण्डव दुःख-शोकमें डूब गये। उनके मनमें विषाद छा गया और वे हताश हो मन मारकर बैठ गये॥ ११ ॥

जनमेजय उवाच

कथं विनष्टा भगवन्नन्धका वृष्णिभिः सह।
पश्यतो वासुदेवस्य भोजाश्चैव महारथाः ॥ १२ ॥

जनमेजयने पूछा—भगवन्! भगवान् श्रीकृष्णके देखते-देखते वृष्णियोंसहित अन्धक तथा महारथी भोजवंशी क्षत्रिय कैसे नष्ट हो गये? ॥ १२ ॥

वैशम्पायन उवाच

षट्त्रिंशेऽथ ततो वर्षे वृष्णीनामनयो महान्।
अन्योन्यं मुसलैस्ते तु निजघ्नुः कालचोदिताः ॥ १३ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! महाभारतयुद्धके बाद छत्तीसवें वर्ष वृष्णिवंशियोंमें महान् अन्यायपूर्ण कलह आरम्भ हो गया। उसमें कालसे प्रेरित होकर उन्होंने एक-दूसरेको मूसलों (अरों) से मार डाला ॥ १३ ॥

जनमेजय उवाच

केनानुशप्तास्ते वीराः क्षयं वृष्ण्यन्धका गताः।
भोजाश्च द्विजवर्य त्वं विस्तरेण वदस्व मे ॥ १४ ॥

जनमेजयने पूछा—विप्रवर! वृष्णि, अन्धक तथा भोजवंशके उन वीरोंको किसने शाप दिया था, जिससे उनका संहार हो गया? आप यह प्रसङ्ग मुझे विस्तारपूर्वक बताइये॥

वैशम्पायन उवाच

विश्वामित्रं च कण्वं च नारदं च तपोधनम्।
सारणप्रमुखा वीरा ददृशुर्द्वारकां गतान् ॥ १५ ॥
ते तान् साम्बं पुरस्कृत्य भूषयित्वा स्त्रियं यथा।
अब्रुवन्नुपसंगम्य दैवदण्डनिपीडिताः ॥ १६ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! एक समयकी बात है, महर्षि विश्वामित्र, कण्व और तपस्याके धनी नारदजी द्वारकामें गये हुए थे। उस समय दैवके मारे हुए सारण आदि वीर साम्बको स्त्रीके वेषमें विभूषित करके उनके पास ले गये। उन सबने उन मुनियोंका दर्शन किया और इस प्रकार पूछा—॥ १५-१६ ॥
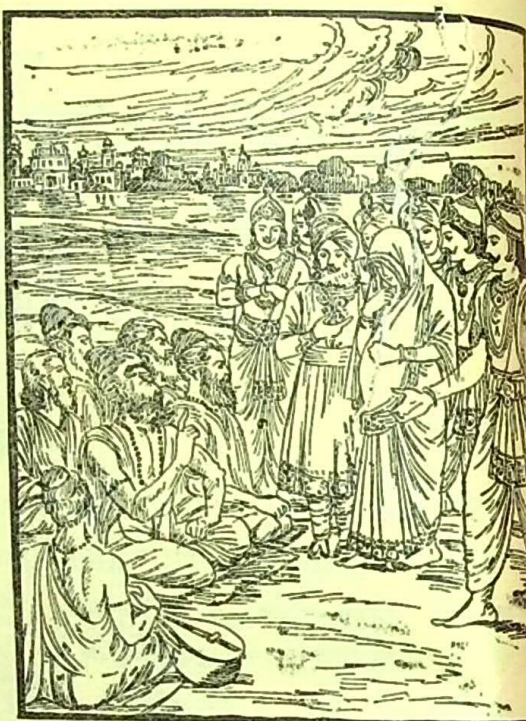
इयं स्त्री पुत्रकामस्य बभ्रोरमिततेजसः।
ऋषयः साधु जानीत किमियं जनयिष्यति ॥ १७ ॥

'महर्षियो! यह स्त्री अमित तेजस्वी बभ्रुकी पत्नी है। बभ्रुके मनमें पुत्रकी बड़ी लालसा है। आपलोग ऋषि हैं, अतः अच्छी तरह सोचकर बतावें, इसके गर्भसे क्या उत्पन्न होगा?॥ १७ ॥

इत्युक्तास्ते तदा राजन् विप्रलम्भप्रधर्षिताः।
प्रत्यब्रुवंस्तान् मुनयो यत् तच्छृणु नराधिप ॥ १८ ॥

राजन्! नरेश्वर! ऐसी बात कहकर उन यादवोंने जब ऋषियोंको धोखा दिया और इस प्रकार उनका तिरस्कार किया, तब उन्होंने उन बालकोंको जो उत्तर दिया, उसे सुनो॥ १८ ॥

वृष्ण्यन्धकविनाशाय मुसलं घोरमायसम्।
वासुदेवस्य दायादः साम्बोऽयं जनयिष्यति ॥ १९ ॥
येन यूयं सुदुर्वृत्ता नृशंसा जातमन्यवः।
उच्छेत्तारः कुलं कृत्स्नमृते रामजनार्दनौ ॥ २० ॥
समुद्रं यास्यति श्रीमांस्त्यक्त्वा देहं हलायुधः।
जरा कृष्णं महात्मानं शयानं भुवि भेत्स्यति ॥ २१ ॥
इत्यब्रुवन्त ते राजन् प्रलब्धास्तैर्दुरात्मभिः।
मुनयः क्रोधरक्ताक्षाः समीक्ष्याथ परस्परम् ॥ २२ ॥

राजन्! उन दुर्बुद्धि बालकोंके वञ्चनापूर्ण बर्तावसे वे सब महर्षि कुपित हो उठे। क्रोधसे उनकी आँखें लाल हो गयीं और वे एक-दूसरेकी ओर देखकर इस प्रकार बोले—'क्रूर, क्रोधी और दुराचारी यादवकुमारो! भगवान् श्रीकृष्णका यह पुत्र साम्ब एक भयंकर लोहेका मूसल उत्पन्न करेगा, जो वृष्णि और अन्धकवंशके विनाशका कारण होगा। उसीसे तुम

लोग बलराम और श्रीकृष्णके सिवा अपने शेष समस्त कुलका संहार कर डालेंगे । हलधारी श्रीमान् बलरामजी स्वयं ही अपने शरीरको त्यागकर समुद्रमें चले जायँगे और महात्मा श्रीकृष्ण जब भूतलपर सो रहे होंगे, उस समय जरा नामक व्याध उन्हें अपने बाणोंसे बींध डालेगा ॥ १९–२२ ॥

तथोक्त्वा मुनयस्ते तु ततः केशवमभ्ययुः ।
अथाब्रवीत् तदा वृष्णीञ्छ्रुत्वैवं मधुसूदनः ॥ २३ ॥

ऐसा कहकर वे मुनि भगवान् श्रीकृष्णके पास चले गये । (वहाँ उन्होंने उनसे सारी बातें कह सुनायीं ।) यह सब सुनकर भगवान् मधुसूदनने वृष्णिवंशियोंसे कहा—॥ २३ ॥

अन्तज्ञो मतिमांस्तस्य भवितव्यं तथेति तान् ।
एवमुक्त्वा हृषीकेशः प्रविवेश पुरं तदा ॥ २४ ॥

'ऋषियोंने जैसा कहा है, वैसा ही होगा ।' बुद्धिमान् श्रीकृष्ण सबके अन्तको जाननेवाले हैं । उन्होंने उपर्युक्त बात कहकर नगरमें प्रवेश किया ॥ २४ ॥

कृतान्तमन्यथा नैच्छत् कर्तुं स जगतः प्रभुः ।
श्वोभूतेऽथ ततः साम्बो मुसलं तदसूत वै ॥ २५ ॥

यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर हैं तथापि यदुवंशियोंपर आनेवाले उस कालको उन्होंने पलटनेकी इच्छा नहीं की । दूसरे दिन सबेरा होते ही साम्बने उस मूसलको जन्म दिया ॥ २५ ॥

येन वृष्ण्यन्धककुले पुरुषा भस्मसात् कृताः ।
वृष्ण्यन्धकविनाशाय किंकरप्रतिमं महत् ॥ २६ ॥

वह वही मूसल था, जिसने वृष्णि और अन्धककुलके समस्त पुरुषोंको भस्मसात् कर दिया । वृष्णि और अन्धक-वंशके वीरोंका विनाश करनेके लिये वह महान् यमदूतके ही तुल्य था ॥ २६ ॥

प्रसूत शापजं घोरं तच्च राज्ञे न्यवेदयन् ।
विषण्णरूपस्तद् राजा सूक्ष्मं चूर्णमकारयत् ॥ २७ ॥

जब साम्बने उस शापजनित भयंकर मूसलको पैदा किया, तब यदुवंशियोंने उसे ले जाकर राजा उग्रसेनको दे दिया । उसे देखते ही राजाके मनमें विषाद छा गया । उन्होंने उस मूसलको कुटवाकर अत्यन्त महीन चूर्ण करा दिया ॥

तच्चूर्णं सागरे चापि प्राक्षिपन् पुरुषा नृप ।
अघोषयंश्च नगरे वचनादाहुकस्य ते ॥ २८ ॥
जनार्दनस्य रामस्य बभ्रोश्चैव महात्मनः ।
अद्यप्रभृति सर्वेषु वृष्ण्यन्धककुलेष्विह ॥ २९ ॥
सुरासवो न कर्तव्यः सर्वैर्नगरवासिभिः ।

नरेश्वर ! राजाकी आज्ञासे उनके सेवकोंने उस लोहचूर्ण-को समुद्रमें फेंक दिया । फिर उग्रसेन, भगवान् श्रीकृष्ण, बलराम और महामना बभ्रुके आदेशसे राजपुरुषोंने नगरमें यह घोषणा करा दी कि 'आजसे समस्त वृष्णिवंशी और अन्धकवंशी क्षत्रियोंके यहाँ कोई भी नगरनिवासी मदिरा न तैयार करें ॥ २८-२९½ ॥

यश्च नोऽविदितं कुर्यात् पेयं कश्चिन्नरः क्वचित् ॥ ३० ॥
जीवन् स शूलमारोहेत् स्वयं कृत्वा सबान्धवः ।

'जो मनुष्य कहीं भी हमलोगोंसे छिपकर कोई नशीली पीनेकी वस्तु तैयार करेगा, वह स्वयं वह अपराध करके जीते-जी अपने भाई-बन्धुओंसहित शूलीपर चढ़ा दिया जायगा' ॥

ततो राजभयात् सर्वे नियमं चक्रिरे तदा ।
नराः शासनमाज्ञाय रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ३१ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले बलरामजीका यह शासन समझकर सब लोगोंने राजाके भयसे यह नियम बना लिया कि 'आजसे न तो मदिरा बनाना है न पीना' ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि मुसलोत्पत्तौ प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत मौसलपर्वमें मुसलकी उत्पत्तिविषयक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

द्वारकामें भयंकर उत्पात देखकर भगवान् श्रीकृष्णका यदुवंशियोंको तीर्थयात्राके लिये आदेश देना

वैशम्पायन उवाच

एवं प्रयतमानानां वृष्णीनामन्धकैः सह ।
कालो गृहाणि सर्वेषां परिचक्राम नित्यशः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार वृष्णि और अन्धकवंशके लोग अपने ऊपर आनेवाले संकटका निवारण करनेके लिये भाँति-भाँतिके प्रयत्न कर रहे थे और उधर काल प्रतिदिन सबके घरोंमें चक्कर लगाया करता था ॥ १ ॥

करालो विकटो मुण्डः पुरुषः कृष्णपिङ्गलः ।
गृहाण्यावेक्ष्य वृष्णीनां नादृश्यत क्वचित् क्वचित् ॥ २ ॥

उसका स्वरूप विकराल और वेष विकट था । उसके शरीरका रंग काला और पीला था । वह मूँड़ मुँड़ाये हुए पुरुषके रूपमें वृष्णिवंशियोंके घरोंमें प्रवेश करके सबको देखता और कभी-कभी अदृश्य हो जाता था ॥ २ ॥

तमघ्नन्त महेष्वासाः शरैः शतसहस्रशः ।

न चाशक्यत वेद्धुं स सर्वभूतात्ययस्तदा ॥ ३ ॥

उसे देखनेपर बड़े-बड़े धनुर्धर वीर उसके ऊपर लाखों बाणोंका प्रहार करते थे; परंतु सम्पूर्ण भूतोंका विनाश करनेवाले उस कालको वे वेध नहीं पाते थे ॥ ३ ॥

उत्पेदिरे महावाता दारुणाश्च दिने दिने।
वृष्ण्यन्धकविनाशाय बहवो लोमहर्षणाः ॥ ४ ॥

अब प्रतिदिन अनेक बार भयंकर आँधी उठने लगी, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाली थी। उससे वृष्णियों और अन्धकोंके विनाशकी सूचना मिल रही थी ॥ ४ ॥

विवृद्धमूषिका रथ्या विभिन्नमणिकास्तथा।
केशा नखाश्च सुप्तानामद्यन्ते मूषिकैर्निशि ॥ ५ ॥

चूहे इतने बढ़ गये थे कि वे सड़कोंपर छाये रहते थे। मिट्टीके बरतनोंमें छेद कर देते थे तथा रातमें सोये हुए मनुष्योंके केश और नख कुतरकर खा जाया करते थे ॥ ५ ॥

चीचीकूचीति वाशन्ति सारिका वृष्णिवेश्मसु।
नोपशाम्यति शब्दश्च स दिवारात्रमेव हि ॥ ६ ॥

वृष्णिवंशियोंके घरोंमें मैनाएँ दिन-रात चें-चें किया करती थीं। उनकी आवाज कभी एक क्षणके लिये भी बंद नहीं होती थी ॥ ६ ॥

अन्वकुर्वन्नुलूकानां सारसा विरुतं तथा।
अजाः शिवानां विरुतमन्वकुर्वत भारत ॥ ७ ॥

भारत! सारस उल्लुओंकी और बकरे गीदड़ोंकी बोलीकी नकल करने लगे ॥ ७ ॥

पाण्डुरा रक्तपादाश्च विहगाः कालचोदिताः।
वृष्ण्यन्धकानां गेहेषु कपोता व्यचरंस्तदा ॥ ८ ॥

कालकी प्रेरणासे वृष्णियों और अन्धकोंके घरोंमें सफेद पंख और लाल पैरोंवाले कबूतर घूमने लगे ॥ ८ ॥

व्यजायन्त खरा गोषु करभाऽश्वतरीषु च।
शुनीष्वपि बिडालाश्च मूषिका नकुलीषु च ॥ ९ ॥

गौओंके पेटसे गदहे, खचरियोंसे हाथी, कुतियोंसे बिलाव और नेवलियोंके गर्भसे चूहे पैदा होने लगे ॥ ९ ॥

नापत्रपन्त पापानि कुर्वन्तो वृष्णयस्तदा।
प्राद्विषन् ब्राह्मणांश्चापि पितॄन् देवांस्तथैव च ॥ १० ॥

उन दिनों वृष्णिवंशी खुल्लमखुल्ला पाप करते और उसके लिये लज्जित नहीं होते थे। वे ब्राह्मणों, देवताओं और पितरोंसे भी द्वेष रखने लगे ॥ १० ॥

गुरूंश्चाप्यवमन्यन्ते न तु रामजनार्दनौ।
पत्न्यः पतीनुच्चरन्त पत्नीश्च पतयस्तथा ॥ ११ ॥

इतना ही नहीं, वे गुरुजनोंका भी अपमान करते थे। केवल बलराम और श्रीकृष्णका ही तिरस्कार नहीं करते थे। पत्नियाँ पतियोंको और पति अपनी पत्नियोंको धोखा देने लगे ॥ ११ ॥

विभावसुः प्रज्वलितो वामं विपरिवर्तते।
नीललोहितमञ्जिष्ठा विसृजन्नर्चिषः पृथक् ॥ १२ ॥

अग्निदेव प्रज्वलित होकर अपनी लपटोंको वामावर्त घुमाते थे। उनसे कभी नीले रंगकी, कभी रक्त वर्णकी और कभी मजीठके रंगकी पृथक्-पृथक् लपटें निकलती थीं ॥ १२ ॥

उदयास्तमने नित्यं पुर्यां तस्यां दिवाकरः।
व्यदृश्यतासकृत् पुम्भिः कबन्धैः परिवारितः ॥ १३ ॥

उस नगरीमें रहनेवाले लोगोंको उदय और अस्तके समय सूर्यदेव प्रतिदिन बारंबार कबन्धोंसे घिरे दिखायी देते थे ॥ १३ ॥

महानसेषु सिद्धेषु संस्कृतेऽतीव भारत।
आहार्यमाणे कृमयो व्यदृश्यन्त सहस्रशः ॥ १४ ॥

अच्छी तरह छौंक-बघारकर जो रसोइयाँ तैयार की जाती थीं, उन्हें परोसकर जब लोग भोजनके लिये बैठते थे, तब उनमें हजारों कीड़े दिखायी देने लगते थे ॥ १४ ॥

पुण्याहे वाच्यमाने तु जपत्सु च महात्मसु।
अभिधावन्तः श्रूयन्ते न चादृश्यत कश्चन ॥ १५ ॥

जब पुण्याहवाचन किया जाता और महात्मा पुरुष जप करने लगते थे, उस समय कुछ लोगोंके दौड़नेकी आवाज सुनायी देती थी; परंतु कोई दिखायी नहीं देता था ॥ १५ ॥

परस्परं च नक्षत्रं हन्यमानं पुनः पुनः।
ग्रहैरपश्यन् सर्वे ते नात्मनस्तु कथंचन ॥ १६ ॥

सब लोग बारंबार यह देखते थे कि नक्षत्र आपसमें तथा ग्रहोंके साथ भी टकरा जाते हैं, परंतु कोई भी किसी तरह अपने नक्षत्रको नहीं देख पाता था ॥ १६ ॥

नदन्तं पाञ्चजन्यं च वृष्ण्यन्धकनिवेशने।
समन्तात् पर्यवाशन्त रासभा दारुणस्वराः ॥ १७ ॥

जब भगवान् श्रीकृष्णका पाञ्चजन्य शङ्ख बजता था, तब वृष्णियों और अन्धकोंके घरके आसपास चारों ओर भयंकर स्वरवाले गदहे रेंकने लगते थे ॥ १७ ॥

एवं पश्यन् हृषीकेशः सम्प्राप्तं कालपर्ययम्।
त्रयोदश्याममावास्यां तान् दृष्ट्वा प्राब्रवीदिदम् ॥ १८ ॥

इस तरह कालका उलट-फेर प्राप्त हुआ देख और त्रयोदशी तिथिको अमावास्याका संयोग जान भगवान् श्रीकृष्णने सब लोगोंसे कहा— ॥ १८ ॥

चतुर्दशी पञ्चदशी कृतेयं राहुणा पुनः।
प्राप्ते वै भारते युद्धे प्राप्ता चाद्य क्षयाय नः ॥ १९ ॥

'वीरो! इस समय राहुने फिर चतुर्दशीको ही अमावास्या

बना दिया है । महाभारतयुद्धके समय जैसा योग था वैसा ही आज भी है । यह सब हमलोगोंके विनाशका सूचक है' ॥ १९ ॥

विमृशन्नेव कालं तं परिचिन्त्य जनार्दनः ।
मेने प्राप्तं स षट्त्रिंशं वर्षं वै केशिसूदनः ॥ २० ॥

इस प्रकार समयका विचार करते हुए केशिहन्ता श्रीकृष्णने जब उसका विशेष चिन्तन किया, तब उन्हें मालूम हुआ कि महाभारतयुद्धके बाद यह छत्तीसवाँ वर्ष आ पहुँचा ॥ २० ॥

पुत्रशोकाभिसंतप्ता गान्धारी हतबान्धवा ।
यदनुव्यांजहारार्ता तदिदं समुपागमत् ॥ २१ ॥

वे बोले—'बन्धु-बान्धवोंके मारे जानेपर पुत्रशोकसे संतप्त हुई गान्धारी देवीने अत्यन्त व्यथित होकर हमारे कुलके लिये जो शाप दिया था, उसके सफल होनेका यह समय आ गया है ॥ २१ ॥

इदं च तदनुप्राप्तमब्रवीद् यद् युधिष्ठिरः ।
पुरा व्यूढेष्वनीकेषु दृष्ट्वोत्पातान् सुदारुणान् ॥ २२ ॥

'पूर्वकालमें कौरव-पाण्डवोंकी सेनाएँ जब व्यूहबद्ध होकर आमने-सामने खड़ी हुईं, उस समय भयानक उत्पातोंको देखकर युधिष्ठिरने जो कुछ कहा था, वैसा ही लक्षण इस समय भी उपस्थित है' ॥ २२ ॥

इत्युक्त्वा वासुदेवस्तु चिकीर्षुः सत्यमेव तत् ।
आज्ञापयामास तदा तीर्थयात्रामरिंदमः ॥ २३ ॥

ऐसा कहकर शत्रुदमन भगवान् श्रीकृष्णने गान्धारीके उस कथनको सत्य करनेकी इच्छासे यदुवंशियोंको उस समय तीर्थयात्राके लिये आज्ञा दी ॥ २३ ॥

अघोषयन्त पुरुषास्तत्र केशवशासनात् ।
तीर्थयात्रा समुद्रे वः कार्येति पुरुषर्षभाः ॥ २४ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके आदेशसे राजकीय पुरुषोंने उस पुरीमें यह घोषणा कर दी कि 'पुरुषप्रवर यादवो ! तुम्हें समुद्रमें ही तीर्थयात्राके लिये चलना चाहिये । अर्थात् सबको प्रभासक्षेत्रमें उपस्थित होना चाहिये' ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि उत्पातदर्शने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत मौसलपर्वमें उत्पातदर्शनविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

कृतवर्मा आदि समस्त यादवोंका परस्पर संहार

वैशम्पायन उवाच

काली स्त्री पाण्डुरैर्दन्तैः प्रविश्य हसती निशि ।
स्त्रियः स्वप्नेषु मुष्णन्ती द्वारकां परिधावति ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! द्वारकाके लोग रातको स्वप्नोंमें देखते थे कि एक काले रंगकी स्त्री अपने सफेद दाँतोंको दिखा-दिखाकर हँसती हुई आयी है और घरोंमें प्रवेश करके स्त्रियोंका सौभाग्य-चिह्न लूटती हुई सारी द्वारकामें दौड़ लगा रही है ॥ १ ॥

अग्निहोत्रनिकेतेषु वास्तुमध्येषु वेश्मसु ।
वृष्ण्यन्धकानखादन्त स्वप्ने गृध्रा भयानकाः ॥ २ ॥

अग्निहोत्रगृहोंमें जिनके मध्यभागमें वास्तुकी पूजा-प्रतिष्ठा हुई है, ऐसे घरोंमें भयंकर गृध्र आकर वृष्णि और अन्धक-वंशके मनुष्योंको पकड़-पकड़कर खा रहे हैं । यह भी स्वप्नमें दिखायी देता था ॥ २ ॥

अलंकाराश्च छत्रं च ध्वजाश्च कवचानि च ।
ह्रियमाणान्यदृश्यन्त रक्षोभिः सुभयानकैः ॥ ३ ॥

अत्यन्त भयानक राक्षस उनके आभूषण, छत्र, ध्वजा और कवच चुराकर भागते देखे जाते थे ॥ ३ ॥

तच्चाग्निदत्तं कृष्णस्य वज्रनाभमयोमयम् ।
दिवमाचक्रमे चक्रं वृष्णीनां पश्यतां तदा ॥ ४ ॥

जिसकी नाभिमें वज्र लगा हुआ था, जो सब-का-सब लोहेका ही बना था, वह अग्निदेवका दिया हुआ श्रीविष्णुका चक्र वृष्णिवंशियोंके देखते-देखते दिव्य लोकमें चला गया ॥ ४ ॥

युक्तं रथं दिव्यमादित्यवर्णं
हया हरन् पश्यतो दारुकस्य ।
ते सागरस्योपरिष्टादवर्तन्
मनोजवाश्चतुरो वाजिमुख्याः ॥ ५ ॥

भगवान्‌का जो सूर्यके समान तेजस्वी और जुता हुआ दिव्य रथ था, उसे दारुकके देखते-देखते घोड़े उड़ा ले गये । वे मनके समान वेगशाली चारों श्रेष्ठ घोड़े समुद्रके जलके ऊपर-ऊपरसे ही चले गये ॥ ५ ॥

तालः सुपर्णश्च महाध्वजौ तौ
सुपूजितौ रामजनार्दनाभ्याम् ।
उच्चैर्जह्रुरप्सरसो दिवानिशं
वाचश्चोचुर्गम्यतां तीर्थयात्रा ॥ ६ ॥

बलराम और श्रीकृष्ण जिनकी सदा पूजा करते थे, उन ताल और गरुड़के चिह्नसे युक्त दोनों विशाल ध्वजोंको अप्सराएँ ऊँचे उठा ले गयीं और दिन-रात लोगोंसे यह बात कहने लगीं कि 'अब तुमलोग तीर्थयात्राके लिये निकलो' ॥ ६ ॥

ततो जिगमिषन्तस्ते वृष्ण्यन्धकमहारथाः ।
सान्तःपुरास्तदा तीर्थयात्रामैच्छन् नरर्षभाः ॥ ७ ॥

तदनन्तर पुरुषश्रेष्ठ वृष्णि और अन्धक महारथियोंने अपनी स्त्रियोंके साथ उस समय तीर्थयात्रा करनेका विचार किया। अब उनमें द्वारका छोड़कर अन्यत्र जानेकी इच्छा हो गयी थी ॥ ७ ॥

ततो भोज्यं च भक्ष्यं च पेयं चान्धकवृष्णयः ।
बहु नानाविधं चक्रुर्मद्यं मांसमनेकशः ॥ ८ ॥

तब अन्धकों और वृष्णियोंने नाना प्रकारके भक्ष्य, भोज्य, पेय, मद्य और भाँति-भाँतिके मांस तैयार कराये ॥ ८ ॥

ततः सैनिकवर्गाश्च निर्ययुर्नगराद् बहिः ।
यानैरश्वैर्गजैश्चैव श्रीमन्तस्तिग्मतेजसः ॥ ९ ॥

इसके बाद सैनिकोंके समुदाय, जो शोभासम्पन्न और प्रचण्ड तेजस्वी थे, रथ, घोड़े और हाथियोंपर सवार होकर नगरसे बाहर निकले ॥ ९ ॥

ततः प्रभासे न्यवसन् यथोद्दिष्टं यथागृहम् ।
प्रभूतभक्ष्यपेयास्ते सदारा यादवास्तदा ॥ १० ॥

उस समय स्त्रियोंसहित समस्त यदुवंशी प्रभासक्षेत्रमें पहुँचकर अपने-अपने अनुकूल घरोंमें ठहर गये। उनके साथ खाने-पीनेकी बहुत-सी सामग्री थी ॥ १० ॥

निविष्टांस्तान् निशम्याथ समुद्रान्ते स योगवित् ।
जगामामन्त्र्य तान् वीरानुद्धवोऽर्थविशारदः ॥ ११ ॥

परमार्थ-ज्ञानमें कुशल और योगवेत्ता उद्धवजीने देखा कि समस्त वीर यदुवंशी समुद्रतटपर डेरा डाले बैठे हैं। तब वे उन सबसे पूछकर— विदा लेकर वहाँसे चल दिये ॥ ११ ॥

तं प्रस्थितं महात्मानमभिवाद्य कृताञ्जलिम् ।
जानन् विनाशं वृष्णीनां नैच्छद् वारयितुं हरिः ॥ १२ ॥

महात्मा उद्धव भगवान् श्रीकृष्णको हाथ जोड़कर प्रणाम करके जब वहाँसे प्रस्थित हुए, तब श्रीकृष्णने उन्हें वहाँ रोकनेकी इच्छा नहीं की; क्योंकि वे जानते थे कि यहाँ ठहरे हुए वृष्णिवंशियोंका विनाश होनेवाला है ॥ १२ ॥

ततः कालपरीतास्ते वृष्ण्यन्धकमहारथाः ।
अपश्यन्नुद्धवं यान्तं तेजसाऽऽवृत्य रोदसी ॥ १३ ॥

कालसे घिरे हुए वृष्णि और अन्धक महारथियोंने देखा कि उद्धव अपने तेजसे पृथ्वी और आकाशको व्याप्त करके यहाँसे चले जा रहे हैं ॥ १३ ॥

ब्राह्मणार्थेषु यत् सिद्धमन्नं तेषां महात्मनाम् ।
तद् वानरेभ्यः प्रददुः सुरागन्धसमन्वितम् ॥ १४ ॥

उन महामनस्वी यादवोंके यहाँ ब्राह्मणोंको जिमानेके लिये जो अन्न तैयार किया गया था, उसमें मदिरा मिलाकर उसकी गन्धसे युक्त हुए उस भोजनको उन्होंने वानरोंको बाँट दिया॥

ततस्तूर्यशताकीर्णं नटनर्तकसंकुलम् ।
अवर्तत महापानं प्रभासे तिग्मतेजसाम् ॥ १५ ॥

तदनन्तर वहाँ सैकड़ों प्रकारके बाजे बजने लगे। सब ओर नटों और नर्तकोंका नृत्य होने लगा। इस प्रकार प्रभासक्षेत्रमें प्रचण्ड तेजस्वी यादवोंका वह महापान आरम्भ हुआ॥

कृष्णस्य संनिधौ रामः सहितः कृतवर्मणा ।
अपिबद् युयुधानश्च गदो बभ्रुस्तथैव च ॥ १६ ॥

श्रीकृष्णके पास ही कृतवर्मासहित बलराम, सात्यकि, गद और बभ्रु पीने लगे ॥ १६ ॥

ततः परिषदो मध्ये युयुधानो मदोत्कटः ।
अब्रवीत् कृतवर्माणमवहास्यावमन्य च ॥ १७ ॥

पीते-पीते सात्यकि मदसे उन्मत्त हो उठे और यादवोंकी उस सभामें कृतवर्माका उपहास तथा अपमान करते हुए इस प्रकार बोले— ॥ १७ ॥

कः क्षत्रियोऽहन्यमानः सुप्तान् हन्यान्मृतानिव ।
तन्न मृष्यन्ति हार्दिक्य यादवा यत् त्वया कृतम् ॥ १८ ॥

'हार्दिक्य! तेरे सिवा दूसरा कौन ऐसा क्षत्रिय होगा, जो अपने ऊपर आघात न होते हुए भी रातमें मुर्दोंके समान अचेत पड़े हुए मनुष्योंकी हत्या करेगा। तूने जो अन्याय किया है, उसे यदुवंशी कभी क्षमा नहीं करेंगे' ॥ १८ ॥

इत्युक्ते युयुधानेन पूजयामास तद्वचः ।
प्रद्युम्नो रथिनां श्रेष्ठो हार्दिक्यमवमन्य च ॥ १९ ॥

सात्यकिके ऐसा कहनेपर रथियोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नने कृतवर्माका तिरस्कार करके सात्यकिके उपर्युक्त वचनकी प्रशंसा एवं अनुमोदन किया ॥ १९ ॥

ततः परमसंक्रुद्धः कृतवर्मा तमब्रवीत् ।
निर्दिशन्निव सावज्ञं तदा सव्येन पाणिना ॥ २० ॥

यह सुनकर कृतवर्मा अत्यन्त कुपित हो उठा और बायें हाथसे अंगुलिका इशारा करके सात्यकिका अपमान करता हुआ बोला— ॥ २० ॥

भूरिश्रवाश्छिन्नबाहुर्युद्धे प्रायगतस्त्वया ।
वधेन सुनृशंसेन कथं वीरेण पातितः ॥ २१ ॥

'अरे! युद्धमें भूरिश्रवाकी बाँह कट गयी थी और वे मरणान्त उपवासका निश्चय करके पृथ्वीपर बैठ गये थे, उस अवस्थामें तूने वीर कहलाकर भी उनकी क्रूरतापूर्ण हत्या क्यों की?' ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा केशवः परवीरहा ।
तिर्यक्सरोषया दृष्ट्या वीक्षांचक्रे स मन्युमान् ॥ २२ ॥

कृतवर्माकी यह बात सुनकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको क्रोध आ गया। उन्होंने रोषपूर्ण टेढ़ी दृष्टिसे उसकी ओर देखा ॥ २२ ॥

मणिः स्यमन्तकश्चैव यः स सत्राजितोऽभवत् ।
तां कथां श्रावयामास सात्यकिर्मधुसूदनम् ॥ २३ ॥

उस समय सात्यकिने मधुसूदनको सत्राजित्के पास जो स्यमन्तकमणि थी, उसकी कथा कह सुनायी (अर्थात् यह

बताया कि कृतवर्माने ही मणिके लोभसे सत्राजित्‌का वध करवाया था) ॥ २३ ॥

तच्छ्रुत्वा केशवस्याङ्कमगमद् रुदती तदा ।
सत्यभामा प्रकुपिता कोपयन्ती जनार्दनम् ॥ २४ ॥

यह सुनकर सत्यभामाके क्रोधकी सीमा न रही । वह श्रीकृष्णका क्रोध बढ़ाती और रोती हुई उनके अङ्कमें चली गयी ॥ २४ ॥

तत उत्थाय सक्रोधः सात्यकिर्वाक्यमब्रवीत् ।
पञ्चानां द्रौपदेयानां धृष्टद्युम्नशिखण्डिनोः ॥ २५ ॥
एष गच्छामि पदवीं सत्येन च तथा शपे ।
सौप्तिके ये च निहताः सुप्ता येन दुरात्मना ॥ २६ ॥
द्रोणपुत्रसहायेन पापेन कृतवर्मणा ।
समाप्तमायुरस्याद्य यशश्चैव सुमध्यमे ॥ २७ ॥

तब क्रोधमें भरे हुए सात्यकि उठे और इस प्रकार बोले—'सुमध्यमे ! यह देखो, मैं द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंके, धृष्टद्युम्नके और शिखण्डीके मार्गपर चलता हूँ; अर्थात् उनके मारनेका बदला लेता हूँ और सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ कि जिस पापी दुरात्मा कृतवर्माने द्रोणपुत्रका सहायक बनकर रातमें सोते समय उन वीरोंका वध किया था, आज उसकी भी आयु और यशका अन्त हो गया' ॥ २५–२७ ॥

इत्येवमुक्त्वा खड्गेन केशवस्य समीपतः ।
अभिद्रुत्य शिरः क्रुद्धश्चिच्छेद कृतवर्मणः ॥ २८ ॥

ऐसा कहकर कुपित हुए सात्यकिने श्रीकृष्णके पाससे दौड़कर तलवारसे कृतवर्माका सिर काट लिया ॥ २८ ॥
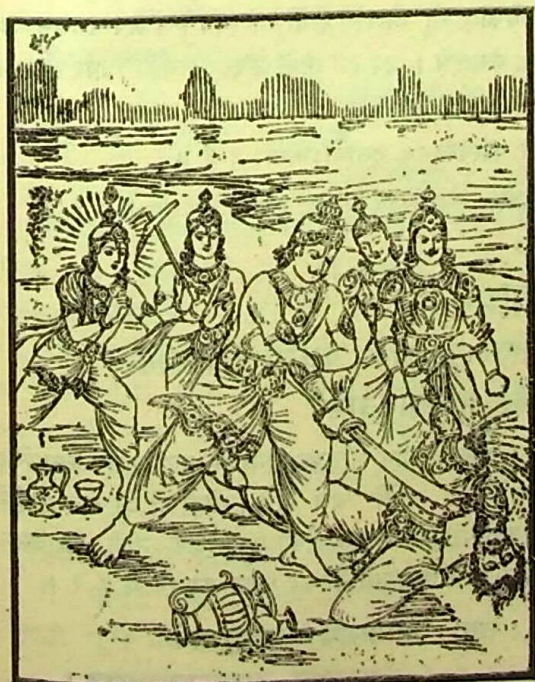
तथान्यानपि निघ्नन्तं युयुधानं समन्ततः ।
अभ्यधावद्धृषीकेशो विनिवारयितुं तदा ॥ २९ ॥

फिर वे दूसरे-दूसरे लोगोंका भी सब ओर घूमकर वध करने लगे । यह देख भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें रोकनेके लिये दौड़े ॥

एकीभूतास्ततः सर्वे कालपर्यायचोदिताः ।
भोजान्धका महाराज शैनेयं पर्यवारयन् ॥ ३० ॥

महाराज ! इतनेहीमें कालकी प्रेरणासे भोज और अन्धक-वंशके समस्त वीरोंने एकमत होकर सात्यकिको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३० ॥

तान् दृष्ट्वा पततस्तूर्णमभिक्रुद्धाञ्जनार्दनः ।
न चुक्रोध महातेजा जानन् कालस्य पर्ययम् ॥ ३१ ॥

उन्हें कुपित होकर तुरंत धावा करते देख महातेजस्वी श्रीकृष्ण कालके उलट-फेरको जाननेके कारण कुपित नहीं हुए॥

ते तु पानमदाविष्टाश्चोदिताः कालधर्मणा ।
युयुधानमथाभ्यघ्नन्नुच्छिष्टैर्भाजनैस्तदा ॥ ३२ ॥

वे सब-के-सब मदिरापानजनित मदके आवेशसे उन्मत्त हो उठे थे । इधर कालधर्मा मृत्यु भी उन्हें प्रेरित कर रहा था । इसलिये वे जूठे बरतनोंसे सात्यकिपर आघात करने लगे ॥ ३२॥

हन्यमाने तु शैनेये क्रुद्धो रुक्मिणिनन्दनः ।
तदनन्तरमागच्छन्मोक्षयिष्यन् शिनेः सुतम् ॥ ३३ ॥

जब सात्यकि इस प्रकार मारे जाने लगे, तब क्रोधमें भरे हुए रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न उन्हें संकटसे बचानेके लिये स्वयं उनके और आक्रमणकारियोंके बीचमें कूद पड़े ॥ ३३ ॥

स भोजैः सह संयुक्तः सात्यकिश्चान्धकैः सह ।
व्यायच्छमानौ तौ वीरौ बाहुद्रविणशालिनौ ॥ ३४ ॥

प्रद्युम्न भोजोंसे भिड़ गये और सात्यकि अन्धकोंके साथ जूझने लगे । अपनी भुजाओंके बलसे सुशोभित होनेवाले वे दोनों वीर बड़े परिश्रमके साथ विरोधियोंका सामना करते रहे॥

बहुत्वान्निहतौ तत्र उभौ कृष्णस्य पश्यतः ।
हतं दृष्ट्वा च शैनेयं पुत्रं च यदुनन्दनः ॥ ३५ ॥
एरकाणां ततो मुष्टिं कोपाज्जग्राह केशवः ।

परंतु विपक्षियोंकी संख्या बहुत अधिक थी; इसलिये वे दोनों श्रीकृष्णके देखते-देखते उनके हाथसे मार डाले गये । सात्यकि तथा अपने पुत्रको मारा गया देख यदुनन्दन श्रीकृष्ण-ने कुपित होकर एक मुट्ठी एरका उखाड़ ली ॥ ३५½ ॥

तदभून्मुसलं घोरं वज्रकल्पमयोमयम् ॥ ३६ ॥
जघान कृष्णस्तांस्तेन ये ये प्रमुखतोऽभवन् ।

उनके हाथमें आते ही वह घास वज्रके समान भयंकर लोहेका मूसल बन गयी । फिर तो जो-जो सामने आये, उन सबको श्रीकृष्णने उसीसे मार गिराया ॥ ३६½ ॥

ततोऽन्धकाश्च भोजाश्च शैनेया वृष्णयस्तथा ॥ ३७ ॥
जघ्नुरन्योन्यमाक्रन्दे मुसलैः कालचोदिताः ।

उस समय कालसे प्रेरित हुए अन्धक, भोज, शिनि और वृष्णिवंशके लोगोंने उस भीषण मारकाटमें उन्हीं मूसलोंसे एक-दूसरेको मारना आरम्भ किया ॥ ३७½ ॥

यस्तेषामेरकां कश्चिज्जग्राह कुपितो नृप ॥ ३८ ॥
वज्रभूतेव सा राजन्नदृश्यत तदा विभो ।

नरेश्वर ! उनमेंसे जो कोई भी क्रोधमें आकर एरका नामक घास लेता, उसीके हाथमें वह वज्रके समान दिखायी देने लगती थी ॥ ३८½ ॥

तृणं च मुसलीभूतमपि तत्र व्यदृश्यत ॥ ३९ ॥
ब्रह्मदण्डकृतं सर्वमिति तद् विद्धि पार्थिव ।

पृथ्वीनाथ ! एक साधारण तिनका भी मूसल होकर दिखायी देता था; यह सब ब्राह्मणोंके शापका ही प्रभाव समझो॥

अविध्यान् विध्यते राजन्प्रक्षिपन्ति स्म यत् तृणम् ॥
तद् वज्रभूतं मुसलं व्यदृश्यत तदा दृढम् ।

राजन् ! वे जिस किसी भी तृणका प्रहार करते, वह अभेद्य वस्तुका भी भेदन कर डालता था और वज्रमय मूसलके समान सुदृढ़ दिखायी देता था ॥ ४०½ ॥

अवधीत् पितरं पुत्रः पिता पुत्रं च भारत ॥ ४१ ॥
मत्ताः परिपतन्ति स्म योधयन्तः परस्परम् ।
पतङ्गा इव चाग्नौ ते निपेतुः कुकुरान्धकाः ॥ ४२ ॥

भरतनन्दन ! उस मूसलसे पिताने पुत्रको और पुत्रने पिताको मार डाला । जैसे पतिंगे आगमें कूद पड़ते हैं, उसी प्रकार कुकुर और अन्धकवंशके लोग परस्पर जूझते हुए एक दूसरेपर मतवाले होकर टूटते थे ॥ ४१-४२ ॥

नासीत् पलायने बुद्धिर्वध्यमानस्य कस्यचित् ।
तत्रापश्यन्महाबाहुर्जानन् कालस्य पर्ययम् ॥ ४३ ॥
मुसलं समवष्टभ्य तस्थौ स मधुसूदनः ।

वहाँ मारे जानेवाले किसी योद्धाके मनमें वहाँसे भाग जानेका विचार नहीं होता था । कालचक्रके इस परिवर्तनको जानते हुए महाबाहु मधुसूदन वहाँ चुपचाप सब कुछ देखते रहे और मूसलका सहारा लेकर खड़े रहे ॥ ४३½ ॥

साम्बं च निहतं दृष्ट्वा चारुदेष्णं च माधवः ॥ ४४ ॥
प्रद्युम्नं चानिरुद्धं च ततश्चुक्रोध भारत ।

भारत ! श्रीकृष्ण जब अपने पुत्र साम्ब, चारुदेष्ण और प्रद्युम्नको तथा पोते अनिरुद्धको भी मारा गया देखा, तब उनकी क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी ॥ ४४½ ॥

गदं वीक्ष्य शयानं च भृशं कोपसमन्वितः ॥ ४५ ॥
स निःशेषं तदा चक्रे शार्ङ्गचक्रगदाधरः ।

अपने छोटे भाई गदको रणशय्यापर पड़ा देख वे अत्यन्त रोषसे आगबबूला हो उठे; फिर तो शार्ङ्ग धनुष, चक्र और गदा धारण करनेवाले श्रीकृष्णने उस समय शेष बचे हुए समस्त यादवोंका संहार कर डाला ॥ ४५½ ॥

तन्निघ्नन्तं महातेजा बभ्रुः परपुरंजयः ॥ ४६ ॥
दारुकश्चैव दाशार्हमूचतुर्यन्निबोध तत् ।

शत्रुओंकी नगरीपर विजय पानेवाले महातेजस्वी बभ्रु और दारुकने उस समय यादवोंका संहार करते हुए श्रीकृष्णसे जो कुछ कहा, उसे सुनो—॥ ४६½ ॥

भगवन् निहताः सर्वे त्वया भूयिष्ठशो नराः ।
रामस्य पदमन्विच्छ तत्र गच्छाम यत्र सः ॥ ४७ ॥

'भगवन् ! अब सबका विनाश हो गया । इनमेंसे अधिकांश तो आपके हाथों मारे गये हैं । अब बलरामजीका पता लगाइये । अब हम तीनों उधर ही चलें, जिधर बलरामजी गये हैं' ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि कृतवर्मादीनां परस्परहनने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत मौसलपर्वमें कृतवर्मा आदि समस्त यादवोंका संहारविषयक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

दारुकका अर्जुनको सूचना देनेके लिये हस्तिनापुर जाना, बभ्रुका देहावसान एवं बलराम और श्रीकृष्णका परमधाम-गमन

वैशम्पायन उवाच

ततो ययुर्दारुकः केशवश्च
बभ्रुश्च रामस्य पदं पतन्तः ।
अथापश्यन् राममनन्तवीर्यं
वृक्षे स्थितं चिन्तयानं विविक्ते ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर दारुक, बभ्रु और भगवान् श्रीकृष्ण तीनों ही बलरामजीके चरणचिह्न देखते हुए वहाँसे चल दिये । थोड़ी ही देर बाद उन्होंने अनन्त पराक्रमी बलरामजीको एक वृक्षके नीचे विराजमान देखा, जो एकान्तमें बैठकर ध्यान कर रहे थे ॥ १ ॥

ततः समासाद्य महानुभावं
कृष्णस्तदा दारुकमन्वशासत् ।

गत्वा कुरून् सर्वमिमं महान्तं
पार्थाय शंसस्व वधं यदूनाम् ॥ २ ॥

उन महानुभावके पास पहुँचकर श्रीकृष्णने तत्काल दारुकको आज्ञा दी कि 'तुम शीघ्र ही कुरुदेशकी राजधानी हस्तिनापुरमें जाकर अर्जुनको यादवोंके इस महासंहारका सारा समाचार कह सुनाओ ॥ २ ॥

ततोऽर्जुनः क्षिप्रमिहोपयातु
श्रुत्वा मृतान् यादवान् ब्रह्मशापात्।
इत्येवमुक्तः स ययौ रथेन
कुरूंस्तदा दारुको नष्टचेताः ॥ ३ ॥

'ब्राह्मणोंके शापसे यदुवंशियोंकी मृत्युका समाचार पाकर अर्जुन शीघ्र ही द्वारका चले आवें।' श्रीकृष्णके इस प्रकार आज्ञा देनेपर दारुक रथपर सवार हो तत्काल कुरुदेशको चला गया। वह भी इस महान् शोकसे अचेत-सा हो रहा था॥

ततो गते दारुके केशवोऽथ
दृष्ट्वान्तिके बभ्रुमुवाच वाक्यम्।
स्त्रियो भवान् रक्षितुं यातु शीघ्रं
नैता हिंस्युर्दस्यवो वित्तलोभात् ॥ ४ ॥

दारुकके चले जानेपर भगवान् श्रीकृष्णने अपने निकट खड़े हुए बभ्रुसे कहा—'आप स्त्रियोंकी रक्षाके लिये शीघ्र ही द्वारकाको चले जाइये। कहीं ऐसा न हो कि डाकू धनकी लालचसे उनकी हत्या कर डालें' ॥ ४ ॥

स प्रस्थितः केशवेनानुशिष्टो
मदातुरो ज्ञातिवधार्दितश्च।
तं विश्रान्तं संनिधौ केशवस्य
दुरन्तमेकं सहसैव बभ्रुम् ॥ ५ ॥
ब्रह्मानुशप्तमवधीन्महद् वै
कूटे युक्तं मुसलं लुब्धकस्य।
ततो दृष्ट्वा निहतं बभ्रुमाह
कृष्णोऽग्रजं भ्रातरमुग्रतेजाः ॥ ६ ॥

श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर बभ्रु वहाँसे प्रस्थित हुए। वे मदिराके मदसे आतुर थे ही, भाई-बन्धुओंके वधसे भी अत्यन्त शोकपीड़ित थे। वे श्रीकृष्णके निकट अभी विश्राम कर ही रहे थे कि ब्राह्मणोंके शापके प्रभावसे उत्पन्न हुआ एक महान् दुर्धर्ष मूसल किसी व्याधके बाणसे लगा हुआ सहसा उनके ऊपर आकर गिरा। उसने तुरंत ही उनके प्राण ले लिये। बभ्रुको मारा गया देख उग्र तेजस्वी श्रीकृष्णने अपने बड़े भाईसे कहा—॥ ५-६ ॥

इहैव त्वं मां प्रतीक्षस्व राम
यावत् स्त्रियो ज्ञातिवशाः करोमि।
ततः पुरीं द्वारवतीं प्रविश्य
जनार्दनः पितरं प्राह वाक्यम् ॥ ७ ॥

'भैया बलराम! आप यहीं रहकर मेरी प्रतीक्षा करें। जबतक मैं स्त्रियोंको कुटुम्बी जनोंके संरक्षणमें सौंप आता हूँ।' यों कहकर श्रीकृष्ण द्वारिकापुरीमें गये और वहाँ अपने पिता वसुदेवजीसे बोले—॥ ७ ॥

स्त्रियो भवान् रक्षतु नः समग्रा
धनंजयस्यागमनं प्रतीक्षन्।
रामो वनान्ते प्रतिपालयन्मा-
मास्तेऽद्याहं तेन समागमिष्ये ॥ ८ ॥

'तात! आप अर्जुनके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए हमारे कुलकी समस्त स्त्रियोंकी रक्षा करें। इस समय बलरामजी मेरी राह देखते हुए वनके भीतर बैठे हैं। मैं आज ही वहाँ जाकर उनसे मिलूँगा॥ ८ ॥

दृष्टं मयेदं निधनं यदूनां
राज्ञां च पूर्वं कुरुपुङ्गवानाम्।
नाहं विना यदुभिर्यादवानां
पुरीमिमामशकं द्रष्टुमद्य ॥ ९ ॥

'मैंने इस समय यह यदुवंशियोंका विनाश देखा है और पूर्वकालमें कुरुकुलके श्रेष्ठ राजाओंका भी संहार देख चुका हूँ। अब मैं उन यादव वीरोंके विना उनकी इस पुरीको देखनेमें भी असमर्थ हूँ॥ ९ ॥

तपश्चरिष्यामि निबोध तन्मे
रामेण सार्धं वनमभ्युपेत्य।
इतीदमुक्त्वा शिरसा च पादौ
संस्पृश्य कृष्णस्त्वरितो जगाम ॥ १० ॥

'अब मुझे क्या करना है, यह सुन लीजिये। वनमें जाकर मैं बलरामजीके साथ तपस्या करूँगा।' ऐसा कहकर उन्होंने

अपने सिरसे पिताके चरणोंका स्पर्श किया। फिर वे भगवान् श्रीकृष्ण वहाँसे तुरंत चल दिये ॥ १० ॥

ततो महान् निनदः प्रादुरासीत्
सस्त्रीकुमारस्य पुरस्य तस्य।
अथाब्रवीत् केशवः संनिवर्त्य
शब्दं श्रुत्वा योषितां क्रोशतीनाम् ॥ ११ ॥

इतनेहीमें उस नगरकी स्त्रियों और बालकोंके रोनेका महान् आर्तनाद सुनायी पड़ा। विलाप करती हुई उन युवतियोंके करुणक्रन्दन सुनकर श्रीकृष्ण पुनः लौट आये और उन्हें सान्त्वना देते हुए बोले—॥ ११ ॥

पुरीमिमामेष्यति सव्यसाची
स वो दुःखान्मोचयिता नराग्र्यः।
ततो गत्वा केशवस्तं ददर्श
रामं वने स्थितमेकं विविक्ते ॥ १२ ॥

'देखिये! नरश्रेष्ठ अर्जुन शीघ्र ही इस नगरमें आनेवाले हैं। वे तुम्हें संकटसे बचायेंगे।' यह कहकर वे चले गये। वहाँ जाकर श्रीकृष्णने वनके एकान्त प्रदेशमें बैठे हुए बलरामजीका दर्शन किया ॥ १२ ॥

अथापश्यद् योगयुक्तस्य तस्य
नागं मुखान्निश्चरन्तं महान्तम्।
श्वेतं ययौ स ततः प्रेक्ष्यमाणो
महार्णवो येन महानुभावः ॥ १३ ॥

बलरामजी योगयुक्त हो समाधि लगाये बैठे थे। श्रीकृष्णने उनके मुखसे एक श्वेत वर्णके विशालकाय सर्पको निकलते देखा। उनसे देखा जाता हुआ वह महानुभाव नाग जिस ओर महासागर था, उसी मार्गपर चल दिया ॥ १३ ॥
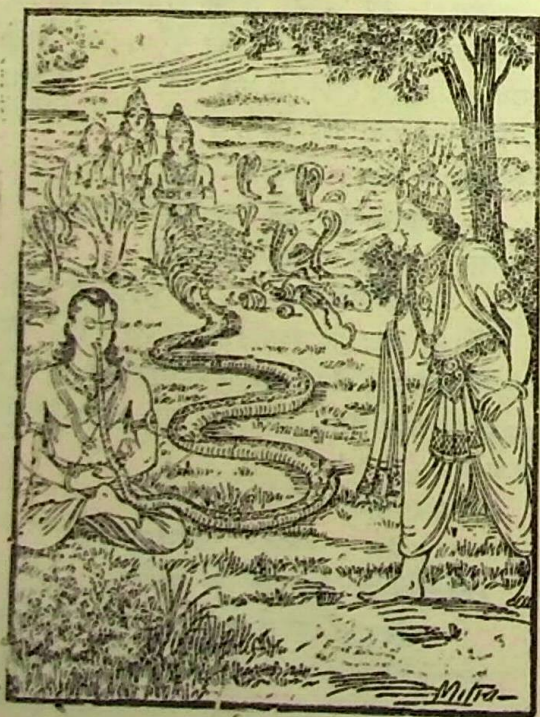
सहस्रशीर्षः पर्वताभोगवर्ष्मा
रक्ताननः स्वां तनुं तां विमुच्य।
सम्यक् च तं सागरः प्रत्यगृह्णा-
न्नागा दिव्याः सरितश्चैव पुण्याः ॥ १४ ॥

वह अपने पूर्व शरीरको त्यागकर इस रूपमें प्रकट हुआ था। उसके सहस्रों मस्तक थे। उसका विशाल शरीर पर्वतके विस्तार-सा जान पड़ता था। उसके मुखकी कान्ति लाल रंगकी थी। समुद्रने स्वयं प्रकट होकर उस नागका—साक्षात् भगवान् अनन्तका भलीभाँति स्वागत किया। दिव्य नागों और पवित्र सरिताओंने भी उनका सत्कार किया ॥ १४ ॥

कर्कोटको वासुकिस्तक्षकश्च
पृथुश्रवा अरुणः कुञ्जरश्च।
मिश्री शङ्खः कुमुदः पुण्डरीक-
स्तथा नागो धृतराष्ट्रो महात्मा ॥ १५ ॥
ह्रादः क्राथः शितिकण्ठोग्रतेजा-
स्तथा नागौ चक्रमन्दातिषण्डौ।
नागश्रेष्ठो दुर्मुखश्चाम्बरीषः
स्वयं राजा वरुणश्चापि राजन् ॥ १६ ॥

राजन्! कर्कोटक, वासुकि, तक्षक, पृथुश्रवा, अरुण, कुञ्जर, मिश्री, शङ्ख, कुमुद, पुण्डरीक, महामना धृतराष्ट्र, ह्राद, क्राथ, शितिकण्ठ, उग्रतेजा, चक्रमन्द, अतिषण्ड, नागप्रवर दुर्मुख, अम्बरीष और स्वयं राजा वरुणने भी उनका स्वागत किया ॥ १५-१६ ॥

प्रत्युद्गम्य स्वागतेनाभ्यनन्दं-
स्तेऽपूजयंश्चार्घ्यपाद्यक्रियाभिः।
ततो गते भ्रातरि वासुदेवो
जानन् सर्वा गतयो दिव्यदृष्टिः ॥ १७ ॥
वने शून्ये विचरंश्चिन्तयानो
भूमौ चाथ संविवेशाग्र्यतेजाः।
सर्वं तेन प्राक्तदा वित्तमासीद्
गान्धार्या यद् वाक्यमुक्तः स पूर्वम् ॥ १८ ॥

उपर्युक्त सब लोगोंने आगे बढ़कर उनकी अगवानी की, स्वागतपूर्वक अभिनन्दन किया और अर्घ्य-पाद्य आदि उपचारोंद्वारा उनकी पूजा सम्पन्न की। भाई बलरामके परम धाम पधारनेके पश्चात् सम्पूर्ण गतियोंको जाननेवाले दिव्यदर्शी भगवान् श्रीकृष्ण कुछ सोचते-विचारते हुए उस सूने वनमें विचरने लगे। फिर वे श्रेष्ठ तेजवाले भगवान् पृथ्वीपर बैठ गये। सबसे पहले उन्होंने वहाँ उस समय उन सारी बातोंका स्मरण किया, जिन्हें पूर्वकालमें गान्धारी देवीने कहा था ॥ १७-१८ ॥

बलरामजीका परमधाम-गमन
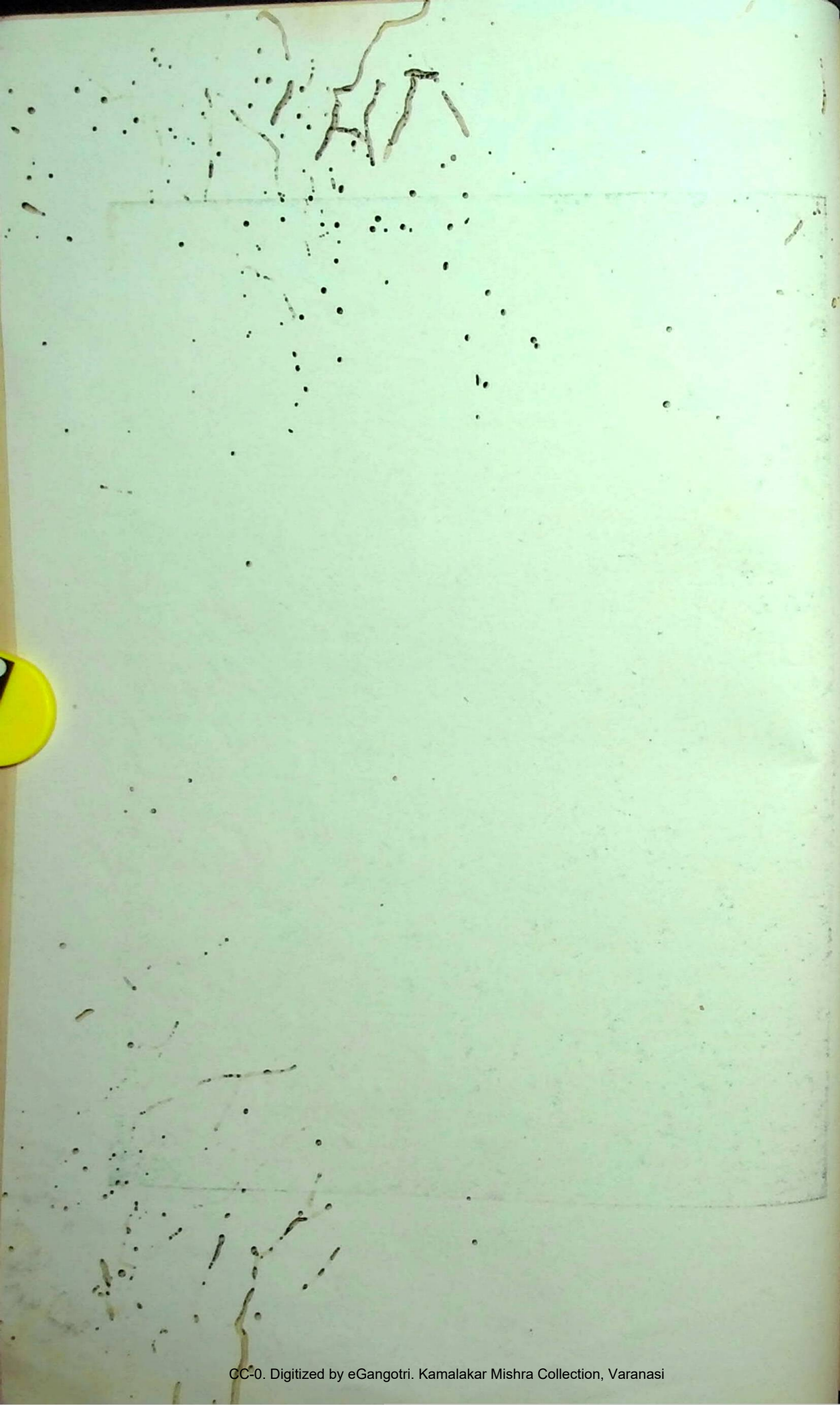
दुर्वाससा पायसोच्छिष्टलिप्ते
यच्चाप्युक्तं तच्च सस्मार वाक्यम् ।
स चिन्तयन्नन्धकवृष्णिनाशं
कुरुक्षयं चैव महानुभावः ॥ १९ ॥

जूठी खीरको शरीरमें लगानेके समय दुर्वासाने जो बात कही थी, उसका भी उन्हें स्मरण हो आया । फिर वे महानुभाव श्रीकृष्ण अन्धक, वृष्णि और कुरुकुलके विनाशकी बात सोचने लगे ॥ १९ ॥

मेने ततः संक्रमणस्य कालं
ततश्चकारेन्द्रियसंनिरोधम् ।
तथा च लोकत्रयपालनार्थ-
मात्रेयवाक्यप्रतिपालनाय ॥ २० ॥

तत्पश्चात् उन्होंने तीनों लोकोंकी रक्षा तथा दुर्वासाके वचनका पालन करनेके लिये अपने परम धाम पधारनेका उपयुक्त समय प्राप्त हुआ समझा तथा इसी उद्देश्यसे अपनी सम्पूर्ण इन्द्रिय-वृत्तियोंका निरोध किया ॥ २० ॥

देवोऽपि सन् देहविमोक्षहेतो-
र्निमित्तमैच्छत् सकलार्थतत्त्ववित् ।
स संनिरुद्धेन्द्रियवाङ्मनास्तु
शिश्ये महायोगमुपेत्य कृष्णः ॥ २१ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण अर्थोंके तत्त्ववेत्ता और अविनाशी देवता हैं । तो भी उस समय उन्होंने देहमोक्ष या ऐहलौकिक लीलाका संवरण करनेके लिये किसी निमित्तके प्राप्त होनेकी इच्छा की । फिर वे मन, वाणी और इन्द्रियोंका निरोध करके महायोग (समाधि) का आश्रय ले पृथ्वीपर लेट गये ॥२१॥

जराथ तं देशमुपाजगाम
लुब्धस्तदानीं मृगलिप्सुरुग्रः ।
स केशवं योगयुक्तं शयानं
मृगासक्तो लुब्धकः सायकेन ॥ २२ ॥
जराविध्यत् पादतले त्वरावां-
स्तं चाभितस्तज्जिघृक्षुर्जगाम ।
अथापश्यत् पुरुषं योगयुक्तं
पीताम्बरं लुब्धकोऽनेकबाहुम् ॥ २३ ॥

उसी समय जरानामक एक भयंकर व्याध मृगोंको मार ले जानेकी इच्छासे उस स्थानपर आया । उस समय श्रीकृष्ण योगयुक्त होकर सो रहे थे । मृगोंमें आसक्त हुए उस व्याधने श्रीकृष्णको भी मृग ही समझा और बड़ी उतावलीके साथ बाण मारकर उनके पैरके तलवेमें घाव कर दिया । फिर उस मृगको पकड़नेके लिये जब वह निकट आया, तब योगमें स्थित, चार भुजावाले, पीताम्बरधारी पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण पर उसकी दृष्टि पड़ी ॥ २२-२३ ॥

मत्वाऽऽत्मानं त्वपराद्धं स तस्य
पादौ जरा जगृहे शंकितात्मा ।
आश्वासयंस्तं महात्मा तदानीं
गच्छन्नूर्ध्वं रोदसी व्याप्य लक्ष्म्या ॥ २४ ॥

अब तो जरा अपनेको अपराधी मानकर मन-ही-मन बहुत डर गया । उसने भगवान् श्रीकृष्णके दोनों पैर पकड़ लिये । तब महात्मा श्रीकृष्णने उसे आश्वासन दिया और अपनी कान्तिसे पृथ्वी एवं आकाशको व्याप्त करते हुए वे ऊर्ध्वलोकमें (अपने परमधामको) चले गये ॥ २४ ॥

दिवं प्राप्तं वासवोऽथाश्विनौ च
रुद्रादित्या वसवश्चाथ विश्वे ।
प्रत्युद्ययुर्मुनयश्चापि सिद्धा
गन्धर्वमुख्याश्च सहाप्सरोभिः ॥ २५ ॥

अन्तरिक्षमें पहुँचनेपर इन्द्र, अश्विनीकुमार, रुद्र, आदित्य, वसु, विश्वेदेव, मुनि, सिद्ध, अप्सराओंसहित मुख्य-मुख्य गन्धर्वोंने आगे बढ़कर भगवान्का स्वागत किया ॥

ततो राजन् भगवानुग्रतेजा
नारायणः प्रभवश्चाव्ययश्च ।
योगाचार्यो रोदसी व्याप्य लक्ष्म्या
स्थानं प्राप स्वं महात्माप्रमेयम् ॥ २६ ॥

राजन् ! तत्पश्चात् जगत्की उत्पत्तिके कारणरूप, उग्र-तेजस्वी, अविनाशी, योगाचार्य महात्मा भगवान् नारायण अपनी प्रभासे पृथ्वी और आकाशको प्रकाशमान करते हुए अपने अप्रमेयधामको प्राप्त हो गये ॥ २६ ॥

ततो देवैर्ऋषिभिश्चापि कृष्णः
समागतश्चारणैश्चैव राजन् ।
गन्धर्वाग्र्यैरप्सरोभिर्वराभिः
सिद्धैः साध्यैश्चानतैः पूज्यमानः ॥ २७ ॥

नरेश्वर ! तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण श्रेष्ठ गन्धर्वों, सुन्दरी अप्सराओं, सिद्धों और साध्योंद्वारा विनीत भावसे पूजित हो देवताओं, ऋषियों तथा चारणोंसे भी मिले ॥२७॥

तं वै देवाः प्रत्यनन्दन्त राजन्
मुनिश्रेष्ठा ऋग्भिरानर्चुरीशम् ।
तं गन्धर्वाश्चापि तस्थुः स्तुवन्तः
प्रीत्या चैनं पुरुहूतोऽभ्यनन्दत् ॥ २८ ॥

राजन् ! देवताओंने भगवान्का अभिनन्दन किया । श्रेष्ठ महर्षियोंने ऋग्वेदकी ऋचाओंद्वारा उनकी पूजा की । गन्धर्व स्तुति करते हुए खड़े रहे तथा इन्द्रने भी प्रेमवश उनका अभिनन्दन किया ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि श्रीकृष्णस्य स्वलोकगमने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत मौसलपर्वमें श्रीकृष्णका परमधामगमनविषयक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

अर्जुनका द्वारकामें आना और द्वारका तथा श्रीकृष्ण-पत्नियोंकी दशा देखकर दुखी होना

वैशम्पायन उवाच

दारुकोऽपि कुरून् गत्वा दृष्ट्वा पार्थान् महारथान्।
आचष्ट मौसले वृष्णीनन्योन्येनोपसंहृतान् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! दारुकने भी कुरुदेशमें जाकर महारथी कुन्तीकुमारोंका दर्शन किया और उन्हें यह बताया कि समस्त वृष्णिवंशी मौसलयुद्धमें एक दूसरेके द्वारा मार डाले गये ॥ १ ॥

श्रुत्वा विनष्टान् वार्ष्णेयान् सभोजान्धककौकुरान्।
पाण्डवाः शोकसंतप्ता वित्रस्तमनसोऽभवन् ॥ २ ॥

वृष्णि, भोज, अन्धक और कुकुरवंशके वीरोंका विनाश हुआ सुनकर समस्त पाण्डव शोकसे संतप्त हो उठे। वे मन-ही-मन संत्रस्त हो गये ॥ २ ॥

ततोऽर्जुनस्तानामन्त्र्य केशवस्य प्रियः सखा।
प्रययौ मातुलं द्रष्टुं नेदमस्तीति चाब्रवीत् ॥ ३ ॥

तत्पश्चात् श्रीकृष्णके प्रिय सखा अर्जुन अपने भाइयोंसे पूछकर मामासे मिलनेके लिये चल दिये और बोले—'ऐसा नहीं हुआ होगा (समस्त यदुवंशियोंका एक साथ विनाश असम्भव है)' ॥ ३ ॥

स वृष्णिनिलयं गत्वा दारुकेण सह प्रभो।
ददर्श द्वारकां वीरो मृतनाथामिव स्त्रियम् ॥ ४ ॥

प्रभो! दारुकके साथ वृष्णियोंके निवासस्थानपर पहुँचकर वीर अर्जुनने देखा कि द्वारका नगरी विधवा स्त्रीकी भाँति श्रीहीन हो गयी है ॥ ४ ॥

याः स्म ता लोकनाथेन नाथवत्यः पुराभवन्।
तास्त्वनाथास्तदा नाथं पार्थं दृष्ट्वा विचुक्रुशुः ॥ ५ ॥
षोडशस्त्रीसहस्राणि वासुदेवपरिग्रहः।

पूर्वकालमें लोकनाथ श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित होनेके कारण जो सबसे अधिक सनाथा थीं, वे ही भगवान् श्रीकृष्ण-की सोलह हजार अनाथा स्त्रियाँ अर्जुनको रक्षकके रूपमें आया देख उच्चस्वरसे करुणक्रन्दन करने लगीं ॥ ५½ ॥

तासामासीन्महान् नादो दृष्ट्वैवार्जुनमागतम् ॥ ६ ॥
तास्तु दृष्ट्वैव कौरव्यो बाष्पेणापिहितेक्षणः।
हीनाः कृष्णेन पुत्रैश्च नाशकत् सोऽभिवीक्षितुम् ॥ ७ ॥

वहाँ पधारे हुए अर्जुनको देखते ही उन स्त्रियोंका आर्त-नाद बहुत बढ़ गया। उन सबपर दृष्टि पड़ते ही अर्जुनकी आँखोंमें आँसू भर आये। पुत्रों और श्रीकृष्णसे हीन हुई उन अनाथ अबलाओंकी ओर उनसे देखा नहीं गया ॥ ६-७ ॥

स तां वृष्ण्यन्धकजलां हयमीनां रथोडुपाम्।
वादित्ररथघोषौघां वेश्मतीर्थमहाह्रदाम् ॥ ८ ॥
रत्नशैवलसंघातां वज्रप्राकारमालिनीम् ।
रथ्यास्रोतोजलावर्तां चत्वरस्तिमितह्रदाम् ॥ ९ ॥
रामकृष्णमहाग्राहां द्वारकां सरितं तदा।
कालपाशग्रहां भीमां नदीं वैतरणीमिव ॥ १० ॥
ददर्श वासविर्धीमान् विहीनां वृष्णिपुङ्गवैः।
गतश्रियं निरानन्दां पद्मिनीं शिशिरे यथा ॥ ११ ॥

द्वारकापुरी एक नदीके समान थी। वृष्णि और अन्धक वंशके लोग उसके भीतर जलके समान थे। घोड़े मछलीके समान थे। रथ नावका काम करते थे। वाद्योंकी ध्वनि और रथकी घरघराहट मानो उस नदीके बहते हुए जलका कलकल नाद थी। लोगोंके घर ही तीर्थ एवं बड़े-बड़े जलाशय थे। रत्नोंकी राशि ही वहाँ सेवारसमूहके समान शोभा पाती थी। वज्र नामक मणिकी बनी हुई चहारदीवारी ही उसकी तटपंक्ति थी। सड़कें और गलियाँ उसमें जलके सोते और भँवरें थीं, चौराहे मानो उसके स्थिर जलवाले तालाब थे। बलराम और श्रीकृष्ण उसके भीतर दो बड़े-बड़े ग्राह थे। कालपाश ही उसमें मगर और घड़ियालके समान था। ऐसी द्वारकारूपी नदीको बुद्धिमान् अर्जुनने वृष्णिवीरोंसे रहित हो जानेके कारण वैतरणीके समान भयानक देखा। वह शिशिर-कालकी कमलिनीके समान श्रीहीन तथा आनन्दशून्य जान पड़ती थी ॥ ८-११ ॥

तां दृष्ट्वा द्वारकां पार्थस्ताश्च कृष्णस्य योषितः।
सस्वनं बाष्पमुत्सृज्य निपपात महीतले ॥ १२ ॥

वैसी द्वारकाको और उन श्रीकृष्णकी पत्नियोंको देखकर अर्जुन आँसू बहाते हुए फूट-फूटकर रोने लगे और मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १२ ॥

सात्राजिती ततः सत्या रुक्मिणी च विशाम्पते।
अभिपत्य प्ररुरुदुः परिवार्य धनंजयम् ॥ १३ ॥

प्रजानाथ! तब सत्राजित्की पुत्री सत्यभामा तथा रुक्मिणी आदि रानियाँ वहाँ दौड़ी आयीं और अर्जुनको घेरकर उच्च स्वरसे विलाप करने लगीं ॥ १३ ॥

ततस्तं काञ्चने पीठे समुत्थाप्योपवेश्य च।
अब्रुवन्त्यो महात्मानं परिवार्योपतस्थिरे ॥ १४ ॥

तदनन्तर अर्जुनको उठाकर उन्होंने सोनेकी चौकीपर बिठाया और उन महात्माको घेरकर बिना कुछ बोले उनके पास बैठ गयीं ॥ १४ ॥

ततः संस्तूय गोविन्दं कथयित्वा च पाण्डवः।

आश्वास्य ताः स्त्रियश्चापि मातुलं द्रष्टुमभ्यगात्॥ १५ ॥

उस समय अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए उनकी कृपा ... और उन रानियोंको आश्वासन देकर वे अपने मामासे मिलनेके लिये गये ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि अर्जुनागमने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत मौसलपर्वमें अर्जुनका आगमनविषयक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

द्वारकामें अर्जुन और वसुदेवजीकी बातचीत

वैशम्पायन उवाच

तं शयानं महात्मानं वीरमानकदुन्दुभिम् ।
पुत्रशोकेन संतप्तं ददर्श कुरुपुङ्गवः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! मामाके महलमें पहुँचकर कुरुश्रेष्ठ अर्जुनने देखा कि वीर महात्मा वसुदेवजी पुत्रशोकसे दुखी होकर पृथ्वीपर पड़े हुए हैं ॥ १ ॥

तस्याश्रुपरिपूर्णाक्षो व्यूढोरस्को महाभुजः ।
आर्तस्यार्ततरः पार्थः पादौ जग्राह भारत ॥ २ ॥

भरतनन्दन ! चौड़ी छाती और विशाल भुजावाले कुन्तीकुमार अर्जुन अपने शोकाकुल मामाकी वह दशा देखकर अत्यन्त संतप्त हो उठे । उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये और उन्होंने मामाके दोनों पैर पकड़ लिये ॥ २ ॥

तस्य मूर्धानमाघ्रातुमियेषानकदुन्दुभिः ।
स्वस्रीयस्य महाबाहुर्न शशाक च शत्रुहन् ॥ ३ ॥

शत्रुघाती नरेश ! महाबाहु आनकदुन्दुभि (वसुदेव) ने चाहा कि मैं अपने भानजे अर्जुनका मस्तक सूँघ लूँ; परंतु असमर्थतावश वे ऐसा न कर सके ॥ ३ ॥

समालिङ्ग्यार्जुनं वृद्धः स भुजाभ्यां महाभुजः ।
रुदन् पुत्रान् स्मरन् सर्वान् विललाप सुविह्वलः॥ ४ ॥
भ्रातॄन् पुत्रांश्च पौत्रांश्च दौहित्रान् ससखीनपि ।

महाबाहु बूढ़े वसुदेवजीने अपनी दोनों भुजाओंसे अर्जुनको खींचकर छातीसे लगा लिया और अपने समस्त पुत्रोंका स्मरण करके रोने लगे । फिर भाइयों, पुत्रों, पौत्रों, दौहित्रों और मित्रोंकी भी याद करके अत्यन्त व्याकुल हो वे विलाप करने लगे ॥

वसुदेव उवाच

यैर्जिता भूमिपालाश्च दैत्याश्च शतशोऽर्जुन ॥ ५ ॥
तान् दृष्ट्वा नेह पश्यामि जीवाम्यर्जुन दुर्मरः ।

वसुदेव बोले—अर्जुन ! जिन वीरोंने सैकड़ों दैत्यों तथा राजाओंपर विजय पायी थी, उन्हें आज यहाँ मैं नहीं देख पा रहा हूँ तो भी मेरे प्राण नहीं निकलते । जान पड़ता है, मेरे लिये मृत्यु दुर्लभ है ॥ ५½ ॥

यौ तावर्जुन शिष्यौ ते प्रियौ बहुमतौ सदा ॥ ६ ॥
तयोरपनयात् पार्थ वृष्णयो निधनं गताः ।

अर्जुन ! जो तुम्हारे प्रिय शिष्य थे और जिनका तुम बहुत सम्मान किया करते थे, उन्हीं दोनों (सात्यकि और प्रद्युम्न) के अन्यायसे समस्त वृष्णिवंशी मृत्युको प्राप्त हो गये हैं ॥ ६½ ॥

यौ तौ वृष्णिप्रवीराणां द्वावेवातिरथौ मतौ ॥ ७ ॥
प्रद्युम्नो युयुधानश्च कथयन् कत्थसे च यः ।
तौ सदा कुरुशार्दूल कृष्णस्य प्रियभाजनौ ॥ ८ ॥
तावुभौ वृष्णिनाशस्य मुखमास्तां धनंजय ।

कुरुश्रेष्ठ धनंजय ! वृष्णिवंशके प्रमुख वीरोंमें जिन दोको ही अतिरथी माना जाता था तथा तुम भी चर्चा चलाकर जिनकी प्रशंसाके गीत गाते थे, वे श्रीकृष्णके प्रीतिभाजन प्रद्युम्न और सात्यकि ही इस समय वृष्णिवंशियोंके विनाशके प्रमुख कारण बने हैं ॥ ७-८½ ॥

न तु गर्हामि शैनेयं हार्दिक्यं चाहमर्जुन ॥ ९ ॥
अक्रूरं रौक्मिणेयं च शोचाम्यत्र कारणम् ।

अथवा अर्जुन ! इस विषयमें मैं सात्यकि, कृतवर्मा, अक्रूर और प्रद्युम्नकी निन्दा नहीं करूँगा। वास्तवमें ऋषियोंका शाप ही यादवोंके इस सर्वनाशका प्रधान कारण है ॥ ९½ ॥

केशिनं यस्तु कंसं च विक्रम्य जगतः प्रभुः ॥ १० ॥
विदेहावकरोत् पार्थ चैद्यं च बलगर्वितम् ।
नैषादिमेकलव्यं च चक्रे कालिङ्गमागधान् ॥ ११ ॥
गान्धारान् काशिराजं च मरुभूमौ च पार्थिवान् ।
प्राच्यांश्च दाक्षिणात्यांश्च पर्वतीयांस्तथा नृपान् ॥ १२ ॥
सोऽभ्युपेक्षितवानेतमनयान्मधुसूदनः ।

कुन्तीनन्दन ! जिन जगदीश्वरने पराक्रम प्रकट करके केशी और कंसको देह-बन्धनसे मुक्त कर दिया। बलका घमंड रखनेवाले चेदिराज शिशुपाल, निषादपुत्र एकलव्य, कलिङ्ग-राज, मगधनिवासी क्षत्रिय, गान्धार, काशिराज तथा मरुभूमिके राजाओंको भी यमलोक भेज दिया था, जिन्होंने पूर्व, दक्षिण तथा पर्वतीय प्रान्तके नरेशोंका भी संहार कर डाला था, उन्हीं मधुसूदनने बालकोंकी अनीतिके कारण प्राप्त हुए इस संकटकी उपेक्षा कर दी ॥ १०–१२½ ॥

त्वं हि तं नारदश्चैव मुनयश्च सनातनम् ॥ १३ ॥
गोविन्दमनघं देवमभिजानीध्वमच्युतम् ।
प्रत्यपश्यच्च स विभुर्ज्ञातिक्षयमधोक्षजः ॥ १४ ॥

तुम, देवर्षि नारद तथा अन्य महर्षि भी श्रीकृष्णको पापके सम्पर्कसे रहित, सनातन, अच्युत परमेश्वररूपसे जानते हैं। वे ही सर्वव्यापी अधोक्षज अपने कुटुम्बी जनोंके इस विनाश-को चुपचाप देखते रहे ॥ १३-१४ ॥

समुपेक्षितवान् नित्यं स्वयं स मम पुत्रकः ।
गान्धार्या वचनं यत् तदृषीणां च परंतप ॥ १५ ॥
तन्नूनमन्यथा कर्तुं नैच्छत् स जगतः प्रभुः ।

परंतप अर्जुन ! मेरे पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए वे जगदीश्वर गान्धारी तथा महर्षियोंके शापको पलटना नहीं चाहते थे, इसीलिये उन्होंने सदा ही इस संकटकी उपेक्षा की ॥१५½ ॥

प्रत्यक्षं भवतश्चापि तव पौत्रः परंतप ॥ १६ ॥
अश्वत्थाम्ना हतश्चापि जीवितस्तस्य तेजसा ।

परंतप ! तुम्हारा पौत्र परीक्षित् अश्वत्थामाद्वारा मार डाला गया था, तो भी श्रीकृष्णके तेजसे वह जीवित हो गया। यह तो तुमलोगोंकी आँखों-देखी घटना है ॥ १६½ ॥

इमांस्तु नैच्छत् स्वाञ्ज्ञातीन् रक्षितुं च सखा तव॥ १७ ॥
ततः पुत्रांश्च पौत्रांश्च भ्रातॄनथ सखींस्तथा ।
शयानान् निहतान् दृष्ट्वा ततो मामब्रवीदिदम् ॥ १८ ॥

इतने शक्तिशाली होते हुए भी तुम्हारे सखाने अपने इन भाई-बन्धुओंको प्राणसंकटसे बचानेकी इच्छा नहीं की। जब पुत्र, पौत्र, भाई और मित्र सभी एक दूसरेके हाथसे मरकर धराशायी हो गये, तब उन्हें इस अवस्थामें देखकर श्रीकृष्ण मेरे पास आये और इस प्रकार बोले— ॥ १७-१८ ॥

सम्प्राप्तोऽद्यायमस्यान्तः कुलस्य पुरुषर्षभ ।
आगमिष्यति बीभत्सुरिमां द्वारवतीं पुरीम् ॥ १९ ॥
आख्येयं तस्य यद् वृत्तं वृष्णीनां वैशसं महत् ।

'पुरुषप्रवर पिताजी ! आज इस कुलका संहार हो गया। अर्जुन द्वारकापुरीमें आनेवाले हैं। आनेपर उनसे वृष्णिवंशियोंके इस महान् विनाशका वृत्तान्त कहियेगा॥१९½॥

स तु श्रुत्वा महातेजा यदूनां निधनं प्रभो ॥ २० ॥
आगन्ता क्षिप्रमेवेह न मेऽत्रास्ति विचारणा ।

'प्रभो ! अर्जुनके पास संदेश भी पहुँचा होगा। वे महा-तेजस्वी कुन्तीकुमार यदुवंशियोंके विनाशका यह समाचार सुनकर शीघ्र ही यहाँ आ पहुँचेंगे। इस विषयमें मेरा कोई अन्यथा विचार नहीं है ॥ २०½ ॥

योऽहं तमर्जुनं विद्धि योऽर्जुनः सोऽहमेव तु ॥ २१ ॥
यद् ब्रूयात् तत् तथा कार्यमिति बुद्ध्यस्व माधव ।

'जो मैं हूँ उसे अर्जुन समझिये, जो अर्जुन हैं वह मैं ही हूँ। माधव ! अर्जुन जो कुछ भी कहें वैसा ही आपलोगोंको करना चाहिये। इस बातको अच्छी तरह समझ लें ॥२१½॥

स स्त्रीषु प्राप्तकालासु पाण्डवो बालकेषु च ॥ २२ ॥
प्रतिपत्स्यति बीभत्सुर्भवतश्चौर्ध्वदेहिकम् ।

'जिन स्त्रियोंका प्रसवकाल समीप हो, उनपर और छोटे बालकोंपर अर्जुन विशेषरूपसे ध्यान देंगे और वे ही आपका और्ध्वदेहिक संस्कार भी करेंगे ॥ २२½ ॥

इमां च नगरीं सद्यः प्रतियाते धनंजये ॥ २३ ॥
प्राकाराट्टालकोपेतां समुद्रः प्लावयिष्यति ।

'अर्जुनके चले जानेपर चहारदीवारी और अट्टालिकाओं सहित इस नगरीको समुद्र तत्काल डुबो देगा ॥ २३½ ॥

अहं देशे तु कस्मिंश्चित् पुण्ये नियममास्थितः ॥ २४ ॥
कालं काङ्क्षे सद्य एव रामेण सह धीमता ।

'मैं किसी पवित्र स्थानमें रहकर शौच-संतोषादि नियमोंका आश्रय ले बुद्धिमान् बलरामजीके साथ शीघ्र ही कालकी प्रतीक्षा करूँगा' ॥ २४½ ॥

एवमुक्त्वा हृषीकेशो मामचिन्त्यपराक्रमः ॥ २५ ॥
हित्वा मां बालकैः सार्धं दिशं कामप्यगात् प्रभुः ।

ऐसा कहकर अचिन्त्य पराक्रमी प्रभावशाली श्रीकृष्ण बालकोंके साथ मुझे यहीं छोड़कर किसी अज्ञात दिशाको चले गये हैं ॥ २५½ ॥

सोऽहं तौ च महात्मानौ चिन्तयन् भ्रातरौ तव ॥ २६ ॥
घोरं ज्ञातिवधं चैव न भुञ्जे शोककर्शितः ।
न भोक्ष्ये न च जीविष्ये दिष्ट्या प्राप्तोऽसि पाण्डव॥ २७ ॥

तबसे मैं तुम्हारे दोनों भाई महात्मा बलराम और श्रीकृष्णका तथा कुटुम्बीजनोंके इस घोर संहारका चिन्तन करके शोकसे गलता जा रहा हूँ। मुझसे भोजन नहीं किया

वसुदेवजी अर्जुनको यादव-विनाशका वृत्तान्त और श्रीकृष्णका संदेश सुना रहे हैं

अथवा अर्जुन ! इस विषयमें मैं सात्यकि, कृतवर्मा, अक्रूर और प्रद्युम्नकी निन्दा नहीं करूँगा । वास्तवमें ऋषियोंका शाप ही यादवोंके इस सर्वनाशका प्रधान कारण है ॥ ९½ ॥

केशिनं यस्तु कंसं च विक्रम्य जगतः प्रभुः ॥ १० ॥
विदेहावकरोत् पार्थ चैद्यं च बलगर्वितम् ।
नैषादिमेकलव्यं च चक्रे कालिङ्गमागधान् ॥ ११ ॥
गान्धारान् काशिराजं च मरुभूमौ च पार्थिवान् ।
प्राच्यांश्च दाक्षिणात्यांश्च पर्वतीयांस्तथा नृपान् ॥ १२ ॥
सोऽभ्युपेक्षितवानेतमनयान्मधुसूदनः ।

कुन्तीनन्दन ! जिन जगदीश्वरने पराक्रम प्रकट करके केशी और कंसको देह-बन्धनसे मुक्त कर दिया । बलका घमंड रखनेवाले चेदिराज शिशुपाल, निषादपुत्र एकलव्य, कलिङ्गराज, मगधनिवासी क्षत्रिय, गान्धार, काशिराज तथा मरुभूमिके राजाओंको भी यमलोक भेज दिया था, जिन्होंने पूर्व, दक्षिण तथा पर्वतीय प्रान्तके नरेशोंका भी संहार कर डाला था, उन्हीं मधुसूदनने बालकोंकी अनीतिके कारण प्राप्त हुए इस संकटकी उपेक्षा कर दी ॥ १०–१२½ ॥

त्वं हि तं नारदश्चैव मुनयश्च सनातनम् ॥ १३ ॥
गोविन्दमनघं देवमभिजानीध्वमच्युतम् ।
प्रत्यपश्यच्च स विभुर्ज्ञातिक्षयमधोक्षजः ॥ १४ ॥

तुम, देवर्षि नारद तथा अन्य महर्षि भी श्रीकृष्णको पापके सम्पर्कसे रहित, सनातन, अच्युत परमेश्वररूपसे जानते हैं । वे ही सर्वव्यापी अधोक्षज अपने कुटुम्बी जनोंके इस विनाशको चुपचाप देखते रहे ॥ १३-१४ ॥

समुपेक्षितवान् नित्यं स्वयं स मम पुत्रकः ।
गान्धार्या वचनं यत् तदृषीणां च परंतप ॥ १५ ॥
तन्नूनमन्यथा कर्तुं नैच्छत् स जगतः प्रभुः ।

परंतप अर्जुन ! मेरे पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए वे जगदीश्वर गान्धारी तथा महर्षियोंके शापको पलटना नहीं चाहते थे, इसीलिये उन्होंने सदा ही इस संकटकी उपेक्षा की ॥ १५½ ॥

प्रत्यक्षं भवतश्चापि तव पौत्रः परंतप ॥ १६ ॥
अश्वत्थाम्ना हतश्चापि जीवितस्तस्य तेजसा ।

परंतप ! तुम्हारा पौत्र परीक्षित् अश्वत्थामाद्वारा मार डाला गया था, तो भी श्रीकृष्णके तेजसे वह जीवित हो गया । यह तो तुमलोगोंकी आँखों-देखी घटना है ॥ १६½ ॥

इमांस्तु नैच्छत् स्वाञ्ज्ञातीन् रक्षितुं च सखा तव ॥ १७ ॥
ततः पुत्रांश्च पौत्रांश्च भ्रातॄनथ सखींस्तथा ।
शयानान् निहतान् दृष्ट्वा ततो मामब्रवीदिदम् ॥ १८ ॥

इतने शक्तिशाली होते हुए भी तुम्हारे सखाने अपने इन भाई-बन्धुओंको प्राणसंकटसे बचानेकी इच्छा नहीं की । जब पुत्र, पौत्र, भाई और मित्र सभी एक दूसरेके हाथसे मरकर धरतीपर सो गये, तब उन्हें उस अवस्थामें देखकर श्रीकृष्ण मेरे पास आये और इस प्रकार बोले— ॥ १७-१८ ॥

सम्प्राप्तोऽद्यायमस्यान्तः कुलस्य पुरुषर्षभ ।
आगमिष्यति बीभत्सुरिमां द्वारवतीं पुरीम् ॥ १९ ॥
आख्येयं तस्य यद् वृत्तं वृष्णीनां वैशसं महत् ।

'पुरुषप्रवर पिताजी ! आज इस कुलका संहार हो गया । अर्जुन द्वारकापुरीमें आनेवाले हैं । आनेपर उनसे वृष्णिवंशियोंके इस महान् विनाशका वृत्तान्त कहियेगा ॥ १९½ ॥

स तु श्रुत्वा महातेजा यदूनां निधनं प्रभो ॥ २० ॥
आगन्ता क्षिप्रमेवेह न मेऽत्रास्ति विचारणा ।

'प्रभो ! अर्जुनके पास संदेश भी पहुँचा होगा । वे महातेजस्वी कुन्तीकुमार यदुवंशियोंके विनाशका यह समाचार सुनकर शीघ्र ही यहाँ आ पहुँचेंगे । इस विषयमें मेरा कोई अन्यथा विचार नहीं है ॥ २०½ ॥

योऽहं तमर्जुनं विद्धि योऽर्जुनः सोऽहमेव तु ॥ २१ ॥
यद् ब्रूयात् तत् तथा कार्यमिति बुद्ध्यस्व माधव ।

'जो मैं हूँ उसे अर्जुन समझिये, जो अर्जुन हैं वह मैं ही हूँ । माधव ! अर्जुन जो कुछ भी कहें वैसा ही आपलोगोंको करना चाहिये । इस बातको अच्छी तरह समझ लें ॥ २१½ ॥

स स्त्रीषु प्राप्तकालासु पाण्डवो बालकेषु च ॥ २२ ॥
प्रतिपत्स्यति बीभत्सुर्भवतश्चौर्ध्वदेहिकम् ।

'जिन स्त्रियोंका प्रसवकाल समीप हो, उनपर और छोटे बालकोंपर अर्जुन विशेषरूपसे ध्यान देंगे और वे ही आपका और्ध्वदेहिक संस्कार भी करेंगे ॥ २२½ ॥

इमां च नगरीं सद्यः प्रतियाते धनंजये ॥ २३ ॥
प्राकाराट्टालकोपेतां समुद्रः प्लावयिष्यति ।

'अर्जुनके चले जानेपर चहारदीवारी और अट्टालिकाओं सहित इस नगरीको समुद्र तत्काल डुबो देगा ॥ २३½ ॥

अहं देशे तु कस्मिंश्चित् पुण्ये नियममास्थितः ॥ २४ ॥
कालं काङ्क्षे सद्य एव रामेण सह धीमता ।

'मैं किसी पवित्र स्थानमें रहकर शौच-संतोषादि नियमोंका आश्रय ले बुद्धिमान् बलरामजीके साथ शीघ्र ही कालकी प्रतीक्षा करूँगा' ॥ २४½ ॥

एवमुक्त्वा हृषीकेशो मामचिन्त्यपराक्रमः ॥ २५ ॥
हित्वा मां बालकैः सार्धं दिशं कामप्यगात् प्रभुः ।

ऐसा कहकर अचिन्त्य पराक्रमी प्रभावशाली श्रीकृष्ण बालकोंके साथ मुझे यहीं छोड़कर किसी अज्ञात दिशाको चले गये हैं ॥ २५½ ॥

सोऽहं तौ च महात्मानौ चिन्तयन् भ्रातरौ तव ॥ २६ ॥
घोरं ज्ञातिवधं चैव न भुञ्जे शोककर्शितः ।
न भोक्ष्ये न च जीविष्ये दिष्ट्या प्राप्तोऽसि पाण्डव ॥ २७ ॥

तबसे मैं तुम्हारे दोनों भाई महात्मा बलराम और श्रीकृष्णका तथा कुटुम्बीजनोंके इस घोर संहारका चिन्तन करके शोकसे गलता जा रहा हूँ । मुझसे भोजन नहीं किया

वसुदेवजी अर्जुनको यादव-विनाशका वृत्तान्त और श्रीकृष्णका संदेश सुना रहे हैं

जाता । अब मैं न तो भोजन करूँगा और न इस जीवनको ही रक्खूँगा । पाण्डुनन्दन ! सौभाग्यकी बात है कि तुम यहाँ आ गये ॥ २६-२७ ॥

यदुक्तं पार्थ कृष्णेन तत् सर्वमखिलं कुरु ।
एतत् ते पार्थ राज्यं च स्त्रियो रत्नानि चैव हि ॥
इष्टान् प्र[illegible] [illegible]मांस्त्यक्ष्यामि रिपुसूदन ॥ २८ ॥

पार्थ ! श्रीकृष्णने जो कुछ कहा है, वह सब करो । यह राज्य, ये स्त्रियाँ और ये रत्न—सब तुम्हारे अधीन हैं । शत्रुसूदन ! अब मैं निश्चिन्त होकर अपने इन प्यारे प्राणोंका परित्याग करूँगा ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि अर्जुनवसुदेवसंवादे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत मौसलपर्वमें अर्जुन और वसुदेवका संवादविषयक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

वसुदेवजी तथा मौसल युद्धमें मरे हुए यादवोंका अन्त्येष्टि-संस्कार करके अर्जुनका द्वारकावासी स्त्री-पुरुषोंको अपने साथ ले जाना, समुद्रका द्वारकाको डुबो देना और मार्गमें अर्जुनपर डाकुओंका आक्रमण, अवशिष्ट यादवोंको अपनी राजधानीमें बसा देना

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तः स बीभत्सुर्मातुलेन परंतप ।
दुर्मना दीनवदनो वसुदेवमुवाच ह ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—परंतप ! अपने मामा वसुदेवजीके ऐसा कहनेपर अर्जुन मन-ही-मन बहुत दुखी हुए । उनका मुख मलिन हो गया । वे वसुदेवजीसे इस प्रकार बोले—॥ १ ॥

नाहं वृष्णिप्रवीरेण बन्धुभिश्चैव मातुल ।
विहीनां पृथिवीं द्रष्टुं शक्ष्यामीह कथंचन ॥ २ ॥

'मामाजी ! वृष्णिवंशके प्रमुख वीर भगवान् श्रीकृष्ण तथा अपने भाइयोंसे हीन हुई यह पृथ्वी मुझसे अब किसी तरह देखी नहीं जा सकेगी ॥ २ ॥

राजा च भीमसेनश्च सहदेवश्च पाण्डवः ।
नकुलो याज्ञसेनी च षडेकमनसो वयम् ॥ ३ ॥

'राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, पाण्डव सहदेव, नकुल, द्रौपदी तथा मैं—ये छः व्यक्ति एक ही हृदय रखते हैं (इनमेंसे कोई भी अब यहाँ रहना नहीं चाहेगा) ॥ ३ ॥

राज्ञः संक्रमणे चापि कालोऽयं वर्तते ध्रुवम् ।
तमिमं विद्धि सम्प्राप्तं कालं कालविदां वर ॥ ४ ॥

'राजा युधिष्ठिरके भी परलोक-गमनका समय निश्चय ही आ गया है । कालज्ञोंमें श्रेष्ठ मामाजी ! यह वही काल प्राप्त हुआ है—ऐसा समझें ॥ ४ ॥

सर्वथा वृष्णिदारांस्तु बालं वृद्धं तथैव च ।
नयिष्ये परिगृह्याहमिन्द्रप्रस्थमरिंदम ॥ ५ ॥

'शत्रुदमन ! अब मैं वृष्णिवंशकी स्त्रियों, बालकों और बूढ़ोंको अपने साथ ले जाकर इन्द्रप्रस्थ पहुँचाऊँगा' ॥ ५ ॥

इत्युक्त्वा दारुकमिदं वाक्यमाह धनंजयः ।
अमात्यान् वृष्णिवीराणां द्रष्टुमिच्छामि मा चिरम् ॥

मामासे यों कहकर अर्जुनने दारुकसे कहा—'अब मैं वृष्णिवंशी वीरोंके मन्त्रियोंसे शीघ्र मिलना चाहता हूँ' ॥ ६ ॥

इत्येवमुक्त्वा वचनं सुधर्मां यादवीं सभाम् ।
प्रविवेशार्जुनः शूरः शोचमानो महारथान् ॥ ७ ॥

ऐसा कहकर शूरवीर अर्जुन यादव महारथियोंके लिये शोक करते हुए यादवोंकी सुधर्मा नामक सभामें प्रविष्ट हुए ॥ ७ ॥

तमासनगतं तत्र सर्वाः प्रकृतयस्तथा ।
ब्राह्मणा नैगमास्तत्र परिवार्योपतस्थिरे ॥ ८ ॥

वहाँ एक सिंहासनपर बैठे हुए अर्जुनके पास मन्त्री आदि समस्त प्रकृतिवर्गके लोग तथा वेदवेत्ता ब्राह्मण आये और उन्हें सब ओरसे घेरकर पास ही बैठ गये ॥ ८ ॥

तान् दीनमनसः सर्वान् विमूढान् गतचेतसः ।
उवाचेदं वचः काले पार्थो दीनतरस्तथा ॥ ९ ॥

उन सबके मनमें दीनता छा गयी थी । सभी किंकर्तव्य-विमूढ़ एवं अचेत हो रहे थे । अर्जुनकी दशा तो उनसे भी अधिक दयनीय थी । वे उन सभासदोंसे समयोचित वचन बोले—॥ ९ ॥

शक्रप्रस्थमहं नेष्ये वृष्ण्यन्धकजनं स्वयम् ।
इदं तु नगरं सर्वं समुद्रः प्लावयिष्यति ॥ १० ॥
सज्जीकुरुत यानानि रत्नानि विविधानि च ।
वज्रोऽयं भवतां राजा शक्रप्रस्थे [illegible]ष्यति ॥ ११ ॥

'मन्त्रियो ! मैं वृष्णि और अन्धकवंशके लोगोंको अपने साथ इन्द्रप्रस्थ ले जाऊँगा; क्योंकि समुद्र अब इस सारे नगरको डुबो देगा; अतः तुमलोग तरह-तरहके वाहन और रत्न लेकर तैयार हो जाओ । इन्द्रप्रस्थमें चलनेपर ये श्री[illegible] पौत्र वज्र तुमलोगोंके राजा बनाये जायँगे ॥ १०-११ ॥

सप्तमे दिवसे चैव रवौ विमल[illegible] उद्गते ।
बहिर्वत्स्यामहे सर्वे सज्जीभवत मा चिरम् ॥ १२ ॥

'आजके सातवें दिन निर्मल [illegible]दय होते ही [illegible]

लोग इस नगरसे बाहर हो जायँगे । इसलिये सब लोग शीघ्र तैयार हो जाओ; विलम्ब न करो' ॥ १२ ॥

इत्युक्तास्तेन ते सर्वे पार्थेनाक्लिष्टकर्मणा ।
सज्जमाशु ततश्चक्रुः स्वसिद्ध्यर्थं समुत्सुकाः ॥ १३ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले अर्जुनके इस प्रकार आज्ञा देनेपर समस्त मन्त्रियोंने अपनी अभीष्टसिद्धिके लिये अत्यन्त उत्सुक होकर शीघ्र ही तैयारी आरम्भ कर दी ॥ १३ ॥

तां रात्रिमवसत् पार्थः केशवस्य निवेशने ।
महता शोकमोहेन सहसाभिपरिप्लुतः ॥ १४ ॥

अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णके महलमें ही उस रातको निवास किया । वे वहाँ पहुँचते ही सहसा महान् शोक और मोहमें डूब गये ॥ १४ ॥

श्वोभूतेऽथ ततः शौरिर्वसुदेवः प्रतापवान् ।
युक्त्वाऽऽत्मानं महातेजा जगाम गतिमुत्तमाम् ॥ १५ ॥

सवेरा होते ही महातेजस्वी शूरनन्दन प्रतापी वसुदेवजीने अपने चित्तको परमात्मामें लगाकर योगके द्वारा उत्तम गति प्राप्त की ॥ १५ ॥

ततः शब्दो महानासीद् वसुदेवनिवेशने ।
दारुणः क्रोशतीनां च रुदतीनां च योषिताम् ॥ १६ ॥

फिर तो वसुदेवजीके महलमें बड़ा भारी कुहराम मचा । रोती-चिल्लाती हुई स्त्रियोंका आर्तनाद बड़ा भयंकर प्रतीत होता था ॥ १६ ॥

प्रकीर्णमूर्धजाः सर्वा विमुक्ताभरणस्रजः ।
उरांसि पाणिभिर्घ्नन्त्यो व्यलपन् करुणं स्त्रियः ॥ १७ ॥

उन सबके बाल खुले हुए थे । उन्होंने आभूषण और मालाएँ तोड़कर फेंक दी थीं और वे सारी स्त्रियाँ अपने हाथोंसे छाती पीटती हुई करुणाजनक विलाप कर रही थीं ॥ १७ ॥

तं देवकी च भद्रा च रोहिणी मदिरा तथा ।
अन्वारोहन्त च तदा भर्तारं योषितां वराः ॥ १८ ॥

युवतियोंमें श्रेष्ठ देवकी, भद्रा, रोहिणी तथा मदिरा—ये सब-की-सब अपने पतिके साथ चितापर आरूढ़ होनेको उद्यत हो गयीं ॥ १८ ॥

ततः [illegible]रिं नृयुक्तेन बहुमूल्येन भारत ।
या[illegible] महता पार्थो वाहैर्निष्क्रामयत् तदा ॥ १९ ॥

भा[illegible] ! तदनन्तर अर्जुनने एक बहुमूल्य विमान सजाकर [illegible] वसुदेवजीके शवको सुलाया और मनुष्योंके कंधोंपर उठवाकर वे उसे नगरसे बाहर ले गये ॥ १९ ॥

त[illegible]युस्तत्र तत्र दुःखशोकसमन्विताः ।
द्वारकावासि[illegible]ः सर्वे पौरजानपदा हिताः ॥ २० ॥

उस समय समस्त द्वारकावासी तथा आनर्त जनपदके [illegible] यादवोंके हितैषी थे, वहाँ दुःख-शोकमें मग्न होकर वसु[illegible] शवके पीछे-पीछे गये ॥ २० ॥

तस्याश्वमेधिकं छत्रं दीप्यमानाश्च पावकाः ।
पुरस्तात् तस्य यानस्य याजकाश्च ततो ययुः ॥ २१ ॥

उनकी अरथीके आगे-आगे अश्वमेध-यज्ञमें उपयोग किया हुआ छत्र तथा अग्निहोत्रकी प्रज्वलित अग्नि लिये याजक ब्राह्मण चल रहे थे ॥ २१ ॥

अनुजग्मुश्च तं वीरं देव्यस्ता वै स्वलंकृताः ।
स्त्रीसहस्रैः परिवृता वधूभिश्च सहस्रशः ॥ २२ ॥

वीर वसुदेवजीकी पत्नियाँ वस्त्र और आभूषणोंसे सज-धजकर हजारों पुत्र वधुओं तथा अन्य स्त्रियोंके साथ अपने पतिकी अरथीके पीछे-पीछे जा रही थीं ॥ २२ ॥

यस्तु देशः प्रियस्तस्य जीवतोऽभून्महात्मनः ।
तत्रैनमुपसंकल्प्य पितृमेधं प्रचक्रिरे ॥ २३ ॥

महात्मा वसुदेवजीको अपने जीवनकालमें जो स्थान विशेष प्रिय था, वहीं ले जाकर अर्जुन आदिने उनका पितृमेधकर्म (दाह-संस्कार) किया ॥ २३ ॥

तं चिताग्निगतं वीरं शूरपुत्रं वराङ्गनाः ।
ततोऽन्वारुरुहुः पत्न्यश्चतस्रः पतिलोकगाः ॥ २४ ॥

चिताकी प्रज्वलित अग्निमें सोये हुए वीर शूरपुत्र वसुदेवजीके साथ उनकी पूर्वोक्त चारों पत्नियाँ भी चितापर जा बैठीं और उन्हींके साथ भस्म हो पतिलोकको प्राप्त हुईं ॥ २४ ॥

तं वै चतसृभिः स्त्रीभिरन्वितं पाण्डुनन्दनः ।
अदाहयच्चन्दनैश्च गन्धैरुच्चावचैरपि ॥ २५ ॥

चारों पत्नियोंसे संयुक्त हुए वसुदेवजीके शवका पाण्डुनन्दन अर्जुनने चन्दनकी लकड़ियों तथा नाना प्रकारके सुगन्धित पदार्थोंद्वारा दाह किया ॥ २५ ॥

ततः प्रादुरभूच्छब्दः समिद्धस्य विभावसोः ।
सामगानां च निर्घोषो नराणां रुदतामपि ॥ २६ ॥

उस समय प्रज्वलित अग्निका चट-चट शब्द, सामगान करनेवाले ब्राह्मणोंके वेदमन्त्रोच्चारणका गम्भीर घोष तथा रोते हुए मनुष्योंका आर्तनाद एक साथ ही प्रकट हुआ ॥ २६ ॥

ततो वज्रप्रधानास्ते वृष्ण्यन्धककुमारकाः ।
सर्वे चैवोदकं चक्रुः स्त्रियश्चैव महात्मनः ॥ २७ ॥

इसके बाद वज्र आदि वृष्णि और अन्धकवंशके कुमारों तथा स्त्रियोंने महात्मा वसुदेवजीको जलाञ्जलि दी ॥ २७ ॥

अलुप्तधर्मस्तं धर्मं कारयित्वा स फाल्गुनः ।
जगाम वृष्णयो यत्र विनष्टा भरतर्षभ ॥ २८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! अर्जुनने कभी धर्मका लोप नहीं किया था । वह धर्मकृत्य पूर्ण कराकर अर्जुन उस स्थानपर गये, जहाँ वृष्णियोंका संहार हुआ था ॥ २८ ॥

स तान् दृष्ट्वा निपतितान् कदने भृशदुःखितः ।
बभूवातीव कौरव्यः प्राप्तकालं चकार ह ॥ २९ ॥

यथा प्रधानतश्चैव चक्रे सर्वास्तथा क्रियाः ।
ये हता ब्रह्मशापेन मुसलैरेरकोद्भवैः ॥ ३० ॥

उस भीषण मारकाटमें मरकर धराशायी हुए यादवोंको देखकर कुरुकुलनन्दन अर्जुनको बड़ा भारी दुःख हुआ । उन्होंने ब्रह्मशापके कारण एरकासे उत्पन्न हुए मूसलोंद्वारा मारे गये यदुवंशी वीरोंके बड़े-छोटेके क्रमसे सारे समयोचित कार्य (अन्त्येष्टि कर्म) सम्पन्न किये ॥ २९-३० ॥

ततः शरीरे रामस्य वासुदेवस्य चोभयोः ।
अन्विष्य दाहयामास पुरुषैराप्तकारिभिः ॥ ३१ ॥

तदनन्तर विश्वस्त पुरुषोंद्वारा बलराम तथा वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण दोनोंके शरीरोंकी खोज कराकर अर्जुनने उनका भी दाह-संस्कार किया ॥ ३१ ॥

स तेषां विधिवत् कृत्वा प्रेतकार्याणि पाण्डवः ।
सप्तमे दिवसे प्रायाद् रथमारुह्य सत्वरः ॥ ३२ ॥

पाण्डुनन्दन अर्जुन उन सबके प्रेतकर्म विधिपूर्वक सम्पन्न करके तुरंत रथपर आरूढ़ हो सातवें दिन द्वारकासे चल दिये ॥ ३२ ॥

अश्वयुक्तै रथैश्चापि गोखरोष्ट्रयुतैरपि ।
स्त्रियस्ता वृष्णिवीराणां रुदत्यः शोककर्शिताः ॥ ३३ ॥
अनुजग्मुर्महात्मानं पाण्डुपुत्रं धनंजयम् ।

उनके साथ घोड़े, बैल, गधे और ऊँटोंसे जुते हुए रथोंपर बैठकर शोकसे दुर्बल हुई वृष्णिवंशी वीरोंकी पत्नियाँ रोती हुई चलीं । उन सबने पाण्डुपुत्र महात्मा अर्जुनका अनुगमन किया ॥ ३३½ ॥

भृत्याश्चान्धकवृष्णीनां सादिनो रथिनश्च ये ॥ ३४ ॥
वीरहीनं वृद्धबालं पौरजानपदास्तथा ।
ययुस्ते परिवार्याथ कलत्रं पार्थशासनात् ॥ ३५ ॥

अर्जुनकी आज्ञासे अन्धकों और वृष्णियोंके नौकर, घुड़सवार, रथी तथा नगर और प्रान्तके लोग बूढ़े और बालकोंसे युक्त विधवा स्त्रियोंको चारों ओरसे घेरकर चलने लगे ॥ ३४-३५ ॥

कुञ्जरैश्च गजारोहा ययुः शैलनिभैस्तथा ।
सपादरक्षैः संयुक्ताः सान्तरायुधिका ययुः ॥ ३६ ॥

हाथी-सवार पर्वताकार हाथियोंद्वारा गुप्तरूपसे अस्त्र-शस्त्र धारण किये यात्रा करने लगे । उनके साथ हाथियोंके पादरक्षक भी थे ॥ ३६ ॥

पुत्राश्चान्धकवृष्णीनां सर्वे पार्थमनुव्रताः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव महाधनाः ॥ ३७ ॥
दश षट् च सहस्राणि वासुदेवावरोधनम् ।
पुरस्कृत्य ययुर्वज्रं पौत्रं कृष्णस्य धीमतः ॥ ३८ ॥

अन्धक और वृष्णिवंशके समस्त बालक अर्जुनके प्रति श्रद्धा रखनेवाले थे । वे तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, महाधनी शूद्र और भगवान् श्रीकृष्णकी सोलह हजार स्त्रियाँ—ये सब-की-सब बुद्धिमान् श्रीकृष्णके पौत्र वज्रको आगे करके चल रहे थे ॥ ३७-३८ ॥

बहूनि च सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
भोजवृष्ण्यन्धकस्त्रीणां हतनाथानि निर्ययुः ॥ ३९ ॥
तत्सागरसमप्रख्यं वृष्णिचक्रं महर्धिमत् ।
उवाह रथिनां श्रेष्ठः पार्थः परपुरंजयः ॥ ४० ॥

भोज, वृष्णि और अन्धक कुलकी अनाथ स्त्रियोंकी संख्या कई हजारों, लाखों और अर्बुदोंतक पहुँच गयी थी । वे सब द्वारकापुरीसे बाहर निकलीं । वृष्णियोंका वह महान् समृद्धिशाली मण्डल महासागरके समान जान पड़ता था । शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन उसे अपने साथ लेकर चले ॥ ३९-४० ॥

निर्याते तु जने तस्मिन् सागरो मकरालयः ।
द्वारकां रत्नसम्पूर्णां जलेनाप्लावयत् तदा ॥ ४१ ॥

उस जनसमुदायके निकलते ही मगरों और घड़ियालोंके निवासस्थान समुद्रने रत्नोंसे भरी-पूरी द्वारका नगरीको जलसे डुबो दिया ॥ ४१ ॥

यद् यद्धि पुरुषव्याघ्रो भूमेस्तस्या व्यमुञ्चत ।
तत् तत् सम्प्लावयामास सलिलेन स सागरः ॥ ४२ ॥

पुरुषसिंह अर्जुनने उस नगरका जो-जो भाग छोड़ा, उसे समुद्रने अपने जलसे आप्लावित कर दिया ॥ ४२ ॥

तदद्भुतमभिप्रेक्ष्य द्वारकावासिनो जनाः ।
तूर्णात् तूर्णतरं जग्मुरहो दैवमिति ब्रुवन् ॥ ४३ ॥

यह अद्भुत दृश्य देखकर द्वारकावासी मनुष्य बड़ी तेजीसे चलने लगे । उस समय उनके मुखसे बारंबार यही निकलता था कि 'दैवकी लीला विचित्र है' ॥ ४३ ॥

काननेषु च रम्येषु पर्वतेषु नदीषु च ।
निवसन्नानयामास वृष्णिदारान् धनंजयः ॥ ४४ ॥

अर्जुन रमणीय काननों, पर्वतों और नदियोंके तटपर निवास करते हुए वृष्णिवंशकी स्त्रियोंको ले जा रहे थे ॥ ४४ ॥

स पञ्चनदमासाद्य धीमानतिसमृद्धिमत् ।
देशे गोपशुधान्याढ्ये निवासमकरोत् प्रभुः ॥ ४५ ॥

चलते-चलते बुद्धिमान् एवं सामर्थ्यशाली अर्जुनने अत्यन्त समृद्धिशाली पञ्चनद देशमें पहुँचकर जो गौ, पशु तथा धन-धान्यसे सम्पन्न था, ऐसे प्रदेशमें पड़ाव डाला ॥ ४५ ॥

ततो लोभः समभवद् दस्यूनां निहतेश्वराः ।
दृष्ट्वा स्त्रियो नीयमानाः पार्थेनैकेन भारत ॥ ४६ ॥

भरतनन्दन ! एकमात्र अर्जुनके संरक्षणमें ले जायी जाती हुई इतनी अनाथ स्त्रियोंको देखकर वहाँ रहनेवाले लुटेरोंके मनमें लोभ पैदा हुआ ॥ ४६ ॥

ततस्ते पापकर्माणो लोभोपहतचेतसः ।
आभीरा मन्त्रयामासुः समेत्याशुभदर्शनाः ॥ ४७ ॥

लोभसे उनके चित्तकी विवेकशक्ति नष्ट हो गयी । उन अशुभदर्शी पापाचारी आभीरोंने परस्पर मिलकर सलाह की ॥

अयमेकोऽर्जुनो धन्वी वृद्धबालं हतेश्वरम् ।
नयत्यस्मानतिक्रम्य योधाश्चेमे हतौजसः ॥ ४८ ॥

'भाइयो ! देखो, यह अकेला धनुर्धर अर्जुन और ये हतोत्साह सैनिक हमलोगोंको लाँघकर बूढ़ों और बालकोंके इस अनाथ समुदायको लिये जा रहे हैं (अतः इनपर आक्रमण करना चाहिये)' ॥ ४८ ॥

ततो यष्टिप्रहरणा दस्यवस्ते सहस्रशः ।
अभ्यधावन्त वृष्णीनां तं जनं लोप्त्रहारिणः ॥ ४९ ॥

ऐसा निश्चय करके लूटका माल उड़ानेवाले वे लट्ठधारी लुटेरे वृष्णिवंशियोंके उस समुदायपर हजारोंकी संख्यामें टूट पड़े ॥ ४९ ॥

महता सिंहनादेन द्रावयन्तः पृथग्जनम् ।
अभिपेतुर्वधार्थं ते कालपर्यायचोदिताः ॥ ५० ॥

समयके उलट-फेरसे प्रेरणा पाकर वे लुटेरे उन सबके वधके लिये उतारू हो अपने महान् सिंहनादसे साधारण लोगोंको डराते हुए उनकी ओर दौड़े ॥ ५० ॥

ततो निवृत्तः कौन्तेयः सहसा सपदानुगः ।
उवाच तान् महाबाहुरर्जुनः प्रहसन्निव ॥ ५१ ॥

आक्रमणकारियोंको पीछेकी ओरसे धावा करते देख कुन्तीकुमार महाबाहु अर्जुन सेवकोंसहित सहसा लौट पड़े और उनसे हँसते हुए-से बोले—॥ ५१ ॥

निवर्तध्वमधर्मज्ञा यदि जीवितुमिच्छथ ।
इदानीं शरनिर्भिन्नाः शोचध्वं निहता मया ॥ ५२ ॥

'धर्मको न जाननेवाले पापियो ! यदि जीवित रहना चाहते हो तो लौट जाओ; नहीं तो मेरे द्वारा मारे जाकर या मेरे बाणोंसे विदीर्ण होकर इस समय तुम बड़े शोकमें पड़ जाओगे' ॥ ५२ ॥

तथोक्तास्तेन वीरेण कदर्थीकृत्य तद्वचः ।
अभिपेतुर्जनं मूढा वार्यमाणाः पुनः पुनः ॥ ५३ ॥

वीरवर अर्जुनके ऐसा कहनेपर उनकी बातोंकी अवहेलना करके वे मूर्ख आभीर उनके बारंबार मना करनेपर भी उस जनसमुदायपर टूट पड़े ॥ ५३ ॥

ततोऽर्जुनो धनुर्दिव्यं गाण्डीवमजरं महत् ।
आरोपयितुमारेभे यत्नादिव कथंचन ॥ ५४ ॥

तब अर्जुनने अपने दिव्य एवं कभी जीर्ण न होनेवाले विशाल धनुष गाण्डीवको चढ़ाना आरम्भ किया और बड़े प्रयत्नसे किसी तरह उसे चढ़ा दिया ॥ ५४ ॥

चकार सज्जं कृच्छ्रेण सम्भ्रमे तुमुले सति ।
चिन्तयामास शस्त्राणि न च सस्मार तान्यपि ॥ ५५ ॥

भयङ्कर मारकाट छिड़नेपर बड़ी कठिनाईसे उन्होंने धनुषपर प्रत्यञ्चा तो चढ़ा दी; परंतु जब वे अपने अस्त्र-शस्त्रोंका चिन्तन करने लगे, तब उन्हें उनकी याद बिल्कुल नहीं आयी ॥ ५५ ॥

वैकृतं तन्महद् दृष्ट्वा भुजवीर्ये तथा युधि ।
दिव्यानां च महास्त्राणां विनाशाद् व्रीडितोऽभवत् ॥ ५६ ॥

युद्धके अवसरपर अपने बाहुबलमें यह महान् विकार आया देख और महान् दिव्यास्त्रोंका विस्मरण हुआ जान वे लज्जित हो गये ॥ ५६ ॥

वृष्णियोधाश्च ते सर्वे गजाश्वरथयोधिनः ।
न शेकुरावर्तयितुं ह्रियमाणं च तं जनम् ॥ ५७ ॥

हाथी, घोड़े और रथपर बैठकर युद्ध करनेवाले समस्त वृष्णिसैनिक भी उन डाकुओंके हाथमें पड़े हुए अपने मनुष्योंको लौटा न सके ॥ ५७ ॥

कलत्रस्य बहुत्वाद्धि सम्पतत्सु ततस्ततः ।
प्रयत्नमकरोत् पार्थो जनस्य परिरक्षणे ॥ ५८ ॥

उस समुदायमें स्त्रियोंकी संख्या बहुत थी; इसलिये डाकू कई ओरसे उनपर धावा करने लगे तो भी अर्जुन उनकी रक्षाका यथासाध्य प्रयत्न करते रहे ॥ ५८ ॥

मिषतां सर्वयोधानां ततस्ताः प्रमदोत्तमाः ।
समन्ततोऽवकृष्यन्त कामाच्चान्याः प्रवव्रजुः ॥ ५९ ॥

सब योद्धाओंके देखते-देखते वे डाकू उन सुन्दरी स्त्रियोंको चारों ओरसे खींच-खींचकर ले जाने लगे। दूसरी स्त्रियाँ उनके स्पर्शके भयसे उनकी इच्छाके अनुसार चुपचाप उनके साथ चली गयीं ॥ ५९ ॥

ततो गाण्डीवनिर्मुक्तैः शरैः पार्थो धनंजयः ।
जघान दस्यून् सोद्वेगो वृष्णिभृत्यैः सहस्रशः ॥ ६० ॥

तब कुन्तीकुमार अर्जुन उद्विग्न होकर सहस्रों वृष्णि सैनिकोंको साथ ले गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा उन लुटेरोंके प्राण लेने लगे ॥ ६० ॥

क्षणेन तस्य ते राजन् क्षयं जग्मुरजिह्मगाः ।
अक्षया हि पुरा भूत्वा क्षीणाः क्षतजभोजनाः ॥ ६१ ॥

राजन् ! अर्जुनके सीधे जानेवाले बाण क्षणभरमें क्षीण हो गये । जो रक्तभोगी बाण पहले अक्षय थे, वे ही उस समय सर्वथा क्षयको प्राप्त हो गये ॥ ६१ ॥

स शरक्षयमासाद्य दुःखशोकसमाहतः ।
धनुष्कोट्या तदा दस्यूनवधीत् पाकशासनिः ॥ ६२ ॥

बाणोंके समाप्त हो जानेपर दुःख और शोकके आघात सहते हुए इन्द्रकुमार अर्जुन धनुषकी नोकसे ही उन डाकुओंका वध करने लगे ॥ ६२ ॥

प्रेक्षतस्त्वेव पार्थस्य वृष्ण्यन्धकवरस्त्रियः ।
जग्मुरादाय ते म्लेच्छाः समन्ताज्जनमेजय ॥ ६३ ॥

जनमेजय ! अर्जुन देखते ही रह गये और वे म्लेच्छ डाकू सब ओरसे वृष्णि और अन्धकवंशकी सुन्दरी स्त्रियोंको लूट ले गये ॥ ६३ ॥

धनंजयस्तु दैवं तन्मनसाऽचिन्तयत् प्रभुः ।
दुःखशोकसमाविष्टो निःश्वासपरमोऽभवत् ॥ ६४ ॥

प्रभावशाली अर्जुनने मन-ही-मन इसे दैवका विधान समझा और दुःख-शोकमें डूबकर वे लंबी साँस लेने लगे ॥

अस्त्राणां च प्रणाशेन बाहुवीर्यस्य संक्षयात् ।
धनुषश्चाविधेयत्वाच्छराणां संक्षयेण च ॥ ६५ ॥
बभूव विमनाः पार्थो दैवमित्यनुचिन्तयन् ।

अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान लुप्त हो गया । भुजाओंका बल भी घट गया । धनुष भी काबूके बाहर हो गया और अक्षय बाणोंका भी क्षय हो गया । इन सब बातोंसे अर्जुनका मन उदास हो गया । वे इन सब घटनाओंको दैवका विधान मानने लगे ॥ ६५½ ॥

न्यवर्तत ततो राजन् नेदमस्तीति चाब्रवीत् ॥ ६६ ॥

राजन् ! तदनन्तर अर्जुन युद्धसे निवृत्त हो गये और बोले—'यह अस्त्रज्ञान आदि कुछ भी नित्य नहीं है' ॥६६॥

ततः शेषं समादाय कलत्रस्य महामतिः ।
हृतभूयिष्ठरत्नस्य कुरुक्षेत्रमवातरत् ॥ ६७ ॥

फिर अपहरणसे बची हुई स्त्रियों और जिनका अधिक भाग लूट लिया गया था, ऐसे बचे-खुचे रत्नोंको साथ लेकर परम बुद्धिमान् अर्जुन कुरुक्षेत्रमें उतरे ॥ ६७ ॥

एवं कलत्रमानीय वृष्णीनां हृतशेषितम् ।
न्यवेशयत कौरव्यस्तत्र तत्र धनंजयः ॥ ६८ ॥

इस प्रकार अपहरणसे बची हुई वृष्णिवंशकी स्त्रियोंको ले आकर कुरुनन्दन अर्जुनने उनको जहाँ-तहाँ बसा दिया ॥

हार्दिक्यतनयं पार्थो नगरे मार्तिकावते ।
भोजराजकलत्रं च हृतशेषं नरोत्तमः ॥ ६९ ॥

कृतवर्माके पुत्रको और भोजराजके परिवारकी अपहरणसे बची हुई स्त्रियोंको नरश्रेष्ठ अर्जुनने मार्तिकावत नगरमें बसा दिया ॥ ६९ ॥

ततो वृद्धांश्च बालांश्च स्त्रियश्चादाय पाण्डवः ।
वीरैर्विहीनान् सर्वांस्ताञ्छक्रप्रस्थे न्यवेशयत् ॥ ७० ॥

तत्पश्चात् वीरविहीन समस्त वृद्धों, बालकों तथा अन्य स्त्रियोंको साथ लेकर वे इन्द्रप्रस्थ आये और उन सबको वहाँका निवासी बना दिया ॥ ७० ॥

यौयुधानिं सरस्वत्यां पुत्रं सात्यकिनः प्रियम् ।
न्यवेशयत धर्मात्मा वृद्धबालपुरस्कृतम् ॥ ७१ ॥

धर्मात्मा अर्जुनने सात्यकिके प्रिय पुत्र यौयुधानिको सरस्वतीके तटवर्ती देशका अधिकारी एवं निवासी बना दिया और वृद्धों तथा बालकोंको उसके साथ कर दिया ॥ ७१ ॥

इन्द्रप्रस्थे ददौ राज्यं वज्राय परवीरहा ।
वज्रेणाक्रूरदारास्तु वार्यमाणाः प्रवव्रजुः ॥ ७२ ॥

इसके बाद शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले अर्जुनने वज्रको इन्द्रप्रस्थका राज्य दे दिया । अक्रूरजीकी स्त्रियाँ वज्रके बहुत रोकनेपर भी वनमें तपस्या करनेके लिये चली गयीं ॥ ७२ ॥

रुक्मिणी त्वथ गान्धारी शैब्या हैमवतीत्यपि ।
देवी जाम्बवती चैव विविशुर्जातवेदसम् ॥ ७३ ॥

रुक्मिणी, गान्धारी, शैब्या, हैमवती तथा जाम्बवती देवीने पतिलोककी प्राप्तिके लिये अग्निमें प्रवेश किया ॥७३॥

सत्यभामा तथैवान्या देव्यः कृष्णस्य सम्मताः ।
वनं प्रविविशू राजंस्तापस्ये कृतनिश्चयाः ॥ ७४ ॥

राजन् ! श्रीकृष्णप्रिया सत्यभामा तथा अन्य देवियाँ तपस्याका निश्चय करके वनमें चली गयीं ॥ ७४ ॥

द्वारकावासिनो ये तु पुरुषाः पार्थमभ्ययुः ।
यथार्हं संविभज्यैनान् वज्रे पर्यददज्जयः ॥ ७५ ॥

जो-जो द्वारकावासी मनुष्य पार्थके साथ आये थे, उन सबका यथायोग्य विभाग करके अर्जुनने उन्हें वज्रको सौंप दिया ॥ ७५ ॥

स तत् कृत्वा प्राप्तकालं बाष्पेणापिहितोऽर्जुनः ।
कृष्णद्वैपायनं व्यासं ददर्शासीनमाश्रमे ॥ ७६ ॥

इस प्रकार समयोचित व्यवस्था करके अर्जुन नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए महर्षि व्यासके आश्रमपर गये और वहाँ बैठे हुए महर्षिका उन्होंने दर्शन किया ॥ ७६ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि वृष्णिकलत्राद्यानयने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत मौसलपर्वमें अर्जुनद्वारा वृष्णिवंशकी स्त्रियों और बालकोंका आनयनविषयक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

अर्जुन और व्यासजीकी बातचीत

वैशम्पायन उवाच

प्रविशन्नर्जुनो राजन्नाश्रमं सत्यवादिनः ।
ददर्शासीनमेकान्ते मुनिं सत्यवतीसुतम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! सत्यवादी व्यासजीके आश्रममें प्रवेश करके अर्जुनने देखा कि सत्यवतीनन्दन मुनिवर व्यास एकान्तमें बैठे हुए हैं ॥ १ ॥

स तमासाद्य धर्मज्ञमुपतस्थे महाव्रतम् ।
अर्जुनोऽस्मीति नामास्मै निवेद्याभ्यवदत् ततः ॥ २ ॥

महान् व्रतधारी तथा धर्मके ज्ञाता व्यासजीके पास पहुँचकर 'मैं अर्जुन हूँ' ऐसा कहते हुए धनंजयने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर वे उनके पास ही खड़े हो गये ॥

स्वागतं तेऽस्त्विति प्राह मुनिः सत्यवतीसुतः ।
आस्यतामिति होवाच प्रसन्नात्मा महामुनिः ॥ ३ ॥

उस समय प्रसन्नचित्त हुए महामुनि सत्यवतीनन्दन व्यासने अर्जुनसे कहा—'बेटा ! तुम्हारा स्वागत है; आओ यहाँ बैठो' ॥ ३ ॥

तमप्रतीतमनसं निःश्वसन्तं पुनः पुनः ।
निर्विण्णमनसं दृष्ट्वा पार्थं व्यासोऽब्रवीदिदम् ॥ ४ ॥

अर्जुनका मन अशान्त था। वे बारंबार लंबी साँस खींच रहे थे। उनका चित्त खिन्न एवं विरक्त हो चुका था। उन्हें इस अवस्थामें देखकर व्यासजीने पूछा— ॥ ४ ॥

नखकेशदशाकुम्भवारिणा किं समुक्षितः ।
आवीरजानुगमनं ब्राह्मणो वा हतस्त्वया ॥ ५ ॥

'पार्थ ! क्या तुमने नख, बाल अथवा अधोवस्त्र (धोती) की कोर पड़ जानेसे अशुद्ध हुए घड़ेके जलसे स्नान कर लिया है ? अथवा तुमने रजस्वला स्त्रीसे समागम या किसी ब्राह्मणका वध तो नहीं किया है ? ॥ ५ ॥

युद्धे पराजितो वासि गतश्रीरिव लक्ष्यसे ।
न त्वां प्रभिन्नं जानामि किमिदं भरतर्षभ ॥ ६ ॥
श्रोतव्यं चेन्मया पार्थ क्षिप्रमाख्यातुमर्हसि ।

'कहीं तुम युद्धमें परास्त तो नहीं हो गये ? क्योंकि श्रीहीन-से दिखायी देते हो। भरतश्रेष्ठ ! तुम कभी पराजित हुए हो—यह मैं नहीं जानता; फिर तुम्हारी ऐसी दशा क्यों है ? पार्थ ! यदि मेरे सुननेयोग्य हो तो अपनी इस मलिनताका कारण मुझे शीघ्र बताओ' ॥ ६½ ॥
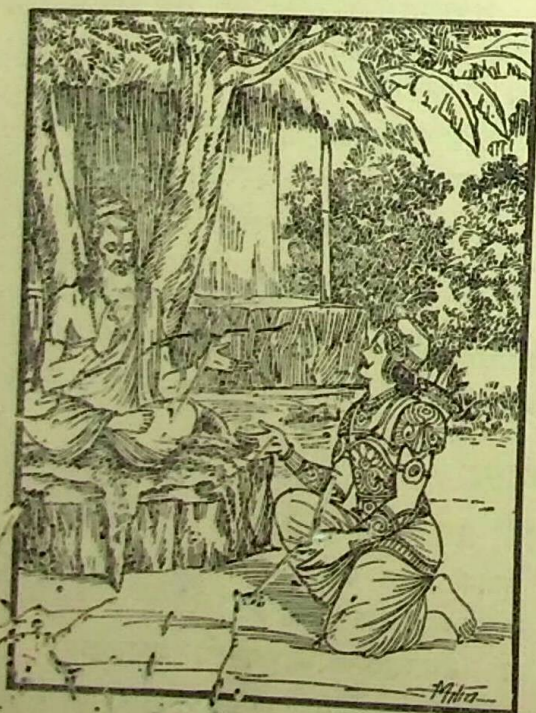
अर्जुन उवाच

यः स मेघवपुः श्रीमान् बृहत्पङ्कजलोचनः ॥ ७ ॥
स कृष्णः सह रामेण त्यक्त्वा देहं दिवं गतः ।

अर्जुनने कहा—भगवन् ! जिनका सुन्दर विग्रह मेघके समान श्याम था और जिनके नेत्र विशाल कमलदलके समान शोभा पाते थे, वे श्रीमान् भगवान् कृष्ण बलरामजीके साथ देहत्याग करके अपने परमधामको पधार गये ॥ ७½ ॥

(तद्वाक्यस्पर्शनालोकसुखं त्वमृतसंनिभम् ।
संस्मृत्य देवदेवस्य प्रमुह्याम्यमृतात्मनः ॥)

देवताओंके भी देवता, अमृतस्वरूप श्रीकृष्णके मधुर वचनोंको सुनने, उनके श्रीअङ्गोंका स्पर्श करने और उन्हें देखनेका जो अमृतके समान सुख था, उसे बार-बार याद करके मैं अपनी सुध-बुध खो बैठता हूँ ॥

मौसले वृष्णिवीराणां विनाशो ब्रह्मशापजः ॥ ८ ॥
बभूव वीरान्तकरः प्रभासे लोमहर्षणः ।

ब्राह्मणोंके शापसे मौसलयुद्धमें वृष्णिवंशी वीरोंका विनाश हो गया। बड़े-बड़े वीरोंका अन्त कर देनेवाला वह रोमाञ्चकारी संग्राम प्रभासक्षेत्रमें घटित हुआ था ॥ ८½ ॥

एते शूरा महात्मानः सिंहदर्पा महाबलाः ॥ ९ ॥
भोजवृष्ण्यन्धका ब्रह्मन्नन्योन्यं तैर्हतं युधि ।

ब्रह्मन् ! भोज, वृष्णि और अन्धकवंशके ये महामनस्वी शूरवीर सिंहके समान दर्पशाली और महान् बलवान् थे; परंतु वे गृहयुद्धमें एक-दूसरेके द्वारा मार डाले गये ॥ ९½ ॥

गदापरिघशक्तीनां सहाः परिघबाहवः ॥ १० ॥
त एरकाभिर्निहताः पश्य कालस्य पर्ययम् ।

जो गदा, परिघ और शक्तियोंकी मार सह सकते थे, वे परिघके समान सुदृढ़ बाहोंवाले यदुवंशी एरका नामक तृणविशेषके द्वारा मारे गये—यह समयका उलट-फेर तो देखिये।

हतं पञ्चशतं तेषां सहस्रं बाहुशालिनाम् ॥ ११ ॥
निधनं समनुप्राप्तं समासाद्येतरेतरम् ।

अपने बाहुबलसे शोभा पानेवाले पाँच लाख वीर आपसमें ही लड़-भिड़कर मर मिटे ॥ ११½ ॥

पुनः पुनर्न मृष्यामि विनाशममितौजसाम् ॥ १२ ॥
चिन्तयानो यदूनां च कृष्णस्य च यशस्विनः ।
शोषणं सागरस्येव पर्वतस्येव चालनम् ॥ १३ ॥
नभसः पतनं चैव शैत्यमग्नेस्तथैव च ।
अश्रद्धेयमहं मन्ये विनाशं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १४ ॥

उन अमित तेजस्वी वीरोंके विनाशका दुःख मुझसे किसी तरह सहा नहीं जाता। मैं बार-बार उस दुःखसे व्यथित हो जाता हूँ। यशस्वी श्रीकृष्ण और यदुवंशियोंके परलोकगमनकी बात सोचकर तो मुझे ऐसा जान पड़ता है, मानो समुद्र सूख गया, पर्वत हिलने लगे, आकाश फट पड़ा और

अग्निके स्वभावमें शीतलता आ गयी। शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले श्रीकृष्ण भी मृत्युके अधीन हुए होंगे—यह बात विश्वासके योग्य नहीं है। मैं इसे नहीं मानता ॥ १२–१४ ॥

न चेह स्थातुमिच्छामि लोके कृष्णविनाकृतः।
इतः कष्टतरं चान्यच्छृणु तद् वै तपोधन ॥ १५ ॥

फिर भी श्रीकृष्ण मुझे छोड़कर चले गये। मैं इस संसारमें उनके बिना नहीं रहना चाहता। तपोधन! इसके सिवा जो दूसरी घटना घटित हुई है, वह इससे भी अधिक कष्टदायक है। आप इसे सुनिये ॥ १५ ॥

मनो मे दीर्यते येन चिन्तयानस्य वै मुहुः।
पश्यतो वृष्णिदाराश्च मम ब्रह्मन् सहस्रशः ॥ १६ ॥
आभीरैरनुसृत्याजौ हृताः पञ्चनदालयैः।

जब मैं उस घटनाका चिन्तन करता हूँ, तब बारंबार मेरा हृदय विदीर्ण होने लगता है। ब्रह्मन्! पंजाबके अहीरोंने मुझसे युद्ध ठानकर मेरे देखते-देखते वृष्णिवंशकी हजारों स्त्रियोंका अपहरण कर लिया ॥ १६½ ॥

धनुरादाय तत्राहं नाशकं तस्य पूरणे ॥ १७ ॥
यथा पुरा च मे वीर्यं भुजयोर्न तथाभवत्।

मैंने धनुष लेकर उनका सामना करना चाहा, परंतु मैं उसे चढ़ा न सका। मेरी भुजाओंमें पहले-जैसा बल था वैसा अब नहीं रहा ॥ १७½ ॥

अस्त्राणि मे प्रणष्टानि विविधानि महामुने ॥ १८ ॥
शराश्च क्षयमापन्नाः क्षणेनैव समन्ततः।

महामुने! मेरा नाना प्रकारके अस्त्रोंका ज्ञान विलुप्त हो गया। मेरे सभी बाण सब ओर जाकर क्षणभरमें नष्ट हो गये॥

पुरुषश्चाप्रमेयात्मा शङ्खचक्रगदाधरः ॥ १९ ॥
चतुर्भुजः पीतवासाः श्यामः पद्मदलेक्षणः।
यश्च याति पुरस्तान्मे रथस्य सुमहाद्युतिः ॥ २० ॥
प्रदहन् रिपुसैन्यानि न पश्याम्यहमच्युतम्।

जिनका स्वरूप अप्रमेय है, जो शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले, चतुर्भुज, पीताम्बरधारी, श्यामसुन्दर तथा कमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाले हैं, जो महातेजस्वी प्रभु शत्रुओंकी सेनाओंको भस्म करते हुए मेरे रथके आगे-आगे चलते थे, उन्हीं भगवान् अच्युतको अब मैं नहीं देख पाता हूँ॥

येन पूर्वं प्रदग्धानि शत्रुसैन्यानि तेजसा ॥ २१ ॥
शरैर्गाण्डीवनिर्मुक्तैरहं पश्चाच्च नाशयम्।
तमपश्यन् विषीदामि घूर्णामीव च सत्तम ॥ २२ ॥

साधुशिरोमणे! जो पहले स्वयं ही अपने तेजसे शत्रु-सेनाओंको दग्ध कर देते थे, उसके बाद मैं गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा उन शत्रुओंका नाश करता था, उन्हीं भगवान्‌को आज न देखनेके कारण मैं विषादमें डूबा हुआ हूँ। मुझे चक्कर-सा आ रहा है ॥ २१-२२ ॥

परिनिर्विण्णचेताश्च शान्तिं नोपलभेऽपि च।
(देवकीनन्दनं देवं वासुदेवमजं प्रभुम्।)
विना जनार्दनं वीरं नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ २३ ॥

मेरे चित्तमें निर्वेद छा गया है। मुझे शान्ति नहीं मिलती है। मैं देवस्वरूप, अजन्मा, भगवान् देवकीनन्दन वासुदेव वीर जनार्दनके बिना अब जीवित रहना नहीं चाहता ॥२३॥

श्रुत्वैव हि गतं विष्णुं ममापि मुमुहुर्दिशः।
प्रणष्टज्ञातिवीर्यस्य शून्यस्य परिधावतः ॥ २४ ॥
उपदेष्टुं मम श्रेयो भवानर्हति सत्तम।

सर्वव्यापी भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये, यह बात सुनते ही मुझे सम्पूर्ण दिशाओंका ज्ञान भूल जाता है। मेरे भी जाति-भाइयोंका नाश तो पहले ही हो गया था, अब मेरा पराक्रम भी नष्ट हो गया; अतः शून्यहृदय होकर इधर-उधर दौड़ लगा रहा हूँ। संतोंमें श्रेष्ठ महर्षे! आप कृपा करके मुझे यह उपदेश दें कि मेरा कल्याण कैसे होगा? ॥ २४½ ॥

व्यास उवाच

(देवांशा देवदेवेन सम्मतास्ते गताः सह।
धर्मव्यवस्थारक्षार्थं देवेन समुपेक्षिताः ॥)

व्यासजी बोले—कुन्तीकुमार! वे समस्त यदुवंशी देवताओंके अंश थे। वे देवाधिदेव श्रीकृष्णके साथ ही यहाँ आये थे और साथ ही चले गये। उनके रहनेसे धर्मकी मर्यादाके भङ्ग होनेका डर था; अतः भगवान् श्रीकृष्णने धर्म-व्यवस्थाकी रक्षाके लिये उन मरते हुए यादवोंकी उपेक्षा कर दी॥

ब्रह्मशापविनिर्दग्धा वृष्ण्यन्धकमहारथाः ॥ २५ ॥
विनष्टाः कुरुशार्दूल न ताञ्शोचितुमर्हसि।
भवितव्यं तथा तच्च दिष्टमेतन्महात्मनाम् ॥ २६ ॥

कुरुश्रेष्ठ! वृष्णि और अन्धकवंशके महारथी ब्राह्मणोंके शापसे दग्ध होकर नष्ट हुए हैं; अतः तुम उनके लिये शोक न करो। उन महामनस्वी वीरोंकी भवितव्यता ही ऐसी थी। उनका प्रारब्ध ही वैसा बन गया था ॥ २५-२६ ॥

उपेक्षितं च कृष्णेन शक्तेनापि व्यपोहितुम्।
त्रैलोक्यमपि गोविन्दः कृत्स्नं स्थावरजङ्गमम् ॥ २७ ॥
प्रसहेदन्यथाकर्तुं कुतः शापं महात्मनाम्।

यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण उनके संकटको टाल सकते थे तथापि उन्होंने इसकी उपेक्षा कर दी। श्रीकृष्ण तो सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंकी गतिको पलट सकते हैं, फिर उन महामनस्वी वीरोंको प्राप्त हुए शापको पलट देना उनके लिये कौन बड़ी बात थी ॥ २७½ ॥

(स्त्रियश्च ताः पुरा शप्ताः प्रहासकुपितेन वै।
अष्टावक्रेण मुनिना तदर्थं त्वद्बलक्षयः ॥)

(तुम्हारे देखते-देखते स्त्रियोंका जो अपहरण हुआ है, उसमें भी देवताओंका एक रहस्य है।) वे स्त्रियाँ पूर्वजन्ममें अप्सराएँ थीं। उन्होंने अष्टावक्र मुनिके रूपका उपहास किया था। मुनिने शाप दिया था (कि 'तुमलोग मानवी हो जाओ और दस्युओंके हाथमें पड़नेपर तुम्हारा इस शापसे उद्धार

होगा।') इसीलिये तुम्हारे बलका क्षय हुआ (जिससे वे डाकुओंके हाथमें पड़कर उस शापसे छुटकारा पा जायँ)," (अब वे अपना पूर्वरूप और स्थान पा चुकी हैं, अतः उनके लिये भी शोक करनेकी आवश्यकता नहीं है)॥

रथस्य पुरतो याति यः स चक्रगदाधरः ॥ २८ ॥
तव स्नेहात् पुराणर्षिर्वासुदेवश्चतुर्भुजः।

जो स्नेहवश तुम्हारे रथके आगे चलते थे (सारथिका काम करते थे), वे वासुदेव कोई साधारण पुरुष नहीं, साक्षात् चक्र-गदाधारी पुरातन ऋषि चतुर्भुज नारायण थे ॥ २८½ ॥

कृत्वा भारावतरणं पृथिव्याः पृथुलोचनः ॥ २९ ॥
मोक्षयित्वा तनुं प्राप्तः कृष्णः स्वस्थानमुत्तमम्।

वे विशाल नेत्रोंवाले श्रीकृष्ण इस पृथ्वीका भार उतारकर शरीर त्याग अपने उत्तम परमधामको जा पहुँचे हैं ॥ २९½॥

त्वयापीह महत् कर्म देवानां पुरुषर्षभ ॥ ३० ॥
कृतं भीमसहायेन यमाभ्यां च महाभुज।

पुरुषप्रवर ! महाबाहो ! तुमने भी भीमसेन और नकुल-सहदेवकी सहायतासे देवताओंका महान् कार्य सिद्ध किया है ॥

कृतकृत्यांश्च वो मन्ये संसिद्धान् कुरुपुङ्गव ॥ ३१ ॥
गमनं प्राप्तकालं व इदं श्रेयस्करं विभो।

कुरुश्रेष्ठ ! मैं समझता हूँ कि अब तुमलोगोंने अपना कर्तव्य पूर्ण कर लिया है। तुम्हें सब प्रकारसे सफलता प्राप्त हो चुकी है। प्रभो ! अब तुम्हारे परलोकगमनका समय आया है और यही तुमलोगोंके लिये श्रेयस्कर है ॥ ३१½ ॥

एवं बुद्धिश्च तेजश्च प्रतिपत्तिश्च भारत ॥ ३२ ॥
भवन्ति भवकालेषु विपद्यन्ते विपर्यये।

भरतनन्दन ! जब उद्भवका समय आता है, तब इसी प्रकार मनुष्यकी बुद्धि, तेज और ज्ञानका विकास होता है और जब विपरीत समय उपस्थित होता है, तब इन सबका नाश हो जाता है ॥ ३२½ ॥

कालमूलमिदं सर्वं जगद्बीजं धनंजय ॥ ३३ ॥
काल एव समादत्ते पुनरेव यदृच्छया।

धनंजय ! काल ही इन सबकी जड़ है। संसारकी उत्पत्तिका बीज भी काल ही है और काल ही फिर अकस्मात् सबका संहार कर देता है ॥ ३३½ ॥

स एव बलवान् भूत्वा पुनर्भवति दुर्बलः ॥ ३४ ॥
स एवेशश्च भूत्वेह परैराज्ञाप्यते पुनः।

वही बलवान् होकर फिर दुर्बल हो जाता है और वही एक समय दूसरोंका शासक होकर कालान्तरमें स्वयं दूसरोंका आज्ञापालक हो जाता है ॥ ३४½ ॥

कृतकृत्यानि चास्त्राणि गतान्यद्य यथागतम् ॥ ३५ ॥
पुनरेष्यन्ति ते हस्ते यदा कालो भविष्यति।

तुम्हारे अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोजन भी पूरा हो गया है, इसलिये वे जैसे मिले थे, वैसे ही चले गये। जब उपयुक्त समय होगा, तब वे फिर तुम्हारे हाथमें आयेंगे ॥ ३५½ ॥

कालो गन्तुं गतिं मुख्यां भवतामपि भारत ॥ ३६ ॥
एतच्छ्रेयो हि वो मन्ये परमं भरतर्षभ।

भारत ! अब तुमलोगोंके उत्तम गति प्राप्त करनेका समय उपस्थित है। भरतश्रेष्ठ ! मुझे इसीमें तुमलोगोंका परम कल्याण जान पड़ता है ॥ ३६½ ॥

वैशम्पायन उवाच

एतद् वचनमाज्ञाय व्यासस्यामिततेजसः ॥ ३७ ॥
अनुज्ञातो ययौ पार्थो नगरं नागसाह्वयम्।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! अमिततेजस्वी व्यासजीके इस वचनका तत्त्व समझकर अर्जुन उनकी आज्ञा ले हस्तिनापुरको चले गये ॥ ३७½ ॥

प्रविश्य च पुरीं वीरः समासाद्य युधिष्ठिरम्।
आचष्ट तद् यथावृत्तं वृष्ण्यन्धककुलं प्रति ॥ ३८ ॥

नगरमें प्रवेश करके वीर अर्जुन युधिष्ठिरसे मिले और वृष्णि तथा अन्धकवंशका यथावत् समाचार उन्होंने कह सुनाया ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि व्यासार्जुनसंवादे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत मौसलपर्वमें व्यास और अर्जुनका संवादविषयक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३½ श्लोक मिलाकर कुल ४१½ श्लोक हैं)

मौसलपर्व सम्पूर्ण

	अनुष्टुप्	(अन्य बड़े छन्द)	बड़े छन्दोंको ३२ अक्षरोंके अनुष्टुप् मानकर गिननेपर	कुलयोग
उत्तर भारतीय पाठसे लिये गये	२६०	(३०)	४१।	३०१।
दक्षिण भारतीय पाठसे लिये गये	३॥			३॥

मौसलपर्वकी कुल श्लोक-संख्या ३०४॥
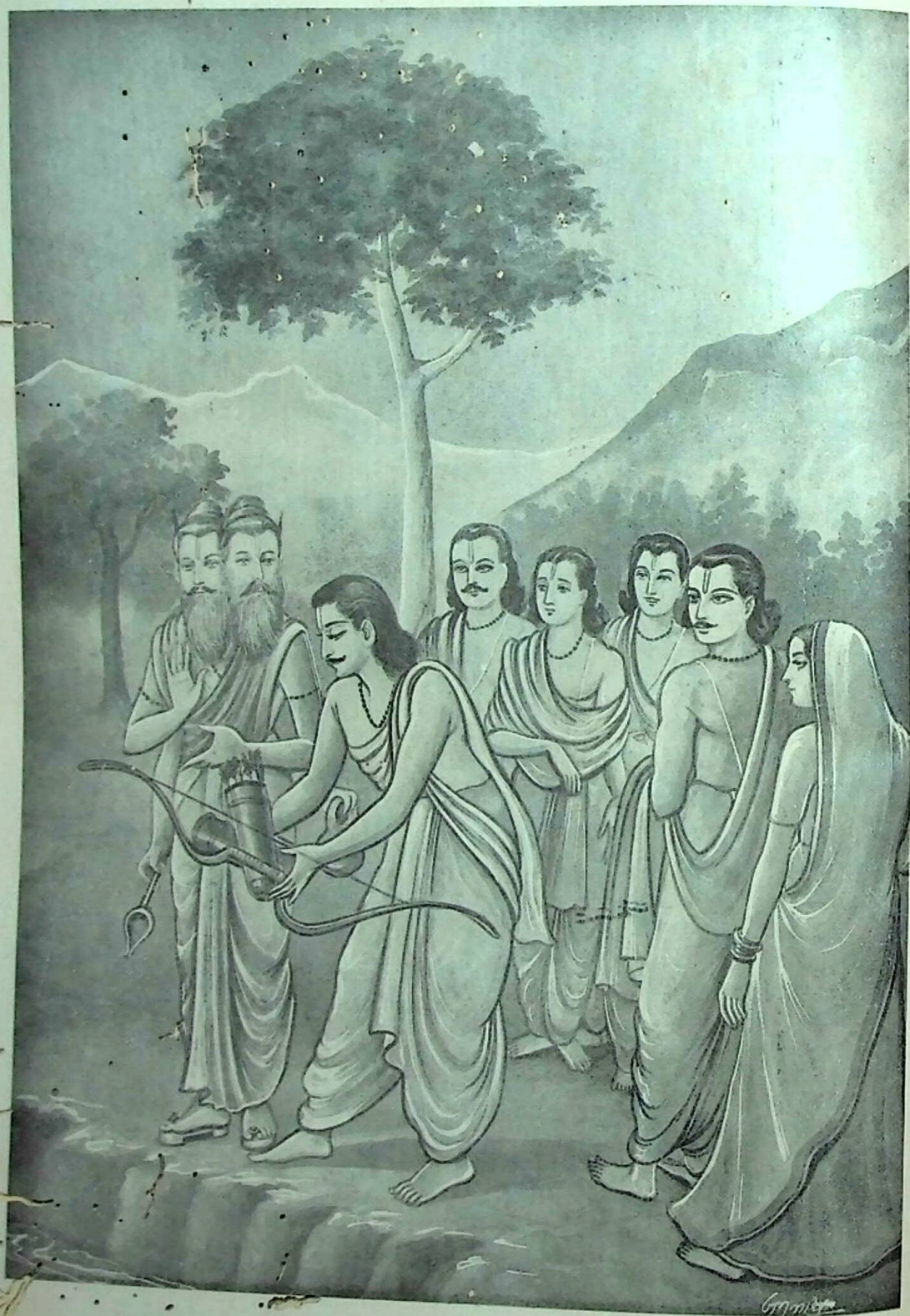
अग्निकी प्रेरणासे अर्जुन अपने गाण्डीव धनुष और अक्षय तरकसको जलमें डाल रहे हैं।

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतम्

महाप्रस्थानिकपर्व

प्रथमोऽध्यायः

वृष्णिवंशियोंका श्राद्ध करके प्रजाजनोंकी अनुमति ले द्रौपदीसहित पाण्डवोंका महाप्रस्थान

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओंका संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (महाभारत) का पाठ करना चाहिये॥

जनमेजय उवाच

एवं वृष्ण्यन्धककुले श्रुत्वा मौसलमाहवम्।
पाण्डवाः किमकुर्वन्त तथा कृष्णे दिवं गते॥ १॥

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! इस प्रकार वृष्णि और अन्धकवंशके वीरोंमें मूसलयुद्ध होनेका समाचार सुनकर भगवान् श्रीकृष्णके परमधाम पधारनेके पश्चात् पाण्डवोंने क्या किया?॥ १॥

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वैवं कौरवो राजा वृष्णीनां कदनं महत्।
प्रस्थाने मतिमाधाय वाक्यमर्जुनमब्रवीत्॥ २॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! कुरुराज युधिष्ठिरने जब इस प्रकार वृष्णिवंशियोंके महान् संहारका समाचार सुना, तब महाप्रस्थानका निश्चय करके अर्जुनसे कहा—॥२॥

कालः पचति भूतानि सर्वाण्येव महामते।
कालपाशमहं मन्ये त्वमपि द्रष्टुमर्हसि॥ ३॥

'महामते! काल ही सम्पूर्ण भूतोंको पका रहा है—विनाशकी ओर ले जा रहा है। अब मैं कालके बन्धनको स्वीकार करता हूँ। तुम भी इसकी ओर दृष्टिपात करो'॥ ३॥

इत्युक्तः स तु कौन्तेयः कालः काल इति ब्रुवन्।
अन्वपद्यत तद् वाक्यं भ्रातुर्ज्येष्ठस्य धीमतः॥ ४॥

भाईके ऐसा कहनेपर कुन्तीकुमार अर्जुनने 'काल तो काल ही है, इसे टाला नहीं जा सकता' ऐसा कहकर अपने बुद्धिमान् बड़े भाईके कथनका अनुमोदन किया॥ ४॥

अर्जुनस्य मतं ज्ञात्वा भीमसेनो यमौ तथा।
अन्वपद्यन्त तद् वाक्यं यदुक्तं सव्यसाचिना॥ ५॥

अर्जुनका विचार जानकर भीमसेन और नकुल-सहदेवने भी उनकी कही हुई बातका अनुमोदन किया॥ ५॥

ततो युयुत्सुमानाय्य प्रव्रजन् धर्मकाम्यया।
राज्यं परिददौ सर्वं वैश्यापुत्रे युधिष्ठिरः॥ ६॥

तत्पश्चात् धर्मकी इच्छासे राज्य छोड़कर जानेवाले युधिष्ठिरने वैश्यापुत्र युयुत्सुको बुलाकर उन्हींको सम्पूर्ण राज्यकी देख-भालका भार सौंप दिया॥ ६॥

अभिषिच्य स्वराज्ये च राजानं च परिक्षितम्।
दुःखार्तश्चाब्रवीद् राजा सुभद्रां पाण्डवाग्रजः॥ ७॥

फिर अपने राज्यपर राजा परीक्षित्‌का अभिषेक करके पाण्डवोंके बड़े भाई महाराज युधिष्ठिरने दुःखसे आर्त होकर सुभद्रासे कहा—॥ ७॥

एष पुत्रस्य पुत्रस्ते कुरुराजो भविष्यति।
यदूनां परिशेषश्च वज्रो राजा कृतश्च ह॥ ८॥

'बेटी! यह तुम्हारे पुत्रका पुत्र परीक्षित् कुरुदेश तथा कौरवोंका राजा होगा और यादवोंमें जो लोग बच गये हैं; उनका राजा श्रीकृष्ण-पौत्र वज्रको बनाया गया है॥ ८॥

परिक्षिद्धास्तिनपुरे शक्रप्रस्थे च यादवः।
वज्रो राजा त्वया रक्ष्यो मा चाधर्मे मनः कृथाः॥ ९॥

'परीक्षित् हस्तिनापुरमें राज्य करेंगे और यदुवंशी वज्र इन्द्रप्रस्थमें। तुम्हें राजा वज्रकी भी रक्षा करनी चाहिये और अपने मनको कभी अधर्मकी ओर नहीं जाने देना चाहिये'॥ ९॥

इत्युक्त्वा धर्मराजः स वासुदेवस्य धीमतः।
मातुलस्य च वृद्धस्य रामादीनां तथैव च॥ १०॥
भ्रातृभिः सह धर्मात्मा कृत्वोदकमतन्द्रितः।
श्राद्धान्युद्दिश्य सर्वेषां चकार विधिवत् तदा॥ ११॥

ऐसा कहकर धर्मात्मा धर्मराज युधिष्ठिरने भाइयोंसहित आलस्य छोड़कर बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्ण, बूढ़े मामा वसुदेव तथा बलराम आदिके लिये जलाञ्जलि दी और उन सबके उद्देश्यसे विधिपूर्वक श्राद्ध किया॥ १०-११॥

द्वैपायनं नारदं च मार्कण्डेयं तपोधनम् ।
भारद्वाजं याज्ञवल्क्यं हरिमुद्दिश्य यत्नवान् ॥ १२ ॥
अभोजयत् स्वादु भोज्यं कीर्तयित्वा च शार्ङ्गिणम् ।
ददौ रत्नानि वासांसि ग्रामानश्वान् रथांस्तथा ॥ १३ ॥
स्त्रियश्च द्विजमुख्येभ्यस्तदा शतसहस्रशः ।

प्रयत्नशील युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णके उद्देश्यसे द्वैपायन व्यास, देवर्षि नारद, तपोधन मार्कण्डेय, भारद्वाज और याज्ञवल्क्य मुनिको सुस्वादु भोजन कराया। भगवान्का नाम कीर्तन करके उन्होंने उत्तम ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके रत्न, वस्त्र, ग्राम, घोड़े और रथ प्रदान किये। बहुत-से ब्राह्मणशिरोमणियोंको लाखों कुमारी कन्याएँ दीं ॥ १२-१३½ ॥

कृपमभ्यर्च्य च गुरुमथ पौरपुरस्कृतम् ॥ १४ ॥
शिष्यं परिक्षितं तस्मै ददौ भरतसत्तमः ।

तत्पश्चात् गुरुवर कृपाचार्यकी पूजा करके पुरवासियों-सहित परीक्षित्को शिष्यभावसे उनकी सेवामें सौंप दिया ॥ १४½ ॥

ततस्तु प्रकृतीः सर्वाः समानाय्य युधिष्ठिरः ॥ १५ ॥
सर्वमाचष्ट राजर्षिश्चिकीर्षितमथात्मनः ।

इसके बाद समस्त प्रकृतियों (प्रजा-मन्त्री आदि) को बुलाकर राजर्षि युधिष्ठिरने, वे जो कुछ करना चाहते थे अपना वह सारा विचार उनसे कह सुनाया ॥ १५½ ॥

ते श्रुत्वैव वचस्तस्य पौरजानपदा जनाः ॥ १६ ॥
भृशमुद्विग्नमनसो नाभ्यनन्दन्त तद्वचः ।
नैवं कर्तव्यमिति ते तदोचुस्तं जनाधिपम् ॥ १७ ॥

उनकी वह बात सुनते ही नगर और जनपदके लोग मन-ही-मन अत्यन्त उद्विग्न हो उठे। उन्होंने उस प्रस्तावका स्वागत नहीं किया। वे सब राजासे एक साथ बोले, 'आपको ऐसा नहीं करना चाहिये (आप हमें छोड़कर कहीं न जायँ)' ॥ १६-१७ ॥

न च राजा तथाकार्षीत् कालपर्यायधर्मवित् ।

परंतु धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर कालके उलट-फेरके अनुसार जो धर्म या कर्तव्य प्राप्त था, उसे जानते थे; अतः उन्होंने प्रजाके कथनानुसार कार्य नहीं किया ॥ १७½ ॥

ततोऽनुमान्य धर्मात्मा पौरजानपदं जनम् ॥ १८ ॥
गमनाय मतिं चक्रे भ्रातरश्चास्य ते तदा ।

उन धर्मात्मा नरेशने नगर और जनपदके लोगोंको समझा-बुझाकर उनकी अनुमति प्राप्त कर ली। फिर उन्होंने और उनके भाइयोंने सब कुछ त्यागकर महाप्रस्थान करनेका ही निश्चय किया ॥ १८½ ॥

ततः स राजा कौरव्यो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १९ ॥
उत्सृज्याभरणान्यङ्गाज्जगृहे वल्कलान्युत ।
भीमार्जुनयमाश्चैव द्रौपदी च यशस्विनी ॥ २० ॥
तथैव जगृहुः सर्वे वल्कलानि नराधिप ।

इसके बाद कुरुकुलरत्न धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने अपने अङ्गोंसे आभूषण उतारकर वल्कलवस्त्र धारण कर लिया। नरेश्वर ! फिर भीमसेन अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा यशस्विनी द्रौपदी देवी—इन सबने भी उसी प्रकार वल्कल धारण किये ॥ १९-२०½ ॥

विधिवत् कारयित्वेष्टिं नैष्ठिकीं भरतर्षभ ॥ २१ ॥
समुत्सृज्याप्सु सर्वेऽग्नीन् प्रतस्थुर्नरपुङ्गवाः ।

भरतश्रेष्ठ ! इसके बाद ब्राह्मणोंसे विधिपूर्वक उत्सर्ग-कालिक इष्टि करवाकर उन सभी नरश्रेष्ठ पाण्डवोंने अग्नियोंका जलमें विसर्जन कर दिया और स्वयं वे महायात्राके लिये प्रस्थित हुए ॥ २१½ ॥

ततः प्ररुरुदुः सर्वाः स्त्रियो दृष्ट्वा नरोत्तमान् ॥ २२ ॥
प्रस्थितान् द्रौपदीषष्ठान् पुरा द्यूतजितान् यथा ।
हर्षोऽभवच्च सर्वेषां भ्रातॄणां गमनं प्रति ॥ २३ ॥

पहले जूएमें परास्त होकर पाण्डवलोग जिस प्रकार वनमें गये थे, उसी प्रकार उस दिन द्रौपदीसहित उन नरोत्तम पाण्डवोंको इस प्रकार जाते देख नगरकी सभी स्त्रियाँ रोने लगीं। परंतु उन सभी भाइयोंको इस यात्रासे महान् हर्ष हुआ ॥ २२-२३ ॥

युधिष्ठिरमतं ज्ञात्वा वृष्णिक्षयमवेक्ष्य च ।
भ्रातरः पञ्च कृष्णा च षष्ठी श्वा चैव सप्तमः ॥ २४ ॥

युधिष्ठिरका अभिप्राय जान और वृष्णिवंशियोंका संहार देखकर पाँचों भाई पाण्डव, द्रौपदी और एक कुत्ता—ये सब साथ-साथ चलें ॥ २४ ॥

आत्मना सप्तमो राजा निर्ययौ गजसाह्वयात् ।
पौरैरनुगतो दूरं सर्वैरन्तःपुरैस्तथा ॥ २५ ॥
न चैनमशकत् कश्चिन्निवर्तस्वेति भाषितुम् ।

उन छहोंको साथ लेकर सातवें राजा युधिष्ठिर जब हस्तिनापुरसे बाहर निकले, तब नगरनिवासी प्रजा और अन्तःपुरकी स्त्रियाँ उन्हें बहुत दूरतक पहुँचाने गयीं; किंतु कोई भी मनुष्य राजा युधिष्ठिरसे यह नहीं कह सका कि आप लौट चलिये ॥ २५½ ॥

न्यवर्तन्त ततः सर्वे नरा नगरवासिनः ॥ २६ ॥
कृपप्रभृतयश्चैव युयुत्सुं पर्यवारयन् ।

धीरे-धीरे समस्त पुरवासी और कृपाचार्य आदि युयुत्सुको घेरकर उनके साथ ही लौट आये ॥ २६½ ॥

विवेश गङ्गां कौरव्य उलूपी भुजगात्मजा ॥ २७ ॥
चित्राङ्गदा ययौ चापि मणिपूरपुरं प्रति ।
शिष्टाः परिक्षितं त्वन्या मातरः पर्यवारयन् ॥ २८ ॥

जनमेजय ! नागराजकी कन्या उलूपी उसी समय गङ्गाजीमें समा गयी। चित्राङ्गदा मणिपूर नगरमें चली गयी। तथा शेष माताएँ परीक्षित्को घेरे हुए पीछे लौट आयीं ॥ २७-२८ ॥

पाण्डवाश्च महात्मानो द्रौपदी च यशस्विनी ।
कृतोपवासाः कौरव्य प्रययुः प्राङ्मुखास्ततः ॥ २९ ॥

कुरुनन्दन ! तदनन्तर महात्मा पाण्डव और यशस्विनी द्रौपदीदेवी सब-के-सब उपवासका व्रत लेकर पूर्व दिशाकी ओर मुँह करके चल दिये ॥ २९ ॥

योगयुक्ता महात्मानस्त्यागधर्ममुपेयुषः।
अभिजग्मुर्बहून् देशान् सरितः सागरांस्तथा॥ ३०॥

वे सब-के-सब योगयुक्त महात्मा तथा त्यागधर्मका पालन करनेवाले थे। उन्होंने अनेक देशों, नदियों और समुद्रोंकी यात्रा की॥ ३०॥

युधिष्ठिरो ययावग्रे भीमस्तु तदनन्तरम्।
अर्जुनस्तस्य चान्वेव यमौ चापि यथाक्रमम्॥ ३१॥

आगे-आगे युधिष्ठिर चलते थे। उनके पीछे भीमसेन थे। भीमसेनके भी पीछे अर्जुन थे और उनके भी पीछे क्रमशः नकुल और सहदेव चल रहे थे॥ ३१॥

पृष्ठतस्तु वरारोहा श्यामा पद्मदलेक्षणा।
द्रौपदी योषितां श्रेष्ठा ययौ भरतसत्तम॥ ३२॥

भरतश्रेष्ठ! इन सबके पीछे सुन्दर शरीरवाली, श्यामवर्णा, कमलदललोचना, युवतियोंमें श्रेष्ठ द्रौपदी चल रही थीं॥३२॥

श्वा चैवानुययावेकः प्रस्थितान् पाण्डवान् वनम्।
क्रमेण ते ययुर्वीरा लौहित्यं सलिलार्णवम्॥ ३३॥

वनको प्रस्थित हुए पाण्डवोंके पीछे एक कुत्ता भी चला जा रहा था। क्रमशः चलते हुए वे वीर पाण्डव लालसागरके तटपर जा पहुँचे॥ ३३॥

गाण्डीवं तु धनुर्दिव्यं न मुमोच धनंजयः।
रत्नलोभान्महाराज ते चाक्षय्ये महेषुधी॥ ३४॥

महाराज! अर्जुनने दिव्यरत्नके लोभसे अभीतक अपने दिव्य गाण्डीव धनुष तथा दोनों अक्षय तूणीरोंका परित्याग नहीं किया था॥

अग्निं ते ददृशुस्तत्र स्थितं शैलमिवाग्रतः।
मार्गमावृत्य तिष्ठन्तं साक्षात्पुरुषविग्रहम्॥ ३५॥

वहाँ पहुँचकर उन्होंने पर्वतकी भाँति मार्ग रोककर सामने खड़े हुए पुरुषरूपधारी साक्षात् अग्निदेवको देखा॥ ३५॥
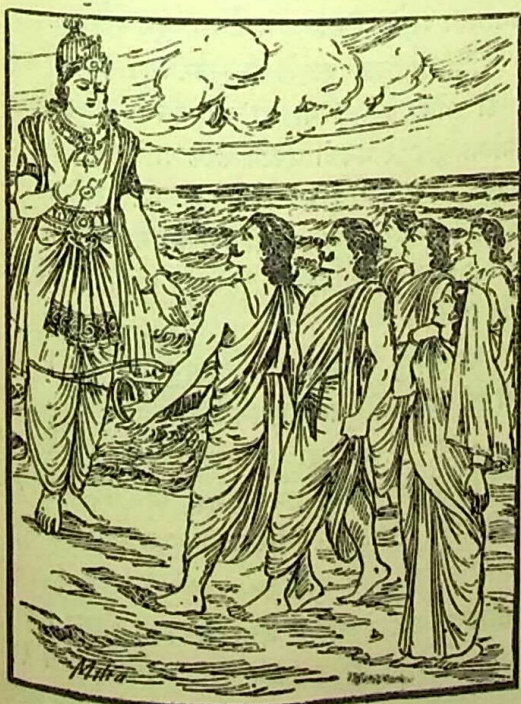
ततो देवः स सप्तार्चिः पाण्डवानिदमब्रवीत्।
भो भोः पाण्डुसुता वीराः पावकं मां निबोधत॥ ३६॥

तब सात प्रकारकी ज्वालारूप जिह्वाओंसे सुशोभित होनेवाले उन अग्निदेवने पाण्डवोंसे इस प्रकार कहा—'वीर पाण्डुकुमारो! मुझे अग्नि समझो॥ ३६॥

युधिष्ठिर महाबाहो भीमसेन परंतप।
अर्जुनाश्विसुतौ वीरौ निबोधत वचो मम॥ ३७॥

'महाबाहु युधिष्ठिर! शत्रुसंतापी भीमसेन! अर्जुन! और वीर अश्विनीकुमारो! तुम सब लोग मेरी इस बातपर ध्यान दो॥ ३७॥

अहमग्निः कुरुश्रेष्ठा मया दग्धं च खाण्डवम्।
अर्जुनस्य प्रभावेण तथा नारायणस्य च॥ ३८॥

'कुरुश्रेष्ठ वीरो! मैं अग्नि हूँ। मैंने ही अर्जुन तथा नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णके प्रभावसे खाण्डववनको जलाया था॥ ३८॥

अयं वः फाल्गुनो भ्राता गाण्डीवं परमायुधम्।
परित्यज्य वने यातु नानेनार्थोऽस्ति कश्चन॥ ३९॥

'तुम्हारे भाई अर्जुनको चाहिये कि ये इस उत्तम आयुध गाण्डीव धनुषको त्यागकर वनमें जायँ। अब इन्हें इसकी कोई आवश्यकता नहीं है॥ ३९॥

चक्ररत्नं तु यत् कृष्णे स्थितमासीन्महात्मनि।
गतं तच्च पुनर्हस्ते कालेनैष्यति तस्य ह॥ ४०॥

'पहले जो चक्ररत्न महात्मा श्रीकृष्णके हाथमें था, वह चला गया। वह पुनः समय आनेपर उनके हाथमें जायगा॥४०॥

वरुणादाहृतं पूर्वं मयैतत् पार्थकारणात्।
गाण्डीवं धनुषां श्रेष्ठं वरुणायैव दीयताम्॥ ४१॥

'यह गाण्डीव धनुष सब प्रकारके धनुषोंमें श्रेष्ठ है। इसे पहले मैं अर्जुनके लिये ही वरुणसे माँगकर ले आया था। अब पुनः इसे वरुणको वापस कर देना चाहिये'॥ ४१॥

ततस्ते भ्रातरः सर्वे धनंजयमचोदयन्।
स जले प्राक्षिपच्चैतत्तथाक्षय्ये महेषुधी॥ ४२॥

यह सुनकर उन सब भाइयोंने अर्जुनको वह धनुष त्याग देनेके लिये कहा। तब अर्जुनने वह धनुष और दोनों अक्षय तरकस पानीमें फेंक दिये॥ ४२॥

ततोऽग्निर्भरतश्रेष्ठ तत्रैवान्तरधीयत।
ययुश्च पाण्डवा वीरास्ततस्ते दक्षिणामुखाः॥ ४३॥

भरतश्रेष्ठ! इसके बाद अग्निदेव वहीं अन्तर्धान हो गये और पाण्डववीर वहाँसे दक्षिणाभिमुख होकर चल दिये॥४३॥

ततस्ते तूत्तरेणैव तीरेण लवणाम्भसः।
जग्मुर्भरतशार्दूल दिशं दक्षिणपश्चिमाम्॥ ४४॥

भरतश्रेष्ठ! तदनन्तर वे लवणसमुद्रके उत्तर तटपर होते हुए दक्षिण-पश्चिमदिशाकी ओर अग्रसर होने लगे॥ ४४॥

ततः पुनः समावृत्ताः पश्चिमां दिशमेव ते।

ददृशुर्द्वारकां चापि सागरेण परिप्लुताम् ॥ ४५ ॥
उदीचीं पुनरावृत्य ययुर्भरतसत्तमाः ।
प्रादक्षिण्यं चिकीर्षन्तः पृथिव्या योगधर्मिणः ॥ ४६ ॥

इसके बाद वे केवल पश्चिम दिशाकी ओर मुड़ गये। आगे जाकर उन्होंने समुद्रमें डूबी हुई द्वारकापुरीको देखा। फिर योगधर्ममें स्थित हुए भरतभूषण पाण्डवोंने वहाँसे लौटकर पृथ्वीकी परिक्रमा पूरी करनेकी इच्छासे उत्तर दिशाकी ओर यात्रा की ॥ ४५-४६ ॥

इति श्रीमहाभारते महाप्रस्थानिके पर्वणि प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत महाप्रस्थानिकपर्वमें पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

मार्गमें द्रौपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन और भीमसेनका गिरना तथा युधिष्ठिरद्वारा प्रत्येकके गिरनेका कारण बताया जाना

वैशम्पायन उवाच

ततस्ते नियतात्मान उदीचीं दिशमास्थिताः ।
ददृशुर्योगयुक्ताश्च हिमवन्तं महागिरिम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! मनको संयममें रखकर उत्तर दिशाका आश्रय लेनेवाले योगयुक्त पाण्डवोंने मार्गमें महापर्वत हिमालयका दर्शन किया ॥ १ ॥

तं चाप्यतिक्रमन्तस्ते ददृशुर्वालुकार्णवम् ।
अवैक्षन्त महाशैलं मेरुं शिखरिणां वरम् ॥ २ ॥

उसे भी लाँघकर जब वे आगे बढ़े, तब उन्हें बालूका समुद्र दिखायी दिया। साथ ही उन्होंने पर्वतोंमें श्रेष्ठ महागिरि मेरुका दर्शन किया ॥ २ ॥

तेषां तु गच्छतां शीघ्रं सर्वेषां योगधर्मिणाम् ।
याज्ञसेनी भ्रष्टयोगा निपपात महीतले ॥ ३ ॥

सब पाण्डव योगधर्ममें स्थित हो बड़ी शीघ्रतासे चल रहे थे। उनमेंसे द्रुपदकुमारी कृष्णाका मन योगसे विचलित हो गया; अतः वह लड़खड़ाकर पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ३ ॥

तां तु प्रपतितां दृष्ट्वा भीमसेनो महाबलः ।
उवाच धर्मराजानं याज्ञसेनीमवेक्ष्य ह ॥ ४ ॥

उसे नीचे गिरी देख महाबली भीमसेनने धर्मराजसे पूछा—

नाधर्मश्चरितः कश्चिद् राजपुत्र्या परंतप ।
कारणं किं नु तद् ब्रूहि यत् कृष्णा पतिता भुवि ॥ ५ ॥

'परंतप ! राजकुमारी द्रौपदीने कभी कोई पाप नहीं किया था। फिर बताइये, कौन-सा कारण है, जिससे वह नीचे गिर गयी ?' ॥ ५ ॥

युधिष्ठिर उवाच

पक्षपातो महानस्या विशेषेण धनंजये ।
तस्यैतत् फलमद्यैषा भुङ्क्ते पुरुषसत्तम ॥ ६ ॥

युधिष्ठिरने कहा—पुरुषप्रवर ! उसके मनमें अर्जुनके प्रति विशेष पक्षपात था; आज यह उसीका फल भोग रही है ॥ ६ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वानवेक्ष्यैनां ययौ भरतसत्तमः ।
समाधाय मनो धीमान् धर्मात्मा पुरुषर्षभः ॥ ७ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! ऐसा कहकर उसकी ओर देखे बिना ही भरतभूषण नरश्रेष्ठ बुद्धिमान् धर्मात्मा युधिष्ठिर मनको एकाग्र करके आगे बढ़ गये ॥ ७ ॥

सहदेवस्ततो विद्वान् निपपात महीतले ।
तं चापि पतितं दृष्ट्वा भीमो राजानमब्रवीत् ॥ ८ ॥

थोड़ी देर बाद विद्वान् सहदेव भी धरतीपर गिर पड़े। उन्हें भी गिरा देख भीमसेनने राजासे पूछा—॥ ८ ॥

योऽयमस्मासु सर्वेषु शुश्रूषुरनहंकृतः ।
सोऽयं माद्रवतीपुत्रः कस्मान्निपतितो भुवि ॥ ९ ॥

'भैया ! जो सदा हमलोगोंकी सेवा किया करता था और जिसमें अहंकारका नाम भी नहीं था, यह माद्रीनन्दन सहदेव किस दोषके कारण धराशायी हुआ है ?' ॥ ९ ॥

युधिष्ठिर उवाच

आत्मनः सदृशं प्राज्ञं नैषोऽमन्यत कंचन ।
तेन दोषेण पतितस्तस्मादेष नृपात्मजः ॥ १० ॥

युधिष्ठिरने कहा—यह राजकुमार सहदेव किसीको
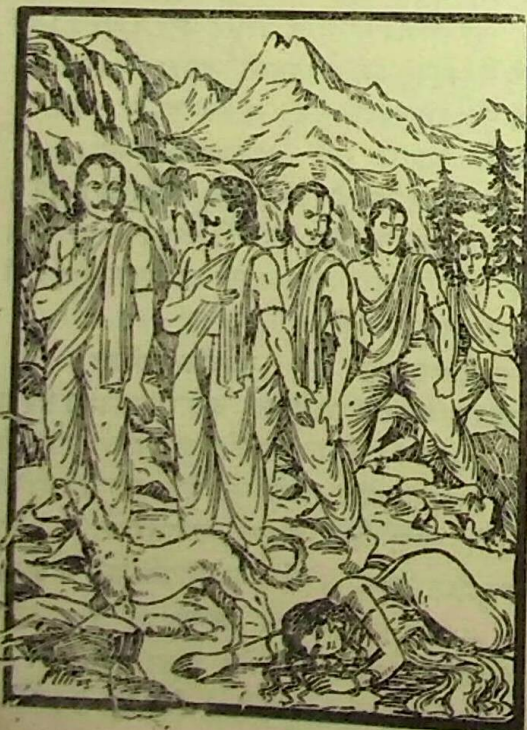
अपने जैसा विद्वान् या बुद्धिमान् नहीं समझता था; अतः उसी दोषसे इसका पतन हुआ है ॥ १० ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा तं समुत्सृज्य सहदेवं ययौ तदा।
भ्रातृभिः सह कौन्तेयः शुना चैव युधिष्ठिरः ॥ ११ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! ऐसा कहकर सहदेवको भी छोड़कर शेष भाइयों और एक कुत्तेके साथ कुन्तीकुमार युधिष्ठिर आगे बढ़ गये ॥ ११ ॥

कृष्णां निपतितां दृष्ट्वा सहदेवं च पाण्डवम्।
आर्तो बन्धुप्रियः शूरो नकुलो निपपात ह ॥ १२ ॥

कृष्णा और पाण्डव सहदेवको गिरे देख शोकसे आर्त हो बन्धुप्रेमी शूरवीर नकुल भी गिर पड़े ॥ १२ ॥

तस्मिन् निपतिते वीरे नकुले चारुदर्शने।
पुनरेव तदा भीमो राजानमिदमब्रवीत् ॥ १३ ॥

मनोहर दिखायी देनेवाले वीर नकुलके धराशायी होनेपर भीमसेनने पुनः राजा युधिष्ठिरसे यह प्रश्न किया—॥ १३ ॥

योऽयमक्षतधर्मात्मा भ्राता वचनकारकः।
रूपेणाप्रतिमो लोके नकुलः पतितो भुवि ॥ १४ ॥

'भैया! संसारमें जिसके रूपकी समानता करनेवाला कोई नहीं था तो भी जिसने कभी अपने धर्ममें त्रुटि नहीं आने दी तथा जो सदा हमलोगोंकी आज्ञाका पालन करता था, वह हमारा प्रियबन्धु नकुल क्यों पृथ्वीपर गिरा है?' ॥ १४ ॥

इत्युक्तो भीमसेनेन प्रत्युवाच युधिष्ठिरः।
नकुलं प्रति धर्मात्मा सर्वबुद्धिमतां वरः ॥ १५ ॥

भीमसेनके इस प्रकार पूछनेपर समस्त बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा युधिष्ठिरने नकुलके विषयमें इस प्रकार उत्तर दिया—॥

रूपेण मत्समो नास्ति कश्चिदित्यस्य दर्शनम्।
अधिकश्चाहमेवैक इत्यस्य मनसि स्थितम् ॥ १६ ॥
नकुलः पतितस्तस्मादागच्छ त्वं वृकोदर।
यस्य यद् विहितं वीर सोऽवश्यं तदुपाश्नुते ॥ १७ ॥

'भीमसेन! नकुलकी दृष्टि सदा ऐसी रही है कि रूपमें मेरे समान दूसरा कोई नहीं है। इसके मनमें यही बात बैठी रहती थी कि 'एकमात्र मैं ही सबसे अधिक रूपवान् हूँ।' इसीलिये नकुल नीचे गिरा है। तुम आओ। वीर! जिसकी जैसी करनी है, वह उसका फल अवश्य भोगता है ॥१६-१७॥

तांस्तु प्रपतितान् दृष्ट्वा पाण्डवः श्वेतवाहनः।
पपात शोकसन्तप्तस्ततो नु परवीरहा ॥ १८ ॥

द्रौपदी तथा नकुल और सहदेव तीनों गिर गये, यह देखकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले श्वेतवाहन पाण्डुपुत्र अर्जुन शोकसे संतप्त हो स्वयं भी गिर पड़े ॥ १८ ॥

तस्मिंस्तु पुरुषव्याघ्रे पतिते शक्रतेजसि।
म्रियमाणे दुराधर्षे भीमो राजानमब्रवीत् ॥ १९ ॥

इन्द्रके समान तेजस्वी दुर्धर्ष वीर पुरुषसिंह अर्जुन जब पृथ्वीपर गिरकर प्राणत्याग करने लगे, उस समय भीमसेनने राजा युधिष्ठिरसे पूछा ॥ १९ ॥

अनृतं न स्मराम्यस्य स्वैरेष्वपि महात्मनः।
अथ कस्य विकारोऽयं येनायं पतितो भुवि ॥ २० ॥

'भैया! महात्मा अर्जुन कभी परिहासमें भी झूठ बोले हों—ऐसा मुझे याद नहीं आता! फिर यह किस कर्मका फल है, जिससे इन्हें पृथ्वीपर गिरना पड़ा?' ॥ २० ॥

युधिष्ठिर उवाच

एकाह्ना निर्दहेयं वै शत्रूनित्यर्जुनोऽब्रवीत्।
न च तत् कृतवानेष शूरमानी ततोऽपतत् ॥ २१ ॥

युधिष्ठिर बोले—अर्जुनको अपनी शूरताका अभिमान था। इन्होंने कहा था कि 'मैं एक ही दिनमें शत्रुओंको भस्म कर डालूँगा'; किंतु ऐसा किया नहीं; इसीसे आज इन्हें धराशायी होना पड़ा है ॥ २१ ॥

अवमेने धनुर्ग्राहानेष सर्वांश्च फाल्गुनः।
तथा चैतन्न तु तथा कर्तव्यं भूतिमिच्छता ॥ २२ ॥

अर्जुनने सम्पूर्ण धनुर्धरोंका अपमान भी किया था; अतः अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको ऐसा नहीं करना चाहिये॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा प्रस्थितो राजा भीमोऽथ निपपात ह।
पतितश्चाब्रवीद् भीमो धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ २३ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर राजा युधिष्ठिर आगे बढ़ गये। इतनेहीमें भीमसेन भी गिर पड़े। गिरनेके साथ ही भीमने धर्मराज युधिष्ठिरको पुकारकर पूछा—॥

भो भो राजन्नवेक्षस्व पतितोऽहं प्रियस्तव।
किं निमित्तं च पतनं ब्रूहि मे यदि वेत्थ ह ॥ २४ ॥

'राजन्! जरा मेरी ओर तो देखिये, मैं आपका प्रिय भीमसेन यहाँ गिर पड़ा हूँ। यदि जानते हों तो बताइये, मेरे इस पतनका क्या कारण है?' ॥ २४ ॥

युधिष्ठिर उवाच

अतिभुक्तं च भवता प्राणेन च विकत्थसे।
अनवेक्ष्य परं पार्थ तेनासि पतितः क्षितौ ॥ २५ ॥

युधिष्ठिरने कहा—भीमसेन! तुम बहुत खाते थे और दूसरोंको कुछ भी न समझकर अपने बलकी डींग हाँका करते थे; इसीसे तुम्हें भी धराशायी होना पड़ा है ॥ २५ ॥

इत्युक्त्वा तं महाबाहुर्जगामानवलोकयन्।
श्वाप्येकोऽनुययौ यस्ते बहुशः कीर्तितो मया ॥ २६ ॥

यह कहकर महाबाहु युधिष्ठिर उनकी ओर देखे बिना ही आगे चल दिये। एक कुत्ता भी बराबर उनका अनुसरण करता रहा, जिसकी चर्चा मैंने तुमसे अनेक बार की है ॥

इति श्रीमहाभारते महाप्रस्थानिके पर्वणि द्रौपद्यादिपतने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत महाप्रस्थानिकपर्वमें द्रौपदी आदिका पतनविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

युधिष्ठिरका इन्द्र और धर्म आदिके साथ वार्तालाप, युधिष्ठिरका अपने धर्ममें दृढ़ रहना तथा सदेह स्वर्गमें जाना

वैशम्पायन उवाच

ततः सन्नादयञ्शक्रो दिवं भूमिं च सर्वशः ।
रथेनोपययौ पार्थमारोहेत्यब्रवीच्च तम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर आकाश और पृथ्वीको सब ओरसे प्रतिध्वनित करते हुए देवराज इन्द्र रथके साथ युधिष्ठिरके पास आ पहुँचे और उनसे बोले—'कुन्तीनन्दन ! तुम इस रथपर सवार हो जाओ' ॥ १ ॥

स भ्रातॄन् पतितान् दृष्ट्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
अब्रवीच्छोकसंतप्तः सहस्राक्षमिदं वचः ॥ २ ॥

अपने भाइयोंको धराशायी हुआ देख धर्मराज युधिष्ठिर शोकसे संतप्त हो इन्द्रसे इस प्रकार बोले—॥ २ ॥

भ्रातरः पतिता मेऽत्र गच्छेयुस्ते मया सह ।
न विना भ्रातृभिः स्वर्गमिच्छे गन्तुं सुरेश्वर ॥ ३ ॥

'देवेश्वर ! मेरे भाई मार्गमें गिरे पड़े हैं । वे भी मेरे साथ चलें, इसकी व्यवस्था कीजिये; क्योंकि मैं भाइयोंके बिना स्वर्गमें जाना नहीं चाहता ॥ ३ ॥

सुकुमारी सुखार्हा च राजपुत्री पुरंदर ।
सास्माभिः सह गच्छेत तद् भवाननुमन्यताम् ॥ ४ ॥

'पुरन्दर ! राजकुमारी द्रौपदी सुकुमारी है । वह सुख पानेके योग्य है । वह भी हमलोगोंके साथ चले, इसकी अनुमति दीजिये' ॥ ४ ॥

शक्र उवाच

भ्रातॄन् द्रक्ष्यसि स्वर्गे त्वमग्रतस्त्रिदिवं गतान् ।
कृष्णया सहितान् सर्वान् मा शुचो भरतर्षभ ॥ ५ ॥

इन्द्रने कहा—भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारे सभी भाई तुमसे पहले ही स्वर्गमें पहुँच गये हैं । उनके साथ द्रौपदी भी है । वहाँ चलनेपर वे सब तुम्हें मिलेंगे ॥ ५ ॥

निक्षिप्य मानुषं देहं गतास्ते भरतर्षभ ।
अनेन त्वं शरीरेण स्वर्गे गन्ता न संशयः ॥ ६ ॥

भरतभूषण ! वे मानवशरीरका परित्याग करके स्वर्गमें गये हैं; किंतु तुम इसी शरीरसे वहाँ चलोगे, इसमें संशय नहीं है ॥ ६ ॥

युधिष्ठिर उवाच

अयं श्वा भूतभव्येश भक्तो मां नित्यमेव ह ।
स गच्छेत मया सार्धमानृशंस्या हि मे मतिः ॥ ७ ॥

युधिष्ठिर बोले—भूत और वर्तमानके स्वामी देवराज ! यह कुत्ता मेरा बड़ा भक्त है । इसने सदा ही मेरा साथ दिया है; अतः यह भी मेरे साथ चले—ऐसी आज्ञा दीजिये; क्योंकि मेरी बुद्धिमें निष्ठुरताका अभाव है ॥ ७ ॥

शक्र उवाच

अमर्त्यत्वं मत्समत्वं च राजन्
श्रियं कृत्स्नां महतीं चैव सिद्धिम् ।
सम्प्राप्तोऽद्य स्वर्गसुखानि च त्वं
त्यज श्वानं नात्र नृशंसमस्ति ॥ ८ ॥

इन्द्रने कहा—राजन् ! तुम्हें अमरता, मेरी समानता, पूर्ण लक्ष्मी और बहुत बड़ी सिद्धि प्राप्त हुई है, साथ ही तुम्हें स्वर्गीय सुख भी उपलब्ध हुए हैं; अतः इस कुत्तेको छोड़ो और मेरे साथ चलो । इसमें कोई कठोरता नहीं है ॥ ८ ॥

युधिष्ठिर उवाच

अनार्यमार्येण सहस्रनेत्र
शक्यं कर्तुं दुष्करमेतदार्य ।
मा मे श्रिया सङ्गमनं तयास्तु
यस्याः कृते भक्तजनं त्यजेयम् ॥ ९ ॥

युधिष्ठिर बोले—सहस्रनेत्रधारी देवराज ! किसी आर्यपुरुषके द्वारा निम्नश्रेणीका काम होना अत्यन्त कठिन है । मुझे ऐसी लक्ष्मीकी प्राप्ति कभी न हो, जिसके लिये भक्तजनका त्याग करना पड़े ॥ ९ ॥

इन्द्र उवाच

स्वर्गे लोके श्ववतां नास्ति धिष्ण्य-
मिष्टापूर्तं क्रोधवशा हरन्ति ।
ततो विचार्य क्रियतां धर्मराज
त्यज श्वानं नात्र नृशंसमस्ति ॥ १० ॥

इन्द्रने कहा—धर्मराज ! कुत्ता रखनेवालोंके लिये स्वर्गलोकमें स्थान नहीं है । उनके यज्ञ करने और कुआँ बावड़ी आदि बनवानेका जो पुण्य होता है, उसे क्रोधवश नामक राक्षस हर लेते हैं; इसलिये सोच-विचारकर काम करो । छोड़ दो इस कुत्तेको । ऐसा करनेमें कोई निर्दयता नहीं है ॥ १० ॥

युधिष्ठिर उवाच

भक्तत्यागं प्राहुरत्यन्तपापं
तुल्यं लोके ब्रह्मवध्याकृतेन ।
तस्मान्नाहं जातु कथंचनाद्य
त्यक्ष्याम्येनं स्वसुखार्थी महेन्द्र ॥ ११ ॥

युधिष्ठिर बोले—महेन्द्र ! भक्तका त्याग करनेसे जो पाप होता है, उसका अन्त कभी नहीं होता—ऐसा महात्मा पुरुष कहते हैं । संसारमें भक्तका त्याग ब्रह्महत्याके समान माना गया है; अतः मैं अपने सुखके लिये कभी किसी तरह भी आज इस कुत्तेका त्याग नहीं करूँगा ॥ ११ ॥

भीतं भक्तं नान्यदस्तीति चार्तं
प्राप्तं क्षीणं रक्षणे प्राणलिप्सुम्।
प्राणत्यागादप्यहं नैव मोक्तुं
यतेयं वै नित्यमेतद् व्रतं मे ॥ १२ ॥

जो डरा हुआ हो, भक्त हो, मेरा दूसरा कोई सहारा नहीं है—ऐसा कहते हुए आर्तभावसे शरणमें आया हो, अपनी रक्षामें असमर्थ—दुर्बल हो और अपने प्राण बचाना चाहता हो, ऐसे पुरुषको प्राण जानेपर भी मैं नहीं छोड़ सकता; यह मेरा सदाका व्रत है ॥ १२ ॥

इन्द्र उवाच

शुना दृष्टं क्रोधवशा हरन्ति
यद्दत्तमिष्टं विवृतमथो हुतं च।
तस्माच्छुनस्त्यागमिमं कुरुष्व
शुनस्त्यागाद् प्राप्स्यसे देवलोकम् ॥ १३ ॥

इन्द्रने कहा—वीरवर ! मनुष्य जो कुछ दान, यज्ञ, स्वाध्याय और हवन आदि पुण्यकर्म करता है, उसपर यदि कुत्तेकी दृष्टि भी पड़ जाय तो उसके फलको क्रोधवश नामक राक्षस हर ले जाते हैं; इसलिये इस कुत्तेका त्याग कर दो। कुत्तेको त्याग देनेसे ही तुम देवलोकमें पहुँच सकोगे ॥ १३ ॥

त्यक्त्वा भ्रातॄन् दयितां चापि कृष्णां
प्राप्तो लोकः कर्मणा स्वेन वीर।
श्वानं चैनं न त्यजसे कथं नु
त्यागं कृत्स्नं चास्थितो मुह्यसेऽद्य ॥ १४ ॥

वीर ! तुमने अपने भाइयों तथा प्यारी पत्नी द्रौपदीका परित्याग करके अपने किये हुए पुण्यकर्मोंके फलस्वरूप देवलोकको प्राप्त किया है। फिर तुम इस कुत्तेको क्यों नहीं त्याग देते ? सब कुछ छोड़कर अब कुत्तेके मोहमें कैसे पड़ गये ॥

युधिष्ठिर उवाच

न विद्यते संधिरथापि विग्रहो
मृतैर्मर्त्यैरिति लोकेषु निष्ठा।
न ते मया जीवयितुं हि शक्या-
स्ततस्त्यागस्तेषु कृतो न जीवताम् ॥ १५ ॥

युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! संसारमें यह निश्चित बात है कि मरे हुए मनुष्योंके साथ न तो किसीका मेल होता है, न विरोध ही। द्रौपदी तथा अपने भाइयोंको जीवित करना मेरे वशकी बात नहीं है; अतः मर जानेपर मैंने उनका त्याग किया है, जीवितावस्थामें नहीं ॥ १५ ॥

भीतिप्रदानं शरणागतस्य
स्त्रिया वधो ब्राह्मणस्वापहारः।
मित्रद्रोहस्तानि चत्वारि शक्र
भक्तत्यागश्चैव समो मतो मे ॥ १६ ॥

शरणमें आये हुएको भय देना, स्त्रीका वध करना, ब्राह्मणका धन लूटना और मित्रोंके साथ द्रोह करना—ये चार अधर्म एक ओर और भक्तका त्याग दूसरी ओर हो तो मेरी समझमें यह अकेला ही उन चारोंके बराबर है ॥ १६ ॥

वैशम्पायन उवाच

तद् धर्मराजस्य वचो निशम्य
धर्मस्वरूपी भगवानुवाच।
युधिष्ठिरं प्रीतियुक्तो नरेन्द्रं
श्लक्ष्णैर्वाक्यैः संस्तवसम्प्रयुक्तैः ॥ १७ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! धर्मराज युधिष्ठिरका यह कथन सुनकर कुत्तेका रूप धारण करके आये हुए धर्मस्वरूपी भगवान् बड़े प्रसन्न हुए और राजा युधिष्ठिरकी प्रशंसा करते हुए मधुर वचनोंद्वारा उनसे इस प्रकार बोले—॥

धर्मराज उवाच

अभिजातोऽसि राजेन्द्र पितुर्वृत्तेन मेधया।
अनुक्रोशेन चानेन सर्वभूतेषु भारत ॥ १८ ॥

साक्षात् धर्मराजने कहा—राजेन्द्र ! भरतनन्दन ! तुम अपने सदाचार, बुद्धि तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति होनेवाली इस दयाके कारण वास्तवमें सुयोग्य पिताके उत्तम कुलमें उत्पन्न सिद्ध हो रहे हो ॥ १८ ॥

पुरा द्वैतवने चासि मया पुत्र परीक्षितः।
पानीयार्थे पराक्रान्ता यत्र ते भ्रातरो हताः ॥ १९ ॥

बेटा ! पूर्वकालमें द्वैतवनके भीतर रहते समय भी एक बार मैंने तुम्हारी परीक्षा ली थी; जब कि तुम्हारे सभी भाई पानी लानेके लिये उद्योग करते हुए मारे गये थे ॥ १९ ॥

भीमार्जुनौ परित्यज्य यत्र त्वं भ्रातरावुभौ।
मात्रोः साम्यमभीप्सन् वै नकुलं जीवमिच्छसि ॥ २० ॥

उस समय तुमने कुन्ती और माद्री दोनों माताओंमें समानताकी इच्छा रखकर अपने सगे भाई भीम और अर्जुनको छोड़ केवल नकुलको जीवित करना चाहा था ॥ २० ॥

अयं श्वा भक्त इत्येवं त्यक्तो देवरथस्त्वया।
तस्मात् स्वर्गे न ते तुल्यः कश्चिदस्ति नराधिपः ॥ २१ ॥

इस समय भी 'यह कुत्ता मेरा भक्त है' ऐसा सोचकर तुमने देवराज इन्द्रके भी रथका परित्याग कर दिया है; अतः स्वर्गलोकमें तुम्हारे समान दूसरा कोई राजा नहीं है ॥ २१ ॥

अतस्तवाक्षया लोकाः स्वशरीरेण भारत।
प्राप्तोऽसि भरतश्रेष्ठ दिव्यां गतिमनुत्तमाम् ॥ २२ ॥

भारत ! भरतश्रेष्ठ ! यही कारण है कि तुम्हें अपने इसी शरीरसे अक्षय लोकोंकी प्राप्ति हुई है। तुम परम उत्तम दिव्य गतिको पा गये हो ॥ २२ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततो धर्मश्च शक्रश्च मरुतश्चाश्विनावपि।
देवा देवर्षयश्चैव रथमारोप्य पाण्डवम् ॥ २३ ॥
प्रययुः स्वैर्विमानैस्ते सिद्धाः कामविहारिणः।
सर्वे विरजसः पुण्याः पुण्यवाग्बुद्धिकर्मिणः ॥ २४ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—यों कहकर धर्म, इन्द्र, मरुद्गण, अश्विनीकुमार, देवता तथा देवर्षियोंने पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको रथपर बिठाकर अपने-अपने विमानोंद्वारा स्वर्गलोकको प्रस्थान किया। वे सब-के-सब इच्छानुसार

विचरनेवाले, रजोगुणशून्य पुण्यात्मा, पवित्र वाणी, बुद्धि और कर्मवाले तथा सिद्ध थे ॥ २३-२४ ॥

स तं रथं समास्थाय राजा कुरुकुलोद्वहः ।
ऊर्ध्वमाचक्रमे शीघ्रं तेजसाऽऽवृत्य रोदसी ॥ २५ ॥

कुरुकुलतिलक राजा युधिष्ठिर उस रथमें बैठकर अपने तेजसे पृथ्वी और आकाशको व्याप्त करते हुए तीव्र गतिसे ऊपरकी ओर जाने लगे ॥ २५ ॥

ततो देवनिकायस्थो नारदः सर्वलोकवित् ।
उवाचोच्चैस्तदा वाक्यं बृहद्वादी बृहत्तपाः ॥ २६ ॥

उस समय सम्पूर्ण लोकोंका वृत्तान्त जाननेवाले, बोलनेमें कुशल तथा महान् तपस्वी देवर्षि नारदजीने देवमण्डलमें स्थित हो उच्च स्वरसे कहा ॥ २६ ॥

येऽपि राजर्षयः सर्वे ते चापि समुपस्थिताः ।
कीर्तिं प्रच्छाद्य तेषां वै कुरुराजोऽधितिष्ठति ॥ २७ ॥

'जितने राजर्षि स्वर्गमें आये हैं, वे सभी यहाँ उपस्थित हैं, किंतु कुरुराज युधिष्ठिर अपने सुयशसे उन सबकी कीर्तिको आच्छादित करके विराजमान हो रहे हैं ॥ २७ ॥

लोकानावृत्य यशसा तेजसा वृत्तसम्पदा ।
स्वशरीरेण सम्प्राप्तं नान्यं शुश्रुम पाण्डवात् ॥ २८ ॥

'अपने यश, तेज और सदाचाररूप सम्पत्तिसे तीनों लोकोंको आवृत करके अपने भौतिक शरीरसे स्वर्गलोकमें आनेका सौभाग्य पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरके सिवा और किसी-राजाको प्राप्त हुआ हो, ऐसा हमने कभी नहीं सुना है ॥२८॥

तेजांसि यानि दृष्टानि भूमिष्ठेन त्वया विभो ।
वेश्मानि भुवि देवानां पश्यामूनि सहस्रशः ॥ २९ ॥

'प्रभो ! युधिष्ठिर ! पृथ्वीपर रहते हुए तुमने आकाशमें नक्षत्र और ताराओंके रूपमें जितने तेज देखे हैं, वे इन देवताओंके सहस्रों लोक हैं; इनकी ओर देखो' ॥ २९ ॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा राजा वचनमब्रवीत् ।
देवानामन्त्र्य धर्मात्मा स्वपक्षांश्चैव पार्थिवान् ॥ ३० ॥

नारदजीकी बात सुनकर धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरने देवताओं तथा अपने पक्षके राजाओंकी अनुमति लेकर कहा—॥

शुभं वा यदि वा पापं भ्रातृणां स्थानमद्य मे ।
तदेव प्राप्तुमिच्छामि लोकानन्यान्न कामये ॥ ३१ ॥

'देवेश्वर ! मेरे भाइयोंको शुभ या अशुभ जो भी स्थान प्राप्त हुआ हो, उसीको मैं भी पाना चाहता हूँ । उसके सिवा दूसरे लोकोंमें जानेकी मेरी इच्छा नहीं है' ॥ ३१ ॥

राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा देवराजः पुरंदरः ।
आनृशंस्यसमायुक्तं प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥ ३२ ॥

राजाकी बात सुनकर देवराज इन्द्रने युधिष्ठिरसे कोमल वाणीमें कहा ॥ ३२ ॥

स्थानेऽस्मिन् वस राजेन्द्र कर्मभिर्निर्जिते शुभैः ।
किं त्वं मानुष्यकं स्नेहमद्यापि परिकर्षसि ॥ ३३ ॥

'महाराज ! तुम अपने शुभ कर्मोंद्वारा प्राप्त हुए इस स्वर्गलोकमें निवास करो । मनुष्यलोकके स्नेहपाशको क्यों अभीतक खींचे ला रहे हो ? ॥ ३३ ॥

सिद्धिं प्राप्तोऽसि परमां यथा नान्यः पुमान् क्वचित् ।
नैव ते भ्रातरः स्थानं सम्प्राप्ताः कुरुनन्दन ॥ ३४ ॥

'कुरुनन्दन ! तुम्हें वह उत्तम सिद्धि प्राप्त हुई है जिसे दूसरा मनुष्य कभी और कहीं नहीं पा सका । तुम्हारे भाई ऐसा स्थान नहीं पा सके हैं ॥ ३४ ॥

अद्यापि मानुषो भावः स्पृशते त्वां नराधिप ।
स्वर्गोऽयं पश्य देवर्षीन् सिद्धांश्च त्रिदिवालयान् ॥ ३५ ॥

'नरेश्वर ! क्या अब भी मानवभाव तुम्हारा स्पर्श कर रहा है ? राजन् ! यह स्वर्गलोक है । इन स्वर्गवासी देवर्षियों तथा सिद्धोंका दर्शन करो' ॥ ३५ ॥

युधिष्ठिरस्तु देवेन्द्रमेवंवादिनमीश्वरम् ।
पुनरेवाब्रवीद् धीमानिदं वचनमर्थवत् ॥ ३६ ॥

ऐसी बात कहते हुए ऐश्वर्यशाली देवराजसे बुद्धिमान् युधिष्ठिरने पुनः यह अर्थयुक्त वचन कहा—॥ ३६ ॥

तैर्विना नोत्सहे वस्तुमिह दैत्यनिबर्हण ।
गन्तुमिच्छामि तत्राहं यत्र ते भ्रातरो गताः ॥ ३७ ॥
यत्र सा बृहती श्यामा बुद्धिसत्त्वगुणान्विता ।
द्रौपदी योषितां श्रेष्ठा यत्र चैव गता मम ॥ ३८ ॥

'दैत्यसूदन ! अपने भाइयोंके बिना मुझे यहाँ रहनेका उत्साह नहीं होता; अतः मैं वहीं जाना चाहता हूँ, जहाँ मेरे भाई गये हैं तथा जहाँ ऊँचे कदवाली, श्यामवर्णा, बुद्धिमती सत्त्वगुणसम्पन्ना एवं युवतियोंमें श्रेष्ठ मेरी द्रौपदी गयी है ॥

इति श्रीमहाभारते महाप्रस्थानिके पर्वणि युधिष्ठिरस्वर्गारोहे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत महाप्रस्थानिकपर्वमें युधिष्ठिरका स्वर्गारोहणविषयक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

महाप्रस्थानिकपर्व सम्पूर्ण

	अनुष्टुप्	(अन्य बड़े छन्द)	बड़े छन्दोंको ३२ अक्षरोंके अनुष्टुप् मानकर गिननेपर	कुल योग
उत्तर भारतीय पाठसे लिये गये	१०१	(१०)	१३॥।	११४॥।
दक्षिण भारतीय पाठसे लिये गये	×	×	×	
			महाप्रस्थानिकपर्वकी कुल श्लोक संख्या	११४॥।

युधिष्ठिरका अपने आश्रित कुत्तेके लिये त्याग

ॐ
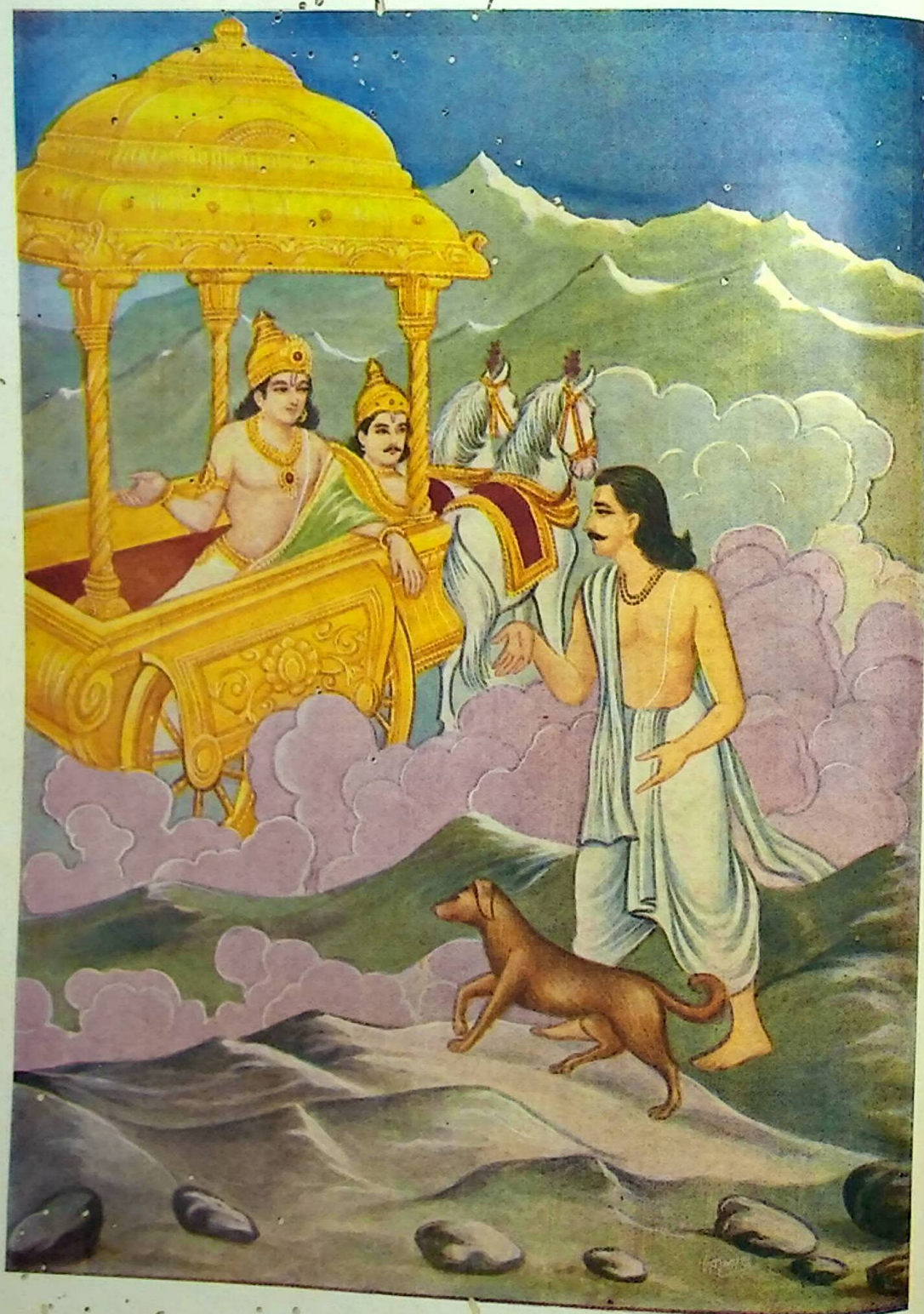
श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतम्

स्वर्गारोहणपर्व

प्रथमोध्यायः

स्वर्गमें नारद और युधिष्ठिरकी बातचीत

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओंका संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (महाभारत) का पाठ करना चाहिये ॥

जनमेजय उवाच

स्वर्गं त्रिविष्टपं प्राप्य मम पूर्वपितामहाः।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च कानि स्थानानि भेजिरे ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—मुने ! मेरे पूर्वपितामह पाण्डव और धृतराष्ट्रके पुत्र स्वर्गलोकमें पहुँचकर किन-किन स्थानोंको प्राप्त हुए ? ॥ १ ॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं सर्ववित्चासि मे मतः।
महर्षिणाभ्यनुज्ञातो व्यासेनाद्भुतकर्मणा ॥ २ ॥

मैं यह सब सुनना चाहता हूँ। आप अद्भुतकर्मा महर्षि व्यासकी आज्ञा पाकर सर्वज्ञ हो गये हैं—ऐसा मेरा विश्वास है ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच

स्वर्गं त्रिविष्टपं प्राप्य तव पूर्वपितामहाः।
युधिष्ठिरप्रभृतयो यदकुर्वत तच्छृणु ॥ ३ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय ! जहाँ तीनों लोकोंका अन्तर्भाव है, उस स्वर्गमें पहुँचकर तुम्हारे पूर्वपितामह युधिष्ठिर आदिने जो कुछ किया, वह बताया जाता है, सुनो ॥ ३ ॥

स्वर्गं त्रिविष्टपं प्राप्य धर्मराजो युधिष्ठिरः।
दुर्योधनं श्रिया जुष्टं ददर्शासीनमासने ॥ ४ ॥
भ्राजमानमिवादित्यं वीरलक्ष्म्याभिसंवृतम्।
देवैर्भ्राजिष्णुभिः साध्यैः सहितं पुण्यकर्मभिः ॥ ५ ॥

स्वर्गलोकमें पहुँचकर धर्मराज युधिष्ठिरने देखा कि दुर्योधन स्वर्गीय शोभासे सम्पन्न हो तेजस्वी देवताओं तथा पुण्यकर्मा साध्यगणोंके साथ एक दिव्य सिंहासनपर बैठकर वीरोचित शोभासे संयुक्त हो सूर्यके समान देदीप्यमान हो रहा है ॥ ४-५ ॥

ततो युधिष्ठिरो दृष्ट्वा दुर्योधनममर्षितः।
सहसा संनिवृत्तोऽभूच्छ्रियं दृष्ट्वा सुयोधने ॥ ६ ॥

दुर्योधनको ऐसी अवस्थामें देख उसे मिली हुई शोभा और सम्पत्तिका अवलोकन कर राजा युधिष्ठिर अमर्षसे भर गये और सहसा दूसरी ओर लौट पड़े ॥ ६ ॥

ब्रुवन्नुच्चैर्वचस्तान् वै नाहं दुर्योधनेन वै।
सहितः कामये लोकाँल्लुब्धेनादीर्घदर्शिना ॥ ७ ॥
यत्कृते पृथिवी सर्वा सुहृदो बान्धवास्तथा।
हतास्माभिः प्रसह्याजौ क्लिष्टैः पूर्वं महावने ॥ ८ ॥
द्रौपदी च सभामध्ये पाञ्चाली धर्मचारिणी।
पर्याकृष्टानवद्याङ्गी पत्नी नो गुरुसंनिधौ ॥ ९ ॥

फिर उच्चस्वरसे उन सब लोगोंसे बोले—"देवताओ ! जिसके कारण हमने अपने समस्त सुहृदों और बन्धुओंका हठपूर्वक युद्धमें संहार कर डाला और सारी पृथ्वी उजाड़ डाली, जिसने पहले हमलोगोंको महान् वनमें भारी क्लेश पहुँचाया था तथा जो निर्दोष अङ्गोंवाली हमारी धर्मपरायणा पत्नी पाञ्चालराजकुमारी द्रौपदीको भरी सभामें गुरुजनोंके समीप घसीट लाया था, उस लोभी और अदूरदर्शी दुर्योधन-

के साथ रहकर मैं इन पुण्यलोकोंको पानेकी इच्छा नहीं रखता ॥ ७–९ ॥

अस्ति देवा न मे कामः सुयोधनमुदीक्षितुम् ।
तत्राहं गन्तुमिच्छामि यत्र ते भ्रातरो मम ॥ १० ॥

'देवगण ! मैं दुर्योधनको देखना भी नहीं चाहता; मेरी तो वहीं जानेकी इच्छा है, जहाँ मेरे भाई हैं' ॥ १० ॥

नैवमित्यब्रवीत् तं तु नारदः प्रहसन्निव ।
स्वर्गे निवासे राजेन्द्र विरुद्धं चापि नश्यति ॥ ११ ॥

यह सुनकर नारदजी उनसे हँसते हुए-से बोले, 'नहीं-नहीं; ऐसा न कहो; स्वर्गमें निवास करनेपर पहलेका वैर-विरोध शान्त हो जाता है ॥ ११ ॥

युधिष्ठिर महाबाहो मैवं वोचः कथंचन ।
दुर्योधनं प्रति नृपं शृणु चेदं वचो मम ॥ १२ ॥

'महाबाहु युधिष्ठिर ! तुम्हें राजा दुर्योधनके प्रति किसी तरह ऐसी बात मुँहसे नहीं निकालनी चाहिये। मेरी इस बातको ध्यान देकर सुनो ॥ १२ ॥

एष दुर्योधनो राजा पूज्यते त्रिदशैः सह ।
सद्भिश्च राजप्रवरैर्य इमे स्वर्गवासिनः ॥ १३ ॥

'ये राजा दुर्योधन देवताओंसहित उन श्रेष्ठ नरेशोंद्वारा भी पूजित एवं सम्मानित होते हैं, जो कि ये चिरकालसे स्वर्गलोकमें निवास करते हैं ॥ १३ ॥

वीरलोकगतिः प्राप्ता युद्धे हुत्वाऽऽत्मनस्तनुम् ।
यूयं सर्वे सुरसमा येन युद्धे समासिताः ॥ १४ ॥
स एष क्षत्रधर्मेण स्थानमेतदवाप्तवान् ।
भये महति योऽभीतो बभूव पृथिवीपतिः ॥ १५ ॥

'इन्होंने युद्धमें अपने शरीरकी आहुति देकर वीरोंकी गति पायी है। जिन्होंने युद्धमें देवतुल्य तेजस्वी तुम समस्त भाइयोंका डटकर सामना किया है, जो पृथ्वीपति दुर्योधन महान् भयके समय भी निर्भय बने रहे, उन्होंने क्षत्रियधर्मके अनुसार यह स्थान प्राप्त किया है ॥ १४-१५ ॥

न तन्मनसि कर्तव्यं पुत्र यद् द्यूतकारितम् ।
द्रौपद्याश्च परिक्लेशं न चिन्तयितुमर्हसि ॥ १६ ॥

'वत्स ! इनके द्वारा जूएमें जो अपराध हुआ है, उसे अब तुम्हें मनमें नहीं लाना चाहिये। द्रौपदीको भी इनसे जो क्लेश प्राप्त हुआ है, इसे अब तुम्हें भुला देना चाहिये ॥ १६ ॥

ये चान्येऽपि परिक्लेशा युष्माकं ज्ञातिकारिताः ।
संग्रामेष्वथ वान्यत्र न तान् संस्मर्तुमर्हसि ॥ १७ ॥

'तुम लोगोंको अपने भाई-बन्धुओंसे युद्धमें या अन्यत्र और भी जो कष्ट उठाने पड़े हैं, उन सबको यहाँ याद रखना तुम्हारे लिये उचित नहीं है ॥ १७ ॥

समागच्छ यथान्यायं राज्ञा दुर्योधनेन वै ।
स्वर्गोऽयं नेह वैराणि भवन्ति मनुजाधिप ॥ १८ ॥

'अब तुम राजा दुर्योधनके साथ न्यायपूर्वक मिलो। नरेश्वर ! यह स्वर्गलोक है, यहाँ पहलेके वैर-विरोध नहीं रहते हैं' ॥ १८ ॥

नारदेनैवमुक्तस्तु कुरुराजो युधिष्ठिरः ।
भ्रातॄन् पप्रच्छ मेधावी वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १९ ॥

नारदजीके ऐसा कहनेपर बुद्धिमान् कुरुराज युधिष्ठिरने अपने भाइयोंका पता पूछा और यह बात कही— ॥ १९ ॥

यदि दुर्योधनस्यैते वीरलोकाः सनातनाः ।
अधर्मज्ञस्य पापस्य पृथिवीसुहृदां द्रुहः ॥ २० ॥
यत्कृते पृथिवी नष्टा सहया सनरद्विपा ।
वयं च मन्युना दग्धा वैरं प्रतिचिकीर्षवः ॥ २१ ॥
ये ते वीरा महात्मानो भ्रातरो मे महाव्रताः ।
सत्यप्रतिज्ञा लोकस्य शूरा वै सत्यवादिनः ॥ २२ ॥
तेषामिदानीं के लोका द्रष्टुमिच्छामि तानहम् ।
कर्णं चैव महात्मानं कौन्तेयं सत्यसंगरम् ॥ २३ ॥

देवर्षे ! जिसके कारण घोड़े, हाथी और मनुष्योंसहित सारी पृथ्वी नष्ट हो गयी, जिसके वैरका बदला लेनेकी इच्छासे हमें भी क्रोधकी आगमें जलना पड़ा, जो धर्मका नाम भी नहीं जानता था, जिसने जीवनभर भूमण्डलके समस्त सुहृदोंके साथ द्रोह ही किया है, उस पापी दुर्योधनको यदि ये सनातन वीरलोक प्राप्त हुए हैं तो जो वे वीर, महात्मा, महान् व्रतधारी, सत्यप्रतिज्ञ विश्वविख्यात शूर और सत्यवादी मेरे भाई हैं, उन्हें इस समय कौन-से लोक प्राप्त हुए हैं ? मैं उनको देखना चाहता हूँ। कुन्तीके सत्यप्रतिज्ञ पुत्र महात्मा कर्णसे भी मिलना चाहता हूँ ॥ २०–२३ ॥

धृष्टद्युम्नं सात्यकिं च धृष्टद्युम्नस्य चात्मजान् ।
ये च शस्त्रैर्वधं प्राप्ताः क्षत्रधर्मेण पार्थिवाः ॥ २४ ॥
क नु ते पार्थिवान् ब्रह्मन्नैतान् पश्यामि नारद ।
विराटद्रुपदौ चैव धृष्टकेतुमुखांश्च तान् ॥ २५ ॥
शिखण्डिनं च पाञ्चाल्यं द्रौपदेयांश्च सर्वशः ।
अभिमन्युं च दुर्धर्षं द्रष्टुमिच्छामि नारद ॥ २६ ॥

'धृष्टद्युम्न, सात्यकि तथा धृष्टद्युम्नके पुत्रोंको भी देखना चाहता हूँ ! ब्रह्मन् ! नारदजी ! जो भूपाल क्षत्रियधर्मके अनुसार शस्त्रोंद्वारा वधको प्राप्त हुए हैं, वे कहाँ हैं ? मैं इन राजाओंको यहाँ नहीं देखता हूँ।

मैं इन समस्त राजाओंसे मिलना चाहता हूँ। विराट, द्रुपद धृष्टकेतु आदि पाञ्चालराजकुमार शिखण्डी, द्रौपदीके सभी पुत्रों तथा दुर्धर्ष वीर अभिमन्युको भी मैं देखना चाहता हूँ" ॥ २४–२६ ॥

इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि स्वर्गे नारदयुधिष्ठिरसंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्वर्गारोहणपर्वमें स्वर्गमें नारद और युधिष्ठिरका संवादविषयक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

देवदूतका युधिष्ठिरको नरकका दर्शन कराना तथा भाइयोंका करुणक्रन्दन सुनकर उनका वहीं रहनेका निश्चय करना

युधिष्ठिर उवाच

नेह पश्यामि विबुधा राधेयममितौजसम् ।
भ्रातरौ च महात्मानौ युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ १ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—देवताओ ! मैं यहाँ अमित-तेजस्वी राधानन्दन कर्णको क्यों नहीं देख रहा हूँ ? दोनों भाई महामनस्वी युधामन्यु और उत्तमौजा कहाँ हैं ? वे भी नहीं दिखायी देते ॥ १ ॥

जुहुवुर्ये शरीराणि रणवह्नौ महारथाः ।
राजानो राजपुत्राश्च ये मदर्थे हता रणे ॥ २ ॥
क्व ते महारथाः सर्वे शार्दूलसमविक्रमाः ।
तैरप्ययं जितो लोकः कच्चित् पुरुषसत्तमैः ॥ ३ ॥

जिन महारथियोंने समराग्निमें अपने शरीरोंकी आहुति दे दी, जो राजा और राजकुमार रणभूमिमें मेरे लिये मारे गये, वे सिंहके समान पराक्रमी समस्त महारथी वीर कहाँ हैं ? क्या उन पुरुषप्रवर वीरोंने भी इस स्वर्गलोकपर विजय पायी है ? ॥ २-३ ॥

यदि लोकानिमान् प्राप्तास्ते च सर्वे महारथाः ।
स्थितं वित्त हि मां देवाः सहितं तैर्महात्मभिः ॥ ४ ॥

देवताओ ! यदि वे सम्पूर्ण महारथी इन लोकोंमें आये हैं तो आप समझ लें कि मैं उन महात्माओंके साथ रहूँगा ॥४॥

कच्चिन्न तैरवाप्तोऽयं नृपैर्लोकोऽक्षयः शुभः ।
न तैरहं विना रंस्ये भ्रातृभिर्ज्ञातिभिस्तथा ॥ ५ ॥

परंतु यदि उन नरेशोंने यह शुभ एवं अक्षयलोक नहीं [illegible] जिनके मैं उन जाति-भाइयोंके बिना यहाँ नहीं रहूँगा ॥ ५ ॥

मातुर्हि वचनं [illegible] श्रुत्वा तदा सलिलकर्मणि ।
कर्णस्य [illegible]यतां तोयमिति तप्यामि तेन वै ॥ ६ ॥

युद्धके बाद जब मैं अपने मृत सम्बन्धियोंको जलाञ्जलि दे रहा था, उस समय मेरी माता कुन्तीने कहा था, 'बेटा ! कर्णको भी जलाञ्जलि देना।' माताकी यह बात सुनकर मुझे मालूम हुआ कि महात्मा कर्ण मेरे ही भाई थे। तबसे मुझे उनके लिये बड़ा दुःख होता है ॥ ६ ॥

इदं च परितप्यामि पुनः पुनरहं सुराः ।
यन्मातुः सदृशौ पादौ तस्याहममितात्मनः ॥ ७ ॥
दृष्ट्वैव तौ नानुगतः कर्णं परबलार्दनम् ।
न ह्यस्मान् कर्णसहितान् जयेच्छक्रोऽपि संयुगे॥ ८ ॥

देवताओ ! यह सोचकर तो मैं और भी पश्चात्ताप करता रहता हूँ कि 'महामना कर्णके दोनों चरणोंको माता कुन्तीके चरणोंके समान देखकर भी मैं क्यों नहीं शत्रुदलमर्दन कर्णका अनुगामी हो गया ?' यदि कर्ण हमारे साथ होते तो हमें इन्द्र भी युद्धमें परास्त नहीं कर सकते ॥ ७-८ ॥

तमहं यत्र तत्रस्थं द्रष्टुमिच्छामि सूर्यजम् ।
अविज्ञातो मया योऽसौ घातितः सव्यसाचिना ॥ ९ ॥

वे सूर्यनन्दन कर्ण जहाँ कहीं भी हों, मैं उनका दर्शन करना चाहता हूँ; जिन्हें न जाननेके कारण मैंने अर्जुन-द्वारा उनका वध करवा दिया ॥ ९ ॥

भीमं च भीमविक्रान्तं प्राणेभ्योऽपि प्रियं मम ।
अर्जुनं चेन्द्रसंकाशं यमौ चैव यमोपमौ ॥ १० ॥
द्रष्टुमिच्छामि तां चाहं पाञ्चालीं धर्मचारिणीम् ।
न चेह स्थातुमिच्छामि सत्यमेवं ब्रवीमि वः ॥ ११ ॥

मैं अपने प्राणोंसे भी प्रियतम भयंकर पराक्रमी भाई भीमसेनको, इन्द्रतुल्य तेजस्वी अर्जुनको, यमराजके समान अजेय नकुल-सहदेवको तथा धर्मपरायणा देवी द्रौपदीको भी देखना चाहता हूँ। यहाँ रहनेकी मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है। मैं आप लोगोंसे यह सच्ची बात कहता हूँ ॥ १०-११ ॥

किं मे भ्रातृविहीनस्य स्वर्गेण सुरसत्तमाः।
यत्र ते मम स स्वर्गो नायं स्वर्गो मतो मम ॥ १२ ॥

सुरश्रेष्ठगण ! अपने भाइयोंसे अलग रहकर इस स्वर्गसे भी मुझे क्या लेना है ? जहाँ मेरे भाई हैं, वही मेरा स्वर्ग है। उनके बिना मैं इस लोकको स्वर्ग नहीं मानता ॥ १२ ॥

देवा ऊचुः

यदि वै तत्र ते श्रद्धा गम्यतां पुत्र मा चिरम्।
प्रिये हि तव वर्तामो देवराजस्य शासनात् ॥ १३ ॥

देवता बोले—वत्स ! यदि उन लोगोंमें तुम्हारी श्रद्धा है, तो चलो, विलम्ब न करो। हमलोग देवराजकी आज्ञासे सर्वथा तुम्हारा प्रिय करना चाहते हैं ॥ १३ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा तं ततो देवा देवदूतमुपादिशन्।
युधिष्ठिरस्य सुहृदो दर्शयेति परंतप ॥ १४ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—शत्रुओंको संताप देनेवाले जनमेजय ! युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर देवताओंने देवदूतको आज्ञा दी—'तुम युधिष्ठिरको इनके सुहृदोंका दर्शन कराओ' ॥ १४ ॥

ततः कुन्तीसुतो राजा देवदूतश्च जग्मतुः।
सहितौ राजशार्दूल यत्र ते पुरुषर्षभाः ॥ १५ ॥

नृपश्रेष्ठ ! तब कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर और देवदूत दोनों साथ-साथ उस स्थानकी ओर चले, जहाँ वे पुरुषप्रवर भीमसेन आदि थे ॥ १५ ॥

अग्रतो देवदूतश्च ययौ राजा च पृष्ठतः।
पन्थानमशुभं दुर्गं सेवितं पापकर्मभिः ॥ १६ ॥

आगे-आगे देवदूत जा रहा था और पीछे-पीछे राजा युधिष्ठिर। दोनों ऐसे दुर्गम मार्गपर जा पहुँचे, जो बहुत ही अशुभ था। पापाचारी मनुष्य ही यातना भोगनेके लिये उसपर आते-जाते थे ॥ १६ ॥

तमसा संवृतं घोरं केशशैवलशाद्वलम्।
युक्तं पापकृतां गन्धैर्मांसशोणितकर्दमम् ॥ १७ ॥

वहाँ घोर अन्धकार छा रहा था। केश, सेवार और घास इन्हींसे वह मार्ग भरा हुआ था। वह पापियोंके ही योग्य था। वहाँ दुर्गन्ध फैल रही थी। मांस और रक्तकी कीच जमी हुई थी ॥ १७ ॥

दंशोत्पातकभल्लूकमक्षिकामशकावृतम्।
इतश्चेतश्च कुणपैः समन्तात् परिवारितम् ॥ १८ ॥

उस रास्तेपर डाँस, मच्छर, मक्खी, उत्पाती जीवजन्तु और भालू आदि फैले हुए थे। इधर-उधर सब ओर सड़े मुर्दे पड़े हुए थे ॥ १८ ॥

अस्थिकेशसमाकीर्णं कृमिकीटसमाकुलम्।
ज्वलनेन प्रदीप्तेन समन्तात् परिवेष्टितम् ॥ १९ ॥

हड्डियाँ और केश चारों ओर फैले हुए थे। कृमि और कीटोंसे वह मार्ग भरा हुआ था। उसे चारों ओरसे जलती आगने घेर रक्खा था ॥ १९ ॥
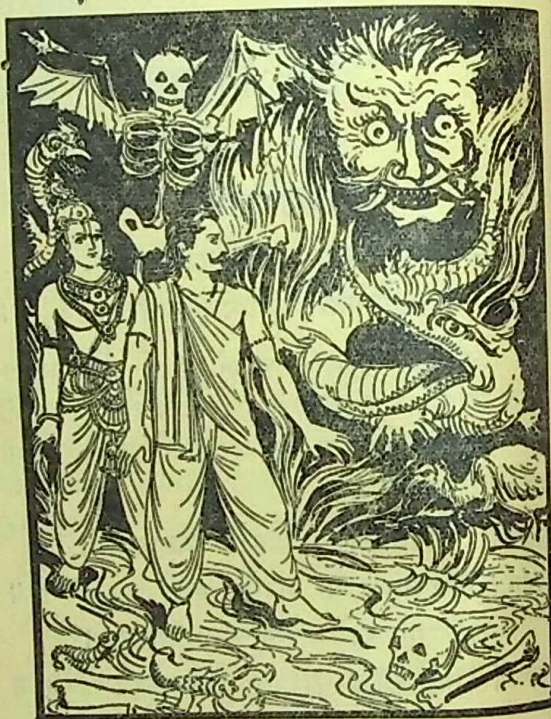
अयोमुखैश्च काकाद्यैर्गृध्रैश्च समभिद्रुतम्।
सूचीमुखैस्तथा प्रेतैर्विन्ध्यशैलोपमैर्वृतम् ॥ २० ॥

लोहेकी-सी चोंचवाले कौए और गीध आदि पक्षी मँडरा रहे थे। सूईके समान चुभते हुए मुखोंवाले और विन्ध्यपर्वतके समान विशालकाय प्रेत वहाँ सब ओर घूम रहे थे ॥ २० ॥

मेदोरुधिरयुक्तैश्च छिन्नबाहूरुपाणिभिः।
निकृत्तोदरपादैश्च तत्र तत्र प्रवेरितैः ॥ २१ ॥

वहाँ यत्र-तत्र बहुत-से मुर्दे बिखरे पड़े थे, उनमेंसे किसीके शरीरसे रुधिर और मेद बहते थे, किसीके बाहु, ऊरु, पेट और हाथ-पैर कट गये थे ॥ २१ ॥

स तत्कुणपदुर्गन्धमशिवं लोमहर्षणम्।
जगाम राजा धर्मात्मा मध्ये बहु विचिन्तयन् ॥

धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर मन-ही-मन ... हुए उसी मार्गके बीचसे होकर निकले, ... बदबू फैल रही थी और अमङ्गलकारी बीभत्स ...
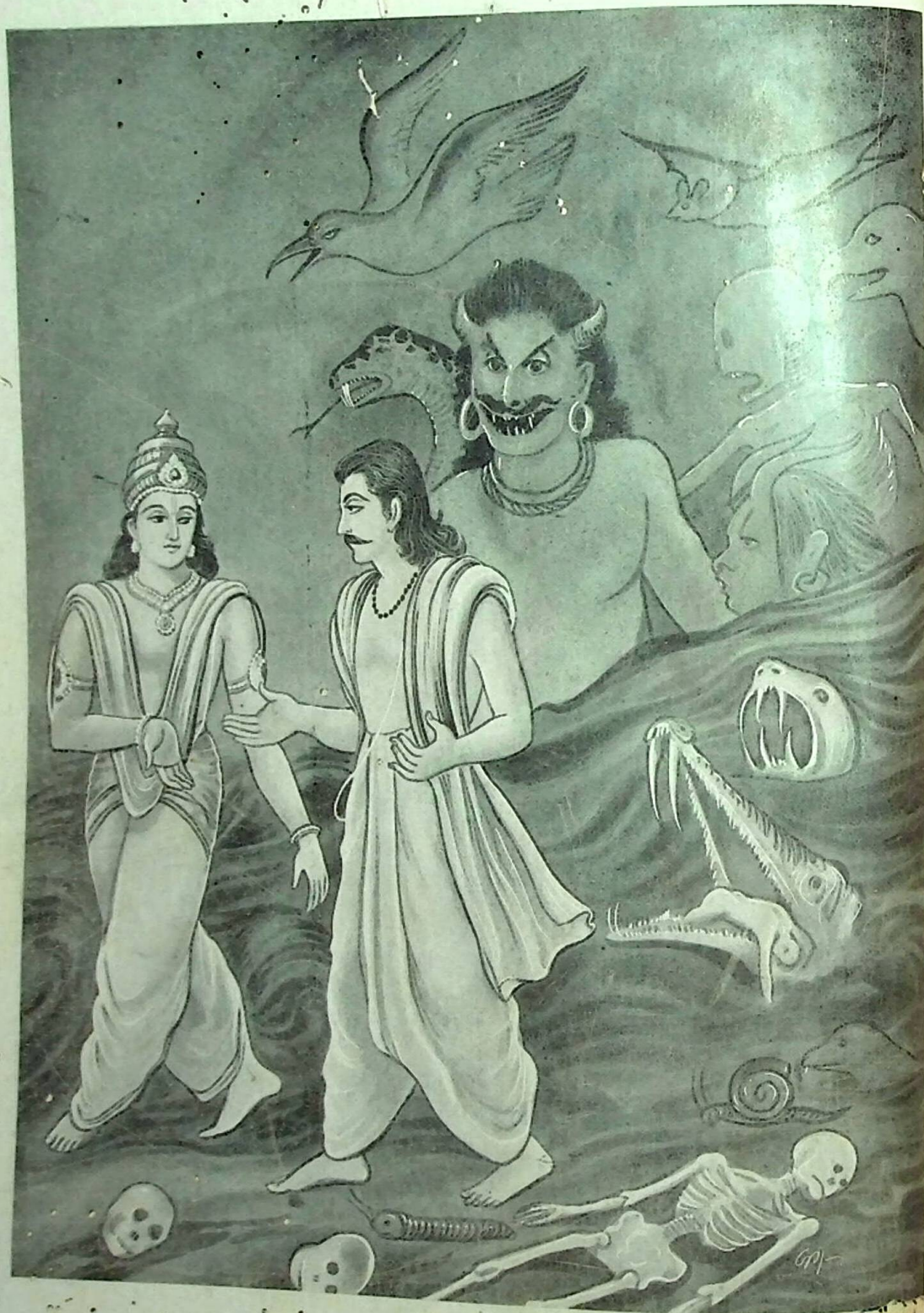
देवदूतका युधिष्ठिरको मायामय नरकका दर्शन कराना

देता था । वह भयंकर मार्ग रोंगटे खड़े कर देनेवाला था ॥ २२ ॥

ददर्शोष्णोदकैः पूर्णां नदीं चापि सुदुर्गमाम् ।
असिपत्रवनं चैव निशितं क्षुरसंवृतम् ॥ २३ ॥

आगे जाकर उन्होंने देखा, खौलते हुए पानीसे भरी हुई एक नदी बह रही है, जिसके पार जाना बहुत ही कठिन है । दूसरी ओर तीखी तलवारों या छूरोंके-से पत्तोंसे परिपूर्ण तेज धारवाला असिपत्र नामक वन है ॥ २३ ॥

करम्भवालुकास्तप्ता आयसीश्च शिलाः पृथक् ।
लोहकुम्भीश्च तैलस्य क्वाथ्यमानाः समन्ततः ॥ २४ ॥

कहीं गरम-गरम बालू बिछी है तो कहीं तपाये हुए लोहेकी बड़ी-बड़ी चट्टानें रक्खी गयी हैं । चारों ओर लोहेके कलशोंमें तेल खौलाया जा रहा है ॥ २४ ॥

कूटशाल्मलिकं चापि दुःस्पर्शं तीक्ष्णकण्टकम् ।
ददर्श चापि कौन्तेयो यातनाः पापकर्मिणाम् ॥ २५ ॥

जहाँ-तहाँ पैने काँटोंसे भरे हुए सेमलके वृक्ष हैं, जिनको हाथसे छूना भी कठिन है । कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने यह भी देखा कि वहाँ पापाचारी जीवोंको बड़ी कठोर यातनाएँ दी जा रही हैं ॥ २५ ॥

स तं दुर्गन्धमालक्ष्य देवदूतमुवाच ह ।
कियदध्वानमस्माभिर्गन्तव्यमिममीदृशम् ॥ २६ ॥
क्व च ते भ्रातरो मह्यं तन्ममाख्यातुमर्हसि ।
देशोऽयं कश्च देवानामेतदिच्छामि वेदितुम् ॥ २७ ॥

वहाँकी दुर्गन्धका अनुभव करके उन्होंने देवदूतसे पूछा—'भैया ! ऐसे रास्तेपर अभी हमलोगोंको कितनी दूर और चलना है ? तथा मेरे वे भाई कहाँ हैं ? यह तुम्हें मुझे बता देना चाहिये । देवताओंका यह कौन-सा देश है, इस बातको मैं जानना चाहता हूँ' ॥ २६-२७ ॥

स संनिववृते श्रुत्वा धर्मराजस्य भाषितम् ।
देवदूतोऽब्रवीच्चैनमेतावद् गमनं तव ॥ २८ ॥

धर्मराजकी यह बात सुनकर देवदूत लौट पड़ा और बोला—'बस, यहींतक आपको आना था ॥ २८ ॥

[illegible] राजन् ! जिनके मया तथास्म्युक्तो दिवौकसैः ।
[illegible] देवताओंके आते राजेन्द्र त्वमथागन्तुमर्हसि ॥ २९ ॥

'महा[illegible] च ता' देवताओंने मुझसे कहा है कि जब युधिष्ठिर [illegible] हाँ, [illegible] उन्हें वापस लौटा लाना; अतः अब मुझे आपको लौटा ले चलना है । यदि आप थक गये हों तो मेरे साथ आइये' ॥ २९ ॥

युधिष्ठिरस्तु निर्विण्णस्तेन गन्धेन मूर्च्छितः ।
निवर्तने धृतमनाः पर्यावर्तत भारत ॥ ३० ॥

भरतनन्दन ! युधिष्ठिर वहाँकी दुर्गन्धसे घबरा गये थे । उन्हें मूर्च्छा-सी आने लगी थी । इसलिये उन्होंने मनमें लौट जानेका ही निश्चय किया और उस निश्चयके अनुसार वे लौट पड़े ॥ ३० ॥

स संनिवृत्तो धर्मात्मा दुःखशोकसमाहतः ।
शुश्राव तत्र वदतां दीना वाचः समन्ततः ॥ ३१ ॥

दुःख और शोकसे पीड़ित हुए धर्मात्मा युधिष्ठिर ज्यों ही वहाँसे लौटने लगे, त्यों ही उन्हें चारों ओरसे पुकारनेवाले आर्त मनुष्योंकी दीन वाणी सुनायी पड़ी— ॥ ३१ ॥

भो भो धर्मज राजर्षे पुण्याभिजन पाण्डव ।
अनुग्रहार्थमस्माकं तिष्ठ तावन्मुहूर्तकम् ॥ ३२ ॥

'हे धर्मनन्दन ! हे राजर्षे ! हे पवित्र कुलमें उत्पन्न पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर ! आप हमलोगोंपर कृपा करनेके लिये दो घड़ीतक यहीं ठहरिये ॥ ३२ ॥

आयाति त्वयि दुर्धर्षे वाति पुण्यः समीरणः ।
तव गन्धानुगस्तात येनास्मान् सुखमागमत् ॥ ३३ ॥

'आप दुर्धर्ष महापुरुषके आते ही परम पवित्र हवा चलने लगी है । तात ! वह हवा आपके शरीरकी सुगन्ध लेकर आ रही है, जिससे हमलोगोंको बड़ा सुख मिला है ॥ ३३ ॥

ते वयं पार्थ दीर्घस्य कालस्य पुरुषर्षभ ।
सुखमासादयिष्यामस्त्वां दृष्ट्वा राजसत्तम ॥ ३४ ॥

'पुरुषप्रवर ! कुन्तीकुमार ! नृपश्रेष्ठ ! आज दीर्घकालके पश्चात् आपका दर्शन पाकर हम सुखका अनुभव करेंगे ॥ ३४ ॥

संतिष्ठस्व महाबाहो मुहूर्तमपि भारत ।
त्वयि तिष्ठति कौरव्य यातनास्मान् न बाधते ॥ ३५ ॥

'महाबाहु भरतनन्दन ! हो सके तो दो घड़ी भी ठहर जाइये । कुरुनन्दन ! आपके रहनेसे यहाँकी यातना हमें कष्ट नहीं दे रही है' ॥ ३५ ॥

एवं बहुविधा वाचः कृपणा वेदनावताम् ।
तस्मिन् देशे स शुश्राव समन्ताद् वदतां नृप ॥ ३६ ॥

नरेश्वर ! इस प्रकार वहाँ कष्ट पानेवाले दुखी प्राणियोंके भाँति-भाँतिके दीन वचन, उस देशमें उन्हें चारों ओरसे सुनायी देने लगे ॥ ३६ ॥

तेषां तु वचनं श्रुत्वा दयावान् दीनभाषिणाम् ।
अहो कृच्छ्रमिति प्राह तस्थौ स च युधिष्ठिरः ॥ ३७ ॥

दीनतापूर्ण वचन कहनेवाले उन प्राणियोंकी बातें सुनकर दयालु राजा युधिष्ठिर वहाँ खड़े हो गये । उनके मुँहसे सहसा निकल पड़ा, 'अहो ! इन बेचारोंको बड़ा कष्ट है' ॥ ३७ ॥

स ता गिरः पुरस्ताद् वै श्रुतपूर्वाः पुनः पुनः ।
ग्लानानां दुःखितानां च नाभ्यजानत पाण्डवः ॥ ३८ ॥

महान् कष्ट और दुःखमें पड़े हुए प्राणियोंकी वे ही पहलेकी सुनी हुई करुणाजनक बातें सामनेकी ओरसे बारंबार उनके कानोंमें पड़ने लगीं तो भी वे पाण्डुकुमार उन्हें पहचान न सके ॥ ३८ ॥

अबुध्यमानस्ता वाचो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
उवाच के भवन्तो वै किमर्थमिह तिष्ठथ ॥ ३९ ॥

उनकी वे बातें पूर्णरूपसे न समझकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरने पूछा—'आपलोग कौन हैं और किस लिये यहाँ रहते हैं ?' ॥ ३९ ॥

इत्युक्तास्ते ततः सर्वे समन्तादवभाषिरे ।
कर्णोऽहं भीमसेनोऽहमर्जुनोऽहमिति प्रभो ॥ ४० ॥
नकुलः सहदेवोऽहं धृष्टद्युम्नोऽहमित्युत ।
द्रौपदी द्रौपदेयाश्च इत्येवं ते विचुक्रुशुः ॥ ४१ ॥

उनके इस प्रकार पूछनेपर वे सब चारों ओरसे बोलने लगे—'प्रभो ! मैं कर्ण हूँ । मैं भीमसेन हूँ । मैं अर्जुन हूँ । मैं नकुल हूँ । मैं सहदेव हूँ । मैं धृष्टद्युम्न हूँ । मैं द्रौपदी हूँ और हमलोग द्रौपदीके पुत्र हैं ।' इस प्रकार वे सब लोग चिल्ला-चिल्लाकर अपना-अपना नाम बताने लगे ॥ ४०-४१ ॥

ता वाचः स तदा श्रुत्वा तद्देशसदृशीर्नृप ।
ततो विममृशे राजा किं त्विदं दैवकारितम् ॥ ४२ ॥

नरेश्वर ! उस देशके अनुरूप उन बातोंको सुनकर राजा युधिष्ठिर मन-ही-मन विचार करने लगे 'कि दैवका यह कैसा विधान है' ॥ ४२ ॥

किं तु तत् कलुषं कर्म कृतमेभिर्महात्मभिः ।
कर्णेन द्रौपदेयैर्वा पाञ्चाल्या वा सुमध्यया ॥ ४३ ॥
य इमे पापगन्धेऽस्मिन् देशे सन्ति सुदारुणे ।
नाहं जानामि सर्वेषां दुष्कृतं पुण्यकर्मणाम् ॥ ४४ ॥

'मेरे इन महामना भाइयोंने, कर्णने, द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंने अथवा स्वयं सुमध्यमा द्रौपदीने भी कौन-सा ऐसा पाप किया था, जिससे ये लोग इस दुर्गन्धपूर्ण भयंकर स्थानमें निवास करते हैं । इन समस्त पुण्यात्मा पुरुषोंने कभी कोई पाप किया था, इसे मैं नहीं जानता ॥ ४३-४४ ॥

किं कृत्वा धृतराष्ट्रस्य पुत्रो राजा सुयोधनः ।
तथा श्रिया युतः पापैः सह सर्वैः पदानुगैः ॥ ४५ ॥

'धृतराष्ट्रका पुत्र राजा सुयोधन कौन-सा पुण्यकर्म करके अपने समस्त पापी सेवकोंके साथ वैसी अद्भुत शोभा और सम्पत्तिसे संयुक्त हुआ है ? ॥ ४५ ॥

महेन्द्र इव लक्ष्मीवानास्ते परमपूजितः ।
कस्येदानीं विकारोऽयं य इमे नरकं गताः ॥ ४६ ॥

'वह तो यहाँ अत्यन्त सम्मानित होकर महेन्द्रके समान राजलक्ष्मीसे सम्पन्न हुआ है । इधर यह किस कर्मका फल है कि ये मेरे सगे-सम्बन्धी नरकमें पड़े हुए हैं ? ॥ ४६ ॥

सर्वधर्मविदः शूराः सत्यागमपरायणाः ।
क्षत्रधर्मरताः सन्तो यज्वानो भूरिदक्षिणाः ॥ ४७ ॥

'मेरे भाई सम्पूर्ण धर्मके ज्ञाता, शूरवीर, सत्यवादी तथा शास्त्रके अनुकूल चलनेवाले थे । इन्होंने क्षत्रियधर्ममें तत्पर रहकर बड़े-बड़े यज्ञ किये और बहुत-सी दक्षिणाएँ दीं (तथापि इनकी ऐसी दुर्गति क्यों हुई) ? ॥ ४७ ॥

किं नु सुप्तोऽस्मि जागर्मि चेतयामि न चेतये ।
अहो चित्तविकारोऽयं स्याद् वा मे चित्तविभ्रमः ॥ ४८ ॥

'क्या मैं सोता हूँ या जागता हूँ ? मुझे चेत है या नहीं ? अहो ! यह मेरे चित्तका विकार तो नहीं है अथवा हो सकता है यह मेरे मनका भ्रम हो' ॥ ४८ ॥

एवं बहुविधं राजा विममर्श युधिष्ठिरः ।
दुःखशोकसमाविष्टश्चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियः ॥ ४९ ॥

दुःख और शोकके आवेशसे युक्त हो राजा युधिष्ठिर इस तरह नाना प्रकारसे विचार करने लगे । उनकी सारी इन्द्रियाँ चिन्तासे व्याकुल [illegible] भूपाल [illegible]

क्रोधमाहारयच्चैव तीव्रं धर्मसुतः [illegible]
देवांश्च गर्हयामास धर्मं चैव युधि[illegible]

धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके मनमें तीव्र रोष जाग उठा। वे देवताओं और धर्मको कोसने लगे ॥ ५० ॥

स तीव्रगन्धसंतप्तो देवदूतमुवाच ह।
गम्यतां तत्र येषां त्वं दूतस्तेषामुपान्तिकम् ॥ ५१ ॥
न ह्यहं तत्र यास्यामि स्थितोऽस्मीति निवेद्यताम्।
मत्संश्रयादिमे दूताः सुखिनो भ्रातरो हि मे ॥ ५२ ॥

उन्होंने वहाँकी दुःसह दुर्गन्धसे संतप्त होकर देवदूतसे कहा—'तुम जिनके दूत हो, उनके पास लौट जाओ। मैं वहाँ नहीं चलूँगा। यहीं ठहर गया हूँ, अपने मालिकोंको इसकी सूचना दे देना। यहाँ ठहरनेका कारण यह है कि मेरे निकट रहनेसे यहाँ मेरे इन दुखी भाई-बन्धुओंको सुख मिलता है' ॥ ५१-५२ ॥

इत्युक्तः स तदा दूतः पाण्डुपुत्रेण धीमता।
जगाम तत्र यत्रास्ते देवराजः शतक्रतुः ॥ ५३ ॥

बुद्धिमान् पाण्डुपुत्रके ऐसा कहनेपर देवदूत उस समय उस स्थानको चला गया, जहाँ सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले देवराज इन्द्र विराजमान थे ॥ ५३ ॥

निवेदयामास च तद् धर्मराजचिकीर्षितम्।
यथोक्तं धर्मपुत्रेण सर्वमेव जनाधिप ॥ ५४ ॥

नरेश्वर! दूतने वहाँ धर्मपुत्र युधिष्ठिरकी कही हुई सारी बातें कह सुनायीं और यह भी निवेदन कर दिया कि वे क्या करना चाहते हैं ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि युधिष्ठिरनरकदर्शने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्वर्गारोहणपर्वमें युधिष्ठिरको नरकका दर्शनविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

इन्द्र और धर्मका युधिष्ठिरको सान्त्वना देना तथा युधिष्ठिरका शरीर त्यागकर दिव्य लोकको जाना

वैशम्पायन उवाच

स्थिते मुहूर्तं पार्थे तु धर्मराजे युधिष्ठिरे।
आजग्मुस्तत्र कौरव्य देवाः शक्रपुरोगमाः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! कुन्तीकुमार धर्मराज युधिष्ठिरको उस स्थानपर खड़े हुए अभी दो ही घड़ी बीतने पायी थी कि इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता वहाँ आ पहुँचे ॥ १ ॥

स च विग्रहवान् धर्मो राजानं प्रसमीक्षितुम्।
तत्राजगाम यत्रासौ कुरुराजो युधिष्ठिरः ॥ २ ॥

साक्षात् धर्म भी शरीर धारण करके राजासे मिलनेके लिये उस स्थानपर आये, जहाँ वे कुरुराज युधिष्ठिर विद्यमान थे ॥

तेषु भासुरदेहेषु पुण्याभिजनकर्मसु।
समागतेषु देवेषु व्यगमत् तत् तमो नृप ॥ ३ ॥

राजन्! जिनके कुल और कर्म पवित्र हैं, उन तेजस्वी शरीरवाले देवताओंके आते ही वहाँका सारा अन्धकार दूर हो गया ॥

नादृश्यन्त च तास्तत्र यातनाः पापकर्मिणाम्।
नदी वैतरणी चैव कूटशाल्मलिना सह ॥ ४ ॥
लोहकुम्भ्यः शिलाश्चैव नादृश्यन्त भयानकाः।

वहाँ पापकर्मी पुरुषोंको जो यातनाएँ दी जाती थीं, वे सहसा अदृश्य हो गयीं। न वैतरणी नदी रह गयी, न कूटशाल्मलि वृक्ष। लोहेके कुम्भ और लोहमयी भयंकर तप्त शिलाएँ भी नहीं दिखायी देती थीं ॥ ४½ ॥

विकृतानि शरीराणि यानि तत्र समन्ततः ॥ ५ ॥
ददर्श राजा कौरव्यस्तान्यदृश्यानि चाभवन्।
ततो वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः ॥ ६ ॥
ववौ देवसमीपस्थः शीतलोऽतीव भारत।

कुरुकुलनन्दन राजा युधिष्ठिरने वहाँ चारों ओर जो विकृत शरीर देखे थे, वे सभी अदृश्य हो गये। तदनन्तर वहाँ पावन सुगन्ध लेकर बहनेवाली पवित्र सुखदायिनी वायु चलने लगी। भारत! देवताओंके समीप बहती हुई वह वायु अत्यन्त शीतल प्रतीत होती थी ॥ ५-६½ ॥

मरुतः सह शक्रेण वसवश्चाश्विनौ सह ॥ ७ ॥
साध्या रुद्रास्तथाऽऽदित्या ये चान्येऽपि दिवौकसः।
सर्वे तत्र समाजग्मुः सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ ८ ॥
यत्र राजा महातेजा धर्मपुत्रः स्थितोऽभवत्।

इन्द्रके साथ मरुद्गण, वसुगण, दोनों अश्विनीकुमार, साध्यगण, रुद्रगण, आदित्यगण, अन्यान्य देवलोकवासी सिद्ध और महर्षि सभी उस स्थानपर आये, जहाँ महातेजस्वी धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर खड़े थे ॥ ७-८½ ॥

ततः शक्रः सुरपतिः श्रिया परमया युतः ॥ ९ ॥
युधिष्ठिरमुवाचेदं सान्त्वपूर्वमिदं वचः ।

तदनन्तर उत्तम शोभासे सम्पन्न देवराज इन्द्रने युधिष्ठिरको सान्त्वना देते हुए इस प्रकार कहा—॥ ९½ ॥

युधिष्ठिर महाबाहो लोकाश्चाप्यक्षयास्तव ॥ १० ॥
एह्येहि पुरुषव्याघ्र कृतमेतावता विभो ।
सिद्धिः प्राप्ता महाबाहो लोकाश्चाप्यक्षयास्तव ॥ ११ ॥

'महाबाहु युधिष्ठिर ! तुम्हें अक्षयलोक प्राप्त हुए हैं । पुरुषसिंह ! प्रभो ! अबतक जो हुआ सो हुआ । अब अधिक कष्ट उठानेकी आवश्यकता नहीं है । आओ हमारे साथ चलो । महाबाहो ! तुम्हें बहुत बड़ी सिद्धि मिली है । साथ ही अक्षयलोकोंकी भी प्राप्ति हुई है ॥ १०-११ ॥

न च मन्युस्त्वया कार्यः श्रृणु चेदं वचो मम ।
अवश्यं नरकस्तात द्रष्टव्यः सर्वराजभिः ॥ १२ ॥

'तात ! तुम्हें जो नरक देखना पड़ा है, इसके लिये क्रोध न करना । मेरी यह बात सुनो । समस्त राजाओंको निश्चय ही नरक देखना पड़ता है ॥ १२ ॥

शुभानामशुभानां च द्वौ राशी पुरुषर्षभ ।
यः पूर्वं सुकृतं भुङ्क्ते पश्चान्निरयमेव सः ॥ १३ ॥

'पुरुषप्रवर ! मनुष्यके जीवनमें शुभ और अशुभ कर्मोंकी दो राशियाँ सञ्चित होती हैं । जो पहले ही शुभ कर्म भोग लेता है, उसे पीछे नरकमें ही जाना पड़ता है ॥ १३ ॥

पूर्वं नरकभाग् यस्तु पश्चात् स्वर्गमुपैति सः ।
भूयिष्ठं पापकर्मा यः स पूर्वं स्वर्गमश्नुते ॥ १४ ॥

'परंतु जो पहले नरक भोग लेता है, वह पीछे स्वर्गमें जाता है । जिसके पास पापकर्मोंका संग्रह अधिक है, वह पहले ही स्वर्ग भोग लेता है ॥ १४ ॥

तेन त्वमेवं गमितो मया श्रेयोऽर्थिना नृप ।
व्याजेन हि त्वया द्रोण उपचीर्णः सुतं प्रति ॥ १५ ॥
व्याजेनैव ततो राजन् दर्शितो नरकस्तव ।

'नरेश्वर ! मैंने तुम्हारे कल्याणकी इच्छासे तुम्हें पहले ही इस प्रकार नरकका दर्शन करानेके लिये यहाँ भेज दिया है । राजन् ! तुमने गुरुपुत्र अश्वत्थामाके विषयमें छलसे काम लेकर द्रोणाचार्यको उनके पुत्रकी मृत्युका विश्वास दिलाया था, इसलिये तुम्हें भी छलसे ही नरक दिखलाया गया है ।

यथैव त्वं तथा भीमस्तथा पार्थो यमौ तथा ॥ १६ ॥
द्रौपदी च तथा कृष्णा व्याजेन नरकं गताः ।

'जैसे तुम यहाँ लाये गये थे, उसी प्रकार भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा द्रुपदकुमारी कृष्णा—ये सभी छलसे नरकके निकट लाये गये थे ॥ १६½ ॥

आगच्छ नरशार्दूल मुक्तास्ते चैव कल्मषात् ॥ १७ ॥
स्वपक्ष्याश्चैव ये तुभ्यं पार्थिवा निहता रणे ।
सर्वे स्वर्गमनुप्राप्तास्तान् पश्य भरतर्षभ ॥ १८ ॥

'पुरुषसिंह ! आओ, वे सभी पापसे मुक्त हो गये हैं । भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारे पक्षके जो-जो राजा युद्धमें मारे गये हैं, वे सभी स्वर्गलोकमें आ पहुँचे हैं । चलो, उनका दर्शन करो ॥ १७-१८ ॥

कर्णश्चैव महेष्वासः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
स गतः परमां सिद्धिं यदर्थं परितप्यसे ॥ १९ ॥

'तुम जिनके लिये सदा संतप्त रहते हो, वे सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाधनुर्धर कर्ण भी परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं ॥ १९ ॥

तं पश्य पुरुषव्याघ्रमादित्यतनयं विभो ।
स्वस्थानस्थं महाबाहो जहि शोकं नरर्षभ ॥ २० ॥

'प्रभो ! नरश्रेष्ठ ! महाबाहो ! तुम पुरुषसिंह सूर्यकुमार कर्णका दर्शन करो । वे अपने स्थानमें स्थित हैं । तुम उनके लिये शोक त्याग दो ॥ २० ॥

भ्रातॄंश्चान्यांस्तथा पश्य स्वपक्ष्यांश्चैव पार्थिवान् ।
स्वं स्वं स्थानमनुप्राप्तान् व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ २१ ॥

'अपने दूसरे भाइयोंको तथा पाण्डवपक्षके अन्यान्य राजाओंको भी देखो । वे सब अपने-अपने योग्य स्थानको प्राप्त हुए हैं । उन सबकी सद्गतिके विषयमें अब तुम्हारी मानसिक चिन्ता दूर हो जानी चाहिये ॥ २१ ॥

कृच्छ्रं पूर्वं चानुभूय इतःप्रभृति कौरव ।
विहरस्व मया सार्धं गतशोको निरामयः ॥ २२ ॥

'कुरुनन्दन ! पहले कष्टका अनुभव करके अबसे तुम

मेरे साथ रहकर रोग-शोकसे रहित हो स्वच्छन्द विहार करो ॥

कर्मणां तात पुण्यानां जितानां तपसा स्वयम् ।
दानानां च महाबाहो फलं प्राप्नुहि पार्थिव ॥ २३ ॥

'तात ! महाबाहु ! पृथ्वीनाथ ! अपने किये हुए पुण्य-कर्मोंका, तपस्यासे जीते हुए लोकोंका और दानोंका फल भोगो ॥ २३ ॥

अद्य त्वां देवगन्धर्वा दिव्याश्चाप्सरसो दिवि ।
उपसेवन्तु कल्याण्यो विरजोऽम्बरभूषणाः ॥ २४ ॥

'आजसे देव, गन्धर्व तथा कल्याणस्वरूपा दिव्य अप्सराएँ स्वच्छ वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित हो स्वर्गलोकमें तुम्हारी सेवा करें ॥ २४ ॥

राजसूयजिताँल्लोकानश्वमेधाभिवर्धितान् ।
प्राप्नुहि त्वं महाबाहो तपसश्च महाफलम् ॥ २५ ॥

'महाबाहो ! राजसूय यज्ञद्वारा जीते हुए तथा अश्वमेध यज्ञद्वारा वृद्धिको प्राप्त हुए पुण्य लोकोंको प्राप्त करो और अपने तपके महान् फलको भोगो ॥ २५ ॥

उपर्युपरि राज्ञां हि तव लोका युधिष्ठिर ।
हरिश्चन्द्रसमाः पार्थ येषु त्वं विहरिष्यसि ॥ २६ ॥

'कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ! तुम्हें प्राप्त हुए सम्पूर्ण लोक राजा हरिश्चन्द्रके लोकोंकी भाँति सब राजाओंके लोकोंसे ऊपर हैं; जिनमें तुम विचरण करोगे ॥ २६ ॥

मान्धाता यत्र राजर्षिर्यत्र राजा भगीरथः ।
दौष्यन्तिर्यत्र भरतस्तत्र त्वं विहरिष्यसि ॥ २७ ॥

'जहाँ राजर्षि मान्धाता, राजा भगीरथ और दुष्यन्त-कुमार भरत गये हैं, उन्हीं लोकोंमें तुम भी विहार करोगे ॥

एषा देवनदी पुण्या पार्थ त्रैलोक्यपावनी ।
आकाशगङ्गा राजेन्द्र तत्राप्लुत्य गमिष्यसि ॥ २८ ॥

'पार्थ ! ये तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली पुण्यसलिला देवनदी आकाशगङ्गा हैं । राजेन्द्र ! इनके जलमें गोता लगाकर तुम दिव्य लोकोंमें जा सकोगे ॥ २८ ॥

अत्र स्नातस्य भावस्ते मानुषो विगमिष्यति ।
गतशोको निरायासो मुक्तवैरो भविष्यसि ॥ २९ ॥

'मन्दाकिनीके इस पवित्र जलमें स्नान कर लेनेपर तुम्हारा मानव-स्वभाव दूर हो जायगा । तुम शोक, संताप और वैरभावसे छुटकारा पा जाओगे' ॥ २९ ॥

एवं ब्रुवति देवेन्द्रे कौरवेन्द्रं युधिष्ठिरम् ।
धर्मो विग्रहवान् साक्षादुवाच सुतमात्मनः ॥ ३० ॥

देवराज इन्द्र जब इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय शरीर धारण करके आये हुए साक्षात् धर्मने अपने पुत्र कौरवराज युधिष्ठिरसे कहा—॥ ३० ॥

भो भो राजन् महाप्राज्ञ प्रीतोऽस्मि तव पुत्रक ।
मद्भक्त्या सत्यवाक्यैश्च क्षमया च दमेन च ॥ ३१ ॥

'महाप्राज्ञ नरेश ! मेरे पुत्र ! तुम्हारे धर्मविषयक अनुराग, सत्यभाषण, क्षमा और इन्द्रियसंयम आदि गुणोंसे मै बहुत प्रसन्न हूँ ॥ ३१ ॥

एषा तृतीया जिज्ञासा तव राजन् कृता मया ।
न शक्यसे चालयितुं स्वभावात् पार्थ हेतुतः ॥ ३२ ॥

'राजन् ! यह मैंने तीसरी बार तुम्हारी परीक्षा ली थी । पार्थ ! किसी भी युक्तिसे कोई तुम्हें अपने स्वभावसे विचलित नहीं कर सकता ॥ ३२ ॥

पूर्वं परीक्षितो हि त्वं प्रश्नाद् द्वैतवने मया ।
अरणीसहितस्यार्थे तच्च निस्तीर्णवानसि ॥ ३३ ॥

'द्वैतवनमें अरणिकाष्ठका अपहरण करनेके पश्चात् जब यक्षके रूपमें मैंने तुमसे कई प्रश्न किये थे, वह मेरे द्वारा तुम्हारी पहली परीक्षा थी । उसमें तुम भलीभाँति उत्तीर्ण हो गये ॥ ३३ ॥

सोदर्येषु विनष्टेषु द्रौपद्या तत्र भारत ।
श्वरूपधारिणा तत्र पुनस्त्वं मे परीक्षितः ॥ ३४ ॥

'भारत ! फिर द्रौपदीसहित तुम्हारे सभी भाइयोंकी मृत्यु हो जानेपर कुत्तेका रूप धारण करके मैंने दूसरी बार तुम्हारी परीक्षा ली थी । उसमें भी तुम सफल हुए ॥ ३४ ॥

इदं तृतीयं भ्रातॄणामर्थे यत् स्थातुमिच्छसि ।
विशुद्धोऽसि महाभाग सुखी विगतकल्मषः ॥ ३५ ॥

'अब यह तुम्हारी परीक्षाका तीसरा अवसर था; किंतु इस बार भी तुम अपने सुखकी परवा न करके भाइयोंके हितके लिये नरकमें रहना चाहते थे, अतः महाभाग ! तुम हर तरहसे शुद्ध प्रमाणित हुए । तुममें पापका नाम भी नहीं है; अतः सुखी होओ ॥ ३५ ॥

न च ते भ्रातरः पार्थ नरकार्हा विशाम्पते ।
मायैषा देवराजेन महेन्द्रेण प्रयोजिता ॥ ३६ ॥

'पार्थ ! प्रजानाथ ! तुम्हारे भाई नरकमें रहनेके योग्य

नहीं हैं। तुमने जो उन्हें नरक भोगते देखा है, वह देवराज इन्द्रद्वारा प्रकट की हुई माया थी ॥ ३६ ॥

अवश्यं नरकास्तात द्रष्टव्याः सर्वराजभिः ।
ततस्त्वया प्राप्तमिदं मुहूर्तं दुःखमुत्तमम् ॥ ३७ ॥

'तात ! समस्त राजाओंको नरकका दर्शन अवश्य करना पड़ता है; इसलिये तुमने दो घड़ीतक यह महान् दुःख प्राप्त किया है ॥ ३७ ॥

न सव्यसाची भीमो वा यमौ वा पुरुषर्षभौ ।
कर्णो वा सत्यवाक् शूरो नरकार्हाश्चिरं नृप ॥ ३८ ॥

'नरेश्वर ! सव्यसाची अर्जुन, भीमसेन, पुरुषप्रवर नकुल-सहदेव अथवा सत्यवादी शूरवीर कर्ण—इनमेंसे कोई भी चिरकालतक नरकमें रहनेके योग्य नहीं है ॥ ३८ ॥

न कृष्णा राजपुत्री च नरकार्हा कथंचन ।
एह्येहि भरतश्रेष्ठ पश्य गङ्गां त्रिलोकगाम् ॥ ३९ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! राजकुमारी कृष्णा भी किसी तरह नरकमें जानेयोग्य नहीं है । आओ, त्रिभुवनगामिनी गङ्गाजीका दर्शन करो' ॥ ३९ ॥

एवमुक्तः स राजर्षिस्तव पूर्वपितामहः ।
जगाम सह धर्मेण सर्वैश्च त्रिदिवालयैः ॥ ४० ॥
गङ्गां देवनदीं पुण्यां पावनीमृषिसंस्तुताम् ।
अवगाह्य ततो राजा तनुं तत्याज मानुषीम् ॥ ४१ ॥

जनमेजय ! धर्मके यों कहनेपर तुम्हारे पूर्वपितामह राजर्षि युधिष्ठिरने धर्म तथा समस्त स्वर्गवासी देवताओंके साथ जाकर मुनिजनवन्दित परमपावन पुण्यसलिला देवनदी गङ्गाजीमें स्नान किया । स्नान करके राजाने तत्काल अपने मानवशरीरको त्याग दिया ॥ ४०-४१ ॥

ततो दिव्यवपुर्भूत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
निर्वैरो गतसंतापो जले तस्मिन् समाप्लुतः ॥ ४२ ॥

तत्पश्चात् दिव्यदेह धारण करके धर्मराज युधिष्ठिर वैरभावसे रहित हो गये । मन्दाकिनीके शीतल जलमें स्नान करते ही उनका सारा संताप दूर हो गया ॥ ४२ ॥

ततो ययौ वृतो देवैः कुरुराजो युधिष्ठिरः ।
धर्मेण सहितो धीमान् स्तूयमानो महर्षिभिः ॥ ४३ ॥
यत्र ते पुरुषव्याघ्राः शूरा विगतमन्यवः ।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च स्वानि स्थानानि भेजिरे ॥ ४४ ॥

तत्पश्चात् देवताओंसे घिरे हुए बुद्धिमान् कुरुराज युधिष्ठिर महर्षियोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए धर्मके साथ उस स्थानको गये, जहाँ वे पुरुषसिंह शूरवीर पाण्डव और धृतराष्ट्रपुत्र क्रोध त्यागकर आनन्दपूर्वक अपने-अपने स्थानोंपर रहते थे ॥ ४३-४४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि युधिष्ठिरतनुत्यागे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्वर्गारोहणपर्वमें युधिष्ठिरका देहत्यागविषयक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

युधिष्ठिरका दिव्यलोकमें श्रीकृष्ण, अर्जुन आदिका दर्शन करना

वैशम्पायन उवाच

ततो युधिष्ठिरो राजा देवैः सर्षिमरुद्गणैः ।
स्तूयमानो ययौ तत्र यत्र ते कुरुपुङ्गवाः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर देवताओं, ऋषियों और मरुद्गणोंके मुँहसे अपनी प्रशंसा सुनते हुए राजा युधिष्ठिर क्रमशः उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ वे कुरुश्रेष्ठ भीमसेन और अर्जुन आदि विराजमान थे ॥

ददर्श तत्र गोविन्दं ब्राह्मेण वपुषान्वितम् ।
तेनैव दृष्टपूर्वेण सादृश्येनैव सूचितम् ॥ २ ॥

वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण अपने ब्राह्मविग्रहसे सम्पन्न हैं । पहलेके देखे गये सादृश्यसे ही वे पहचाने जाते हैं ॥ २ ॥

दीप्यमानं स्ववपुषा दिव्यैरस्त्रैरुपस्थितम् ।
चक्रप्रभृतिभिर्घोरैर्दिव्यैः पुरुषविग्रहैः ॥ ३ ॥

उनके श्रीविग्रहसे अद्भुत दीप्ति छिटक रही है । चक्र आदि दिव्य एवं भयंकर अस्त्र-शस्त्र दिव्य पुरुषविग्रह धारण करके उनकी सेवामें उपस्थित हैं ॥ ३ ॥

उपास्यमानं वीरेण फाल्गुनेन सुवर्चसा ।
तथास्वरूपं कौन्तेयो ददर्श मधुसूदनम् ॥ ४ ॥

अत्यन्त तेजस्वी वीरवर अर्जुन भगवान्‌की आराधनामें लगे हुए हैं । कुन्तीकुमार युधिष्ठिरने भगवान् मधुसूदनका उसी स्वरूपमें दर्शन किया ॥ ४ ॥

तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ समुद्वीक्ष्य युधिष्ठिरम् ।
यथावत् प्रतिपेदाते पूजया देवपूजितौ ॥ ५ ॥

पुरुषसिंह अर्जुन और श्रीकृष्ण देवताओंद्वारा पूजित थे। इन दोनोंने युधिष्ठिरको उपस्थित देख उनका यथावत् सम्मान किया ॥ ५ ॥

अपरस्मिन्नथोद्देशे कर्णं शस्त्रभृतां वरम् ।
द्वादशादित्यसहितं ददर्श कुरुनन्दनः ॥ ६ ॥

इसके बाद दूसरी ओर दृष्टि डालनेपर कुरुनन्दन युधिष्ठिरने शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कर्णको देखा, जो बारह आदित्योंके साथ (तेजोमय स्वरूप धारण किये) विराजमान थे॥

अथापरस्मिन्नुद्देशे मरुद्गणवृतं विभुम् ।
भीमसेनमथापश्यत् तेनैव वपुषान्वितम् ॥ ७ ॥
वायोर्मूर्तिमतः पार्श्वे दिव्यमूर्तिसमन्वितम् ।
श्रिया परमया युक्तं सिद्धिं परमिकां गतम् ॥ ८ ॥

फिर दूसरे स्थानमें उन्होंने दिव्यरूपधारी भीमसेनको देखा, जो पहलेहीके समान शरीर धारण किये मूर्तिमान् वायुदेवताके पास बैठे थे । उन्हें सब ओरसे मरुद्गणोंने घेर रखा था । वे उत्तम कान्तिसे सुशोभित एवं उत्कृष्ट सिद्धिको प्राप्त थे ॥ ७–८ ॥

अश्विनोस्तु तथा स्थाने दीप्यमानौ स्वतेजसा ।
नकुलं सहदेवं च ददर्श कुरुनन्दनः ॥ ९ ॥

कुरुनन्दन युधिष्ठिरने नकुल और सहदेवको अश्विनीकुमारोंके स्थानमें विराजमान देखा, जो अपने तेजसे उद्दीप्त हो रहे थे ॥ ९ ॥

तथा ददर्श पाञ्चालीं कमलोत्पलमालिनीम् ।
वपुषा स्वर्गमाक्रम्य तिष्ठन्तीमर्कवर्चसम् ॥ १० ॥

तदनन्तर उन्होंने कमलोंकी मालासे अलंकृत पाञ्चालराजकुमारी द्रौपदीको देखा, जो अपने तेजस्वी स्वरूपसे स्वर्गलोकको अभिभूत करके विराज रही थीं । उनकी दिव्य कान्ति सूर्यदेवकी भाँति प्रकाशित हो रही थी ॥ १० ॥

अथैनां सहसा राजा प्रष्टुमैच्छद् युधिष्ठिरः ।
ततोऽस्य भगवानिन्द्रः कथयामास देवराट् ॥ ११ ॥

राजा युधिष्ठिरने इन सबके विषयमें सहसा प्रश्न करनेका विचार किया । तब देवराज भगवान् इन्द्र स्वयं ही उन्हें सबका परिचय देने लगे—॥ ११ ॥

श्रीरेषा द्रौपदीरूपा त्वदर्थे मानुषं गता ।
अयोनिजा लोककान्ता पुण्यगन्धा युधिष्ठिर ॥ १२ ॥

'युधिष्ठिर ! ये जो लोककमनीय विग्रहसे युक्त पवित्र गन्धवाली देवी दिखायी दे रही हैं, साक्षात् भगवती लक्ष्मी हैं। ये ही तुम्हारे लिये मनुष्यलोकमें जाकर अयोनिसम्भूता द्रौपदीके रूपमें अवतीर्ण हुई थीं ॥ १२ ॥

रत्यर्थं भवतां ह्येषा निर्मिता शूलपाणिना ।
द्रुपदस्य कुले जाता भवद्भिश्चोपजीविता ॥ १३ ॥

'स्वयं भगवान् शंकरने तुमलोगोंकी प्रसन्नताके लिये इन्हें प्रकट किया था और ये ही द्रुपदके कुलमें जन्म धारणकर तुम सब भाइयोंके द्वारा अनुगृहीत हुई थीं ॥ १३ ॥

एते पञ्च महाभागा गन्धर्वाः पावकप्रभाः ।
द्रौपद्यास्तनया राजन् युष्माकममितौजसः ॥ १४ ॥

'राजन् ! ये जो अग्निके समान तेजस्वी और महान् सौभाग्यशाली पाँच गन्धर्व दिखायी देते हैं, ये ही तुमलोगोंके वीर्यसे उत्पन्न हुए द्रौपदीके अनन्त बलशाली पुत्र हुए थे ॥ १४ ॥

पश्य गन्धर्वराजानं धृतराष्ट्रं मनीषिणम् ।
एनं च त्वं विजानीहि भ्रातरं पूर्वजं पितुः ॥ १५ ॥

'इन मनीषी गन्धर्वराज धृतराष्ट्रका दर्शन करो और इन्हींको अपने पिताका बड़ा भाई समझो ॥ १५ ॥

अयं ते पूर्वजो भ्राता कौन्तेयः पावकद्युतिः ।
सूतपुत्राग्रजः श्रेष्ठो राधेय इति विश्रुतः ॥ १६ ॥

'ये रहे तुम्हारे बड़े भाई कुन्तीकुमार कर्ण, जो अग्नितुल्य तेजसे प्रकाशित हो रहे हैं। ये ही सूतपुत्रोंके श्रेष्ठ अग्रज थे और ये ही राधापुत्रके नामसे विख्यात हुए थे ॥ १६ ॥

आदित्यसहितो याति पश्यैनं पुरुषर्षभम् ।

'इन पुरुषप्रवर कर्णका दर्शन करो, ये आदित्योंके साथ जा रहे हैं ॥ १६½ ॥

साध्यानामथ देवानां विश्वेषां मरुतामपि ॥ १७ ॥
गणेषु पश्य राजेन्द्र वृष्ण्यन्धकमहारथान् ।
सात्यकिप्रमुखान् वीरान् भोजांश्चैव महाबलान् ॥ १८ ॥

'राजेन्द्र ! उधर वृष्णि और अन्धककुलके सात्यकि आदि वीर महारथियों और महान् बलशाली भोजोंको देखो ! वे साध्यों, विश्वेदेवों तथा मरुद्गणोंमें विराजमान हैं ॥ १७-१८ ॥

सोमेन सहितं पश्य सौभद्रमपराजितम्।
अभिमन्युं महेष्वासं निशाकरसमद्युतिम् ॥ १९ ॥

'इधर किसीसे परास्त न होनेवाले महाधनुर्धर सुभद्राकुमार अभिमन्युकी ओर दृष्टि डालो। यह चन्द्रमाके साथ इन्हींके समान कान्ति धारण किये बैठा है ॥ १९ ॥

एष पाण्डुर्महेष्वासः कुन्त्या माद्र्या च संगतः।
विमानेन सदाभ्येति पिता तव ममान्तिकम् ॥ २० ॥

'ये महाधनुर्धर राजा पाण्डु हैं, जो कुन्ती और माद्री दोनोंके साथ हैं। ये तुम्हारे पिता पाण्डु विमानद्वारा सदा मेरे पास आया करते हैं ॥ २० ॥

वसुभिः सहितं पश्य भीष्मं शान्तनवं नृपम्।
द्रोणं बृहस्पतेः पार्श्वे गुरुमेनं निशामय ॥ २१ ॥

'शान्तनुनन्दन राजा भीष्मका दर्शन करो, ये वसुओंके साथ विराज रहे हैं। द्रोणाचार्य बृहस्पतिके साथ हैं। आप इन गुरुदेवको अच्छी तरह देख लो ॥ २१ ॥

एते चान्ये महीपाला योधास्तव च पाण्डव।
गन्धर्वसहिता यान्ति यक्षपुण्यजनैस्तथा ॥ २२ ॥

'पाण्डुनन्दन ! ये तुम्हारे पक्षके दूसरे भूपाल योद्धा गन्धर्वों, यक्षों तथा पुण्यजनोंके साथ जा रहे हैं ॥ २२ ॥

गुह्यकानां गतिं चापि केचित् प्राप्ता नराधिपाः।
त्यक्त्वा देहं जितः स्वर्गः पुण्यवाग्बुद्धिकर्मभिः ॥ २३ ॥

'किन्हीं-किन्हीं राजाओंको गुह्यकोंकी गति प्राप्त हुई है। ये सब युद्धमें शरीर त्यागकर अपनी पवित्र वाणी, बुद्धि और कर्मोंके द्वारा स्वर्गलोकपर अधिकार प्राप्त कर चुके हैं' ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि द्रौपद्यादिस्वस्वस्थानगमने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्वर्गारोहणपर्वमें द्रौपदी आदिका अपने-अपने स्थानमें गमनविषयक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

भीष्म आदि वीरोंका अपने-अपने मूलस्वरूपमें मिलना और महाभारतका उपसंहार तथा माहात्म्य

जनमेजय उवाच

भीष्मद्रोणौ महात्मानौ धृतराष्ट्रश्च पार्थिवः।
विराटद्रुपदौ चोभौ शङ्खश्चैवोत्तरस्तथा ॥ १ ॥
धृष्टकेतुर्जयत्सेनो राजा चैव स सत्यजित्।
दुर्योधनसुताश्चैव शकुनिश्चैव सौबलः ॥ २ ॥
कर्णपुत्राश्च विक्रान्ता राजा चैव जयद्रथः।
घटोत्कचादयश्चैव ये चान्ये नानुकीर्तिताः ॥ ३ ॥
ये चान्ये कीर्तिता वीरा राजानो दीप्तमूर्तयः।
स्वर्गे कालं कियन्तं ते तस्थुस्तदपि शंस मे ॥ ४ ॥

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! महात्मा भीष्म और द्रोण, राजा धृतराष्ट्र, विराट, द्रुपद, शंख, उत्तर, धृष्टकेतु, जयत्सेन, राजा सत्यजित्, दुर्योधनके पुत्र, सुबलपुत्र शकुनि, कर्णके पराक्रमी पुत्र, राजा जयद्रथ तथा घटोत्कच आदि तथा दूसरे जो नरेश यहाँ नहीं बताये गये हैं और जिनका नाम लेकर यहाँ वर्णन किया गया है, वे सभी तेजस्वी शरीर धारण करनेवाले वीर राजा स्वर्गलोकमें कितने समयतक एक साथ रहे ? यह मुझे बताइये ॥ १–४ ॥

आहोस्विच्छाश्वतं स्थानं तेषां तत्र द्विजोत्तम।
अन्ते वा कर्मणां कां ते गतिं प्राप्ता नरर्षभाः ॥ ५ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! क्या उन्हें वहाँ सनातन स्थानकी प्राप्ति हुई थी ? अथवा कर्मोंका अन्त होनेपर वे पुरुषश्रेष्ठ किस गतिको प्राप्त हुए ? ॥ ५ ॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं प्रोच्यमानं द्विजोत्तम।
तपसा हि प्रदीप्तेन सर्वं त्वमनुपश्यसि ॥ ६ ॥

विप्रवर ! मैं आपके मुखसे इस विषयको सुनना चाहता हूँ; क्योंकि आप अपनी उद्दीप्त तपस्यासे सब कुछ देखते हैं ॥ ६ ॥

सौतिरुवाच

इत्युक्तः स तु विप्रर्षिरनुज्ञातो महात्मना।
व्यासेन तस्य नृपतेराख्यातुमुपचक्रमे ॥ ७ ॥

सौति कहते हैं—राजा जनमेजयके इस प्रकार पूछनेपर महात्मा व्यासकी आज्ञा ले ब्रह्मर्षि वैशम्पायनने राजासे इस प्रकार कहना आरम्भ किया ॥ ७ ॥

वैशम्पायन उवाच

न शक्यं कर्मणामन्ते सर्वेण मनुजाधिप।
प्रकृतिं किं नु सम्यक्ते पृच्छैषा सम्प्रयोजिता ॥ ८ ॥

वैशम्पायनजी बोले—राजन् ! कर्मोंका भोग समाप्त हो जानेपर सभी लोग अपनी प्रकृति (मूल कारण) को ही नहीं प्राप्त हो जाते हैं; (कोई-कोई ही अपने कारणमें विलीन होता है) यदि पूछो, क्या मेरा प्रश्न असंगत है ? तो इसका उत्तर यह है कि जो प्रकृतिको प्राप्त नहीं हैं, उनके उद्देश्यसे तुम्हारा यह प्रश्न सर्वथा ठीक है ॥ ८ ॥

शृणु गुह्यमिदं राजन् देवानां भरतर्षभ।
यदुवाच महातेजा दिव्यचक्षुः प्रतापवान् ॥ ९ ॥

राजन्! भरतश्रेष्ठ! यह देवताओंका गूढ़ रहस्य है। इस विषयमें दिव्य नेत्रवाले, महातेजस्वी, प्रतापी मुनि व्यासजीने जो कहा है, उसे बताता हूँ; सुनो— ॥ ९ ॥

मुनिः पुराणः कौरव्य पाराशर्यो महाव्रतः।
अगाधबुद्धिः सर्वज्ञो गतिज्ञः सर्वकर्मणाम् ॥ १० ॥
तेनोक्तं कर्मणामन्ते प्रविशन्ति स्विकां तनुम्।
वसूनेव महातेजा भीष्मः प्राप महाद्युतिः ॥ ११ ॥

कुरुनन्दन! जो सब कर्मोंकी गतिको जाननेवाले, अगाध बुद्धिसम्पन्न एवं सर्वज्ञ हैं, उन महान् व्रतधारी, पुरातन मुनि, पराशरनन्दन व्यासजीने तो मुझसे यही कहा है कि 'वे सभी वीर कर्मभोगके पश्चात् अन्ततोगत्वा अपने मूल स्वरूपमें ही मिल गये थे। महातेजस्वी, परम कान्तिमान् भीष्म वसुओंके स्वरूपमें ही प्रविष्ट हो गये' ॥ १०-११ ॥

अष्टावेव हि दृश्यन्ते वसवो भरतर्षभ।
बृहस्पतिं विवेशाथ द्रोणो ह्याङ्गिरसां वरम् ॥ १२ ॥

भरतभूषण! यही कारण है कि वसु आठ ही देखे जाते हैं (अन्यथा भीष्मजीको लेकर नौ वसु हो जाते)। आचार्य द्रोणने आङ्गिरसोंमें श्रेष्ठ बृहस्पतिजीके स्वरूपमें प्रवेश किया ॥

कृतवर्मा तु हार्दिक्यः प्रविवेश मरुद्गणान्।
सनत्कुमारं प्रद्युम्नः प्रविवेश यथागतम् ॥ १३ ॥

हृदिकपुत्र कृतवर्मा मरुद्गणोंमें मिल गया। प्रद्युम्न जैसे आये थे, उसी तरह सनत्कुमारके स्वरूपमें प्रविष्ट हो गये ॥

धृतराष्ट्रो धनेशस्य लोकान् प्राप दुरासदान्।
धृतराष्ट्रेण सहिता गान्धारी च यशस्विनी ॥ १४ ॥

धृतराष्ट्रने धनाध्यक्ष कुबेरके दुर्लभ लोकोंको प्राप्त किया। उनके साथ यशस्विनी गान्धारी देवी भी थीं ॥ १४ ॥

पत्नीभ्यां सहितः पाण्डुर्महेन्द्रसदनं ययौ।
विराटद्रुपदौ चोभौ धृष्टकेतुश्च पार्थिवः ॥ १५ ॥
निशठाक्रूरसाम्बाश्च भानुः कम्पो विदूरथः।
भूरिश्रवाः शलश्चैव भूरिश्च पृथिवीपतिः ॥ १६ ॥
कंसश्चैवोग्रसेनश्च वसुदेवस्तथैव च।
उत्तरश्च सह भ्रात्रा शङ्खेन नरपुङ्गवः ॥ १७ ॥
विश्वेषां देवतानां ते विविशुर्नरसत्तमाः।

राजा पाण्डु अपनी दोनों पत्नियोंके साथ महेन्द्रके भवनमें चले गये। राजा विराट, द्रुपद, धृष्टकेतु, निशठ, अक्रूर, साम्ब, भानु, कम्प, विदूरथ, भूरिश्रवा, शल, पृथ्वीपति भूरि, कंस, उग्रसेन, वसुदेव और अपने भाई शङ्खके साथ नरश्रेष्ठ उत्तर— ये सभी सत्पुरुष विश्वेदेवोंके स्वरूपमें मिल गये ॥ १५-१७½ ॥

वर्चा नाम महातेजाः सोमपुत्रः प्रतापवान् ॥ १८ ॥
सोऽभिमन्युर्नृसिंहस्य फाल्गुनस्य सुतोऽभवत्।
स युद्ध्वा क्षत्रधर्मेण यथा नान्यः पुमान् क्वचित् ॥ १९ ॥
विवेश सोमं धर्मात्मा कर्मणोऽन्ते महारथः।

चन्द्रमाके महातेजस्वी और प्रतापी पुत्र जो वर्चा हैं, वे ही पुरुषसिंह अर्जुनके पुत्र होकर अभिमन्यु नामसे विख्यात हुए थे। उन्होंने क्षत्रिय-धर्मके अनुसार ऐसा युद्ध किया था, जैसा दूसरा कोई पुरुष कभी नहीं कर सका था। उन धर्मात्मा महारथी अभिमन्युने अपना कार्य पूरा करके चन्द्रमामें ही प्रवेश किया ॥ १८-१९½ ॥

आविवेश रविं कर्णो निहतः पुरुषर्षभः ॥ २० ॥
द्वापरं शकुनिः प्राप धृष्टद्युम्नस्तु पावकम्।

पुरुषप्रवर कर्ण जो अर्जुनके द्वारा मारे गये थे, सूर्यमें प्रविष्ट हुए। शकुनिने द्वापरमें और धृष्टद्युम्नने अग्निके स्वरूपमें प्रवेश किया ॥ २०½ ॥

धृतराष्ट्रात्मजाः सर्वे यातुधाना बलोत्कटाः ॥ २१ ॥
ऋद्धिमन्तो महात्मानः शस्त्रपूता दिवं गताः।

धृतराष्ट्रके सभी पुत्र स्वर्गभोगके पश्चात् मूलतः बलोन्मत्त यातुधान (राक्षस) थे। वे समृद्धिशाली महामनस्वी क्षत्रिय होकर युद्धमें शस्त्रोंके आघातसे पवित्र हो स्वर्गलोकमें गये थे॥

धर्ममेवाविशत् क्षत्ता राजा चैव युधिष्ठिरः ॥ २२ ॥
अनन्तो भगवान् देवः प्रविवेश रसातलम्।
पितामहनियोगाद् वै यो योगाद् गामधारयत् ॥ २३ ॥

विदुर और राजा युधिष्ठिरने धर्मके ही स्वरूपमें प्रवेश किया। बलरामजी साक्षात् भगवान् अनन्तदेवके अवतार थे। वे रसातलमें अपने स्थानको चले गये। ये वे ही अनन्तदेव हैं, जिन्होंने ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर योगबलसे इस पृथ्वीको धारण कर रखा है ॥ २२-२३ ॥

यः स नारायणो नाम देवदेवः सनातनः।
तस्यांशो वासुदेवस्तु कर्मणोऽन्ते विवेश ह ॥ २४ ॥

वे जो नारायण नामसे प्रसिद्ध सनातन देवाधिदेव हैं, उन्हींके अंश वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण थे, जो अवतारका कार्य पूरा करके पुनः अपने स्वरूपमें प्रविष्ट हो गये ॥ २४ ॥

षोडश स्त्रीसहस्राणि वासुदेवपरिग्रहः।
अमज्जंस्ताः सरस्वत्यां कालेन जनमेजय ॥ २५ ॥

जनमेजय! भगवान् श्रीकृष्णकी जो सोलह हजार स्त्रियाँ थीं, उन्होंने अवसर पाकर सरस्वती नदीमें कूदकर अपने प्राण दे दिये ॥ २५ ॥

तत्र त्यक्त्वा शरीराणि दिवमारुरुहुः पुनः।
ताश्चैवाप्सरसो भूत्वा वासुदेवमुपाविशन् ॥ २६ ॥

वहाँ देहत्याग करनेके पश्चात् वे सब-की-सब पुनः स्वर्गलोकमें जा पहुँचीं और अप्सराएँ होकर पुनः भगवान् श्रीकृष्णकी सेवामें उपस्थित हो गयीं ॥ २६ ॥

हतास्तस्मिन् महायुद्धे ये वीरास्तु महारथाः।
घटोत्कचादयश्चैव देवान् यक्षांश्च भेजिरे ॥ २७ ॥

इस प्रकार उस महाभारत नामक महायुद्धमें जो-जो वीर महारथी घटोत्कच आदि मारे गये थे, वे देवताओं और यक्षोंके लोकोंमें गये ॥ २७ ॥

सोमेन सहितं पश्य सौभद्रमपराजितम्।
अभिमन्युं महेष्वासं निशाकरसमद्युतिम् ॥ १९ ॥

'इधर किसीसे परास्त न होनेवाले महाधनुर्धर सुभद्राकुमार अभिमन्युकी ओर दृष्टि डालो। यह चन्द्रमाके साथ इन्हींके समान कान्ति धारण किये बैठा है ॥ १९ ॥

एष पाण्डुर्महेष्वासः कुन्त्या माद्र्या च संगतः।
विमानेन सदाभ्येति पिता तव ममान्तिकम् ॥ २० ॥

'ये महाधनुर्धर राजा पाण्डु हैं, जो कुन्ती और माद्री दोनोंके साथ हैं। ये तुम्हारे पिता पाण्डु विमानद्वारा सदा मेरे पास आया करते हैं ॥ २० ॥

वसुभिः सहितं पश्य भीष्मं शान्तनवं नृपम्।
द्रोणं बृहस्पतेः पार्श्वे गुरुमेनं निशामय ॥ २१ ॥

'शान्तनुनन्दन राजा भीष्मका दर्शन करो, ये वसुओंके साथ विराज रहे हैं। द्रोणाचार्य बृहस्पतिके साथ हैं। अपने इन गुरुदेवको अच्छी तरह देख लो ॥ २१ ॥

एते चान्ये महीपाला योधास्तव च पाण्डव।
गन्धर्वसहिता यान्ति यक्षपुण्यजनैस्तथा ॥ २२ ॥

'पाण्डुनन्दन ! ये तुम्हारे पक्षके दूसरे भूपाल योद्धा गन्धर्वों, यक्षों तथा पुण्यजनोंके साथ जा रहे हैं ॥ २२ ॥

गुह्यकानां गतिं चापि केचित् प्राप्ता नराधिपाः।
त्यक्त्वा देहं जितः स्वर्गः पुण्यवाग्बुद्धिकर्मभिः ॥ २३ ॥

'किन्हीं-किन्हीं राजाओंको गुह्यकोंकी गति प्राप्त हुई है। ये सब युद्धमें शरीर त्यागकर अपनी पवित्र वाणी, बुद्धि और कर्मोंके द्वारा स्वर्गलोकपर अधिकार प्राप्त कर चुके हैं' ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि द्रौपद्यादिस्वस्वस्थानगमने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्वर्गारोहणपर्वमें द्रौपदी आदिका अपने-अपने स्थानमें गमनविषयक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

भीष्म आदि वीरोंका अपने-अपने मूलस्वरूपमें मिलना और महाभारतका उपसंहार तथा माहात्म्य

जनमेजय उवाच

भीष्मद्रोणौ महात्मानौ धृतराष्ट्रश्च पार्थिवः।
विराटद्रुपदौ चोभौ शङ्खश्चैवोत्तरस्तथा ॥ १ ॥
धृष्टकेतुर्जयत्सेनो राजा चैव स सत्यजित्।
दुर्योधनसुताश्चैव शकुनिश्चैव सौबलः ॥ २ ॥
कर्णपुत्राश्च विक्रान्ता राजा चैव जयद्रथः।
घटोत्कचादयश्चैव ये चान्ये नानुकीर्तिताः ॥ ३ ॥
ये चान्ये कीर्तिता वीरा राजानो दीप्तमूर्तयः।
स्वर्गे कालं कियन्तं ते तस्थुस्तदपि शंस मे ॥ ४ ॥

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! महात्मा भीष्म और द्रोण, राजा धृतराष्ट्र, विराट, द्रुपद, शंख, उत्तर, धृष्टकेतु, जयत्सेन, राजा सत्यजित्, दुर्योधनके पुत्र, सुबलपुत्र शकुनि, कर्णके पराक्रमी पुत्र, राजा जयद्रथ तथा घटोत्कच आदि तथा दूसरे जो नरेश यहाँ नहीं बताये गये हैं और जिनका नाम लेकर यहाँ वर्णन किया गया है, वे सभी तेजस्वी शरीर धारण करनेवाले वीर राजा स्वर्गलोकमें कितने समयतक एक साथ रहे ? यह मुझे बताइये ॥ १-४ ॥

आहोस्विच्छाश्वतं स्थानं तेषां तत्र द्विजोत्तम।
अन्ते वा कर्मणां कां ते गतिं प्राप्ता नरर्षभाः ॥ ५ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! क्या उन्हें वहाँ सनातन स्थानकी प्राप्ति हुई थी ? अथवा कर्मोंका अन्त होनेपर वे पुरुषश्रेष्ठ किस गतिको प्राप्त हुए ? ॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं प्रोच्यमानं द्विजोत्तम।
तपसा हि प्रदीप्तेन सर्वं त्वमनुपश्यसि ॥ ६ ॥

विप्रवर ! मैं आपके मुखसे इस विषयको सुनना चाहता हूँ; क्योंकि आप अपनी उद्दीप्त तपस्यासे सब कुछ देखते हैं ॥

सौतिरुवाच

इत्युक्तः स तु विप्रर्षिरनुज्ञातो महात्मना।
व्यासेन तस्य नृपतेराख्यातुमुपचक्रमे ॥ ७ ॥

सौति कहते हैं—राजा जनमेजयके इस प्रकार पूछनेपर महात्मा व्यासकी आज्ञा ले ब्रह्मर्षि वैशम्पायनने राजासे इस प्रकार कहना आरम्भ किया ॥ ७ ॥

वैशम्पायन उवाच

न शक्यं कर्मणामन्ते सर्वेण मनुजाधिप।
प्रकृतिं किं नु सम्यक्ते पृच्छैषा सम्प्रयोजिता ॥ ८ ॥

वैशम्पायनजी बोले—राजन् ! कर्मोंका भोग समाप्त हो जानेपर सभी लोग अपनी प्रकृति (मूल कारण) को नहीं प्राप्त हो जाते हैं; (कोई-कोई ही अपने कारणमें विलीन होता है) यदि पूछो, क्या मेरा प्रश्न असंगत है ? तो इसका उत्तर यह है कि जो प्रकृतिको प्राप्त नहीं हैं, उनके उद्देश्यसे तुम्हारा यह प्रश्न सर्वथा ठीक है ॥ ८ ॥

शृणु गुह्यमिदं राजन् देवानां भरतर्षभ।
यदुवाच महातेजा दिव्यचक्षुः प्रतापवान् ॥ ९ ॥

राजन्! भरतश्रेष्ठ! यह देवताओंका गूढ़ रहस्य है। इस विषयमें दिव्य नेत्रवाले, महातेजस्वी, प्रतापी मुनि व्यासजीने जो कहा है, उसे बताता हूँ; सुनो— ॥ ९ ॥

मुनिः पुराणः कौरव्य पाराशर्यो महाव्रतः।
अगाधबुद्धिः सर्वज्ञो गतिज्ञः सर्वकर्मणाम् ॥ १० ॥
तेनोक्तं कर्मणामन्ते प्रविशन्ति स्विकां तनुम्।
वसूनेव महातेजा भीष्मः प्राप महाद्युतिः ॥ ११ ॥

कुरुनन्दन! जो सब कर्मोंकी गतिको जाननेवाले, अगाध बुद्धिसम्पन्न एवं सर्वज्ञ हैं, उन महान् व्रतधारी, पुरातन मुनि, पराशरनन्दन व्यासजीने तो मुझसे यही कहा है कि 'वे सभी वीर कर्मभोगके पश्चात् अन्ततोगत्वा अपने मूल स्वरूपमें ही मिल गये थे। महातेजस्वी, परम कान्तिमान् भीष्म वसुओंके स्वरूपमें ही प्रविष्ट हो गये' ॥ १०-११ ॥

अष्टावेव हि दृश्यन्ते वसवो भरतर्षभ।
बृहस्पतिं विवेशाथ द्रोणो ह्याङ्गिरसां वरम् ॥ १२ ॥

भरतभूषण! यही कारण है कि वसु आठ ही देखे जाते हैं (अन्यथा भीष्मजीको लेकर नौ वसु हो जाते)। आचार्य द्रोणने आङ्गिरसोंमें श्रेष्ठ बृहस्पतिजीके स्वरूपमें प्रवेश किया ॥

कृतवर्मा तु हार्दिक्यः प्रविवेश मरुद्गणान्।
सनत्कुमारं प्रद्युम्नः प्रविवेश यथागतम् ॥ १३ ॥

हृदिकपुत्र कृतवर्मा मरुद्गणोंमें मिल गया। प्रद्युम्न जैसे आये थे, उसी तरह सनत्कुमारके स्वरूपमें प्रविष्ट हो गये ॥

धृतराष्ट्रो धनेशस्य लोकान् प्राप दुरासदान्।
धृतराष्ट्रेण सहिता गान्धारी च यशस्विनी ॥ १४ ॥

धृतराष्ट्रने धनाध्यक्ष कुबेरके दुर्लभ लोकोंको प्राप्त किया। उनके साथ यशस्विनी गान्धारी देवी भी थीं ॥ १४ ॥

पत्नीभ्यां सहितः पाण्डुर्महेन्द्रसदनं ययौ।
विराटद्रुपदौ चोभौ धृष्टकेतुश्च पार्थिवः ॥ १५ ॥
निशठाक्रूरसाम्बाश्च भानुः कम्पो विदूरथः।
भूरिश्रवाः शलश्चैव भूरिश्च पृथिवीपतिः ॥ १६ ॥
कंसश्चैवोग्रसेनश्च वसुदेवस्तथैव च।
उत्तरश्च सह भ्रात्रा शङ्खेन नरपुङ्गवः ॥ १७ ॥
विश्वेषां देवतानां ते विविशुर्नरसत्तमाः।

राजा पाण्डु अपनी दोनों पत्नियोंके साथ महेन्द्रके भवनमें चले गये। राजा विराट, द्रुपद, धृष्टकेतु, निशठ, अक्रूर, साम्ब, भानु, कम्प, विदूरथ, भूरिश्रवा, शल, पृथ्वीपति भूरि, कंस, उग्रसेन, वसुदेव और अपने भाई शङ्खके साथ नरश्रेष्ठ उत्तर— ये सभी सत्पुरुष विश्वेदेवोंके स्वरूपमें मिल गये ॥ १५-१७½ ॥

वर्चा नाम महातेजाः सोमपुत्रः प्रतापवान् ॥ १८ ॥
सोऽभिमन्युर्नृसिंहस्य फाल्गुनस्य सुतोऽभवत्।
स युद्ध्वा क्षत्रधर्मेण यथा नान्यः पुमान् क्वचित् ॥ १९ ॥
विवेश सोमं धर्मात्मा कर्मणोऽन्ते महारथः।

चन्द्रमाके महातेजस्वी और प्रतापी पुत्र जो वर्चा हैं, वे ही पुरुषसिंह अर्जुनके पुत्र होकर अभिमन्यु नामसे विख्यात हुए थे। उन्होंने क्षत्रिय-धर्मके अनुसार ऐसा युद्ध किया था, जैसा दूसरा कोई पुरुष कभी नहीं कर सका था। उन धर्मात्मा महारथी अभिमन्युने अपना कार्य पूरा करके चन्द्रमामें ही प्रवेश किया ॥ १८-१९½ ॥

आविवेश रविं कर्णो निहतः पुरुषर्षभः ॥ २० ॥
द्वापरं शकुनिः प्राप धृष्टद्युम्नस्तु पावकम्।

पुरुषप्रवर कर्ण जो अर्जुनके द्वारा मारे गये थे, सूर्यमें प्रविष्ट हुए। शकुनिने द्वापरमें और धृष्टद्युम्नने अग्निके स्वरूपमें प्रवेश किया ॥ २०½ ॥

धृतराष्ट्रात्मजाः सर्वे यातुधाना बलोत्कटाः ॥ २१ ॥
ऋद्धिमन्तो महात्मानः शस्त्रपूता दिवं गताः।

धृतराष्ट्रके सभी पुत्र स्वर्गभोगके पश्चात् मूलतः बलोन्मत्त यातुधान (राक्षस) थे। वे समृद्धिशाली महामनस्वी क्षत्रिय होकर युद्धमें शस्त्रोंके आघातसे पवित्र हो स्वर्गलोकमें गये थे॥

धर्ममेवाविशत् क्षत्ता राजा चैव युधिष्ठिरः ॥ २२ ॥
अनन्तो भगवान् देवः प्रविवेश रसातलम्।
पितामहनियोगाद् वै यो योगाद् गामधारयत् ॥ २३ ॥

विदुर और राजा युधिष्ठिरने धर्मके ही स्वरूपमें प्रवेश किया। बलरामजी साक्षात् भगवान् अनन्तदेवके अवतार थे। वे रसातलमें अपने स्थानको चले गये। ये वे ही अनन्तदेव हैं, जिन्होंने ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर योगबलसे इस पृथ्वीको धारण कर रखा है ॥ २२-२३ ॥

यः स नारायणो नाम देवदेवः सनातनः।
तस्यांशो वासुदेवस्तु कर्मणोऽन्ते विवेश ह ॥ २४ ॥

वे जो नारायण नामसे प्रसिद्ध सनातन देवाधिदेव हैं, उन्हींके अंश वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण थे, जो अवतारका कार्य पूरा करके पुनः अपने स्वरूपमें प्रविष्ट हो गये ॥ २४ ॥

षोडश स्त्रीसहस्राणि वासुदेवपरिग्रहः।
अमज्जंस्ताः सरस्वत्यां कालेन जनमेजय ॥ २५ ॥

जनमेजय! भगवान् श्रीकृष्णकी जो सोलह हजार स्त्रियाँ थीं, उन्होंने अवसर पाकर सरस्वती नदीमें कूदकर अपने प्राण दे दिये ॥ २५ ॥

तत्र त्यक्त्वा शरीराणि दिवमारुरुहुः पुनः।
ताश्चैवाप्सरसो भूत्वा वासुदेवमुपाविशन् ॥ २६ ॥

वहाँ देहत्याग करनेके पश्चात् वे सब-की-सब पुनः स्वर्गलोकमें जा पहुँचीं और अप्सराएँ होकर पुनः भगवान् श्रीकृष्णकी सेवामें उपस्थित हो गयीं ॥ २६ ॥

हतास्तस्मिन् महायुद्धे ये वीरास्तु महारथाः।
घटोत्कचादयश्चैव देवान् यक्षांश्च भेजिरे ॥ २७ ॥

इस प्रकार उस महाभारत नामक महायुद्धमें जो-जो वीर महारथी घटोत्कच आदि मारे गये थे, वे देवताओं और यक्षोंके लोकोंमें गये ॥ २७ ॥

दुर्योधनसहायाश्च राक्षसाः परिकीर्तिताः ।
प्राप्तास्ते क्रमशो राजन् सर्वलोकाननुत्तमान् ॥ २८ ॥

राजन् ! जो दुर्योधनके सहायक थे, वे सब-के-सब राक्षस बताये गये हैं । उन्हें क्रमशः सभी उत्तम लोकोंकी प्राप्ति हुई ॥

भवनं च महेन्द्रस्य कुबेरस्य च धीमतः ।
वरुणस्य तथा लोकान् विविशुः पुरुषर्षभाः ॥ २९ ॥

वे श्रेष्ठ पुरुष क्रमशः देवराज इन्द्रके, बुद्धिमान् कुबेरके तथा वरुण देवताके लोकोंमें गये ॥ २९ ॥

एतत् ते सर्वमाख्यातं विस्तरेण महाद्युते ।
कुरूणां चरितं कृत्स्नं पाण्डवानां च भारत ॥ ३० ॥

महातेजस्वी भरतनन्दन ! यह सारा प्रसंग—कौरवों और पाण्डवोंका सम्पूर्ण चरित्र तुम्हें विस्तारके साथ बताया गया ॥

सौतिरुवाच

एतच्छ्रुत्वा द्विजश्रेष्ठाः स राजा जनमेजयः ।
विस्मितोऽभवदत्यर्थं यज्ञकर्मान्तरेष्वथ ॥ ३१ ॥

सौति कहते हैं—विप्रवरो ! यज्ञकर्मके बीचमें जो अवसर प्राप्त होते थे, उन्हींमें यह महाभारतका आख्यान सुनकर राजा जनमेजयको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ३१ ॥

ततः समापयामासुः कर्म तत् तस्य याजकाः ।
आस्तीकश्चाभवत् प्रीतः परिमोक्ष्य भुजङ्गमान् ॥ ३२ ॥

तदनन्तर उनके पुरोहितोंने उस यज्ञकर्मको समाप्त कराया । सर्पोंको प्राणसंकटसे छुटकारा दिलाकर आस्तीक मुनिको भी बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ३२ ॥

ततो द्विजातीन् सर्वांस्तान् दक्षिणाभिरतोषयत् ।
पूजिताश्चापि ते राज्ञा ततो जग्मुर्यथागतम् ॥ ३३ ॥

राजाने यज्ञकर्ममें सम्मिलित हुए समस्त ब्राह्मणोंको पर्याप्त दक्षिणा देकर संतुष्ट किया तथा वे ब्राह्मण भी राजासे यथोचित सम्मान पाकर जैसे आये थे उसी तरह अपने घरको लौट गये॥

विसर्जयित्वा विप्रांस्तान् राजापि जनमेजयः ।
ततस्तक्षशिलायाः स पुनरायाद् गजाह्वयम् ॥ ३४ ॥

उन ब्राह्मणोंको विदा करके राजा जनमेजय भी तक्षशिलासे फिर हस्तिनापुरको चले आये ॥ ३४ ॥

एतत् ते सर्वमाख्यातं वैशम्पायनकीर्तितम् ।
व्यासाज्ञया समाख्यातं सर्पसत्रे नृपस्य हि ॥ ३५ ॥

इस प्रकार जनमेजयके सर्पयज्ञमें व्यासजीकी आज्ञासे मुनिवर वैशम्पायनजीने जो इतिहास सुनाया था तथा मैंने अपने पिता सूतजीसे जिसका ज्ञान प्राप्त किया था, वह सारा-का-सारा मैंने आपलोगोंके समक्ष यह वर्णन किया है ॥३५॥

पुण्योऽयमितिहासाख्यः पवित्रं चेदमुत्तमम् ।
कृष्णेन मुनिना विप्र निर्मितं सत्यवादिना ॥ ३६ ॥

ब्रह्मन् ! सत्यवादी मुनि व्यासजीके द्वारा निर्मित यह पुण्यमय इतिहास परम पवित्र एवं बहुत उत्तम है ॥ ३६ ॥

सर्वज्ञेन विधिज्ञेन धर्मज्ञानवता सता ।
अतीन्द्रियेण शुचिना तपसा भावितात्मना ॥ ३७ ॥
ऐश्वर्ये वर्तता चैव सांख्ययोगवता तथा ।
नैकतन्त्रविबुद्धेन दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा ॥ ३८ ॥
कीर्तिं प्रथयता लोके पाण्डवानां महात्मनाम् ।
अन्येषां क्षत्रियाणां च भूरिद्रविणतेजसाम् ॥ ३९ ॥

सर्वज्ञ, विधिविधानके ज्ञाता, धर्मज्ञ, साधु, इन्द्रियातीत ज्ञानसे सम्पन्न, शुद्ध, तपके प्रभावसे पवित्र अन्तःकरणवाले, ऐश्वर्यसम्पन्न, सांख्य एवं योगके विद्वान् तथा अनेक शास्त्रोंके पारदर्शी मुनिवर व्यासजीने दिव्य दृष्टिसे देखकर महात्मा पाण्डवों तथा अन्य प्रचुर धनसम्पन्न महातेजस्वी राजाओंकी कीर्तिका प्रसार करनेके लिये इस इतिहासकी रचना की है ॥ ३७—३९ ॥

यश्चेदं श्रावयेद् विद्वान् सदा पर्वणि पर्वणि ।
धूतपाप्मा जितस्वर्गो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ४० ॥

जो विद्वान् प्रत्येक पर्वपर सदा इसे दूसरोंको सुनाता है, उसके सारे पाप धुल जाते हैं । उसका स्वर्गपर अधिकार हो जाता है तथा वह ब्रह्मभावकी प्राप्तिके योग्य बन जाता है ॥ ४० ॥

कार्ष्णं वेदमिमं सर्वं शृणुयाद् यः समाहितः ।
ब्रह्महत्यादिपापानां कोटिस्तस्य विनश्यति ॥ ४१ ॥

जो एकाग्रचित्त होकर इस सम्पूर्ण 'कार्ष्ण वेद'[1] का श्रवण करता है, उसके ब्रह्महत्या आदि करोड़ों पापोंका नाश हो जाता है ॥ ४१ ॥

यश्चेदं श्रावयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणान् पादमन्ततः ।
अक्षय्यमन्नपानं वै पितॄंस्तस्योपतिष्ठते ॥ ४२ ॥

जो श्राद्धकर्ममें ब्राह्मणोंको निकटसे महाभारतका थोड़ा-सा अंश भी सुना देता है, उसका दिया हुआ अन्नपान अक्षय होकर पितरोंको प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

अह्ना यदेनः कुरुते इन्द्रियैर्मनसापि वा ।
महाभारतमाख्याय पश्चात् संध्यां प्रमुच्यते ॥ ४३ ॥

मनुष्य अपनी इन्द्रियों तथा मनसे दिनभरमें जो पाप करता है, वह सायंकालकी संध्याके समय महाभारतका पाठ करनेसे छूट जाता है ॥ ४३ ॥

यद् रात्रौ कुरुते पापं ब्राह्मणः स्त्रीगणैर्वृतः ।
महाभारतमाख्याय पूर्वां संध्यां प्रमुच्यते ॥ ४४ ॥

ब्राह्मण रात्रिके समय स्त्रियोंके समुदायसे घिरकर जो पाप करता है, वह प्रातःकालकी संध्याके समय महाभारतका पाठ करनेसे छूट जाता है ॥ ४४ ॥

भरतानां महज्जन्म तस्माद् भारतमुच्यते ।
महत्त्वाद् भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते ।

---

१. श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासके द्वारा प्रकट होनेके कारण 'कृष्णादागतः कार्ष्णः' इस व्युत्पत्तिके अनुसार यह उपाख्यान 'कार्ष्णवेद' के नामसे प्रसिद्ध है ।

निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४५ ॥

इस ग्रन्थमें भरतवंशियोंके महान् जन्मकर्मका वर्णन है, इसलिये इसे महाभारत कहते हैं। महान् और भारी होनेके कारण भी इसका नाम महाभारत हुआ है। जो महाभारतकी इस व्युत्पत्तिको जानता और समझता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ४५ ॥

अष्टादशपुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः।
वेदाः साङ्गास्तथैकत्र भारतं चैकतः स्थितम् ॥ ४६ ॥
श्रूयतां सिंहनादोऽयमृषेस्तस्य महात्मनः।
अष्टादशपुराणानां कर्तुर्वेदमहोदधेः ॥ ४७ ॥

अठारह पुराणोंके निर्माता और वेदविद्याके महासागर महात्मा व्यास मुनिका यह सिंहनाद सुनो। वे कहते हैं—'अठारह पुराण, सम्पूर्ण धर्मशास्त्र और छहों अङ्गोंसहित चारों वेद एक ओर तथा केवल महाभारत दूसरी ओर, यह अकेला ही उन सबके बराबर है' ॥ ४६-४७ ॥

त्रिभिर्वर्षैरिदं पूर्णं कृष्णद्वैपायनः प्रभुः।
अखिलं भारतं चेदं चकार भगवान् मुनिः ॥ ४८ ॥

मुनिवर भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायनने तीन वर्षोंमें इस सम्पूर्ण महाभारतको पूर्ण किया था ॥ ४८ ॥

आकर्ण्य भक्त्या सततं जयाख्यं भारतं महत्।
श्रीश्च कीर्तिस्तथा विद्या भवन्ति सहिताः सदा॥ ४९ ॥

जो जय नामक इस महाभारत इतिहासको सदा भक्तिपूर्वक सुनता रहता है, उसके यहाँ श्री, कीर्ति और विद्या तीनों साथ-साथ रहती हैं ॥ ४९ ॥

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित्॥ ५० ॥

भरतश्रेष्ठ ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके विषयमें जो कुछ महाभारतमें कहा गया है, वही अन्यत्र है। जो इसमें नहीं है, वह कहीं नहीं है ॥ ५० ॥

जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो मोक्षमिच्छता।
ब्राह्मणेन च राज्ञा च गर्भिण्या चैव योषिता ॥ ५१ ॥

मोक्षकी इच्छा रखनेवाले ब्राह्मणको, राज्य चाहनेवाले क्षत्रियको तथा उत्तम पुत्रकी इच्छा रखनेवाली गर्भिणी स्त्रीको भी इस जय नामक इतिहासका श्रवण करना चाहिये।५१।

स्वर्गकामो लभेत् स्वर्गं जयकामो लभेज्जयम्।
गर्भिणी लभते पुत्रं कन्यां वा बहुभागिनीम् ॥ ५२ ॥

महाभारतका श्रवण या पाठ करनेवाला मनुष्य यदि स्वर्गकी इच्छा करे तो उसे स्वर्ग मिलता है और युद्धमें विजय पाना चाहे तो विजय मिलती है। इसी प्रकार गर्भिणी स्त्रीको महाभारतके श्रवणसे सुयोग्य पुत्र या परम सौभाग्यशालिनी कन्याकी प्राप्ति होती है ॥ ५२ ॥

अनागतश्च मोक्षश्च कृष्णद्वैपायनः प्रभुः।
संदर्भं भारतस्यास्य कृतवान् धर्मकाम्यया ॥ ५३ ॥

नित्यसिद्ध मोक्षस्वरूप भगवान् कृष्णद्वैपायनने धर्मकी कामनासे इस महाभारतसंदर्भकी रचना की है ॥ ५३ ॥

षष्टिं शतसहस्राणि चकारान्यां स संहिताम्।
त्रिंशच्छतसहस्राणि देवलोके प्रतिष्ठितम् ॥ ५४ ॥
पित्र्ये पञ्चदशं ज्ञेयं यक्षलोके चतुर्दश।
एकं शतसहस्रं तु मानुषेषु प्रभाषितम् ॥ ५५ ॥

उन्होंने पहले साठ लाख श्लोकोंकी महाभारतसंहिता बनायी थी। उसमें तीस लाख श्लोकोंकी संहिताका देवलोकमें प्रचार हुआ। पंद्रह लाखकी दूसरी संहिता पितृलोकमें प्रचलित हुई। चौदह लाख श्लोकोंकी तीसरी संहिताका यक्षलोकमें आदर हुआ तथा एक लाख श्लोकोंकी चौथी संहिता मनुष्योंमें प्रचारित हुई ॥ ५४-५५ ॥

नारदोऽश्रावयद् देवानसितो देवलः पितॄन्।
रक्षोयक्षाञ्छुको मर्त्यान् वैशम्पायन एव तु ॥ ५६ ॥

देवताओंको देवर्षि नारदने, पितरोंको असित देवलने, यक्ष और राक्षसोंको शुकदेवजीने और मनुष्योंको वैशम्पायनजीने ही पहले-पहल महाभारत-संहिता सुनायी है ॥ ५६ ॥

इतिहासमिमं पुण्यं महार्थं वेदसम्मितम्।
व्यासोक्तं श्रूयते येन कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः ॥ ५७ ॥
स नरः सर्वकामांश्च कीर्तिं प्राप्येह शौनक।
गच्छेत् परमिकां सिद्धिमत्र मे नास्ति संशयः॥ ५८ ॥

शौनकजी ! जो मनुष्य ब्राह्मणोंको आगे करके गम्भीर अर्थसे परिपूर्ण और वेदकी समानता करनेवाले इस व्यासप्रणीत पवित्र इतिहासका श्रवण करता है, वह इस जगत्में सारे मनोवाञ्छित भोगों और उत्तम कीर्तिको पाकर परम सिद्धि प्राप्त कर लेता है। इस विषयमें मुझे तनिक भी संशय नहीं है ॥ ५७-५८ ॥

भारताध्ययनात् पुण्यादपि पादमधीयतः।
श्रद्धया परया भक्त्या श्राव्यते चापि येन तु ॥ ५९ ॥

जो अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिके साथ महाभारतके एक अंशको भी सुनता या दूसरोंको सुनाता है, उसे सम्पूर्ण महाभारतके अध्ययनका पुण्य प्राप्त होता है और उसीके प्रभावसे उसे उत्तम सिद्धि मिल जाती है ॥ ५९ ॥

य इमां संहितां पुण्यां पुत्रमध्यापयच्छुकम्।
मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च।
संसारेष्वनुभूतानि यान्ति यास्यन्ति चापरे ॥ ६० ॥

जिन भगवान् वेदव्यासने इस पवित्र संहिताको प्रकट करके अपने पुत्र शुकदेवजीको पढ़ाया था (वे महाभारतके सारभूत उपदेशका इस प्रकार वर्णन करते हैं—) 'मनुष्य इस जगत्में हजारों माता-पिताओं तथा सैकड़ों

स्त्री-पुत्रोंके संयोग-वियोगका अनुभव कर चुके हैं, करते हैं और करते रहेंगे ॥ ६० ॥

हर्षस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च ।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् ॥ ६१ ॥

'अज्ञानी पुरुषको प्रतिदिन हर्षके हजारों और भयके सैकड़ों अवसर प्राप्त होते रहते हैं; किंतु विद्वान् पुरुषके मनपर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है ॥ ६१ ॥

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे ।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते ॥ ६२ ॥

'मैं दोनों हाथ ऊपर उठाकर पुकार-पुकारकर कह रहा हूँ, पर मेरी बात कोई नहीं सुनता। धर्मसे मोक्ष तो सिद्ध होता ही है; अर्थ और काम भी सिद्ध होते हैं तो भी लोग उसका सेवन क्यों नहीं करते ॥ ६२ ॥

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥ ६३ ॥

'कामनासे, भयसे, लोभसे अथवा प्राण बचानेके लिये भी धर्मका त्याग न करे । धर्म नित्य है और सुख-दुःख अनित्य, इसी प्रकार जीवात्मा नित्य है और उसके बन्धनका हेतु अनित्य' ॥ ६३ ॥

इमां भारतसावित्रीं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
स भारतफलं प्राप्य परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ६४ ॥

यह महाभारतका सारभूत उपदेश 'भारत-सावित्री' के नामसे प्रसिद्ध है । जो प्रतिदिन सवेरे उठकर इसका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण महाभारतके अध्ययनका फल पाकर परब्रह्म परमात्माको प्राप्त कर लेता है ॥ ६४ ॥

यथा समुद्रो भगवान् यथा हि हिमवान् गिरिः ।
ख्यातावुभौ रत्ननिधी तथा भारतमुच्यते ॥ ६५ ॥

जैसे ऐश्वर्यशाली समुद्र और हिमालय पर्वत दोनों ही रत्नोंकी निधि कहे गये हैं, उसी प्रकार महाभारत भी नाना प्रकारके उपदेशमय रत्नोंका भण्डार कहलाता है ॥ ६५ ॥

कार्ष्णं वेदमिमं विद्वाञ्श्रावयित्वार्थमश्नुते ।
इदं भारतमाख्यानं यः पठेत् सुसमाहितः ।
स गच्छेत् परमां सिद्धिमिति मे नास्ति संशयः ॥ ६६ ॥

जो विद्वान् श्रीकृष्णद्वैपायनके द्वारा प्रसिद्ध किये गये इस महाभारतरूप पञ्चम वेदको सुनाता है, उसे अर्थकी प्राप्ति होती है । जो एकाग्रचित्त होकर इस भारत-उपाख्यानका पाठ करता है, वह मोक्षरूप परम सिद्धिको प्राप्त कर लेता है; इस विषयमें मुझे संशय नहीं है ॥ ६६ ॥

द्वैपायनोष्ठपुटनिःसृतमप्रमेयं
पुण्यं पवित्रमथ पापहरं शिवं च ।
यो भारतं समधिगच्छति वाच्यमानं
किं तस्य पुष्करजलैरभिषेचनेन ॥ ६७ ॥

जो वेदव्यासजीके मुखसे निकले हुए इस अप्रमेय (अतुलनीय), पुण्यदायक, पवित्र, पापहारी और कल्याणमय महाभारतको दूसरोंके मुखसे सुनता है, उसे पुष्करतीर्थके जलमें गोता लगानेकी क्या आवश्यकता है ? ॥ ६७ ॥

यो गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति
विप्राय वेदविदुषे सुबहुश्रुताय ।
पुण्यां च भारतकथां सततं शृणोति
तुल्यं फलं भवति तस्य च तस्य चैव ॥ ६८ ॥

जो गौओंके सींगमें सोना मढ़ाकर वेदवेत्ता एवं बहुज्ञ ब्राह्मणको सौ गौएँ दान देता है और जो महाभारतकथाका प्रतिदिन श्रवणमात्र करता है, इन दोनोंमेंसे प्रत्येकको बराबर ही फल मिलता है ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां स्वर्गारोहणपर्वणि पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतनामक व्यासनिर्मित शतसाहस्री संहिताके स्वर्गारोहणपर्वमें पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

स्वर्गारोहणपर्वं सम्पूर्णम्

	अनुष्टुप्	(अन्य बड़े छन्द)	बड़े छन्दोंको ३२ अक्षरोंके अनुष्टुप् मानकर गिननेपर	कुल योग
उत्तर भारतीय पाठसे लिये गये	२१४॥	(३)	४=	२१८।।
दक्षिण भारतीय पाठसे लिये गये	×	×	×	

स्वर्गारोहणपर्वकी कुल श्लोकसंख्या—२१८।।

श्रीमहाभारतं सम्पूर्णम्

महाभारतश्रवणविधिः

माहात्म्य, कथा सुननेकी विधि और उसका फल

जनमेजय उवाच

भगवन् केन विधिना श्रोतव्यं भारतं बुधैः।
फलं किं के च देवाश्च पूज्या वै पारणेष्विह ॥ १ ॥
देयं समाप्ते भगवन् किं च पर्वणि पर्वणि।
वाचकः कीदृशश्चात्र एष्टव्यस्तद् वदस्व मे ॥ २ ॥

जनमेजयने पूछा—भगवन्! विद्वानोंको किस विधिसे महाभारतका श्रवण करना चाहिये? इसके सुननेसे क्या फल होता है? इसकी पारणाके समय किन-किन देवताओंका पूजन करना चाहिये? भगवन्! प्रत्येक पर्वकी समाप्तिपर क्या दान देना चाहिये? और इस कथाका वाचक कैसा होना चाहिये? यह सब मुझे बतानेकी कृपा कीजिये ॥ १-२ ॥

वैशम्पायन उवाच

शृणु राजन् विधिमिमं फलं यच्चापि भारतात्।
श्रुताद् भवति राजेन्द्र यत् त्वं मामनुपृच्छसि ॥ ३ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजेन्द्र! महाभारत सुननेकी जो विधि है और उसके श्रवणसे जो फल होता है, जिसके विषयमें तुमने मुझसे जिज्ञासा प्रकट की है, वह सब बता रहा हूँ; सुनो ॥ ३ ॥

दिवि देवा महीपाल क्रीडार्थमवनिं गताः।
कृत्वा कार्यमिदं चैव ततश्च दिवमागताः ॥ ४ ॥

भूपाल! स्वर्गके देवता भगवान्‌की लीलामें सहायता करनेके लिये पृथ्वीपर आये थे और इस कार्यको पूरा करके वे पुनः स्वर्गमें जा पहुँचे ॥ ४ ॥

हन्त यत् ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व समाहितः।
ऋषीणां देवतानां च सम्भवं वसुधातले ॥ ५ ॥

अब मैं इस भूतलपर ऋषियों और देवताओंके प्रादुर्भावके विषयमें प्रसन्नतापूर्वक तुम्हें जो कुछ बताता हूँ, उसे एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ ५ ॥

अत्र रुद्रास्तथा साध्या विश्वेदेवाश्च शाश्वताः।
आदित्याश्चाश्विनौ देवौ लोकपाला महर्षयः ॥ ६ ॥
गुह्यकाश्च सगन्धर्वा नागा विद्याधरास्तथा।
सिद्धा धर्मः स्वयम्भूश्च मुनिः कात्यायनो वरः ॥ ७ ॥
गिरयः सागरा नद्यस्तथैवाप्सरसां गणाः।
ग्रहाः संवत्सराश्चैव अयनान्यृतवस्तथा ॥ ८ ॥
स्थावरं जङ्गमं चैव जगत् सर्वं सुरासुरम्।
भारते भरतश्रेष्ठ एकस्थमिह दृश्यते ॥ ९ ॥

भरतश्रेष्ठ! यहाँ महाभारतमें रुद्र, साध्य, सनातन विश्वेदेव, सूर्य, अश्विनीकुमार, लोकपाल, महर्षि, गुह्यक, गन्धर्व, नाग, विद्याधर, सिद्ध, धर्म, स्वयम्भू ब्रह्मा, श्रेष्ठ मुनि कात्यायन, पर्वत, समुद्र, नदियाँ, अप्सराओंके समुदाय, ग्रह, संवत्सर, अयन, ऋतु, सम्पूर्ण चराचर जगत्, देवता और असुर—ये सब-के-सब एकत्र हुए देखे जाते हैं ॥ ६-९ ॥

तेषां श्रुत्वा प्रतिष्ठानं नामकर्मानुकीर्तनात्।
कृत्वापि पातकं घोरं सद्यो मुच्येत मानवः ॥ १० ॥

मनुष्य घोर पातक करनेपर भी उन सबकी प्रतिष्ठा सुनकर तथा प्रतिदिन उनके नाम और कर्मोंका कीर्तन करता हुआ उससे तत्काल मुक्त हो जाता है ॥ १० ॥

इतिहासमिमं श्रुत्वा यथावदनुपूर्वशः।
संयतात्मा शुचिर्भूत्वा पारं गत्वा च भारते ॥ ११ ॥
तेषां श्राद्धानि देयानि श्रुत्वा भारत भारतम्।
ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्त्या भक्त्या च भरतर्षभ ॥ १२ ॥
महादानानि देयानि रत्नानि विविधानि च।

मनुष्य अपने मनको संयममें रखते हुए बाहर-भीतरसे शुद्ध हो महाभारतमें वर्णित इस इतिहासको क्रमशः यथावत् रूपसे सुनकर इसे समाप्त करनेके पश्चात् इनमें मारे गये प्रमुख वीरोंके लिये श्राद्ध करे। भारत! भरतभूषण! महाभारत सुनकर श्रोता अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको भक्तिभावसे नाना प्रकारके रत्न आदि बड़े-बड़े दान दे ॥ ११-१२½ ॥

गावः कांस्योपदोहाश्च कन्याश्चैव स्वलंकृताः ॥ १३ ॥
सर्वकामगुणोपेता यानानि विविधानि च।
भवनानि विचित्राणि भूमिर्वासांसि काञ्चनम् ॥ १४ ॥
वाहनानि च देयानि हया मत्ताश्च वारणाः।
शयनं शिबिकाश्चैव स्यन्दनाश्च स्वलंकृताः ॥ १५ ॥
यद् यद् गृहे वरं किंचिद् यद् यदस्ति महद् वसु।
तत् तद् देयं द्विजातिभ्य आत्मा दाराश्च सूनवः ॥ १६ ॥

गौएँ, काँसीके दुग्धपात्र, वस्त्राभूषणोंसे विभूषित और सम्पूर्ण मनोवाञ्छित गुणोंसे युक्त कन्याएँ, नाना प्रकारके

यान, विचित्र भवन, भूमि, वस्त्र, सुवर्ण, वाहन, घोड़े, मतवाले हाथी, शय्या, शिविकाएँ, सजे-सजाये रथ तथा घरमें जो कोई भी श्रेष्ठ वस्तु और महान् धन हो, वह सब ब्राह्मणोंको देने चाहिये । स्त्री-पुत्रोंसहित अपने शरीरको भी उनकी सेवामें लगा देना चाहिये ॥ १३–१६ ॥

श्रद्धया परया युक्तं क्रमशस्तस्य पारगः ।
शक्तितः सुमना हृष्टः शुश्रूषुरविकल्पकः ॥ १७ ॥

पूर्ण श्रद्धाके साथ क्रमशः कथा सुनते हुए उसे अन्ततक पूर्णरूपसे श्रवण करना चाहिये । यथाशक्ति श्रवणके लिये उद्यत रहकर मनको प्रसन्न रखे । हृदयमें हर्षसे उल्लसित हो मनमें संशय या तर्क-वितर्क न करे ॥ १७ ॥

सत्यार्जवरतो दान्तः शुचिः शौचसमन्वितः ।
श्रद्दधानो जितक्रोधो यथा सिध्यति तच्छृणु ॥ १८ ॥

सत्य और सरलताके सेवनमें संलग्न रहे । इन्द्रियोंका दमन करे, शुद्ध एवं शौचाचारसे सम्पन्न रहे । श्रद्धालु बना रहे और क्रोधको काबूमें रखे । ऐसे श्रोताको जिस प्रकार सिद्धि प्राप्त होती है, वह बताता हूँ; सुनो ॥ १८ ॥

शुचिः शीलान्विताचारः शुक्लवासा जितेन्द्रियः।
संस्कृतः सर्वशास्त्रज्ञः श्रद्दधानोऽनसूयकः ॥ १९ ॥
रूपवान् सुभगो दान्तः सत्यवादी जितेन्द्रियः।
दानमानगृहीतश्च कार्यो भवति वाचकः ॥ २० ॥

जो बाहर-भीतरसे पवित्र, शीलवान्, सदाचारी, शुद्ध वस्त्र धारण करनेवाला, जितेन्द्रिय, संस्कारसम्पन्न, सम्पूर्ण शास्त्रोंका तत्त्वज्ञ, श्रद्धालु, दोषदृष्टिसे रहित, रूपवान्, सौभाग्यशाली, मनको वशमें रखनेवाला, सत्यवादी और जितेन्द्रिय हो, ऐसे विद्वान् पुरुषको दान और मानसे अनुगृहीत करके वाचक बनाना चाहिये ॥ १९-२० ॥

अविलम्बमनायस्तमद्रुतं धीरमूर्जितम् ।
असंसक्ताक्षरपदं स्वरभावसमन्वितम् ॥ २१ ॥

कथावाचकको न तो बहुत रुक-रुककर कथा बाँचनी चाहिये और न बहुत जल्दी ही । आरामके साथ धीरगतिसे अक्षरों और पदोंका स्पष्ट उच्चारण करते हुए उच्चस्वरसे कथा बाँचनी चाहिये । मीठे स्वरसे भावार्थ समझाकर कथा कहनी चाहिये ॥ २१ ॥

त्रिषष्टिवर्णसंयुक्तमष्टस्थानसमीरितम् ।
वाचयेद् वाचकः स्वस्थः स्वासीनः सुसमाहितः॥ २२ ॥

तिरसठ अक्षरोंका उनके आठों स्थानोंसे ठीक-ठीक उच्चारण करे । कथा सुनाते समय वाचकके लिये स्वस्थ और एकाग्रचित्त होना आवश्यक है । उसके लिये आसन ऐसा होना चाहिये, जिसपर वह सुखपूर्वक बैठ सके ॥ २२ ॥

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ २३ ॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओंका संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (महाभारत) का पाठ करना चाहिये ॥ २३ ॥

ईदृशाद् वाचकाद् राजञ्श्रुत्वा भारत भारतम् ।
नियमस्थः शुचिः श्रोता शृण्वन् स फलमश्नुते ॥२४॥

राजन् ! भरतनन्दन ! नियमपरायण पवित्र श्रोता ऐसे वाचकसे महाभारतकी कथा सुनकर श्रवणका पूरा-पूरा फल पाता है ॥ २४ ॥

पारणं प्रथमं प्राप्य द्विजान् कामैश्च तर्पयन् ।
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं वै लभते नरः ॥ २५॥
अप्सरोगणसंकीर्णं विमानं लभते महत् ।
प्रहृष्टः स तु देवैश्च दिवं याति समाहितः ॥ २६॥

जो मनुष्य प्रथम पारणके समय ब्राह्मणोंको अभीष्ट वस्तुएँ देकर तृप्त करता है, वह अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता है । उसे अप्सराओंसे भरा हुआ विमान प्राप्त होता है और वह प्रसन्नतापूर्वक एकाग्रचित्त हो देवताओंके साथ स्वर्गलोकमें जाता है ॥ २५-२६ ॥

द्वितीयं पारणं प्राप्य सोऽतिरात्रफलं लभेत् ।
सर्वरत्नमयं दिव्यं विमानमधिरोहति ॥ २७॥

जो मनुष्य दूसरा पारण पूरा करता है, उसे अतिरात्र यज्ञका फल मिलता है । वह सर्वरत्नमय दिव्य विमानपर आरूढ़ होता है ॥ २७ ॥

दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धविभूषितः ।
दिव्याङ्गदधरो नित्यं देवलोके महीयते ॥ २८॥

वह दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण करता, दिव्य चन्दनसे चर्चित एवं दिव्य सुगन्धसे वासित होता और दिव्य अङ्गद धारण करके सदा देवलोकमें सम्मानित होता है ॥२८॥

तृतीयं पारणं प्राप्य द्वादशाहफलं लभेत् ।

वसत्यमरसंकाशो वर्षाण्ययुतशो दिवि ॥ २९ ॥

तीसरा पारण पूरा करनेपर मनुष्य द्वादशाहयज्ञका फल पाता है और देवताओंके तुल्य तेजस्वी होकर हजारों वर्षोंतक स्वर्गलोकमें निवास करता है ॥ २९ ॥

चतुर्थे वाजपेयस्य पञ्चमे द्विगुणं फलम् ।
उदितादित्यसंकाशं ज्वलन्तमनलोपमम् ॥ ३० ॥
विमानं विबुधैः सार्धमारुह्य दिवि गच्छति ।
वर्षायुतानि भवने शक्रस्य दिवि मोदते ॥ ३१ ॥

चौथे पारणमें वाजपेय-यज्ञका और पाँचवेंमें उससे दूना फल प्राप्त होता है । वह पुरुष उदयकालके सूर्य तथा प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी विमानपर आरूढ़ हो देवताओंके साथ स्वर्गलोकमें जाता है और वहाँ इन्द्रभवनमें दस हजार वर्षोंतक आनन्द भोगता है ॥ ३०-३१ ॥

षष्ठे द्विगुणमस्तीति सप्तमे त्रिगुणं फलम् ।
कैलासशिखराकारं वैदूर्यमणिवेदिकम् ॥ ३२ ॥
परिक्षिप्तं च बहुधा मणिविद्रुमभूषितम् ।
विमानं समधिष्ठाय कामगं साप्सरोगणम् ॥ ३३ ॥
सर्वाँल्लोकान् विचरते द्वितीय इव भास्करः ।

छठे पारणमें इससे दूना और सातवेंमें तिगुना फल मिलता है । वह मनुष्य अप्सराओंसे भरे हुए और इच्छानुसार चलनेवाले, कैलासशिखरकी भाँति उज्ज्वल, वैदूर्यमणिकी वेदियोंसे विभूषित, नाना प्रकारसे सुसज्जित तथा मणियों और मूँगोंसे अलंकृत विमानपर बैठकर दूसरे सूर्यकी भाँति सम्पूर्ण लोकोंमें विचरता है ॥ ३२-३३½ ॥

अष्टमे राजसूयस्य पारणे लभते फलम् ॥ ३४ ॥
चन्द्रोदयनिभं रम्यं विमानमधिरोहति ।
चन्द्ररश्मिप्रतीकाशैर्हयैर्युक्तं मनोजवैः ॥ ३५ ॥

आठवें पारणमें मनुष्य राजसूय यज्ञका फल पाता है । वह मनके समान वेगशाली और चन्द्रमाकी किरणोंके समान रंगवाले श्वेत घोड़ोंसे जुते हुए चन्द्रोदयतुल्य रमणीय विमानपर आरूढ़ होता है ॥ ३४-३५ ॥

सेव्यमानो वरस्त्रीणां चन्द्रात् कान्ततरैर्मुखैः ।
मेखलानां निनादेन नूपुराणां च निःस्वनैः ॥ ३६ ॥
अङ्के परमनारीणां सुखसुप्तो विबुध्यते ।

चन्द्रमासे भी अधिक कमनीय मुखोंद्वारा सुशोभित होनेवाली सुन्दरी दिव्याङ्गनाएँ उसकी सेवामें रहती हैं तथा सुरसुन्दरियोंके अङ्कमें सुखसे सोया हुआ वह पुरुष उन्हींकी मेखलाओंके खन-खन शब्दों और नूपुरोंकी मधुर झनकारोंसे जगाया जाता है ॥ ३६½ ॥

नवमे क्रतुराजस्य वाजिमेधस्य भारत ॥ ३७ ॥
काञ्चनस्तम्भनिर्यूहवैदूर्यकृतवेदिकम् ।
जाम्बूनदमयैर्दिव्यैर्गवाक्षैः सर्वतो वृतम् ॥ ३८ ॥
सेवितं चाप्सरःसङ्घैर्गन्धर्वैर्दिविचारिभिः ।
विमानं समधिष्ठाय श्रिया परमया ज्वलन् ॥ ३९ ॥
दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यचन्दनरूषितः ।
मोदते दैवतैः सार्धं दिवि देव इवापरः ॥ ४० ॥

भारत ! नवाँ पारण पूर्ण होनेपर श्रोताको यज्ञोंके राजा अश्वमेधका फल प्राप्त होता है । वह सोनेके खंभों और छज्जोंसे सुशोभित, वैदूर्यमणिकी बनी हुई वेदियोंसे विभूषित, चारों ओरसे जाम्बूनदमय दिव्य वातायनोंसे अलंकृत, स्वर्गवासी गन्धर्वों एवं अप्सराओंसे सेवित दिव्य विमानपर आरूढ़ हो अपनी उत्कृष्ट शोभासे प्रकाशित होता हुआ स्वर्गमें दूसरे देवताकी भाँति देवताओंके साथ आनन्द भोगता है । उसके अङ्गोंमें दिव्य माला एवं दिव्य वस्त्र शोभा पाते हैं तथा वह दिव्य चन्दनसे चर्चित होता है ॥ ३७-४० ॥

दशमं पारणं प्राप्य द्विजातीनभिवन्द्य च ।
किंकिणीजालनिर्घोषं पताकाध्वजशोभितम् ॥ ४१ ॥
रत्नवेदिकसम्बाधं वैदूर्यमणितोरणम् ।
हेमजालपरिक्षिप्तं प्रवालवलभीमुखम् ॥ ४२ ॥
गन्धर्वैर्गीतकुशलैरप्सरोभिश्च शोभितम् ।
विमानं सुकृतावासं सुखेनैवोपपद्यते ॥ ४३ ॥

दसवाँ पारण पूरा होनेपर ब्राह्मणोंको प्रणाम करनेके पश्चात् श्रोताको पुण्यनिकेतन विमान अनायास ही प्राप्त हो जाता है । उसमें छोटी-छोटी घंटियोंसे युक्त झालरें लगी होती हैं और उनसे मधुर ध्वनि फैलती रहती है । बहुत-सी ध्वजा-पताकाएँ उस विमानकी शोभा बढ़ाती हैं । उसमें जगह-जगह रत्नमय चबूतरे बने होते हैं । वैदूर्यमणिका बना हुआ फाटक लगा होता है । सब ओरसे सोनेकी जालीद्वारा वह विमान घिरा होता है । उसके छज्जोंके नीचे मूँगे जड़े होते हैं । संगीत-कुशल गन्धर्वों और अप्सराओंसे उस विमानकी शोभा और बढ़ जाती है ॥ ४१-४३ ॥

मुकुटेनाग्निवर्णेन जाम्बूनदविभूषिणा ।
दिव्यचन्दनदिग्धाङ्गो दिव्यमाल्यविभूषितः ॥ ४४ ॥

दिव्याल्लोकान् विचरति दिव्यैर्भोगैः समन्वितः।
विबुधानां प्रसादेन श्रिया परमया युतः ॥४५॥

उसपर बैठा हुआ पुण्यात्मा पुरुष अग्नितुल्य तेजस्वी मुकुटसे अलंकृत तथा जाम्बूनदके आभूषणोंसे विभूषित होता है। उसका शरीर दिव्य चन्दनसे चर्चित तथा दिव्य मालाओंसे विभूषित होता है। दिव्य भोगोंसे सम्पन्न हो वह दिव्य लोकोंमें विचरता है और देवताओंकी कृपासे उत्कृष्ट शोभा-सम्पत्ति प्राप्त कर लेता है ॥ ४४-४५ ॥

अथ वर्षगणानेवं स्वर्गलोके महीयते।
ततो गन्धर्वसहितः सहस्राण्येकविंशतिम् ॥ ४६ ॥
पुरन्दरपुरे रम्ये शक्रेण सह मोदते।

इस प्रकार बहुत वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें सम्मानपूर्वक रहता है। तदनन्तर इक्कीस हजार वर्षोंतक गन्धर्वोंके साथ इन्द्रकी रमणीय नगरीमें रहकर देवेन्द्रके साथ ही वहाँका सुख भोगता है ॥ ४६½ ॥

दिव्ययानविमानेषु लोकेषु विविधेषु च ॥ ४७ ॥
दिव्यनारीगणाकीर्णो निवसत्यमरो यथा।

दिव्य रथों और विमानोंपर आरूढ़ हो नाना प्रकारके लोकोंमें विचरता और दिव्य नारियोंसे घिरा हुआ देवताकी भाँति वहाँ निवास करता है ॥ ४७½ ॥

ततः सूर्यस्य भवने चन्द्रस्य भवने तथा ॥ ४८ ॥
शिवस्य भवने राजन् विष्णोर्याति सलोकताम्।

राजन्! इसके बाद वह सूर्य, चन्द्रमा, शिव तथा भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है ॥ ४८½ ॥

एवमेतन्महाराज नात्र कार्या विचारणा ॥ ४९ ॥
श्रद्दधानेन वै भाव्यमेवमाह गुरुर्मम।

महाराज! ठीक ऐसी ही बात है'। इस विषयमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। मेरे गुरुका कथन है कि महाभारतकी इस महिमा और फलपर श्रद्धा रखनी चाहिये ॥ ४९½ ॥

वाचकस्य तु दातव्यं मनसा यद् यदिच्छति ॥ ५० ॥
हस्त्यश्वरथयानानि वाहनानि विशेषतः।

वाचकको उसके मनमें जिस-जिस वस्तुकी इच्छा हो, वह सब देनी चाहिये। हाथी, घोड़े, रथ, पालकी तथा दूसरे-दूसरे वाहन विशेषरूपसे देने चाहिये ॥ ५०½ ॥

कटके कुण्डले चैव ब्रह्मसूत्रं तथा परम् ॥ ५१॥
वस्त्रं चैव विचित्रं च गन्धं चैव विशेषतः।
देववत् पूजयेत् तं तु विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ ५२॥

कड़े, कुण्डल, यज्ञोपवीत, विचित्र वस्त्र और विशेषतः गन्ध अर्पित करके वाचककी देवताके समान पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेवाला श्रोता भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है ॥ ५१-५२ ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि यानि देयानि भारते।
वाच्यमाने तु विप्रेभ्यो राजन् पर्वणि पर्वणि ॥ ५३॥
जातिं देशं च सत्यं च माहात्म्यं भरतर्षभ।
धर्मं वृत्तिं च विज्ञाय क्षत्रियाणां नराधिप ॥ ५४॥

राजन्! भरतश्रेष्ठ! महाभारतकी कथा प्रारम्भ हो जानेपर प्रत्येक पर्वमें क्षत्रियोंकी जाति, देश, सत्यता, माहात्म्य, धर्म और वृत्तिको जानकर ब्राह्मणोंको जो-जो वस्तुएँ अर्पित करनी चाहिये, अब उनका वर्णन करूँगा ॥ ५३-५४ ॥

स्वस्ति वाच्य द्विजानादौ ततः कार्ये प्रवर्तिते।
समाप्ते पर्वणि ततः स्वशक्त्या पूजयेद् द्विजान्॥ ५५॥

पहले ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर कथावाचनका कार्य प्रारम्भ कराये। फिर पर्व समाप्त होनेपर अपनी शक्तिके अनुसार उन ब्राह्मणोंकी पूजा करे ॥ ५५ ॥

आदौ तु वाचकं चैव वस्त्रगन्धसमन्वितम्।
विधिवद् भोजयेद् राजन् मधु पायसमुत्तमम् ॥ ५६ ॥

राजन्! आदिपर्वकी कथाके समय वाचकको नूतन वस्त्र पहनाकर चन्दन आदिसे उसकी पूजा करे और विधिपूर्वक उसे मीठी एवं उत्तम खीर भोजन कराये ॥५६॥

ततो मूलफलप्रायं पायसं मधुसर्पिषा।
आस्तीके भोजयेद् राजन् दद्याच्चैव गुडौदनम् ॥५७॥

राजन्! तत्पश्चात् आस्तीकपर्वकी कथाके समय ब्राह्मणोंको मधु और घीसे युक्त खीर भोजन कराये। उस भोजनमें फल-मूलकी अधिकता होनी चाहिये। फिर गुड़ और भात दान करे ॥ ५७ ॥

अपूपैश्चैव पूपैश्च मोदकैश्च समन्वितम्।
सभापर्वणि राजेन्द्र हविष्यं भोजयेद् द्विजान्॥ ५८ ॥

राजेन्द्र ! सभापर्व आरम्भ होनेपर ब्राह्मणोंको पूओं, कचौड़ियों और मिठाइयोंके साथ खीर भोजन कराये॥ ५८ ॥

आरण्यके मूलफलैस्तर्पयेत्तु द्विजोत्तमान्।
अरणीपर्व चासाद्य जलकुम्भान् प्रदापयेत्॥ ५९ ॥

वनपर्वमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको फल-मूलोंद्वारा तृप्त करे। अरणीपर्वमें पहुँचकर जलसे भरे हुए घड़ोंका दान करे॥५९॥

तर्पणानि च मुख्यानि वन्यमूलफलानि च।
सर्वकामगुणोपेतं विप्रेभ्योऽन्नं प्रदापयेत्॥ ६० ॥

इतना ही नहीं, जिनको खानेसे तृप्ति हो सके, ऐसे उत्तम-उत्तम जंगली मूल-फल और सभी अभीष्ट गुणोंसे सम्पन्न अन्न ब्राह्मणोंको दान करे॥ ६० ॥

विराटपर्वणि तथा वासांसि विविधानि च।
उद्योगे भरतश्रेष्ठ सर्वकामगुणान्वितम्॥ ६१ ॥
भोजनं भोजयेद् विप्रान् गन्धमाल्यैरलंकृतान्।

भरतश्रेष्ठ ! विराटपर्वमें भाँति-भाँतिके वस्त्र दान करे तथा उद्योगपर्वमें ब्राह्मणोंको चन्दन और फूलोंकी मालासे अलंकृत करके उन्हें सर्वगुणसम्पन्न अन्न भोजन कराये॥६१½॥

भीष्मपर्वणि राजेन्द्र दत्त्वा यानमनुत्तमम्॥ ६२॥
ततः सर्वगुणोपेतमन्नं दद्यात् सुसंस्कृतम्।

राजेन्द्र ! भीष्मपर्वमें उत्तम सवारी देकर अच्छी तरह छौंक-बघारकर तैयार किया हुआ सभी उत्तम गुणोंसे युक्त भोजन दान करे॥ ६२½ ॥

द्रोणपर्वणि विप्रेभ्यो भोजनं परमार्चितम्॥ ६३ ॥
शराश्च देया राजेन्द्र चापान्यसिवरास्तथा।

राजेन्द्र ! द्रोणपर्वमें ब्राह्मणोंको परम उत्तम भोजन कराये और उन्हें धनुष, बाण तथा उत्तम खड्ग प्रदान करे॥ ६३½ ॥

कर्णपर्वण्यपि तथा भोजनं सार्वकामिकम्॥ ६४ ॥
विप्रेभ्यः संस्कृतं सम्यग् दद्यात् संयतमानसः।

कर्णपर्वमें भी ब्राह्मणोंको अच्छे ढंगसे तैयार किया हुआ सबकी रुचिके अनुकूल उत्तम भोजन दे और अपने मनको वशमें रक्खे॥ ६४½ ॥

शल्यपर्वणि राजेन्द्र मोदकैः सगुडौदनैः॥ ६५ ॥
अपूपैस्तर्पणैश्चैव सर्वमन्नं प्रदापयेत्।

राजेन्द्र ! शल्यपर्वमें मिठाई, गुड़, भात, पूआ तथा तृप्तिकारक फल आदिके साथ सब प्रकारके उत्तम अन्न दान करे॥ ६५½ ॥

गदापर्वण्यपि तथा मुद्गमिश्रं प्रदापयेत्॥ ६६ ॥
स्त्रीपर्वणि तथा रत्नैस्तर्पयेत्तु द्विजोत्तमान्।

गदापर्वमें भी मूँग मिलाये हुए चावलका दान करे। स्त्रीपर्वमें रत्नोंद्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको तृप्त करे॥ ६६½ ॥

घृतौदनं पुरस्ताच्च ऐषीके दापयेत् पुनः॥ ६७ ॥
ततः सर्वगुणोपेतमन्नं दद्यात् सुसंस्कृतम्।

ऐषीकपर्वमें पहले घी मिलाया हुआ भात जिमाये। फिर अच्छी तरह संस्कार किये हुए सर्वगुणसम्पन्न अन्नका दान करे॥ ६७½ ॥

शान्तिपर्वण्यपि तथा हविष्यं भोजयेद् द्विजान्॥ ६८ ॥
आश्वमेधिकमासाद्य भोजनं सार्वकामिकम्।

शान्तिपर्वमें भी ब्राह्मणोंको हविष्य भोजन कराये। आश्वमेधिकपर्वमें पहुँचनेपर सबकी रुचिके अनुकूल उत्तम भोजन दे॥ ६८½ ॥

तथाऽऽश्रमनिवासे तु हविष्यं भोजयेद् द्विजान्॥ ६९ ॥
मौसले सार्वगुणिकं गन्धमाल्यानुलेपनम्।

आश्रमवासिकपर्वमें ब्राह्मणोंको हविष्य भोजन कराये। मौसलपर्वमें सर्वगुणसम्पन्न अन्न, चन्दन, माला और अनुलेपनका दान करे॥ ६९½ ॥

महाप्रास्थानिके तद्वत् सर्वकामगुणान्वितम्॥ ७० ॥
स्वर्गपर्वण्यपि तथा हविष्यं भोजयेद् द्विजान्।

इसी प्रकार महाप्रस्थानिकपर्वमें भी समस्त वाञ्छनीय गुणोंसे युक्त अन्न आदिका दान करे। स्वर्गारोहणपर्वमें भी ब्राह्मणोंको हविष्य खिलाये॥ ७०½ ॥

हरिवंशसमाप्तौ तु सहस्रं भोजयेद् द्विजान्॥ ७१ ॥
गामेकां निष्कसंयुक्तां ब्राह्मणाय निवेदयेत्।

हरिवंशकी समाप्ति होनेपर एक हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराये तथा स्वर्णमुद्रासहित एक गौ ब्राह्मणको दान दे॥ ७१½ ॥

तदर्धेनापि दातव्या दरिद्रेणापि पार्थिव॥ ७२ ॥
प्रतिपर्वसमाप्तौ तु पुस्तकं वै विचक्षणः।

सुवर्णेन च संयुक्तं वाचकाय निवेदयेत् ॥ ७३॥

पृथ्वीनाथ ! यदि श्रोता दरिद्र हो तो उसे भी आधी दक्षिणाके साथ गोदान अवश्य करना चाहिये । प्रत्येक पर्वकी समाप्तिपर विद्वान् पुरुष सुवर्णसहित पुस्तक वाचकको समर्पित करे ॥ ७२-७३ ॥

हरिवंशे पर्वणि च पायसं तत्र भोजयेत् ।
पारणे पारणे राजन् यथावद् भरतर्षभ ॥ ७४॥

राजन् ! भरतश्रेष्ठ ! हरिवंशपर्वमें भी प्रत्येक पारणके समय ब्राह्मणोंको यथावत् रूपसे खीर भोजन कराये ॥ ७४॥

समाप्य सर्वाः प्रयतः संहिताः शास्त्रकोविदः ।
शुभे देशे निवेश्याथ क्षौमवस्त्राभिसंवृताः ॥ ७५ ॥
शुक्लाम्बरधरः स्रग्वी शुचिर्भूत्वा स्वलंकृतः ।
अर्चयेत यथान्यायं गन्धमाल्यैः पृथक् पृथक् ॥ ७६ ॥
संहितापुस्तकान् राजन् प्रयतः सुसमाहितः ।
भक्ष्यैर्माल्यैश्च पेयैश्च कामैश्च विविधैः शुभैः ॥ ७७ ॥

इस प्रकार एकाग्रचित्त हो सब पर्वोंकी संहिताओंको समाप्त करके शास्त्रवेत्ता पुरुषको चाहिये कि वह उन्हें रेशमी वस्त्रोंमें लपेटकर किसी उत्तम स्थानमें रक्खे और स्वयं स्नान आदिसे पवित्र हो श्वेत वस्त्र, फूलकी माला तथा आभूषण धारण करके चन्दन-माला आदि उपचारोंसे उन संहिता-पुस्तकोंकी पृथक्-पृथक् विधिवत् पूजा करे । पूजाके समय चित्तको एकाग्र एवं शुद्ध रक्खे । भाँति-भाँतिके उत्तम भक्ष्य, भोजन, पेय, माल्य तथा अन्य कमनीय वस्तुएँ भेंटके रूपमें चढ़ाये ॥ ७५–७७ ॥

हिरण्यं च सुवर्णं च दक्षिणामथ दापयेत् ।
सर्वत्र त्रिपलं स्वर्णं दातव्यं प्रयतात्मना ॥ ७८ ॥

इसके बाद हिरण्य एवं सुवर्णकी दक्षिणा दे । मनको वशमें रखकर सभी पुस्तकोंपर तीन-तीन पल सोना चढ़ाना चाहिये ॥ ७८ ॥

तदर्धं पादशेषं वा वित्तशाठ्यविवर्जितम् ।
यद् यदेवात्मनोऽभीष्टं तत् तद् देयं द्विजातये ॥ ७९॥

इतना न हो सके तो सबपर डेढ़-डेढ़ पल सोना चढ़ाये और यह भी सम्भव न हो तो पौन-पौन पल चढ़ाये; परंतु धन रहते हुए कंजूसी नहीं करनी चाहिये । जो-जो वस्तु अपनेको प्रिय लगती हो, वही-वही ब्राह्मणको दानमें देनी चाहिये ॥ ७९ ॥

सर्वथा तोषयेद् भक्त्या वाचकं गुरुमात्मनः ।
देवताः कीर्तयेत् सर्वा नरनारायणौ तथा ॥ ८० ॥

कथावाचक अपना गुरु होता है, अतः उसके प्रति भक्तिभाव रखते हुए उसे सर्वथा संतुष्ट करना चाहिये । उस समय सम्पूर्ण देवताओं तथा भगवान् नर-नारायणका कीर्तन करना चाहिये ॥ ८० ॥

ततो गन्धैश्च माल्यैश्च स्वलंकृत्य द्विजोत्तमान् ।
तर्पयेद् विविधैः कामैर्दानैश्चोच्चावचैस्तथा ॥ ८१ ॥

तदनन्तर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको चन्दन और माला आदिसे विभूषित करके उन्हें नाना प्रकारकी मनोवाञ्छित वस्तुएँ और भाँति-भाँतिके छोटे-बड़े आवश्यक पदार्थ देकर संतुष्ट करे ॥ ८१ ॥

अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।
प्राप्नुयाच्च क्रतुफलं तथा पर्वणि पर्वणि ॥ ८२॥

ऐसा करनेसे मनुष्यको अतिरात्र यज्ञका फल मिलता है तथा प्रत्येक पर्वकी समाप्तिपर ब्राह्मणकी पूजा करनेसे श्रौत यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ ८२ ॥

वाचको भरतश्रेष्ठ व्यक्ताक्षरपदस्वरः ।
भविष्यं श्रावयेद् विद्वान् भारतं भरतर्षभ ॥ ८३॥

भरतश्रेष्ठ ! कथावाचकको विद्वान् होना चाहिये और प्रत्येक अक्षर, पद तथा स्वरका सुस्पष्ट उच्चारण करते हुए उसे महाभारत या हरिवंशके भविष्यपर्वकी कथा सुनानी चाहिये ॥ ८३ ॥

भुक्तवत्सु द्विजेन्द्रेषु यथावत् सम्प्रदापयेत् ।
वाचकं भरतश्रेष्ठ भोजयित्वा स्वलंकृतम् ॥ ८४॥

भरतभूषण ! सम्पूर्ण कथाकी समाप्ति होनेके बाद श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके भोजन कर लेनेपर उन्हें यथोचित दान देना चाहिये । फिर वाचकको भी वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत करके उत्तम अन्न भोजन कराना चाहिये । इसके बाद उसे दान-मानसे संतुष्ट करना उचित है ॥ ८४ ॥

वाचके परितुष्टे तु शुभा प्रीतिरनुत्तमा ।
ब्राह्मणेषु तु तुष्टेषु प्रसन्नाः सर्वदेवताः ॥ ८५॥

कथावाचकके संतुष्ट होनेपर ही परम उत्तम एवं मङ्गलमयी प्रीति प्राप्त होती है । ब्राह्मणोंके संतुष्ट होनेपर श्रोताके ऊपर समस्त देवता प्रसन्न होते हैं ॥ ८५ ॥

ततो हि वरणं कार्यं द्विजानां भरतर्षभ ।

सर्वकामैर्यथान्यायं साधुभिश्च पृथग्विधैः ॥ ८६ ॥

इसलिये भरतश्रेष्ठ! साधुस्वभावके श्रोताओंको चाहिये कि वे न्यायपूर्वक ब्राह्मणोंका वरण करें तथा उनकी विभिन्न प्रकारकी समस्त इच्छाएँ पूर्ण करते हुए उनका यथोचित पूजन करें ॥ ८६ ॥

इत्येष विधिरुद्दिष्टो मया ते द्विपदां वर।
श्रद्दधानेन वै भाव्यं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ८७ ॥

मनुष्योंमें श्रेष्ठ नरेश्वर! तुम मुझसे जो कुछ पूछ रहे थे, उसके अनुसार यह मैंने महाभारतके सुनने तथा उसका पारायण करनेकी विधि बतलायी है। तुम्हें इसपर श्रद्धा करनी चाहिये ॥ ८७ ॥

भारतश्रवणे राजन् पारणे च नृपोत्तम।
सदा यत्नवता भाव्यं श्रेयस्तु परमिच्छता ॥ ८८ ॥

राजन्! नृपश्रेष्ठ! अपने परम कल्याणकी इच्छा रखनेवाले श्रोताको महाभारतको सुनने तथा इसका पारायण करनेके लिये सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये ॥ ८८ ॥

भारतं शृणुयान्नित्यं भारतं परिकीर्तयेत्।
भारतं भवने यस्य तस्य हस्तगतो जयः ॥ ८९ ॥

प्रतिदिन महाभारत सुने। नित्यप्रति महाभारतका पाठ करे। जिसके घरमें महाभारत ग्रन्थ मौजूद है, विजय उसके हाथमें है ॥ ८९ ॥

भारतं परमं पुण्यं भारते विविधाः कथाः।
भारतं सेव्यते देवैर्भारतं परमं पदम् ॥ ९० ॥

महाभारत परम पवित्र ग्रन्थ है। इसमें नाना प्रकारकी कथाएँ हैं। देवता भी महाभारतका सेवन करते हैं। महाभारत परमपदस्वरूप है ॥ ९० ॥

भारतं सर्वशास्त्राणामुत्तमं भरतर्षभ।
भारतात् प्राप्यते मोक्षस्तत्त्वमेतद् ब्रवीमि तत् ॥ ९१ ॥

भरतश्रेष्ठ! महाभारत सम्पूर्ण शास्त्रोंमें उत्तम है। महाभारतसे मोक्ष प्राप्त होता है। यह मैं तुमसे सच्ची बात बता रहा हूँ ॥ ९१ ॥

महाभारतमाख्यानं क्षितिं गां च सरस्वतीम्।
ब्राह्मणान् केशवं चैव कीर्तयन् नावसीदति ॥ ९२ ॥

महाभारत नामक इतिहास, पृथ्वी, गौ, सरस्वती, ब्राह्मण और भगवान् श्रीकृष्णका कीर्तन करनेवाला मनुष्य कभी विपत्तिमें नहीं पड़ता ॥ ९२ ॥

वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ॥ ९३ ॥

भरतश्रेष्ठ! वेद, रामायण तथा पवित्र महाभारतके आदि, मध्य एवं अन्तमें सर्वत्र भगवान् श्रीहरिका ही गान किया जाता है ॥ ९३ ॥

यत्र विष्णुकथा दिव्याः श्रुतयश्च सनातनाः।
तच्छ्रोतव्यं मनुष्येण परं पदमिहेच्छता ॥ ९४ ॥

जहाँ भगवान् विष्णुकी दिव्य कथाओं तथा सनातन श्रुतियोंका समावेश है, उस महाभारतका इस जगत्में परम-पदकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको अवश्य श्रवण करना चाहिये ॥ ९४ ॥

एतत् पवित्रं परममेतद् धर्मनिदर्शनम्।
एतत् सर्वगुणोपेतं श्रोतव्यं भूतिमिच्छता ॥ ९५ ॥

यह महाभारत परम पवित्र है। यह धर्मके स्वरूपका साक्षात्कार करानेवाला है तथा यह समस्त उत्तम गुणोंसे सम्पन्न है। अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको इसका श्रवण अवश्य करना चाहिये ॥ ९५ ॥

कायिकं वाचिकं चैव मनसा समुपार्जितम्।
तत् सर्वं नाशमायाति तमः सूर्योदये यथा ॥ ९६ ॥

महाभारतके श्रवणसे शरीर, वाणी और मनके द्वारा संचित किये हुए सारे पाप वैसे ही नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार ॥ ९६ ॥

अष्टादशपुराणानां श्रवणाद् यत् फलं भवेत्।
तत् फलं समवाप्नोति वैष्णवो नात्र संशयः ॥ ९७ ॥

अठारह पुराणोंके सुननेसे जो फल होता है, वह सारा फल वैष्णव पुरुषको अकेले महाभारतके श्रवणसे मिल जाता है, इसमें संशय नहीं है ॥ ९७ ॥

स्त्रियश्च पुरुषाश्चैव वैष्णवं पदमाप्नुयुः।
स्त्रीभिश्च पुत्रकामाभिः श्रोतव्यं वैष्णवं यशः ॥ ९८ ॥

स्त्रियाँ हों या पुरुष, सभी इसके श्रवणसे भगवान् विष्णुके धामको चले जाते हैं। पुत्रकी कामना रखनेवाली स्त्रियोंको भगवान् विष्णुके यशस्वरूप इस महाभारतका श्रवण अवश्य करना चाहिये ॥ ९८ ॥

दक्षिणा चात्र देया वै निष्कपञ्चसुवर्णकम्।
वाचकाय यथाशक्त्या यथोक्तं फलमिच्छता ॥ ९९ ॥

शास्त्रोक्त फलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको चाहिये कि

वह महाभारत-श्रवणके पश्चात् वाचकको यथाशक्ति सोनेके पाँच सिक्के दक्षिणाके रूपमें दान करे ॥ ९९ ॥

स्वर्णशृङ्गीं च कपिलां सवत्सां वस्त्रसंवृताम् ।
वाचकाय च दद्याद्धि आत्मनः श्रेय इच्छता ॥१००॥

अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको उचित है कि वह कपिला गौके सींगोंमें सोना मढ़ाकर उसे वस्त्रसे आच्छादित करके बछड़ेसहित वाचकको दान दे ॥ १०० ॥

अलङ्कारं प्रदद्याच्च पाण्योर्वै भरतर्षभ ।
कर्णस्याभरणं दद्याद् धनं चैव विशेषतः ॥१०१॥

भरतश्रेष्ठ ! इसके सिवा कथावाचकके लिये दोनों हाथोंके कड़े, कानोंके कुण्डल और विशेषतः धन प्रदान करे ॥१०१॥

भूमिदानं समादद्याद् वाचकाय नराधिप ।
भूमिदानसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥१०२॥

नरेश्वर ! वाचकके लिये भूमिदान तो अवश्य ही करना चाहिये; क्योंकि भूमिदानके समान दूसरा कोई दान न हुआ है, न होगा ॥ १०२ ॥

शृणोति श्रावयेद् वापि सततं चैव यो नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो वैष्णवं पदमाप्नुयात् ॥ १०३॥

जो मनुष्य सदा महाभारतको सुनता अथवा सुनाता रहता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुके धामको जाता है ॥ १०३ ॥

पितॄनुद्धरते सर्वानेकादशसमुद्भवान् ।
आत्मानंससुतं चैव स्त्रियं च भरतर्षभ ॥१०४॥

भरतश्रेष्ठ ! वह पुरुष अपनी ग्यारह पीढ़ीमें समस्त पितरोंका, अपना तथा अपनी स्त्री और पुत्रका भी उद्धार कर देता है ॥ १०४ ॥

दशांशश्चैव होमोऽपि कर्तव्योऽत्र नराधिप ।
इदं मया तवाग्रे च प्रोक्तं सर्वं नरर्षभ ॥१०५॥

नरेश्वर ! महाभारत सुननेके बाद उसके लिये दशांश होम भी करना आवश्यक है । नरश्रेष्ठ ! इस प्रकार मैंने तुम्हारे समक्ष इन सब बातोंका विस्तारके साथ वर्णन कर दिया ॥ १०५ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां हरिवंशोक्तभारतश्रवणविधावध्यायः समाप्तः ॥

इस प्रकार व्यासनिर्मित श्रीमहाभारत शतसाहस्री संहितामें हरिवंशोक्त भारतश्रवणविधिविषयक अध्याय पूरा हुआ ॥

महाभारत-माहात्म्य

पाराशर्यवचःसरोजममलं गीतार्थगन्धोत्कटं
नानाख्यानककेसरं हरिकथासंबोधनाबोधितम्।
लोके सज्जनषट्पदैरहरहः पेपीयमानं मुदा॥
भूयाद् भारतपङ्कजं कलिमलप्रध्वंसि नः श्रेयसे॥

पराशरके पुत्र महर्षि व्यासकी वाणीरूपी सरोवरमें उदित यह महाभारतरूपी अमल कमल, जो गीतार्थरूपी तीव्र सुगन्धसे युक्त, नानाप्रकारके आख्यानरूपी केसरसे सम्पन्न तथा हरिकथारूपी सूर्यतापसे प्रफुल्लित है, सज्जनरूपी भ्रमर इस लोकमें जिसके रसका निरन्तर प्रमुदित होकर पान किया करते हैं और जो कलिकालके पापरूपी मलका नाश करनेवाला है, सदा हमारा कल्याण करनेवाला हो ॥

यत्र विष्णुकथा दिव्याः श्रुतयश्च सनातनाः।
तच्छ्रोतव्यं मनुष्येण परं पदमिहेच्छता॥
श्रूयतां सिंहनादोऽयमृषेस्तस्य महात्मनः।
अष्टादशपुराणानां कर्तुर्वेदमहोदधेः॥

जिसमें भगवान् विष्णुकी दिव्य कथाओंका वर्णन है और जिसमें कल्याणमयी श्रुतियोंका सार दिया गया है, इस लोकमें परमपदकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको उस महाभारतका श्रवण करना चाहिये। अष्टादश पुराणोंके रचयिता और वेद (-ज्ञान) के महान् समुद्र महात्मा श्रीव्यासदेवका यह सिंहनाद है कि 'तुम नित्य महाभारतका श्रवण करो॥'

धर्मशास्त्रमिदं पुण्यमर्थशास्त्रमिदं परम्।
मोक्षशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामितबुद्धिना॥
भारतं सर्वशास्त्राणामुत्तमं भरतर्षभ।
सम्प्रत्याचक्षते चेदं तथा श्रोष्यन्ति चापरे॥

अपरिमितबुद्धि भगवान् व्यासदेवके द्वारा कथित यह महाभारत पवित्र धर्मशास्त्र है, श्रेष्ठ अर्थशास्त्र है और सर्वोत्तम मोक्षशास्त्र भी है। हे भरतश्रेष्ठ! महाभारत समस्त शास्त्रोंका शिरोमणि है, इसीसे सम्प्रति विद्वान् लोग इसका पठन-श्रवण करते हैं और आगे भी करेंगे॥

योऽधीते भारतं पुण्यं ब्राह्मणो नियतव्रतः।
चतुरो वार्षिकान् मासान् सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
कुरूणां प्रथितं वंशं कीर्तयन् सततं शुचिः।
वंशमाप्नोति विपुलं लोके पूज्यतमो भवेत्॥

जो ब्राह्मण नियमित व्रतका पालन करता हुआ वर्षाऋतुके चार महीनोंमें पवित्र भारतका पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो पुरुष शुद्ध होकर कुरुके प्रसिद्ध वंशका सदा कीर्तन करता है, उसके वंशका विपुल विस्तार होता है और लोकमें वह पूज्यतम बन जाता है॥

अनागतश्च मोक्षश्च कृष्णद्वैपायनः प्रभुः।
संदर्भं भारतस्यास्य कृतवान् धर्मकाम्यया॥
धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित्॥

दीर्घदृष्टि तथा मोक्षरूप भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासने केवल धर्मकी कामनासे ही इस महाभारतको रचा है। हे भरतर्षभ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके सम्बन्धमें जो कुछ इस (महाभारत) में कहा गया है, वही अन्य शास्त्रोंमें भी कहा गया है। जो इसमें नहीं कहा गया, वह कहीं नहीं कहा गया है॥

एतत् पवित्रं परममेतद् धर्मनिदर्शनम्।
एतत् सर्वगुणोपेतं श्रोतव्यं भूतिमिच्छता॥
कायिकं वाचिकं चैव मनसा समुपार्जितम्।
तत् सर्वं नाशमायाति तमः सूर्योदये यथा॥

यह महाभारत परम पवित्र है, धर्मके लिये प्रमाणरूप है, समस्त गुणोंसे सम्पन्न है; कल्याणकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको इसे अवश्य सुनना चाहिये। क्योंकि, जैसे सूर्यके उदय होनेपर अन्धकारका नाश हो जाता है, वैसे ही इस महाभारतसे तन, वचन और मनसे किये हुए सब पाप नष्ट हो जाते हैं॥

य इदं मानवो लोके पुण्यार्थे ब्राह्मणाञ्छुचीन्।
श्रावयेत महापुण्यं तस्य धर्मः सनातनः॥
महाभारतमाख्यानं क्षितिं गां च सरस्वतीम्।
ब्राह्मणान् केशवं चैव कीर्तयन्नावसीदति॥

जो मनुष्य महान् पवित्र इस इतिहासको पुण्यार्थ पवित्र ब्राह्मणोंको श्रवण कराता है, वह सनातन धर्मको प्राप्त होता है। महाभारतके आख्यान, पृथ्वी, गौ, सरस्वती, ब्राह्मण तथा भगवान् केशव—इनका कीर्तन करनेवाला मनुष्य कभी दुखी नहीं होता॥

शृणोति श्रावयेद् वापि सततं चैव यो नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो वैष्णवं पदमाप्नुयात्॥
पितॄनुद्धरते सर्वानेकादशसमुद्भवान्।
आत्मानं ससुतं चैव स्त्रियं च भरतर्षभ॥

जो मनुष्य निरन्तर श्रीमहाभारत सुनता है या सुनाता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णु-पदको प्राप्त होता है; इतना ही नहीं, वह पुरुष अपनी ग्यारह पीढ़ीके समस्त पितरोंका तथा पुत्र और पत्नीसहित अपना भी उद्धार करता है॥

यथा समुद्रो भगवान् यथा मेरुर्महान् गिरिः।
उभौ ख्यातौ रत्ननिधी तथा भारतमुच्यते॥
न तां स्वर्गगतिं प्राप्य तुष्टिं प्राप्नोति मानवः।
यां श्रुत्वैव महापुण्यमितिहासमुपाश्नुते॥

जैसे समुद्र तथा महापर्वत सुमेरु दोनों रत्ननिधिके नामसे विख्यात हैं, वैसे ही यह महाभारत भी रत्नोंका भंडार कहा गया है। मनुष्यको इस महान् पवित्र इतिहासके पढ़ने-सुननेसे जैसी तुष्टि प्राप्त होती है, वैसी स्वर्गमें जानेसे भी नहीं प्राप्त होती॥

शरीरेण कृतं पापं वाचा च मनसैव च।
सर्वं संत्यजति क्षिप्रं य इदं शृणुयान्नरः॥
भरतानां महज्जन्म शृण्वतामनसूयताम्।
नास्ति व्याधिभयं तेषां परलोकभयं कुतः॥

जो मनुष्य इस महाभारतको पढ़ता-सुनता है, वह शरीर, वाणी तथा मनसे किये हुए सब पापोंका निःशेषरूपसे त्याग कर देता है। अर्थात् उसके ये सब पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य दोषबुद्धिका त्याग करके भरतवंशियोंके महान् जीवनकी बातोंको पढ़ते-सुनते हैं, उनको यहाँ व्याधिका भी भय नहीं रहता; फिर परलोकका भय तो रहता ही कहाँसे?

इदं हि वेदैः समितं पवित्रमपि चोत्तमम्।
श्राव्यं श्रुतिसुखं चैव पावनं शीलवर्धनम्॥
य इदं भारतं राजन् वाचकाय प्रयच्छति।
तेन सर्वा मही दत्ता भवेत् सागरमेखला॥

यह महाभारत वेदसदृश (पञ्चम वेद) है, उत्तम है, साथ ही पवित्र भी है; श्रवण करने योग्य है, कानोंको सुख देनेवाला है; पवित्र शीलको बढ़ानेवाला है। अतएव हे राजन्! जो मनुष्य यह भारत ग्रन्थ पढ़नेवालेको दान करता है, उसको समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वीके दानका फल मिलता है।

अष्टादश पुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः।
वेदाः साङ्गास्तथैकत्र भारतं चैकतः स्थितम्॥
महत्त्वाद् भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

अठारहों पुराण, समस्त धर्मशास्त्र, अङ्गोंसहित वेद—इन सबकी बराबरी अकेला महाभारत कर सकता है। क्योंकि यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है और रहस्यरूपी असाधारण भारसे युक्त है, इसीसे इसे महाभारत कहा जाता है। जो पुरुष 'महाभारत' शब्दके इस अर्थको जानता है, वह सब पापोंसे छूट जाता है।

जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो मोक्षमिच्छता।
ब्राह्मणेन च राज्ञा च गर्भिण्या चैव योषिता॥
स्वर्गकामो लभेत् स्वर्गं जयकामो लभेज्जयम्।
गर्भिणी लभते पुत्रं कन्यां वा बहुभागिनीम्॥

'जय' नामक यह इतिहास मोक्षकी इच्छा रखनेवाले, ब्राह्मण, राजा और गर्भवती स्त्रियोंको तो अवश्य सुनना चाहिये। इसके सुननेसे स्वर्गकी इच्छा करनेवालेको स्वर्ग, जयकी इच्छावालेको जय और गर्भवती स्त्रीको पुत्र या बड़े भाग्यवाली कन्या प्राप्त होती है।

यो गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति
विप्राय वेदविदुषे सुबहुश्रुताय।
पुण्यां च भारतकथां सततं शृणोति
तुल्यं फलं भवति तस्य च तस्य चैव॥

वेदको जाननेवाले बहुश्रुत ब्राह्मणको कोई सुवर्णसे मँढ़े सींगोंवाली सौ गौदान दे, और दूसरा कोई निरन्तर महाभारतकी कथा सुने तो इन दोनोंको समान फलकी प्राप्ति होती है।

कार्ष्णं वेदमिमं सर्वं शृणुयाद् यः समाहितः।
ब्रह्महत्यादिपापानां कोटिस्तस्य विनश्यति॥
पुत्राः शुश्रूषवः सन्ति प्रेष्याश्च प्रियकारिणः।
भरतानां महज्जन्म महाभारतमुच्यते॥

व्यासदेवरचित इस (पञ्चम) वेदरूप महाभारतका जो समाहितचित्तसे आद्योपान्त श्रवण करता है, उसके ब्रह्महत्या आदि करोड़ों पाप नष्ट हो जाते हैं। फिर, इस इतिहासको सुननेवाले पुत्र माता-पिताके सेवकोन्मुख, तथा सेवक अपने स्वामीका प्रिय कार्य करनेवाले बन जाते हैं। इसमें महान् भरतवंशियोंकी जीवन-कथाका वर्णन है, इससे भी इसको महाभारत कहते हैं।

देवा राजर्षयो ह्यत्र पुण्या ब्रह्मर्षयस्तथा।
कीर्त्यन्ते धूतपाप्मानः कीर्त्यते केशवस्तथा॥
भगवांश्चापि देवेशो यत्र देवी च कीर्त्यते।
अनेकजननो यत्र कार्तिकेयस्य सम्भवः॥

इस महाभारतमें पवित्र देवताओं, राजर्षियों और पुण्यस्वरूप ब्रह्मर्षियोंका वर्णन है; इसमें भगवान् केशवके चरित्रोंका कीर्तन है, इसमें भगवान् महादेव तथा देवी पार्वतीका वर्णन है। और इसमें अनेक माताओंवाले कार्तिकेयके जन्मका भी वर्णन है।

ब्राह्मणानां गवां चैव माहात्म्यं यत्र कीर्त्यते।
सर्वं श्रुतिसमूहोऽयं श्रोतव्यो धर्मबुद्धिभिः॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो राहुणा चन्द्रमा यथा।
जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा॥

फिर इस इतिहासमें ब्राह्मणों तथा गौओंका माहात्म्य बतलाया गया है। और यह समस्त श्रुतियोंका समूहरूप है। अतः धर्मबुद्धि मनुष्योंको इसे पढ़ना-सुनना चाहिये। विजयकी इच्छा करनेवालोंको यह 'जय' नामक इतिहास अवश्य सुनना चाहिये। इसके सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे वैसे ही मुक्त हो जाता है, जैसे राहुके ग्रहणसे चन्द्रमा मुक्त हो जाता है।

अस्मिन्नर्थश्च कामश्च निखिलेनोपदेक्ष्यते।
इतिहासे महापुण्ये बुद्धिश्च परिनैष्ठिकी॥
भारतं शृणुयान्नित्यं भारतं परिकीर्तयेत्।
भारतं भवने यस्य तस्य हस्तगतो जयः॥

इस महान् पवित्र इतिहासमें अर्थ और कामका ऐसा सर्वाङ्गपूर्ण उपदेश है कि जिससे इसे पढ़ने-सुननेवालेकी बुद्धि परमात्मामें परिनिष्ठित हो जाती है। अतएव महाभारतका श्रवण-कीर्तन सदा करना चाहिये। जिसके घर महाभारतका श्रवण-कीर्तन होता है, उसके विजय तो हस्तगत ही है।

पुण्योऽयमितिहासाख्यः पवित्रं चेदमुत्तमम्।
कृष्णेन मुनिना विप्रनिर्मितं सत्यवादिना॥
सर्वज्ञेन विधिज्ञेन धर्मज्ञानवता सता।
अतीन्द्रियेण शुचिना तपसा भावितात्मना॥
ऐश्वर्ये वर्तता चैव सांख्ययोगवता तथा।
नैकतन्त्रविबुद्धेन दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा॥
कीर्तिं प्रथयता लोके पाण्डवानां महात्मनाम्।
अन्येषां क्षत्रियाणां च भूरिद्रविणतेजसाम्॥

श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी सत्यवादी, सर्वज्ञ, शास्त्रविधिके ज्ञाता, धर्मज्ञानयुक्त संत, अतीन्द्रियज्ञानी, पवित्र, तपस्याके द्वारा शुद्धचित्त, ऐश्वर्यवान्, सांख्ययोगी, योगनिष्ठ तथा अनेक

शास्त्रोंके ज्ञाता तथा दिव्यदृष्टिसम्पन्न हैं । उन्होंने अपनी दिव्यदृष्टिसे देखकर ही महात्मा पाण्डव तथा अन्यान्य महान् तेजस्वी एवं ऐश्वर्यशाली क्षत्रियोंकी कीर्तिको जगत्में प्रसिद्ध किया है। उन्होंने 'इतिहास' नामसे प्रसिद्ध इस पुण्यमय पवित्र महाभारतकी रचना की है, इसीसे यह ऐसा उत्तम हुआ है।

अष्टादशपुराणानां श्रवणाद् यत् फलं भवेत् ।
तत् फलं समवाप्नोति वैष्णवो नात्र संशयः ॥
स्त्रियश्च पुरुषाश्चैव वैष्णवं पदमाप्नुयुः ।
स्त्रीभिश्च पुत्रकामाभिः श्रोतव्यं वैष्णवं यशः ॥

अठारह पुराणोंके श्रवणसे जो फल होता है, वही फल महाभारतके श्रवणसे वैष्णवोंको प्राप्त होता है—इसमें संदेह नहीं है। स्त्री और पुरुष इस महाभारतके श्रवणसे वैष्णव पदको प्राप्त कर सकते हैं। पुत्रकी इच्छावाली स्त्रियोंको तो भगवान् विष्णुकी कीर्तिरूप महाभारत अवश्य सुनना चाहिये।

नरेण धर्मकामेन सर्वः श्रोतव्य इत्यपि ।
निखिलेनेतिहासोऽयं ततः सिद्धिमवाप्नुयात् ॥
शृण्वञ्छ्राद्धः पुण्यशीलः श्रावयंश्चेदमद्भुतम् ।
नरः फलमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥

धर्मकी कामनावाले मनुष्यको यह सम्पूर्ण इतिहास सुनना चाहिये, इससे सिद्धिकी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य श्रद्धायुक्त और पुण्यस्वभाव होकर इस अद्भुत इतिहासका श्रवण करता है या कराता है, वह राजसूय और अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करता है।

त्रिभिर्वर्षैर्लब्धकामः कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।
नित्योत्थितः शुचिः शक्तो महाभारतमादितः ॥
तपो नियममास्थाय कृतमेतन्महर्षिणा ।
तस्मान्नियमसंयुक्तैः श्रोतव्यं ब्राह्मणैरिदम् ॥

शक्तिशाली श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासदेव पवित्रताके साथ तीन वर्ष लगातार लगे रहकर इसकी प्रारम्भसे रचना करके पूर्ण-मनोरथ हुए थे। महर्षि व्यासने तप और नियम धारण करके इसकी रचना की थी। अतएव ब्राह्मणोंको भी नियमयुक्त होकर ही इसका श्रवण-कीर्तन करना चाहिये।

महीं विजयते राजा शत्रूंश्चापि पराजयेत् ।
इदं पुंसवनं श्रेष्ठमिदं स्वस्त्ययनं महत् ॥
महिषीयुवराजाभ्यां श्रोतव्यं बहुशस्तथा ।
वीरं जनयते पुत्रं कन्यां वा राज्यभागिनीम् ॥

इस इतिहासके सुननेसे राजा पृथ्वीपर विजय प्राप्त करता तथा शत्रुओंको पराजित करता है। उसे श्रेष्ठ पुत्रकी प्राप्ति और महान् कल्याण होता है। यह इतिहास राजरानियोंको अपने युवराजके साथ बार-बार सुनना चाहिये। इससे वीर पुत्रका जन्म होता है अथवा राज्यभागिनी कन्या होती है।

यश्चेदं श्रावयेद् विद्वान् सदा पर्वणि पर्वणि ।
धूतपाप्मा जितस्वर्गो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥
यश्चेदं श्रावयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणान् पादमन्ततः ।
अक्षय्यमन्नपानं वै पितॄंस्तस्योपतिष्ठते ॥

जो विद्वान् पुरुष सदा प्रत्येक पर्वपर इसका श्रवण कराता है, वह पापरहित और स्वर्गविजयी होकर ब्रह्मको प्राप्त होता है। जो पुरुष श्राद्धके अवसरपर ब्राह्मणोंको इसका एक पाद भी श्रवण कराता है, उसके पितृगण अक्षय अन्नपानको प्राप्त करते हैं।

इतिहासमिमं पुण्यं महार्थं वेदसम्मितम् ।
व्यासोक्तं श्रूयते येन कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः ॥
स नरः सर्वकामांश्च कीर्तिं प्राप्येह शौनक ।
गच्छेत् परमिकां सिद्धिमत्र मे नास्ति संशयः ॥

हे शौनक! जो मनुष्य व्यासजीके द्वारा कथित महान् अर्थमय और वेदतुल्य इस पवित्र इतिहासका श्रेष्ठ ब्राह्मणके द्वारा श्रवण करता है, वह इस लोकमें सब मनोरथोंको और कीर्तिको प्राप्त करता है और अन्तमें परमसिद्धि मोक्षको प्राप्त होता है, इसमें संदेह नहीं है।

श्रावयेद् ब्राह्मणाञ्छ्राद्धे यश्चैनं पादमन्ततः ।
अक्षय्यं तस्य तच्छ्राद्धमुपावर्तेत् पितॄनिह ॥
भारतं परमं पुण्यं भारते विविधाः कथाः ।
भारतं सेव्यते देवैर्भारतं परमं पदम् ॥

जो मनुष्य श्राद्धके अन्तमें इसका कम-से-कम एक पाद भी ब्राह्मणोंको सुनाता है, उसका श्राद्ध उसके पितृगणको अक्षय होकर प्राप्त होता है। महाभारत परमपुण्यदायक है, इसमें विविध कथाएँ हैं, देवता भी महाभारतका सेवन करते हैं; क्योंकि महाभारतसे परमपदकी प्राप्ति होती है।

भारतं सर्वशास्त्राणामुत्तमं भरतर्षभ ।
भारतात् प्राप्यते मोक्षस्तत्त्वमेतद् ब्रवीमि तत् ॥
एवमेतन्महाराज नात्र कार्या विचारणा ।
श्रद्दधानेन वै भाव्यमेवमाह गुरुर्मम ॥

हे भरतश्रेष्ठ! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि महाभारत सभी शास्त्रोंमें उत्तम है, और उसके श्रवण-कीर्तनसे मोक्षकी प्राप्ति होती है—यह मैं तुमसे यथार्थ कहता हूँ। हे महाराज! मैंने जो कुछ कहा है, वह ऐसा ही है; यहाँ कोई विचार-वितर्क नहीं करना है। मेरे गुरुने भी मुझसे यही कहा है कि महाभारतपर मनुष्यको श्रद्धावान् होना चाहिये।

वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ॥
भारतश्रवणे राजन् पारणे च नृपोत्तम ।
सदा यत्नवता भाव्यं श्रेयस्तु परमिच्छता ॥

हे भरतर्षभ! वेद, रामायण और पवित्र महाभारत—इन सबमें आदि, मध्य और अन्तमें सर्वत्र श्रीहरिका ही कीर्तन किया गया है। अतः हे नृपश्रेष्ठ! उत्तम श्रेय—मोक्षकी इच्छा रखनेवाले प्रत्येक पुरुषको महाभारतका श्रवण और पारायण करनेमें सदा प्रयत्नवान् रहना चाहिये।

सम्पूर्ण महाभारतकी श्लोक-संख्या (अनुष्टुप् छन्दके अनुसार)

	उत्तरभारतीय पाठ	दाक्षिणात्य पाठ	उवाच	कुल
आदिपर्व	८८९०	७३६॥	१०६०	१०६८६॥
सभापर्व	२८१३=	१२४३।=	३८४	४४४०॥
वनपर्व	१२१८८॥।≈	८७॥	६८७	१३९६३।=
विराटपर्व	२४०८॥	२८२॥	३२४	३०१५
उद्योगपर्व	७०५६॥।≡	७६-	५७४	७७०७
भीष्मपर्व	६०२२।-	७७॥≡	२६७	६३६७
द्रोणपर्व	९७८०।-	१३६॥।=	४४८	१०३६५≡
कर्णपर्व	५३४०।-	१६४	२२९	५७३३।-
शल्यपर्व	३६८९=	४८॥।=	१६६	३९०४
सौप्तिकपर्व	८०९॥।	१	४४	८५४॥।
स्त्रीपर्व	८२८॥।=	१	६०	८८९॥।=
शान्तिपर्व	१४२७१॥≡	४५३॥।=	११३९	१५८६४॥-
अनुशासनपर्व	७८४०।≡	१९७०॥	११२१	१०९३१॥।≡
आश्वमेधिकपर्व	२९१७॥।≡	१२९९।=	४०३	४६२०।-
आश्रमवासिकपर्व	११०७॥।	१॥	७८	११८७।
मौसलपर्व	३०१।	३॥	१६	३२०॥।
महाप्रस्थानिकपर्व	११४॥।'	×	२२	१३६॥।
स्वर्गारोहणपर्व	२१८॥=	×	११	२२९॥=
कुल संख्या	८६६००॥-	६५८४=	७०३३	१००२१७॥≡

॥ श्रीहरिः ॥

महाभारतके सब पर्वोंके प्रत्येक अध्यायकी पूरी विषयसूची

आदिपर्व

अध्याय | विषय | पृष्ठ-संख्या

(अनुक्रमणिकापर्व)

१–ग्रन्थका उपक्रम, ग्रन्थमें कहे हुए अधिकांश विषयोंकी संक्षिप्त सूची तथा इसके पाठकी महिमा … १

(पर्वसंग्रहपर्व)

२–समन्तपञ्चक क्षेत्रका वर्णन, अक्षौहिणी सेनाका प्रमाण, महाभारतमें वर्णित पर्वों और उनके संक्षिप्त विषयोंका संग्रह तथा महाभारतके श्रवण एवं पठनका फल … … २३

(पौष्यपर्व)

३–जनमेजयको सरमाका शाप, जनमेजयद्वारा सोमश्रवाका पुरोहितके पदपर वरण, आरुणि, उपमन्यु, वेद और उत्तङ्ककी गुरुभक्ति तथा उत्तङ्कका सर्पयज्ञके लिये जनमेजयको प्रोत्साहन देना … … ४६

(पौलोमपर्व)

४–कथा-प्रवेश … … ६२
५–भृगुके आश्रमपर पुलोमा दानवका आगमन और उसकी अग्निदेवके साथ बातचीत … ६३
६–महर्षि च्यवनका जन्म, उनके तेजसे पुलोमा राक्षसका भस्म होना तथा भृगुका अग्निदेवको शाप देना … … ६५
७–शापसे कुपित हुए अग्निदेवका अदृश्य होना और ब्रह्माजीका उनके शापको संकुचित करके उन्हें प्रसन्न करना … … ६६
८–प्रमद्वराका जन्म, रुरुके साथ उसका वाग्दान तथा विवाहके पहले ही साँपके काटनेसे प्रमद्वराकी मृत्यु … … ६९
९–रुरुकी आधी आयुसे प्रमद्वराका जीवित होना, रुरुके साथ उसका विवाह, रुरुका सर्पोंको मारनेका निश्चय तथा रुरु-डुण्डुभ-संवाद … ७०
१०–रुरु मुनि और डुण्डुभका संवाद … ७२
११–डुण्डुभकी आत्मकथा तथा उसके द्वारा रुरुको अहिंसाका उपदेश … … ७३
१२–जनमेजयके सर्पसत्रके विषयमें रुरुकी जिज्ञासा और पिताद्वारा उसकी पूर्ति … ७४

(आस्तीकपर्व)

१३–जरत्कारुका अपने पितरोंके अनुरोधसे विवाहके लिये उद्यत होना … … ७५
१४–जरत्कारुद्वारा वासुकिकी बहिनका पाणिग्रहण … ७७
१५–आस्तीकका जन्म तथा मातृशापसे सर्पसत्रमें नष्ट होनेवाले नागवंशकी उनके द्वारा रक्षा … ७८
१६–कद्रू और विनताको कश्यपजीके वरदानसे अभीष्ट पुत्रोंकी प्राप्ति … … ७९
१७–मेरु पर्वतपर अमृतके लिये विचार करनेवाले देवताओंको भगवान् नारायणका समुद्र-मन्थनके लिये आदेश … … ८०
१८–देवताओं और दैत्योंद्वारा अमृतके लिये समुद्रका मन्थन, अनेक रत्नोंके साथ अमृतकी उत्पत्ति और भगवान्‌का मोहिनीरूप धारण करके दैत्योंके हाथसे अमृत ले लेना … … ८१
१९–देवताओंका अमृतपान, देवासुर-संग्राम तथा देवताओंकी विजय … … ८५
२०–कद्रू और विनताकी होड़, कद्रूद्वारा अपने पुत्रोंको शाप एवं ब्रह्माजीद्वारा उसका अनुमोदन … ८७
२१–समुद्रका विस्तारसे वर्णन … … ८८
२२–नागोंद्वारा उच्चैःश्रवाकी पूँछको काली बनाना; कद्रू और विनताका समुद्रको देखते हुए आगे बढ़ना … … ९०
२३–पराजित विनताका कद्रूकी दासी होना, गरुडकी उत्पत्ति तथा देवताओंद्वारा उनकी स्तुति … ९१
२४–गरुडके द्वारा अपने तेज और शरीरका संकोच तथा सूर्यके क्रोधजनित तीव्र तेजकी शान्तिके लिये अरुणका उनके रथपर स्थित होना … ९३
२५–सूर्यके तापसे मूर्च्छित हुए सर्पोंकी रक्षाके लिये कद्रूद्वारा इन्द्रदेवकी स्तुति … … ९५
२६–इन्द्रद्वारा की हुई वर्षासे सर्पोंकी प्रसन्नता … ९६
२७–रामणीयक द्वीपके मनोरम वनका वर्णन तथा गरुडका दास्यभावसे छूटनेके लिये सर्पोंसे उपाय पूछना … … ९७
२८–गरुडका अमृतके लिये जाना और अपनी माताकी आज्ञाके अनुसार निषादोंका भक्षण करना … ९८
२९–कश्यपजीका गरुडको हाथी और कछुएके पूर्वजन्मकी कथा सुनाना, गरुडका उन दोनोंको पकड़कर एक दिव्य वटवृक्षकी शाखापर ले जाना और उस शाखाका टूटना … … १००

३०–गरुडका कश्यपजीसे मिलना, उनकी प्रार्थनासे वालखिल्य ऋषियोंका शाखा छोड़कर तपके लिये प्रस्थान और गरुडका निर्जन पर्वतपर उस शाखाको छोड़ना १०३
३१–इन्द्रके द्वारा वालखिल्योंका अपमान और उनकी तपस्याके प्रभावसे अरुण-गरुडकी उत्पत्ति ... १०६
३२–गरुडका देवताओंके साथ युद्ध और देवताओंकी पराजय १०९
३३–गरुडका अमृत लेकर लौटना, मार्गमें भगवान् विष्णुसे वर पाना एवं उनपर इन्द्रके द्वारा वज्र-प्रहार ११०
३४–इन्द्र और गरुडकी मित्रता, गरुडका अमृत लेकर नागोंके पास आना और विनताको दासी-भावसे छुड़ाना तथा इन्द्रद्वारा अमृतका अपहरण ११२
३५–मुख्य-मुख्य नागोंके नाम ११४
३६–शेषनागकी तपस्या, ब्रह्माजीसे वर-प्राप्ति तथा पृथ्वीको सिरपर धारण करना ... ११५
३७–माताके शापसे बचनेके लिये वासुकि आदि नागोंका परस्पर परामर्श ११७
३८–वासुकिकी बहिन जरत्कारुका जरत्कारु मुनिके साथ विवाह करनेका निश्चय ... १२०
३९–ब्रह्माजीकी आज्ञासे वासुकिका जरत्कारु मुनिके साथ अपनी बहिनको ब्याहनेके लिये प्रयत्नशील होना १२१
४०–जरत्कारुकी तपस्या, राजा परीक्षित्का उपाख्यान तथा राजाके द्वारा मुनिके कंधेपर मृतक साँप रखनेके कारण दुखी हुए कृशका शृङ्गीको उत्तेजित करना १२२
४१–शृङ्गी ऋषिका राजा परीक्षित्को शाप देना और शमीकका अपने पुत्रको शान्त करते हुए शापको अनुचित बताना १२४
४२–शमीकका अपने पुत्रको समझाना और गौरमुखको राजा परीक्षित्के पास भेजना, राजाद्वारा आत्म-रक्षाकी व्यवस्था तथा तक्षक नाग और काश्यपकी बातचीत १२७
४३–तक्षकका धन देकर काश्यपको लौटा देना और छलसे राजा परीक्षित्के समीप पहुँचकर उन्हें डँसना १२९
४४–जनमेजयका राज्याभिषेक और विवाह ... १३२
४५–जरत्कारुको अपने पितरोंका दर्शन और उनसे वार्तालाप १३३
४६–जरत्कारुका शर्तके साथ विवाहके लिये उद्यत होना और नागराज वासुकिका जरत्कारु नामकी कन्याको लेकर आना १३५
४७–जरत्कारु मुनिका नागकन्याके साथ विवाह, नाग-कन्या जरत्कारुद्वारा पतिसेवा तथा पतिका उसे त्याग कर तपस्याके लिये गमन ... १३७
४८–वासुकि नागकी चिन्ता, बहिनद्वारा उसका निवारण तथा आस्तीकका जन्म एवं विद्याध्ययन १४०
४९–राजा परीक्षित्के धर्ममय आचार तथा उत्तम गुणोंका वर्णन, राजाका शिकारके लिये जाना और उनके द्वारा शमीक मुनिका तिरस्कार ... १४१
५०–शृङ्गी ऋषिका परीक्षित्को शाप, तक्षकका काश्यपको लौटाकर छलसे परीक्षित्को डँसना और पिताकी मृत्युका वृत्तान्त सुनकर जनमेजयकी तक्षकसे बदला लेनेकी प्रतिज्ञा ... १४४
५१–जनमेजयके सर्पयज्ञका उपक्रम ... १४७
५२–सर्पसत्रका आरम्भ और उसमें सर्पोंका विनाश १४८
५३–सर्पयज्ञके ऋत्विजोंकी नामावली, सर्पोंका भयंकर विनाश, तक्षकका इन्द्रकी शरणमें जाना तथा वासुकिका अपनी बहिनसे आस्तीकको यज्ञमें भेजनेके लिये कहना १४९
५४–माताकी आज्ञासे मामाको सान्त्वना देकर आस्तीकका सर्पयज्ञमें जाना १५१
५५–आस्तीकके द्वारा यजमान, यज्ञ, ऋत्विज, सदस्य-गण और अग्निदेवकी स्तुति-प्रशंसा ... १५३
५६–राजाका आस्तीकको वर देनेके लिये तैयार होना, तक्षक नागकी व्याकुलता तथा आस्तीकका वर माँगना १५५
५७–सर्पयज्ञमें दग्ध हुए प्रधान-प्रधान सर्पोंके नाम ... १५८
५८–यज्ञकी समाप्ति एवं आस्तीकका सर्पोंसे वर प्राप्त करना १५९

(अंशावतरणपर्व)

५९–महाभारतका उपक्रम १६२
६०–जनमेजयके यज्ञमें व्यासजीका आगमन, सत्कार तथा राजाकी प्रार्थनासे व्यासजीका वैशम्पायनजीसे महाभारत-कथा सुनानेके लिये कहना ... १६३
६१–कौरव-पाण्डवोंमें फूट और युद्ध होनेके वृत्तान्तका सूत्ररूपमें निर्देश १६४
६२–महाभारतकी महत्ता १६७
६३–राजा उपरिचरका चरित्र तथा सत्यवती, व्यासादि प्रमुख पात्रोंकी संक्षिप्त जन्म-कथा ... १७०
६४–ब्राह्मणोंद्वारा क्षत्रिय-वंशकी उत्पत्ति और वृद्धि तथा उस समयके धार्मिक राज्यका वर्णन; असुरोंका जन्म और उनके भारसे पीड़ित पृथ्वीका ब्रह्माजीकी शरणमें जाना तथा ब्रह्माजीका देवताओंको अपने अंशसे पृथ्वीपर जन्म लेनेका आदेश १८०

(सम्भवपर्व)

६५–मरीचि आदि महर्षियों तथा अदिति आदि दक्ष-कन्याओंके वंशका विवरण ... १८३
६६–महर्षियों तथा कश्यप-पत्नियोंकी संतान-परम्पराका वर्णन १८७
६७–देवता और दैत्य आदिके अंशावतारोंका दिग्दर्शन १९१
६८–राजा दुष्यन्तकी अद्भुत शक्ति तथा राज्यशासन-की क्षमताका वर्णन २०१
६९–दुष्यन्तका शिकारके लिये वनमें जाना और विविध हिंसक वन-जन्तुओंका वध करना ... २०२
७०–तपोवन और कण्वके आश्रमका वर्णन तथा राजा दुष्यन्तका उस आश्रममें प्रवेश ... २०४
७१–राजा दुष्यन्तका शकुन्तलाके साथ वार्तालाप, शकुन्तलाके द्वारा अपने जन्मका कारण बतलाना तथा उसी प्रसङ्गमें विश्वामित्रकी तपस्यासे इन्द्र-का चिन्तित होकर मेनकाको मुनिका तपोभंग करनेके लिये भेजना २०७
७२–मेनका-विश्वामित्र-मिलन, कन्याकी उत्पत्ति, शकुन्त पक्षियोंके द्वारा उसकी रक्षा और कण्वका उसे अपने आश्रमपर लाकर शकुन्तला नाम रखकर पालन करना ... २११
७३–शकुन्तला और दुष्यन्तका गान्धर्व विवाह और महर्षि कण्वके द्वारा उसका अनुमोदन ... २१३
७४–शकुन्तलाके पुत्रका जन्म, उसकी अद्भुत शक्ति, पुत्रसहित शकुन्तलाका दुष्यन्तके यहाँ जाना, दुष्यन्त-शकुन्तला-संवाद, आकाशवाणीद्वारा शकुन्तलाकी शुद्धिका समर्थन और भरतका राज्याभिषेक २१७
७५–दक्ष, वैवस्वत मनु तथा उनके पुत्रोंकी उत्पत्ति, पुरूरवा, नहुष और ययातिके चरित्रोंका संक्षेपसे वर्णन २३१
७६–कचका शिष्यभावसे शुक्राचार्य और देवयानी-की सेवामें संलग्न होना और अनेक कष्ट सहने-के पश्चात् मृतसंजीविनी विद्या प्राप्त करना ... २३५
७७–देवयानीका कचसे पाणिग्रहणके लिये अनुरोध, कचकी अस्वीकृति तथा दोनोंका एक-दूसरेको शाप देना २४१
७८–देवयानी और शर्मिष्ठाका कलह, शर्मिष्ठाद्वारा कुएँमें गिरायी गयी देवयानीको ययातिका निकालना और देवयानीका शुक्राचार्यजीके साथ वार्तालाप २४३
७९–शुक्राचार्यद्वारा देवयानीको समझाना और देवयानीका असंतोष २४६
८०–शुक्राचार्यका वृषपर्वाको फटकारना तथा उसे छोड़कर जानेके लिये उद्यत होना और वृषपर्वाके आदेशसे शर्मिष्ठाका देवयानीकी दासी बनकर शुक्राचार्य तथा देवयानीको संतुष्ट करना ... २४८
८१–सखियोंसहित देवयानी और शर्मिष्ठाका वन-विहार, राजा ययातिका आगमन, देवयानीकी उनके साथ बातचीत तथा विवाह ... २५१
८२–ययातिसे देवयानीको पुत्रप्राप्ति; ययाति और शर्मिष्ठाका एकान्तमिलन और उनसे एक पुत्र-का जन्म २५४
८३–देवयानी और शर्मिष्ठाका संवाद, ययातिसे शर्मिष्ठाके पुत्र होनेकी बात जानकर देवयानी-का रूठकर पिताके पास जाना, शुक्राचार्यका ययातिको बूढ़े होनेका शाप देना ... २५६
८४–ययातिका अपने पुत्र यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु और अनुसे अपनी युवावस्था देकर वृद्धावस्था लेनेके लिये आग्रह और उनके अस्वीकार करनेपर उन्हें शाप देना, फिर अपने पुत्र पूरुको जरावस्था देकर उनकी युवावस्था लेना तथा उन्हें वर-प्रदान करना २६०
८५–राजा ययातिका विषय-सेवन और वैराग्य तथा पूरुका राज्याभिषेक करके वनमें जाना ... २६३
८६–वनमें राजा ययातिकी तपस्या और उन्हें स्वर्गलोककी प्राप्ति २६६
८७–इन्द्रके पूछनेपर ययातिका अपने पुत्र पूरुको दिये हुए उपदेशकी चर्चा करना ... २६७
८८–ययातिका स्वर्गसे पतन और अष्टकका उनसे प्रश्न करना २६८
८९–ययाति और अष्टकका संवाद ... २७०
९०–अष्टक और ययातिका संवाद ... २७३
९१–ययाति और अष्टकका आश्रमधर्म-सम्बन्धी संवाद २७६
९२–अष्टक-ययाति-संवाद और ययातिद्वारा दूसरोंके दिये हुए पुण्यदानको अस्वीकार करना ... २७८
९३–राजा ययातिका वसुमान् और शिबिके प्रतिग्रहको अस्वीकार करना तथा अष्टक आदि चारों राजाओंके साथ स्वर्गमें जाना ... २८०
९४–पूरुवंशका वर्णन २८४
९५–दक्ष प्रजापतिसे लेकर पूरुवंश, भरतवंश एवं पाण्डुवंशकी परम्पराका वर्णन ... २८८
९६–महाभिषको ब्रह्माजीका शाप तथा शापग्रस्त वसुओंके साथ गङ्गाकी बातचीत ... २९५
९७–राजा प्रतीपका गङ्गाको पुत्रवधूके रूपमें स्वीकार करना और शान्तनुका जन्म, राज्याभिषेक तथा गङ्गासे मिलना २९६
९८–शान्तनु और गङ्गाका कुछ शर्तोंके साथ सम्बन्ध, वसुओंका जन्म और शापसे उद्धार तथा भीष्मकी उत्पत्ति २९९

९९–महर्षि वसिष्ठद्वारा वसुओंको शाप प्राप्त होनेकी कथा ३०१
१००–शान्तनुके रूप, गुण और सदाचारकी प्रशंसा; गङ्गाजीके द्वारा सुशिक्षित पुत्रकी प्राप्ति तथा देवव्रतकी भीष्म-प्रतिज्ञा ... ३०४
१०१–सत्यवतीके गर्भसे चित्राङ्गद और विचित्रवीर्यकी उत्पत्ति, शान्तनु और चित्राङ्गदका निधन तथा विचित्रवीर्यका राज्याभिषेक ... ३१३
१०२–भीष्मके द्वारा स्वयंवरसे काशिराजकी कन्याओंका हरण, युद्धमें सब राजाओं तथा शाल्वकी पराजय, अम्बिका और अम्बालिकाके साथ विचित्रवीर्यका विवाह तथा निधन ... ३१४
१०३–सत्यवतीका भीष्मसे राज्य ग्रहण और संतानोत्पादनके लिये आग्रह तथा भीष्मके द्वारा अपनी प्रतिज्ञा बतलाते हुए उसकी अस्वीकृति ३१९
१०४–भीष्मकी सम्मतिसे सत्यवतीद्वारा व्यासका आवाहन और व्यासजीका माताकी आज्ञासे कुरुवंशकी वृद्धिके लिये विचित्रवीर्यकी पत्नियोंके गर्भसे संतानोत्पादन करनेकी स्वीकृति देना ... ३२१
१०५–व्यासजीके द्वारा विचित्रवीर्यके क्षेत्रसे धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरकी उत्पत्ति ... ३२५
१०६–महर्षि माण्डव्यका शूलीपर चढ़ाया जाना ... ३२७
१०७–माण्डव्यका धर्मराजको शाप देना ... ३२८
१०८–धृतराष्ट्र आदिके जन्म तथा भीष्मजीके धर्मपूर्ण शासनसे कुरुदेशकी सर्वाङ्गीण उन्नतिका दिग्दर्शन ३३०
१०९–राजा धृतराष्ट्रका विवाह ... ३३२
११०–कुन्तीको दुर्वासासे मन्त्रकी प्राप्ति, सूर्यदेवका आवाहन तथा उनके संयोगसे कर्णका जन्म एवं कर्णके द्वारा इन्द्रको कवच और कुण्डलोंका दान ३३३
१११–कुन्तीद्वारा स्वयंवरमें पाण्डुका वरण और उनके साथ विवाह ... ३३६
११२–माद्रीके साथ पाण्डुका विवाह तथा राजा पाण्डुकी दिग्विजय ... ३३७
११३–राजा पाण्डुका पत्नियोंसहित वनमें निवास तथा विदुरका विवाह ... ३४०
११४–धृतराष्ट्रके गान्धारीसे एक सौ पुत्र तथा एक कन्याकी तथा सेवा करनेवाली वैश्यजातीय युवतीसे युयुत्सु नामक एक पुत्रकी उत्पत्ति ... ३४१
११५–दुःशलाके जन्मकी कथा ... ३४४
११६–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंकी नामावली ... ३४६
११७–राजा पाण्डुके द्वारा मृगरूपधारी मुनिका वध तथा उनसे शापकी प्राप्ति ... ३४७
११८–पाण्डुका अनुताप, संन्यास लेनेका निश्चय तथा पत्नियोंके अनुरोधसे वानप्रस्थ-आश्रममें प्रवेश ... ३५०
११९–पाण्डुका कुन्तीको पुत्र-प्राप्तिके लिये प्रयत्न करनेका आदेश ... ३५३
१२०–कुन्तीका पाण्डुको व्युषिताश्वके मृत शरीरसे उसकी पतिव्रता पत्नी भद्राके द्वारा पुत्र-प्राप्तिका कथन ... ३५६
१२१–पाण्डुका कुन्तीको समझाना और कुन्तीका पतिकी आज्ञासे पुत्रोत्पत्तिके लिये धर्मदेवताका आवाहन करनेके लिये उद्यत होना ... ३५९
१२२–युधिष्ठिर, भीम और अर्जुनकी उत्पत्ति ... ३६१
१२३–नकुल और सहदेवकी उत्पत्ति तथा पाण्डुपुत्रोंके नामकरण-संस्कार ... ३६६
१२४–राजा पाण्डुकी मृत्यु और माद्रीका उनके साथ चितारोहण ... ३७०
१२५–ऋषियोंका कुन्ती और पाण्डवोंको लेकर हस्तिनापुर जाना और उन्हें भीष्म आदिके हाथों सौंपना ... ३७५
१२६–पाण्डु और माद्रीकी अस्थियोंका दाह-संस्कार तथा भाई-बन्धुओंद्वारा उनके लिये जलाञ्जलिदान ... ३७७
१२७–पाण्डवों तथा धृतराष्ट्रपुत्रोंकी बालक्रीडा, दुर्योधनका भीमसेनको विष खिलाना तथा गङ्गामें ढकेलना और भीमका नागलोकमें पहुँचकर आठ कुण्डोंके दिव्य रसका पान करना ... ३७९
१२८–भीमसेनके न आनेसे कुन्ती आदिकी चिन्ता, नागलोकसे भीमसेनका आगमन तथा उनके प्रति दुर्योधनकी कुचेष्टा ... ३८४
१२९–कृपाचार्य, द्रोण और अश्वत्थामाकी उत्पत्ति तथा द्रोणको परशुरामजीसे अस्त्र-शस्त्रकी प्राप्तिकी कथा ३८७
१३०–द्रोणका द्रुपदसे तिरस्कृत हो हस्तिनापुरमें आना, राजकुमारोंसे उनकी भेंट, उनकी बीटा और अँगूठीको कुएँमेंसे निकालना एवं भीष्मका उन्हें अपने यहाँ सम्मानपूर्वक रखना ... ३९१
१३१–द्रोणाचार्यद्वारा राजकुमारोंकी शिक्षा, एकलव्यकी गुरुभक्ति तथा आचार्यद्वारा शिष्योंकी परीक्षा ३९७
१३२–अर्जुनके द्वारा लक्ष्यवेध, द्रोणका ग्राहसे छुटकारा और अर्जुनको ब्रह्मशिर नामक अस्त्रकी प्राप्ति ४०२
१३३–राजकुमारोंका रङ्गभूमिमें अस्त्र-कौशल दिखाना ४०४
१३४–भीमसेन, दुर्योधन तथा अर्जुनके द्वारा अस्त्र-कौशलका प्रदर्शन ... ४०७
१३५–कर्णका रङ्गभूमिमें प्रवेश तथा राज्याभिषेक ... ४०९
१३६–भीमसेनके द्वारा कर्णका तिरस्कार और दुर्योधनद्वारा उसका सम्मान ... ४११

१३७–द्रोणका शिष्योंद्वारा द्रुपदपर आक्रमण करवाना, अर्जुनका द्रुपदको बंदी बनाकर लाना और द्रोणद्वारा द्रुपदको आधा राज्य देकर मुक्त कर देना ४१५
१३८–युधिष्ठिरका युवराजपदपर अभिषेक, पाण्डवोंके शौर्य, कीर्ति और बलके विस्तारसे धृतराष्ट्रको चिन्ता ४२०
१३९–कणिकका धृतराष्ट्रको कूटनीतिका उपदेश ... ४२२

(जतुगृहपर्व)

१४०–पाण्डवोंके प्रति पुरवासियोंका अनुराग देखकर दुर्योधनकी चिन्ता ४२९
१४१–दुर्योधनका धृतराष्ट्रसे पाण्डवोंको वारणावत भेज देनेका प्रस्ताव ४३२
१४२–धृतराष्ट्रके आदेशसे पाण्डवोंकी वारणावत-यात्रा ४३४
१४३–दुर्योधनके आदेशसे पुरोचनका वारणावत नगरमें लाक्षागृह बनाना ४३५
१४४–पाण्डवोंकी वारणावत-यात्रा तथा उनको विदुरका गुप्त उपदेश ४३६
१४५–वारणावतमें पाण्डवोंका स्वागत, पुरोचनका सत्कारपूर्वक उन्हें ठहराना, लाक्षागृहमें निवासकी व्यवस्था और युधिष्ठिर एवं भीमसेनकी बातचीत ४३९
१४६–विदुरके भेजे हुए खनकद्वारा लाक्षागृहमें सुरंगका निर्माण ४४१
१४७–लाक्षागृहका दाह और पाण्डवोंका सुरंगके रास्ते निकल जाना ४४३
१४८–विदुरजीके भेजे हुए नाविकका पाण्डवोंको गङ्गाजीके पार उतारना ४४५
१४९–धृतराष्ट्र आदिके द्वारा पाण्डवोंके लिये शोकप्रकाश एवं जलाञ्जलि-दान तथा पाण्डवोंका वनमें प्रवेश ४४६
१५०–माता कुन्तीके लिये भीमसेनका जल ले आना, माता और भाइयोंको भूमिपर सोये देखकर भीमका विषाद एवं दुर्योधनके प्रति उनका क्रोध ४४९

(हिडिम्बवधपर्व)

१५१–हिडिम्बके भेजनेसे हिडिम्बा राक्षसीका पाण्डवोंके पास आना और भीमसेनसे उसका वार्तालाप ... ४५२
१५२–हिडिम्बका आना, हिडिम्बाका उससे भयभीत होना और भीम तथा हिडिम्बासुरका युद्ध ... ४५५
१५३–हिडिम्बाका कुन्ती आदिसे अपना मनोभाव प्रकट करना तथा भीमसेनके द्वारा हिडिम्बासुरका वध ४५९
१५४–युधिष्ठिरका भीमसेनको हिडिम्बाके वधसे रोकना, हिडिम्बाकी भीमसेनके लिये प्रार्थना, भीमसेन और हिडिम्बाका मिलन तथा घटोत्कचकी उत्पत्ति ... ४६१
१५५–पाण्डवोंको व्यासजीका दर्शन और उनका एकचक्रा नगरीमें प्रवेश ४६७

(बकवधपर्व)

१५६–ब्राह्मणपरिवारका कष्ट दूर करनेके लिये कुन्तीकी भीमसेनसे बातचीत तथा ब्राह्मणके चिन्तापूर्ण उद्गार ४६९
१५७–ब्राह्मणीका स्वयं मरनेके लिये उद्यत होकर पतिसे जीवित रहनेके लिये अनुरोध करना ... ४७२
१५८–ब्राह्मण-कन्याके त्याग और विवेकपूर्ण वचन तथा कुन्तीका उन सबके पास जाना ... ४७५
१५९–कुन्तीके पूछनेपर ब्राह्मणका उनसे अपने दुःखका कारण बताना ४७६
१६०–कुन्ती और ब्राह्मणकी बातचीत ... ४७८
१६१–भीमसेनको राक्षसके पास भेजनेके विषयमें युधिष्ठिर और कुन्तीकी बातचीत ... ४७९
१६२–भीमसेनका भोजन-सामग्री लेकर बकासुरके पास जाना और स्वयं भोजन करना तथा युद्ध करके उसे मार गिराना ४८१
१६३–बकासुरके वधसे राक्षसोंका भयभीत होकर पलायन और नगरनिवासियोंकी प्रसन्नता ... ४८३

(चैत्ररथपर्व)

१६४–पाण्डवोंका एक ब्राह्मणसे विचित्र कथाएँ सुनना ४८५
१६५–द्रोणके द्वारा द्रुपदके अपमानित होनेका वृत्तान्त ४८६
१६६–द्रुपदके यज्ञसे धृष्टद्युम्न और द्रौपदीकी उत्पत्ति ४८८
१६७–कुन्तीकी अपने पुत्रोंसे पूछकर पञ्चालदेशमें जानेकी तैयारी ४९४
१६८–व्यासजीका पाण्डवोंसे द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाना ४९५
१६९–पाण्डवोंकी पञ्चाल-यात्रा और अर्जुनके द्वारा चित्ररथ गन्धर्वकी पराजय एवं उन दोनोंकी मित्रता ४९६
१७०–सूर्यकन्या तपतीको देखकर राजा संवरणका मोहित होना ५०२
१७१–तपती और संवरणकी बातचीत ... ५०५
१७२–वसिष्ठजीकी सहायतासे राजा संवरणको तपतीकी प्राप्ति ५०७
१७३–गन्धर्वका वसिष्ठजीकी महत्ता बताते हुए किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणको पुरोहित बनानेके लिये आग्रह करना ५१०
१७४–वसिष्ठजीके अद्भुत क्षमा-बलके आगे विश्वामित्रजीका पराभव ५११
१७५–शक्तिके शापसे कल्माषपादका राक्षस होना, विश्वामित्रकी प्रेरणासे राक्षसद्वारा वसिष्ठके पुत्रोंका भक्षण और वसिष्ठका शोक ... ५१६
१७६–कल्माषपादका शापसे उद्धार और वसिष्ठजीके द्वारा उन्हें अश्मक नामक पुत्रकी प्राप्ति ... ५१९
१७७–शक्तिपुत्र पराशरका जन्म और पिताकी मृत्युका हाल सुनकर कुपित हुए पराशरको शान्त करनेके लिये वसिष्ठजीका उन्हें और्वोपाख्यान सुनाना ५२३

१७८–पितरोंद्वारा और्वके क्रोधका निवारण ... ५२४
१७९–और्व और पितरोंकी बातचीत तथा और्वका अपनी क्रोधाग्निको बड़वानलरूपसे समुद्रमें त्यागना ५२६
१८०–पुलस्त्य आदि महर्षियोंके समझानेसे पराशरजीके द्वारा राक्षससत्रकी समाप्ति ... ५२८
१८१–राजा कल्मीषपादको ब्राह्मणी आङ्गिरसीका शाप ५२९
१८२–पाण्डवोंका धौम्यको अपना पुरोहित बनाना ... ५३१

(स्वयंवरपर्व)

१८३–पाण्डवोंकी पञ्चाल-यात्रा और मार्गमें ब्राह्मणोंसे बातचीत ५३२
१८४–पाण्डवोंका द्रुपदकी राजधानीमें जाकर कुम्हारके यहाँ रहना, स्वयंवरसभाका वर्णन तथा धृष्टद्युम्नकी घोषणा ५३४
१८५–धृष्टद्युम्नका द्रौपदीके स्वयंवरमें आये हुए राजाओंका परिचय देना ... ५३७
१८६–राजाओंका लक्ष्यवेधके लिये उद्योग और असफल होना ५३८
१८७–अर्जुनका लक्ष्यवेध करके द्रौपदीको प्राप्त करना ५४१
१८८–द्रुपदको मारनेके लिये उद्यत हुए राजाओंका सामना करनेके लिये भीम और अर्जुनका उद्यत होना और उनके विषयमें भगवान् श्रीकृष्णका बलरामजीसे वार्तालाप ... ५४४
१८९–अर्जुन और भीमसेनके द्वारा कर्ण तथा शल्यकी पराजय और द्रौपदीसहित भीम-अर्जुनका अपने डेरेपर जाना ... ५४६
१९०–कुन्ती, अर्जुन और युधिष्ठिरकी बातचीत, पाँचों पाण्डवोंका द्रौपदीके साथ विवाहका विचार तथा बलराम और श्रीकृष्णकी पाण्डवोंसे भेंट ... ५४९
१९१–धृष्टद्युम्नका गुप्तरूपसे वहाँकी सब हाल देखकर राजा द्रुपदके पास आना तथा द्रौपदीके विषयमें द्रुपदका प्रश्न ५५२

(वैवाहिकपर्व)

१९२–धृष्टद्युम्नके द्वारा द्रौपदी तथा पाण्डवोंका हाल सुनकर राजा द्रुपदका उनके पास पुरोहितको भेजना तथा पुरोहित और युधिष्ठिरकी बातचीत ५५४
१९३–पाण्डवों और कुन्तीका द्रुपदके घरमें जाकर सम्मानित होना और राजा द्रुपदद्वारा पाण्डवोंके शील-स्वभावकी परीक्षा ... ५५७
१९४–द्रुपद और युधिष्ठिरकी बातचीत तथा व्यासजीका आगमन ५५९
१९५–व्यासजीके सामने द्रौपदीका पाँच पुरुषोंसे विवाह होनेके विषयमें द्रुपद, धृष्टद्युम्न और युधिष्ठिरका अपने-अपने विचार व्यक्त करना ५६२
१९६–व्यासजीका द्रुपदको पाण्डवों तथा द्रौपदीके पूर्वजन्मकी कथा सुनाकर दिव्य दृष्टि देना और द्रुपदका उनकी दिव्य रूपोंकी झाँकी करना ... ५६४
१९७–द्रौपदीका पाँचों पाण्डवोंके साथ विवाह ... ५६९
१९८–कुन्तीका द्रौपदीको उपदेश और आशीर्वाद तथा भगवान् श्रीकृष्णका पाण्डवोंके लिये उपहार भेजना ५७१

(विदुरागमनराज्यलम्भपर्व)

१९९–पाण्डवोंके विवाहसे दुर्योधन आदिकी चिन्ता, धृतराष्ट्रका पाण्डवोंके प्रति प्रेमका दिखावा और दुर्योधनकी कुमन्त्रणा ५७२
२००–धृतराष्ट्र और दुर्योधनकी बातचीत, शत्रुओंको वशमें करनेके उपाय ५७७
२०१–पाण्डवोंको पराक्रमसे दबानेके लिये कर्णकी सम्मति ५७९
२०२–भीष्मकी दुर्योधनसे पाण्डवोंको आधा राज्य देनेकी सलाह ५८०
२०३–द्रोणाचार्यकी पाण्डवोंको उपहार भेजने और बुलानेकी सम्मति तथा कर्णके द्वारा उनकी सम्मतिका विरोध करनेपर द्रोणाचार्यकी फटकार ५८२
२०४–विदुरजीकी सम्मति—द्रोण और भीष्मके वचनोंका ही समर्थन ५८४
२०५–धृतराष्ट्रकी आज्ञासे विदुरका द्रुपदके यहाँ जाना और पाण्डवोंको हस्तिनापुर भेजनेका प्रस्ताव करना ५८६
२०६–पाण्डवोंका हस्तिनापुरमें आना और आधा राज्य पाकर इन्द्रप्रस्थ नगरका निर्माण करना एवं भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीका द्वारकाके लिये प्रस्थान ५८८
२०७–पाण्डवोंके यहाँ नारदजीका आगमन और उनमें फूट न हो इसके लिये कुछ नियम बनानेके लिये प्रेरणा करके सुन्द और उपसुन्दकी कथाको प्रस्तावित करना ५९७
२०८–सुन्द-उपसुन्दकी तपस्या, ब्रह्माजीके द्वारा उन्हें वर प्राप्त होना और दैत्योंके यहाँ आनन्दोत्सव ६००
२०९–सुन्द और उपसुन्दद्वारा क्रूरतापूर्ण कर्मोंसे त्रिलोकीपर विजय प्राप्त करना ... ६०२
२१०–तिलोत्तमाकी उत्पत्ति, उसके रूपका आकर्षण तथा सुन्दोपसुन्दको मोहित करनेके लिये उसका प्रस्थान ६०४
२११–तिलोत्तमापर मोहित होकर सुन्द-उपसुन्दका आपसमें लड़ना और मारा जाना एवं तिलोत्तमाको ब्रह्माजीद्वारा वर-प्राप्ति तथा पाण्डवोंका द्रौपदीके विषयमें नियम-निर्धारण ... ६०६

(अर्जुनवनवासपर्व)

२१२–अर्जुनके द्वारा ब्राह्मणके गोधनकी रक्षाके लिये नियमभङ्ग और वनकी ओर प्रस्थान ... ६०८
२१३–अर्जुनका गङ्गाद्वारमें ठहरना और वहाँ उनका उलूपीके साथ मिलन ६११
२१४–अर्जुनका पूर्वदिशाके तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए मणिपूरमें जाकर चित्राङ्गदाका पाणिग्रहण करके उसके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न करना ... ६१३
२१५–अर्जुनके द्वारा वर्गा अप्सराका ग्राहयोनिसे उद्धार तथा वर्गाकी आत्मकथाका आरम्भ ... ६१५
२१६–वर्गाकी प्रार्थनासे अर्जुनका शेष चारों अप्सराओंको भी शापमुक्त करके मणिपूर जाना और चित्राङ्गदासे मिलकर गोकर्ण तीर्थको प्रस्थान करना ६१७
२१७–अर्जुनका प्रभासतीर्थमें श्रीकृष्णसे मिलना और उन्हींके साथ उनका रैवतक पर्वत एवं द्वारकापुरीमें आना ६१९

(सुभद्राहरणपर्व)

२१८–रैवतक पर्वतके उत्सवमें अर्जुनका सुभद्रापर आसक्त होना और श्रीकृष्ण तथा युधिष्ठिरकी अनुमतिसे उसे हर ले जानेका निश्चय करना ६२१
२१९–यादवोंकी युद्धके लिये तैयारी और अर्जुनके प्रति बलरामजीके क्रोधपूर्ण उद्गार ... ६२३

(हरणाहरणपर्व)

२२०–द्वारकामें अर्जुन और सुभद्राका विवाह, अर्जुनके इन्द्रप्रस्थ पहुँचनेपर श्रीकृष्ण आदिका दहेज लेकर वहाँ जाना, द्रौपदीके पुत्र एवं अभिमन्युके जन्म-संस्कार और शिक्षा ... ६२५

(खाण्डवदाहपर्व)

२२१–युधिष्ठिरके राज्यकी विशेषता, कृष्ण और अर्जुनका खाण्डववनमें जाना तथा उन दोनोंके पास ब्राह्मण-वेषधारी अग्निदेवका आगमन ... ६३१
२२२–अग्निदेवका खाण्डववनको जलानेके लिये श्रीकृष्ण और अर्जुनसे सहायताकी याचना करना, अग्निदेव उस वनको क्यों जलाना चाहते थे, इसे बतानेके प्रसङ्गमें राजा श्वेतकिकी कथा ... ६३४
२२३–अर्जुनका अग्निकी प्रार्थना स्वीकार करके उनसे दिव्य धनुष एवं रथ आदि माँगना ... ६३९
२२४–अग्निदेवका अर्जुन और श्रीकृष्णको दिव्य धनुष, अक्षय तरकस, दिव्य रथ और चक्र आदि प्रदान करना तथा उन दोनोंकी सहायतासे खाण्डववन-को जलाना ६४०
२२५–खाण्डववनमें जलते हुए प्राणियोंकी दुर्दशा और इन्द्रके द्वारा जल बरसाकर आग बुझानेकी चेष्टा ६४३
२२६–देवताओं आदिके साथ श्रीकृष्ण और अर्जुनका युद्ध ६४५

(मयदर्शनपर्व)

२२७–देवताओंकी पराजय, खाण्डववनका विनाश और मयासुरकी रक्षा ६४८
२२८–शार्ङ्गकोपाख्यान—मन्दपाल मुनिके द्वारा जरिता-शार्ङ्गिकासे पुत्रोंकी उत्पत्ति और उन्हें बचानेके लिये मुनिकी अग्निदेवकी स्तुति करना ... ६५१
२२९–जरिताका अपने बच्चोंकी रक्षाके लिये चिन्तित होकर विलाप करना ६५४
२३०–जरिता और उसके बच्चोंका संवाद ... ६५५
२३१–शार्ङ्गकोंके स्तवनसे प्रसन्न होकर अग्निदेवका उन्हें अभय देना ६५७
२३२–मन्दपालका अपने बाल-बच्चोंसे मिलना ... ६५९
२३३–इन्द्रदेवका श्रीकृष्ण और अर्जुनको वरदान तथा श्रीकृष्ण, अर्जुन और मयासुरका अग्निसे विदा लेकर एक साथ यमुनातटपर बैठना ... ६६१

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१–नमस्कार १
२–अवतारके लिये प्रार्थना १८३
३–सिंह-बाघोंमें बालक भरत ... २०१
४–कुमार भीमसेनका साँपोंपर कोप ... ३८३
५–एकलव्यकी गुरु-दक्षिणा ३९७
६–द्रौपदी-स्वयंवर ५४१
७–प्रभासक्षेत्रमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका मिलन ... ५९७

(सादा)

८–उग्रश्रवाजीके द्वारा महाभारतकी कथा ... ६३
९–रुरुके दर्शनसे सहस्रपाद ऋषिकी सर्पयोनिसे मुक्ति ... ७२
१०–भगवान् विष्णुने चक्रसे राहुका सिर काट दिया ... ८९
११–ब्रह्माजीने शेषजीको वरदान तथा पृथ्वी धारण करनेकी आज्ञा दी ... ११६
१२–जरत्कारु ऋषिने पत्नीका परित्याग कर दिया ... १३९
१३–आस्तीकने तक्षकको अग्नि-कुण्डमें गिरनेसे रोक दिया ... १५९
१४–शुक्राचार्य और कच ... २३६
१५–ययातिका पतन ... २६९
१६–देवव्रत (भीष्म) की भीषण प्रतिज्ञा ... ३१२
१७–अणिमाण्डव्य ऋषि शूलीपर ... ३२९
१८–शतशृङ्ग पर्वतपर पाण्डुका तप ... ३५३
१९–बालक भीमके शरीरकी चोटसे चट्टान टूट गयी ... ३६२
२०–सुरंगद्वारा मातासहित पाण्डवोंका लाक्षागृहसे निकलना ... ४४४
२१–भीम अपने चारों भाइयोंको तथा माताको उठाकर ले चले ... ४४४
२२–हिडिम्ब-वध ... ४६१
२३–भीमसेन और घटोत्कच ... ४६१
२४–पाण्डवोंकी व्यासजीसे भेंट ... ४६७
२५–धृष्टद्युम्नकी घोषणा ... ४६७
२६–कुन्तीद्वारा ब्राह्मण-दम्पतिको सान्त्वना ... ४७१
२७–बकासुरपर भीमका प्रहार ... ४७१
२८–विश्वामित्रकी सेनापर नन्दिनीका कोप ... ५१४
२९–पाण्डव, द्रुपद और व्यासजीमें बातचीत ... ५६७
३०–व्यासजीद्वारा पाण्डवोंके पूर्व-जन्मके वृत्तान्तका वर्णन ... ५६७
३१–सुन्द और उपसुन्दका अत्याचार ... ६०७
३२–तिलोत्तमाके लिये सुन्द और उपसुन्दका युद्ध ... ६०७
३३–सुभद्राका कुन्ती और द्रौपदकी सेवामें उपस्थित होना ... ६२७
३४–श्रीकृष्ण और अर्जुनका देवताओं-से युद्ध ... ६४१
३५–अर्जुन और श्रीकृष्णको इन्द्रका वरदान ... ६४१
३६–(६५ इकरंगे लाइन चित्र फरमोंमें)

श्रीहरिः

सभापर्व

अध्याय विषय	पृष्ठ-संख्या
(सभाक्रियापर्व)	
१—भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञाके अनुसार मयासुर-द्वारा सभाभवन बनानेकी तैयारी ...	६६५
२—श्रीकृष्णकी द्वारका-यात्रा ...	६६७
३—मयासुरका भीमसेन और अर्जुनको गदा और शङ्ख लाकर देना तथा उसके द्वारा अद्भुत सभाका निर्माण ...	६६९
४—मयद्वारा निर्मित सभाभवनमें धर्मराज युधिष्ठिरका प्रवेश तथा सभामें स्थित महर्षियों और राजाओं आदिका वर्णन ...	६७२
(लोकपालसभाख्यानपर्व)	
५—नारदजीका युधिष्ठिरकी सभामें आगमन और प्रश्नके रूपमें युधिष्ठिरको शिक्षा देना ...	६७५
६—युधिष्ठिरकी दिव्य सभाओंके विषयमें जिज्ञासा	६८५
७—इन्द्रसभाका वर्णन ...	६८७
८—यमराजकी सभाका वर्णन ...	६८९
९—वरुणकी सभाका वर्णन ...	६९१
१०—कुबेरकी सभाका वर्णन ...	६९३
११—ब्रह्माजीकी सभाका वर्णन ...	६९५
१२—राजा हरिश्चन्द्रका माहात्म्य तथा युधिष्ठिरके प्रति राजा पाण्डुका संदेश ...	६९९
(राजसूयारम्भपर्व)	
१३—युधिष्ठिरका राजसूयविषयक संकल्प और उसके विषयमें भाइयों, मन्त्रियों, मुनियों तथा श्रीकृष्णसे सलाह लेना ...	७०२
१४—श्रीकृष्णकी राजसूययज्ञके लिये सम्मति ...	७०६
१५—जरासंधके विषयमें राजा युधिष्ठिर, भीम और श्रीकृष्णकी बातचीत ...	७११
१६—जरासंधको जीतनेके विषयमें युधिष्ठिरके उत्साहहीन होनेपर अर्जुनका उत्साहपूर्ण उद्गार ...	७१३
१७—श्रीकृष्णके द्वारा अर्जुनकी बातका अनुमोदन तथा युधिष्ठिरको जरासंधकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग सुनाना ...	७१४
१८—जरा राक्षसीका अपना परिचय देना और उसीके नामपर बालकका नामकरण होना ...	७१९
१९—चण्डकौशिक मुनिके द्वारा जरासंधका भविष्य-कथन तथा पिताके द्वारा उसका राज्याभिषेक करके वनमें जाना ...	७२०
(जरासंधवधपर्व)	
२०—युधिष्ठिरके अनुमोदन करनेपर श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेनकी मगध-यात्रा ...	७२२
२१—श्रीकृष्णद्वारा मगधकी राजधानीकी प्रशंसा, चैत्यक पर्वतशिखर और नगाड़ोंको तोड़-फोड़कर तीनोंका नगर एवं राजभवनमें प्रवेश तथा श्रीकृष्ण और जरासंधका संवाद ...	७२४
२२—जरासंध और श्रीकृष्णका संवाद तथा जरासंधकी युद्धके लिये तैयारी एवं जरासंधका श्रीकृष्णके साथ वैर होनेके कारणका वर्णन ...	७२८
२३—जरासंधका भीमसेनके साथ युद्ध करनेका निश्चय, भीम और जरासंधका भयानक युद्ध तथा जरासंधकी थकावट ...	७३३
२४—भीमके द्वारा जरासंधका वध, बंदी राजाओंकी मुक्ति, श्रीकृष्ण आदिका भेंट लेकर इन्द्रप्रस्थमें आना और वहाँसे श्रीकृष्णका द्वारका जाना ...	७३६
(दिग्विजयपर्व)	
२५—अर्जुन आदि चारों भाइयोंकी दिग्विजयके लिये यात्रा ...	७४१
२६—अर्जुनके द्वारा अनेक देशों, राजाओं तथा भगदत्तकी पराजय ...	७४३
२७—अर्जुनका अनेक पर्वतीय देशोंपर विजय पाना	७४४
२८—किम्पुरुष, हाटक तथा उत्तरकुरुपर विजय प्राप्त करके अर्जुनका इन्द्रप्रस्थ लौटना ...	७४६
२९—भीमसेनका पूर्वदिशाको जीतनेके लिये प्रस्थान और विभिन्न देशोंपर विजय पाना ...	७५१
३०—भीमका पूर्वदिशाके अनेक देशों तथा राजाओंको जीतकर भारी धन-सम्पत्तिके साथ इन्द्रप्रस्थमें लौटना ...	७५२
३१—सहदेवके द्वारा दक्षिण दिशाकी विजय ...	७५४
३२—नकुलके द्वारा पश्चिम दिशाकी विजय ...	७६५

(राजसूयपर्व)

३३–युधिष्ठिरके शासनकी विशेषता, श्रीकृष्णकी आज्ञासे युधिष्ठिरका राजसूययज्ञकी दीक्षा लेना तथा राजाओं, ब्राह्मणों एवं सगे-सम्बन्धियोंको बुलानेके लिये निमन्त्रण भेजना ... ७६६
३४–युधिष्ठिरके यज्ञमें सब देशके राजाओं, कौरवों तथा यादवोंका आगमन और उन सबके भोजन-विश्राम आदिकी सुव्यवस्था ... ७७०
३५–राजसूययज्ञका वर्णन ... ७७२

(अर्घाभिहरणपर्व)

३६–राजसूययज्ञमें ब्राह्मणों तथा राजाओंका समागम, श्रीनारदजीके द्वारा श्रीकृष्ण-महिमाका वर्णन और भीष्मजीकी अनुमतिसे श्रीकृष्णकी अग्रपूजा ७७४
३७–शिशुपालके आक्षेपपूर्ण वचन ... ७७६
३८–युधिष्ठिरका शिशुपालको समझाना और भीष्मजीका उसके आक्षेपोंका उत्तर देना ... ७७९
३९–सहदेवकी राजाओंको चुनौती तथा क्षुब्ध हुए शिशुपाल आदि नरेशोंका युद्धके लिये उद्यत होना ८२६

(शिशुपालवधपर्व)

४०–युधिष्ठिरकी चिन्ता और भीष्मजीका उन्हें सान्त्वना देना ८२८
४१–शिशुपालद्वारा भीष्मकी निन्दा ... ८२९
४२–शिशुपालकी बातोंपर भीमसेनका क्रोध और भीष्मजीका उन्हें शान्त करना ... ८३२
४३–भीष्मजीके द्वारा शिशुपालके जन्मके वृत्तान्तका वर्णन ८३३
४४–भीष्मकी बातोंसे चिढ़े हुए शिशुपालका उन्हें फटकारना तथा भीष्मका श्रीकृष्णसे युद्ध करनेके लिये समस्त राजाओंको चुनौती देना ... ८३५
४५–श्रीकृष्णके द्वारा शिशुपालका वध, राजसूययज्ञकी समाप्ति तथा सभी ब्राह्मणों, राजाओं और श्रीकृष्णका स्वदेश-गमन ८३८

(द्यूतपर्व)

४६–व्यासजीकी भविष्यवाणीसे युधिष्ठिरकी चिन्ता और समत्वपूर्ण बर्ताव करनेकी प्रतिज्ञा ... ८४५
४७–दुर्योधनका मयनिर्मित सभाभवनको देखना और पग-पगपर भ्रमके कारण उपहासका पात्र बनना तथा युधिष्ठिरके वैभवको देखकर उसका चिन्तित होना ८४७
४८–पाण्डवोंपर विजय प्राप्त करनेके लिये शकुनि और दुर्योधनकी बातचीत ८५०
४९–धृतराष्ट्रके पूछनेपर दुर्योधनका अपनी चिन्ता बताना और द्यूतके लिये धृतराष्ट्रसे अनुरोध करना एवं धृतराष्ट्रका विदुरको इन्द्रप्रस्थ जानेका आदेश ८५२
५०–दुर्योधनका धृतराष्ट्रको अपने दुःख और चिन्ताका कारण बताना ८५७
५१–युधिष्ठिरको भेंटमें मिली हुई वस्तुओंका दुर्योधन-द्वारा वर्णन ८५९
५२–युधिष्ठिरको भेंटमें मिली हुई वस्तुओंका दुर्योधन-द्वारा वर्णन ८६३
५३–दुर्योधनद्वारा युधिष्ठिरके अभिषेकका वर्णन ... ८६६
५४–धृतराष्ट्रका दुर्योधनको समझाना ... ८६८
५५–दुर्योधनका धृतराष्ट्रको उकसाना ... ८६९
५६–धृतराष्ट्र और दुर्योधनकी बातचीत, द्यूतक्रीडाके लिये सभानिर्माण और धृतराष्ट्रका युधिष्ठिरको बुलानेके लिये विदुरको आज्ञा देना ... ८७१
५७–विदुर और धृतराष्ट्रकी बातचीत ... ८७३
५८–विदुर और युधिष्ठिरकी बातचीत तथा युधिष्ठिरका हस्तिनापुरमें जाकर सबसे मिलना ... ८७४
५९–जूएके अनौचित्यके सम्बन्धमें युधिष्ठिर और शकुनिका संवाद ८७८
६०–द्यूतक्रीड़ाका आरम्भ ८८०
६१–जूएमें शकुनिके छलसे प्रत्येक दाँवपर युधिष्ठिरकी हार ८८१
६२–धृतराष्ट्रको विदुरकी चेतावनी ... ८८४
६३–विदुरजीके द्वारा जूएका घोर विरोध ... ८८५
६४–दुर्योधनका विदुरको फटकारना और विदुरका उसे चेतावनी देना ८८६
६५–युधिष्ठिरका धन, राज्य, भाइयों तथा द्रौपदी-सहित अपनेको भी हारना ८८९
६६–विदुरका दुर्योधनको फटकारना ... ८९२
६७–प्रातिकामीके बुलानेसे न आनेपर दुःशासनका सभामें द्रौपदीको केश पकड़कर घसीटकर लाना एवं सभासदोंसे द्रौपदीका प्रश्न ८९४
६८–भीमसेनका क्रोध एवं अर्जुनका उन्हें शान्त करना, विकर्णकी धर्मसङ्गत बातका कर्णके द्वारा विरोध, द्रौपदीका चीरहरण एवं भगवान्‌द्वारा उसकी लज्जा-रक्षा तथा विदुरके द्वारा प्रह्लादका उदाहरण देकर सभासदोंको विरोधके लिये प्रेरित करना ८९९

६९–द्रौपदीका चेतावनीयुक्त विलाप एवं भीष्मका वचन ९०६
७०–दुर्योधनके छल-कपटयुक्त वचन और भीमसेनका रोषपूर्ण उद्‌गार ९०८
७१–कर्ण और दुर्योधनके वचन, भीमसेनकी प्रतिज्ञा, विदुरकी चेतावनी और द्रौपदीको धृतराष्ट्रसे वर-प्राप्ति ९०९
७२–शत्रुओंको मारनेके लिये उद्यत हुए भीमको युधिष्ठिरका शान्त करना ९१३
७३–धृतराष्ट्रका युधिष्ठिरको सारा धन लौटाकर एवं समझा-बुझाकर इन्द्रप्रस्थ जानेका आदेश देना ९१४

(अनुद्यूतपर्व)

७४–दुर्योधनका धृतराष्ट्रसे अर्जुनकी वीरता बतलाकर पुनः द्यूतक्रीडाके लिये पाण्डवोंको बुलानेका अनुरोध और उनकी स्वीकृति ... ९१६
७५–गान्धारीकी धृतराष्ट्रको चेतावनी और धृतराष्ट्रका अस्वीकार करना ९२२
७६–सबके मना करनेपर भी धृतराष्ट्रकी आज्ञासे युधिष्ठिरका पुनः जूआ खेलना और हारना ... ९२३
७७–दुःशासनद्वारा पाण्डवोंका उपहास एवं भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवकी शत्रुओंको मारनेके लिये भीषण प्रतिज्ञा ९२५
७८–युधिष्ठिरका धृतराष्ट्र आदिसे विदा लेना, विदुरका कुन्तीको अपने यहाँ रखनेका प्रस्ताव और पाण्डवोंको धर्मपूर्वक रहनेका उपदेश देना ... ९२९
७९–द्रौपदीका कुन्तीसे विदा लेना तथा कुन्तीका विलाप एवं नगरके नर-नारियोंका शोकातुर होना ... ९३०
८०–वनगमनके समय पाण्डवोंकी चेष्टा और प्रजाजनों-की शोकातुरताके विषयमें धृतराष्ट्र तथा विदुरका संवाद और शरणागत कौरवोंको द्रोणाचार्यका आश्वासन ९३५
८१–धृतराष्ट्रकी चिन्ता और उनका संजयके साथ वार्तालाप ९४०

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१–श्रीकृष्णका मयासुरसे सभानिर्माणके लिये प्रस्ताव ६६५
२–वृन्दावनमें श्रीकृष्ण ... ७९७

(सादा)

३–पाण्डवोंद्वारा देवर्षि नारदका पूजन ... ६७६
४–जरासंधके भवनमें श्रीकृष्ण, भीमसेन और अर्जुन ७२६
५–भीमसेन और जरासंधका युद्ध ... ७२६
६–भीष्मका युधिष्ठिरको श्रीकृष्णकी महिमा बताना ७७७
७–शिशुपालका युद्धके लिये उद्योग ... ७७७
८–भूमिका भगवान्‌को अदितिके कुण्डल देना ... ८०८
९–शिशुपालके वधके लिये भगवान्‌का हाथमें चक्र ग्रहण करना ८४०
१०–दुर्योधनका स्थलके भ्रमसे जलमें गिरना ... ८४०
११–द्यूत-क्रीडामें युधिष्ठिरकी पराजय ... ८९२
१२–दुःशासनका द्रौपदीके केश पकड़कर खींचना ... ८९२
१३–द्रौपदी-चीर-हरण ... ९०३
१४–गान्धारीका धृतराष्ट्रको समझाना ... ९२२
१५–(४३ इकरंगे लाइन चित्र फरमोंमें)

(सभापर्व सम्पूर्ण)
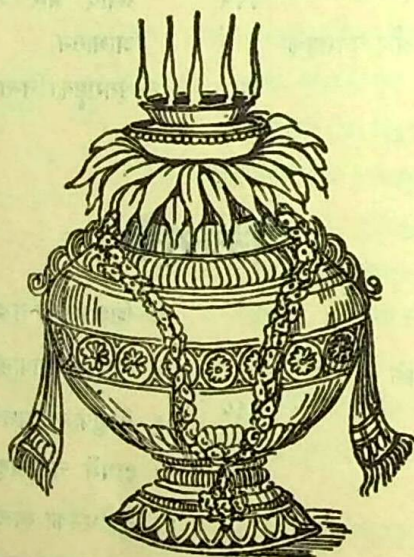
श्रीहरिः

वनपर्व

अध्याय — विषय — पृष्ठ-संख्या

(अरण्यपर्व)

१–पाण्डवोंका वनगमन, पुरवासियोंद्वारा उनका अनुगमन और युधिष्ठिरके अनुरोध करनेपर उनमेंसे बहुतोंका लौटना तथा पाण्डवोंका प्रमाणकोटितीर्थमें रात्रिवास ९४५
२–धनके दोष, अतिथि-सत्कारकी महत्ता तथा कल्याणके उपायोंके विषयमें धर्मराज युधिष्ठिरसे ब्राह्मणों तथा शौनकजीकी बातचीत ९४९
३–युधिष्ठिरके द्वारा अन्नके लिये भगवान् सूर्यकी उपासना और उनसे अक्षयपात्रकी प्राप्ति ... ९५५
४–विदुरजीका धृतराष्ट्रको हितकी सलाह देना और धृतराष्ट्रका रुष्ट होकर महलमें चला जाना ... ९६१
५–पाण्डवोंका काम्यकवनमें प्रवेश और विदुरजीका वहाँ जाकर उनसे मिलना और बातचीत करना ९६३
६–धृतराष्ट्रका संजयको भेजकर विदुरको वनसे बुलवाना और उनसे क्षमा-प्रार्थना ... ९६६
७–दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि और कर्णकी सलाह, पाण्डवोंका वध करनेके लिये उनका वनमें जानेकी तैयारी तथा व्यासजीका आकर उनको रोकना ९६८
८–व्यासजीका धृतराष्ट्रसे दुर्योधनके अन्यायको रोकनेके लिये अनुरोध ९६९
९–व्यासजीके द्वारा सुरभि और इन्द्रके उपाख्यानका वर्णन तथा उनका पाण्डवोंके प्रति दया दिखलाना ९७०
१०–व्यासजीका जाना, मैत्रेयजीका धृतराष्ट्र और दुर्योधनसे पाण्डवोंके प्रति सद्भावका अनुरोध तथा दुर्योधनके अशिष्ट व्यवहारसे रुष्ट होकर उसे शाप देना ९७२

(किर्मीरवधपर्व)

११–भीमसेनके द्वारा किर्मीरके वधकी कथा ... ९७५

(अर्जुनाभिगमनपर्व)

१२–अर्जुन और द्रौपदीके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति, द्रौपदीका भगवान् श्रीकृष्णसे अपने प्रति किये गये अपमान और दुःखका वर्णन और भगवान् श्रीकृष्ण, अर्जुन एवं धृष्टद्युम्नका उसे आश्वासन देना ९८०
१३–श्रीकृष्णका जूएके दोष बताते हुए पाण्डवोंपर आयी हुई विपत्तिमें अपनी अनुपस्थितिको कारण मानना ९८९
१४–द्यूतके समय न पहुँचनेमें श्रीकृष्णके द्वारा शाल्वके साथ युद्ध करने और सौभविमानसहित उसे नष्ट करनेका संक्षिप्त वर्णन ९९०
१५–सौभ-नाशकी विस्तृत कथाके प्रसङ्गमें द्वारकामें युद्धसम्बन्धी रक्षात्मक तैयारियोंका वर्णन ... ९९२
१६–शाल्वकी विशाल सेनाके आक्रमणका यादवसेनाद्वारा प्रतिरोध, साम्बद्वारा क्षेमवृद्धिकी पराजय, वेगवान्‌का वध तथा चारुदेष्णद्वारा विविन्ध्यदैत्यका वध एवं प्रद्युम्नद्वारा सेनाको आश्वासन ... ९९४
१७–प्रद्युम्न और शाल्वका घोर युद्ध ... ९९७
१८–मूर्च्छावस्थामें सारथिके द्वारा रणभूमिसे बाहर लाये जानेपर प्रद्युम्नका अनुताप और इसके लिये सारथिको उपालम्भ देना ... ९९८
१९–प्रद्युम्नके द्वारा शाल्वकी पराजय ... १००१
२०–श्रीकृष्ण और शाल्वका भीषण युद्ध ... १००३
२१–श्रीकृष्णका शाल्वकी मायासे मोहित होकर पुनः सजग होना १००५
२२–शाल्ववधोपाख्यानकी समाप्ति और युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर श्रीकृष्ण, धृष्टद्युम्न तथा अन्य सब राजाओंका अपने-अपने नगरको प्रस्थान ... १००७
२३–पाण्डवोंका द्वैतवनमें जानेके लिये उद्यत होना और प्रजावर्गकी व्याकुलता ... १०११
२४–पाण्डवोंका द्वैतवनमें जाना ... १०१३
२५–महर्षि मार्कण्डेयका पाण्डवोंको धर्मका आदेश देकर उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान ... १०१५
२६–दल्भपुत्र बकका युधिष्ठिरको ब्राह्मणोंका महत्त्व बतलाना १०१७
२७–द्रौपदीका युधिष्ठिरसे उनके शत्रुविषयक क्रोधको उभाड़नेके लिये संतापपूर्ण वचन ... १०१९
२८–द्रौपदीद्वारा प्रह्लाद-बलि-संवादका वर्णन—तेज और क्षमाके अवसर १०२२
२९–युधिष्ठिरके द्वारा क्रोधकी निन्दा और क्षमाभावकी विशेष प्रशंसा १०२४
३०–दुःखसे मोहित द्रौपदीका युधिष्ठिरकी बुद्धि, धर्म एवं ईश्वरके न्यायपर आक्षेप ... १०२८
३१–युधिष्ठिरद्वारा द्रौपदीके आक्षेपका समाधान तथा ईश्वर, धर्म और महापुरुषोंके आदरसे लाभ और अनादरसे हानि ... १०३१

३२–द्रौपदीका पुरुषार्थको प्रधान मानकर पुरुषार्थ करनेके लिये जोर देना १०३४
३३–भीमसेनका पुरुषार्थकी प्रशंसा करना और युधिष्ठिरको उत्तेजित करते हुए क्षत्रिय-धर्मके अनुसार युद्ध छेड़नेका अनुरोध ... १०३८
३४–धर्म और नीतिकी बात कहते हुए युधिष्ठिरकी अपनी प्रतिज्ञाके पालनरूप धर्मपर ही डटे रहनेकी घोषणा १०४४
३५–दुःखित भीमसेनका युधिष्ठिरको युद्धके लिये उत्साहित करना १०४७
३६–युधिष्ठिरका भीमसेनको समझाना, व्यासजीका आगमन और युधिष्ठिरको प्रतिस्मृतिविद्या-प्रदान तथा पाण्डवोंका पुनः काम्यकवनगमन १०४९
३७–अर्जुनका सब भाई आदिसे मिलकर इन्द्रकील पर्वतपर जाना एवं इन्द्रका दर्शन करना ... १०५२

(कैरातपर्व)

३८–अर्जुनकी उग्र तपस्या और उसके विषयमें ऋषियोंका भगवान् शङ्करके साथ वार्तालाप ... १०५६
३९–भगवान् शङ्कर और अर्जुनका युद्ध, अर्जुनपर उनका प्रसन्न होना एवं अर्जुनके द्वारा भगवान् शङ्करकी स्तुति १०५९
४०–भगवान् शङ्करका अर्जुनको वरदान देकर अपने धामको प्रस्थान ... १०६५
४१–अर्जुनके पास दिक्पालोंका आगमन एवं उन्हें दिव्यास्त्र-प्रदान तथा इन्द्रका उन्हें स्वर्गमें चलनेका आदेश देना ... १०६७

(इन्द्रलोकाभिगमनपर्व)

४२–अर्जुनका हिमालयसे विदा होकर मातलिके साथ स्वर्गलोकको प्रस्थान ... १०७०
४३–अर्जुनद्वारा देवराज इन्द्रका दर्शन तथा इन्द्र-सभामें उनका स्वागत ... १०७३
४४–अर्जुनको अस्त्र और सङ्गीतकी शिक्षा ... १०७५
४५–चित्रसेन और उर्वशीका वार्तालाप ... १०७६
४६–उर्वशीका कामपीड़ित होकर अर्जुनके पास जाना और उनके अस्वीकार करनेपर उन्हें शाप देकर लौट आना ... १०७७
४७–लोमश मुनिका स्वर्गमें इन्द्र और अर्जुनसे मिलकर उनका संदेश ले काम्यकवनमें आना ... १०८२
४८–दुःखित धृतराष्ट्रका संजयके सम्मुख अपने पुत्रों-के लिये चिन्ता करना ... १०८४
४९–संजयके द्वारा धृतराष्ट्रकी बातोंका अनुमोदन और धृतराष्ट्रका संताप ... १०८६
५०–वनमें पाण्डवोंका आहार ... १०८०
५१–संजयका धृतराष्ट्रके प्रति श्रीकृष्णादिके द्वारा की हुई दुर्योधनादिके वधकी प्रतिज्ञाका वृत्तान्त सुनाना १०८८

(नलोपाख्यानपर्व)

५२–भीमसेन-युधिष्ठिर-संवाद, बृहदश्वका आगमन तथा युधिष्ठिरके पूछनेपर बृहदश्वके द्वारा नलोपाख्यानकी प्रस्तावना ... १०९१
५३–नल-दमयन्तीके गुणोंका वर्णन, उनका परस्पर अनुराग और हंसका दमयन्ती और नलको एक दूसरेके संदेश सुनाना ... १०९५
५४–स्वर्गमें नारद और इन्द्रकी बातचीत, दमयन्तीके स्वयंवरके लिये राजाओं तथा लोकपालोंका प्रस्थान १०९८
५५–नलका दूत बनकर राजमहलमें जाना और दमयन्तीको देवताओंका संदेश सुनाना ... ११०
५६–नलका दमयन्तीसे वार्तालाप करना और लौट-कर देवताओंको उसका संदेश सुनाना ... ११०
५७–स्वयंवरमें दमयन्तीद्वारा नलका वरण, देवताओं-का नलको वर देना, देवताओं और राजाओं-का प्रस्थान, नल-दमयन्तीका विवाह एवं नलका यज्ञानुष्ठान और संतानोत्पादन ... ११०
५८–देवताओंके द्वारा नलके गुणोंका गान और उनके निषेध करनेपर भी नलके विरुद्ध कलियुगका कोप ... ११०
५९–नलमें कलियुगका प्रवेश एवं नल और पुष्कर-की द्यूतक्रीडा, प्रजा और दमयन्तीके निवारण करनेपर भी राजाका द्यूतसे निवृत्त नहीं होना ११०
६०–दुःखित दमयन्तीका वार्ष्णेयके द्वारा कुमार-कुमारीको कुण्डिनपुर भेजना ... १११
६१–नलका जूएमें हारकर दमयन्तीके साथ वनको जाना और पक्षियोंद्वारा आपद्ग्रस्त नलके वस्त्रका अपहरण ... १११
६२–राजा नलकी चिन्ता और दमयन्तीको अकेली सोती छोड़कर उनका अन्यत्र प्रस्थान ... १११
६३–दमयन्तीका विलाप तथा अजगर एवं व्याधसे उसके प्राण एवं सतीत्वकी रक्षा तथा दमयन्ती-के पातिव्रत्यधर्मके प्रभावसे व्याधका विनाश ... १११
६४–दमयन्तीका विलाप और प्रलाप, तपस्वियोंद्वारा दमयन्तीको आश्वासन तथा उसकी व्यापारियोंके दलसे भेंट १११

६५-जंगली हाथियोंद्वारा व्यापारियोंके दलका सर्वनाश तथा दुःखित दमयन्तीका चेदिराजके भवनमें सुखपूर्वक निवास ... ११२८

६६-राजा नलके द्वारा दावानलसे कर्कोटक नागकी रक्षा तथा नागद्वारा नलको आश्वासन ... ११३४

६७-राजा नलका ऋतुपर्णके यहाँ अश्वाध्यक्षके पदपर नियुक्त होना और वहाँ दमयन्तीके लिये निरन्तर चिन्तित रहना तथा उनकी जीवलसे बातचीत ११३६

६८-विदर्भराजका नल-दमयन्तीकी खोजके लिये ब्राह्मणोंको भेजना, सुदेव ब्राह्मणका चेदिराजके भवनमें जाकर मन-ही-मन दमयन्तीके गुणोंका चिन्तन और उससे भेंट करना ... ११३७

६९-दमयन्तीका अपने पिताके यहाँ जाना और वहाँसे नलको ढूँढ़नेके लिये अपना संदेश देकर ब्राह्मणोंको भेजना ११४०

७०-पर्णादका दमयन्तीसे बाहुकरूपधारी नलका समाचार बताना और दमयन्तीका ऋतुपर्णके यहाँ सुदेव नामक ब्राह्मणको स्वयंवरका संदेश देकर भेजना ११४४

७१-राजा ऋतुपर्णका विदर्भदेशको प्रस्थान, राजा नलके विषयमें वार्ष्णेयका विचार और बाहुककी अद्भुत अश्वसंचालन-कलासे वार्ष्णेय और ऋतुपर्णका प्रभावित होना ... ११४६

७२-ऋतुपर्णके उत्तरीय वस्त्र गिरने और बहेड़ेके वृक्षके फलोंको गिननेके विषयमें नलके साथ ऋतुपर्णकी बातचीत, ऋतुपर्णसे नलको द्यूतविद्याके रहस्यकी प्राप्ति और उनके शरीरसे कलियुगका निकलना ११४९

७३-ऋतुपर्णका कुण्डिनपुरमें प्रवेश, दमयन्तीका विचार तथा भीमके द्वारा ऋतुपर्णका स्वागत ११५२

७४-बाहुक-केशिनी-संवाद ११५४

७५-दमयन्तीके आदेशसे केशिनीद्वारा बाहुककी परीक्षा तथा बाहुकका अपने लड़के-लड़कियोंको देखकर उनसे प्रेम करना ... ११५७

७६-दमयन्ती और बाहुककी बातचीत, नलका प्राकट्य और नल-दमयन्ती-मिलन ... ११५९

७७-नलके प्रकट होनेपर विदर्भनगरमें महान् उत्सवका आयोजन, ऋतुपर्णके साथ नलका वार्तालाप और ऋतुपर्णका नलसे अश्वविद्या सीखकर अयोध्या जाना ११६३

७८-राजा नलका पुष्करको जूएमें हराना और उसको राजधानीमें भेजकर अपने नगरमें प्रवेश करना ११६५

७९-राजा नलके आख्यानके कीर्तनका महत्त्व, बृहदश्व मुनिका युधिष्ठिरको आश्वासन देना तथा द्यूतविद्या और अश्वविद्याका रहस्य बताकर जाना ११६७

(तीर्थयात्रापर्व)

८०-अर्जुनके लिये द्रौपदीसहित पाण्डवोंकी चिन्ता ११६९

८१-युधिष्ठिरके पास देवर्षि नारदका आगमन और तीर्थयात्राके फलके सम्बन्धमें पूछनेपर नारदजीद्वारा भीष्म-पुलस्त्य-संवादकी प्रस्तावना ... ११७१

८२-भीष्मजीके पूछनेपर पुलस्त्यजीका उन्हें विभिन्न तीर्थोंकी यात्राका माहात्म्य बताना ... ११७३

८३-कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित अनेक तीर्थोंकी महत्ताका वर्णन ११८१

८४-नाना प्रकारके तीर्थोंकी महिमा ... ११९३

८५-गङ्गासागर, अयोध्या, चित्रकूट, प्रयाग आदि विभिन्न तीर्थोंकी महिमाका वर्णन और गङ्गाका माहात्म्य १२०२

८६-युधिष्ठिरका धौम्य मुनिसे पुण्य तपोवन, आश्रम एवं नदी आदिके विषयमें पूछना ... १२१०

८७-धौम्यद्वारा पूर्वदिशाके तीर्थोंका वर्णन ... १२११

८८-धौम्यमुनिके द्वारा दक्षिणदिशावर्ती तीर्थोंका वर्णन १२१३

८९-धौम्यद्वारा पश्चिमदिशाके तीर्थोंका वर्णन ... १२१५

९०-धौम्यद्वारा उत्तर दिशाके तीर्थोंका वर्णन ... १२१६

९१-महर्षि लोमशका आगमन और युधिष्ठिरसे अर्जुनके पाशुपत आदि दिव्यास्त्रोंकी प्राप्तिका वर्णन तथा इन्द्रका संदेश सुनाना ... १२१९

९२-महर्षि लोमशके मुखसे इन्द्र और अर्जुनका संदेश सुनकर युधिष्ठिरका प्रसन्न होना और तीर्थयात्राके लिये उद्यत हो अपने अधिक साथियोंको विदा करना ... १२२१

९३-ऋषियोंको नमस्कार करके पाण्डवोंका तीर्थयात्राके लिये विदा होना ... १२२३

९४-देवताओं और धर्मात्मा राजाओंका उदाहरण देकर महर्षि लोमशका युधिष्ठिरको अधर्मसे हानि बताना और तीर्थयात्राजनित पुण्यकी महिमाका वर्णन करते हुए आश्वासन देना १२२५

९५-पाण्डवोंका नैमिषारण्य आदि तीर्थोंमें जाकर प्रयाग तथा गया तीर्थमें जाना और गय राजाके महान् यज्ञोंकी महिमा सुनाना ... १२२६

९६-इल्वल और वातापिका वर्णन, महर्षि अगस्त्यका पितरोंके उद्धारके लिये विवाह करनेका विचार तथा विदर्भराजका महर्षि अगस्त्यसे एक कन्या पाना १२२८

९७—महर्षि अगस्त्यका लोपामुद्रासे विवाह, गङ्गाद्वारमें तपस्या एवं पत्नीकी इच्छासे धन-संग्रहके लिये प्रस्थान १२३१

९८—धन प्राप्त करनेके लिये अगस्त्यका श्रुतर्वा, ब्रध्नश्व और त्रसदस्यु आदिके पास जाना ... १२३३

९९—अगस्त्यजीका इल्वलके यहाँ धनके लिये जाना, वातापि तथा इल्वलका वध, लोपामुद्रा-को पुत्रकी प्राप्ति तथा श्रीरामके द्वारा हरे हुए तेजकी परशुरामको तीर्थस्नानद्वारा पुनः प्राप्ति १२३४

१००—वृत्रासुरसे त्रस्त देवताओंको महर्षि दधीचका अस्थिदान एवं वज्रका निर्माण ... १२४०

१०१—वृत्रासुरका वध और असुरोंकी भयंकर मन्त्रणा १२४२

१०२—कालेयोंद्वारा तपस्वियों, मुनियों और ब्रह्मचारियों आदिका संहार तथा देवताओंद्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति १२४४

१०३—भगवान् विष्णुके आदेशसे देवताओंका महर्षि अगस्त्यके आश्रमपर जाकर उनकी स्तुति करना १२४५

१०४—अगस्त्यजीका विन्ध्यपर्वतको बढ़नेसे रोकना और देवताओंके साथ सागर-तटपर जाना ... १२४७

१०५—अगस्त्यजीके द्वारा समुद्रपान और देवताओं-का कालेय दैत्योंका वध करके ब्रह्माजीसे समुद्रको पुनः भरनेका उपाय पूछना ... १२४९

१०६—राजा सगरका संतानके लिये तपस्या करना और शिवजीके द्वारा वरदान पाना ... १२५१

१०७—सगरके पुत्रोंकी उत्पत्ति, साठ हजार सगर-पुत्रोंका कपिलकी क्रोधाग्निसे भस्म होना, असमञ्जसका परित्याग, अंशुमान्के प्रयत्नसे सगरके यज्ञकी पूर्ति, अंशुमान्से दिलीपको और दिलीपसे भगीरथको राज्यकी प्राप्ति ... १२५३

१०८—भगीरथका हिमालयपर तपस्याद्वारा गङ्गा और महादेवजीको प्रसन्न करके उनसे वर प्राप्त करना १२५७

१०९—पृथ्वीपर गङ्गाजीके उतरने और समुद्रको जल-से भरनेका विवरण तथा सगरपुत्रोंका उद्धार १२५९

११०—नन्दा तथा कौशिकीका माहात्म्य, ऋष्यशृङ्ग मुनिका उपाख्यान और उनको अपने राज्यमें लानेके लिये राजा लोमपादका प्रयत्न ... १२६१

१११—वेश्याका ऋष्यशृङ्गको लुभाना और विभाण्डक मुनिका आश्रमपर आकर अपने पुत्रकी चिन्ताका कारण पूछना ... १२६५

११२—ऋष्यशृङ्गका पिताको अपनी चिन्ताका कारण बताते हुए ब्रह्मचारीरूपधारी वेश्याके स्वरूप और आचरणका वर्णन १२६७

११३—ऋष्यशृङ्गका अङ्गराज लोमपादके यहाँ जाना, राजाका उन्हें अपनी कन्या देना, राजाद्वारा विभाण्डक मुनिका सत्कार तथा उनपर मुनि-का प्रसन्न होना १२६९

११४—युधिष्ठिरका कौशिकी, गङ्गासागर एवं वैतरणी नदी होते हुए महेन्द्रपर्वतपर गमन ... १२७२

११५—अकृतव्रणके द्वारा युधिष्ठिरसे परशुरामजीके उपाख्यानके प्रसङ्गमें ऋचीक मुनिका गाधि-कन्याके साथ विवाह और भृगुऋषिकी कृपासे जमदग्निकी उत्पत्तिका वर्णन ... १२७५

११६—पिताकी आज्ञासे परशुरामजीका अपनी माता-का मस्तक काटना और उन्हींके वरदानसे पुनः जिलाना, परशुरामजीद्वारा कार्तवीर्य अर्जुनका वध और उसके पुत्रोंद्वारा जमदग्नि मुनिकी हत्या १२७८

११७—परशुरामजीका पिताके लिये विलाप और पृथ्वीको इक्कीस बार निःक्षत्रिय करना एवं महाराज युधिष्ठिरके द्वारा परशुरामजीका पूजन १२८१

११८—युधिष्ठिरका विभिन्न तीर्थोंमें होते हुए प्रभास-क्षेत्रमें पहुँचकर तपस्यामें प्रवृत्त होना और यादवोंका पाण्डवोंसे मिलना ... १२८२

११९—प्रभासतीर्थमें बलरामजीके पाण्डवोंके प्रति सहानुभूतिसूचक दुःखपूर्ण उद्गार ... १२८५

१२०—सात्यकिके शौर्यपूर्ण उद्गार तथा युधिष्ठिरद्वारा श्रीकृष्णके वचनोंका अनुमोदन एवं पाण्डवों-का पयोष्णी नदीके तटपर निवास ... १२८७

१२१—राजा गयके यज्ञकी प्रशंसा, पयोष्णी, वैदूर्य पर्वत और नर्मदाके माहात्म्य तथा च्यवन-सुकन्याके चरित्रका आरम्भ ... १२९१

१२२—महर्षि च्यवनको सुकन्याकी प्राप्ति ... १२९३

१२३—अश्विनीकुमारोंकी कृपासे महर्षि च्यवनको सुन्दर रूप और युवावस्थाकी प्राप्ति ... १२९५

१२४—शर्यातिके यज्ञमें च्यवनका इन्द्रपर कोप करके वज्रको स्तम्भित करना और उसे मारनेके लिये मदासुरको उत्पन्न करना ... १२९७

१२५—अश्विनीकुमारोंका यज्ञमें भाग स्वीकार कर लेनेपर इन्द्रका संकटमुक्त होना तथा लोमशजीके द्वारा अन्यान्य तीर्थोंके महत्त्वका वर्णन ... १२९९

१२६—राजा मान्धाताकी उत्पत्ति और संक्षिप्त चरित्र १३०१

१२७—सोमक और जन्तुका उपाख्यान ... १३०४

१२८—सोमकको सौ पुत्रोंकी प्राप्ति तथा सोमक और पुरोहितका समानरूपसे नरक और पुण्यलोकों-का उपभोग करना १३०६

१२९–कुरुक्षेत्रके द्वारभूत प्लक्षप्रस्रवणनामक यमुना-तीर्थ एवं सरस्वतीतीर्थकी महिमा ... १३०७
१३०–विभिन्न तीर्थोंकी महिमा और राजा उशीनर-की कथाका आरम्भ १३०९
१३१–राजा उशीनरद्वारा बाजको अपने शरीरका मांस देकर शरणमें आये हुए कबूतरके प्राणोंकी रक्षा करना १३११
१३२–अष्टावक्रके जन्मका वृत्तान्त और उनका राजा जनकके दरबारमें जाना १३१३
१३३–अष्टावक्रका द्वारपाल तथा राजा जनकसे वार्तालाप १३१६
१३४–बन्दी और अष्टावक्रका शास्त्रार्थ, बन्दीकी पराजय तथा समङ्गामें स्नानसे अष्टावक्रके अङ्गोंका सीधा होना १३२०
१३५–कर्दमिलक्षेत्र आदि तीर्थोंकी महिमा, रैभ्य एवं भरद्वाजपुत्र यवक्रीत मुनिकी कथा तथा ऋषियोंका अनिष्ट करनेके कारण मेधावीकी मृत्यु १३२६
१३६–यवक्रीतका रैभ्यमुनिकी पुत्रवधूके साथ व्यभिचार और रैभ्यमुनिके क्रोधसे उत्पन्न राक्षसके द्वारा उसकी मृत्यु ... १३३०
१३७–भरद्वाजका पुत्रशोकसे विलाप करना, रैभ्य-मुनिको शाप देना एवं स्वयं अग्निमें प्रवेश करना १३३१
१३८–अर्वावसुकी तपस्याके प्रभावसे परावसुका ब्रह्महत्यासे मुक्त होना और रैभ्य, भरद्वाज तथा यवक्रीत आदिका पुनर्जीवित होना ... १३३३
१३९–पाण्डवोंकी उत्तराखण्ड-यात्रा और लोमशजी-द्वारा उसकी दुर्गमताका कथन ... १३३५
१४०–भीमसेनका उत्साह तथा पाण्डवोंका कुलिन्द-राज सुबाहुके राज्यमें होते हुए गन्धमादन और हिमालय पर्वतको प्रस्थान ... १३३७
१४१–युधिष्ठिरका भीमसेनसे अर्जुनको न देखनेके कारण मानसिक चिन्ता प्रकट करना एवं उनके गुणोंका स्मरण करते हुए गन्धमादन पर्वतपर जानेका दृढ़ निश्चय करना ... १३३९
१४२–पाण्डवोंद्वारा गङ्गाजीकी वन्दना, लोमशजीका नरकासुरके वध और भगवान् वाराहद्वारा वसुधाके उद्धारकी कथा कहना ... १३४१
१४३–गन्धमादनकी यात्राके समय पाण्डवोंका आँधी-पानीसे सामना १३४५
१४४–द्रौपदीकी मूर्छा, पाण्डवोंके उपचारसे उसका सचेत होना तथा भीमसेनके स्मरण करनेपर घटोत्कचका आगमन १३४७
१४५–घटोत्कच और उसके साथियोंकी सहायतासे पाण्डवोंका गन्धमादन पर्वत एवं बदरिकाश्रममें प्रवेश तथा बदरीवृक्ष, नरनारायणाश्रम और गङ्गाका वर्णन १३४९
१४६–भीमसेनका सौगन्धिक कमल लानेके लिये जाना और कदली वनमें उनकी हनुमान्जी-से भेंट १३५३
१४७–श्रीहनुमान् और भीमसेनका संवाद ... १३५९
१४८–हनुमान्जीका भीमसेनको संक्षेपसे श्रीरामका चरित्र सुनाना १३६२
१४९–हनुमान्जीके द्वारा चारों युगोंके धर्मोंका वर्णन १३६३
१५०–हनुमान्जीके द्वारा भीमसेनको अपने विशाल रूपका प्रदर्शन और चारों वर्णोंके धर्मोंका प्रतिपादन १३६६
१५१–हनुमान्जीका भीमसेनको आश्वासन और विदा देकर अन्तर्धान होना ... १३७०
१५२–भीमसेनका सौगन्धिक वनमें पहुँचना ... १३७२
१५३–क्रोधवश नामक राक्षसोंका भीमसेनसे सरोवर-के निकट आनेका कारण पूछना ... १३७३
१५४–भीमसेनके द्वारा क्रोधवश नामक राक्षसोंकी पराजय और द्रौपदीके लिये सौगन्धिक कमलोंका संग्रह करना १३७४
१५५–भयंकर उत्पात देखकर युधिष्ठिर आदिकी चिन्ता और सबका गन्धमादन पर्वतपर सौगन्धिकवनमें भीमसेनके पास पहुँचना ... १३७६
१५६–पाण्डवोंका आकाशवाणीके आदेशसे पुनः नरनारायणाश्रममें लौटना ... १३७९

(जटासुरवधपर्व)

१५७–जटासुरके द्वारा द्रौपदीसहित युधिष्ठिर, नकुल, सहदेवका हरण तथा भीमसेनद्वारा जटासुर-का वध १३८०

(यक्षयुद्धपर्व)

१५८–नर-नारायण-आश्रमसे वृषपर्वाके यहाँ होते हुए राजर्षि आर्ष्टिषेणके आश्रमपर जाना ... १३८५
१५९–प्रश्नके रूपमें आर्ष्टिषेणका युधिष्ठिरके प्रति उपदेश १३९२

१६०–पाण्डवोंका आर्ष्टिषेणके आश्रमपर निवास, द्रौपदीके अनुरोधसे भीमसेनका पर्वतके शिखरपर जाना और यक्षों तथा राक्षसोंसे युद्ध करके मणिमान्‌का वध करना ... १३९५
१६१–कुबेरका गन्धमादन पर्वतपर आगमन और युधिष्ठिरसे उनकी भेंट ... १४००
१६२–कुबेरका युधिष्ठिर आदिको उपदेश और सान्त्वना देकर अपने भवनको प्रस्थान ... १४०४
१६३–धौम्यका युधिष्ठिरको मेरु पर्वत तथा उसके शिखरोंपर स्थित ब्रह्मा, विष्णु आदिके स्थानोंका लक्ष्य कराना और सूर्य-चन्द्रमाकी गति एवं प्रभावका वर्णन १४०७
१६४–पाण्डवोंकी अर्जुनके लिये उत्कण्ठा और अर्जुनका आगमन १४१०

(निवातकवचयुद्धपर्व)

१६५–अर्जुनका गन्धमादनपर्वतपर आकर अपने भाइयोंसे मिलना १४१२
१६६–इन्द्रका पाण्डवोंके पास आना और युधिष्ठिरको सान्त्वना देकर स्वर्गको लौटना ... १४१३
१६७–अर्जुनके द्वारा अपनी तपस्यायात्राके वृत्तान्तका वर्णन; भगवान् शिवके साथ संग्राम और पाशुपतास्त्र-प्राप्तिकी कथा ... १४१५
१६८–अर्जुनद्वारा स्वर्गलोकमें अपनी अस्त्रशिक्षा और निवातकवच दानवोंके साथ युद्धकी तैयारीका कथन १४१९
१६९–अर्जुनका पातालमें प्रवेश और निवातकवचोंके साथ युद्धारम्भ १४२५
१७०–अर्जुन और निवातकवचोंका युद्ध ... १४२६
१७१–दानवोंके मायामय युद्धका वर्णन ... १४२८
१७२–निवातकवचोंका संहार ... १४३०
१७३–अर्जुनद्वारा हिरण्यपुरवासी पौलोम तथा कालकेयोंका वध और इन्द्रद्वारा अर्जुनका अभिनन्दन १४३३
१७४–अर्जुनके मुखसे यात्राका वृत्तान्त सुनकर युधिष्ठिरद्वारा उनका अभिनन्दन और दिव्यास्त्रदर्शनकी इच्छा प्रकट करना ... १४३८
१७५–नारद आदिका अर्जुनको दिव्यास्त्रोंके प्रदर्शनसे रोकना १४३९

(आजगरपर्व)

१७६–भीमसेनकी युधिष्ठिरसे बातचीत और पाण्डवोंका गन्धमादनसे प्रस्थान ... १४४१
१७७–पाण्डवोंका गन्धमादनसे बदरिकाश्रम, सुबाहुनगर और विशाखयूप वनमें होते हुए सरस्वती-तटवर्ती द्वैतवनमें प्रवेश ... १४४३
१७८–महाबली भीमसेनका हिंसक पशुओंको मारना और अजगरद्वारा पकड़ा जाना ... १४४६
१७९–भीमसेन और सर्परूपधारी नहुषकी बातचीत, भीमसेनकी चिन्ता तथा युधिष्ठिरद्वारा भीमकी खोज १४४८
१८०–युधिष्ठिरका भीमसेनके पास पहुँचना और सर्परूपधारी नहुषके प्रश्नोंका उत्तर देना ... १४५२
१८१–युधिष्ठिरद्वारा अपने प्रश्नोंका उचित उत्तर पाकर संतुष्ट हुए सर्परूपधारी नहुषका भीमसेनको छोड़ देना तथा युधिष्ठिरके साथ वार्तालाप करनेके प्रभावसे सर्पयोनिसे मुक्त होकर स्वर्ग जाना १४५५

(मार्कण्डेयसमास्यापर्व)

१८२–वर्षा और शरद्-ऋतुका वर्णन एवं युधिष्ठिर आदिका पुनः द्वैतवनसे काम्यकवनमें प्रवेश १४५९
१८३–काम्यकवनमें पाण्डवोंके पास भगवान् श्रीकृष्ण, मुनिवर मार्कण्डेय तथा नारदजीका आगमन एवं युधिष्ठिरके पूछनेपर मार्कण्डेयजीके द्वारा कर्मफल-भोगका विवेचन ... १४६०
१८४–तपस्वी तथा स्वधर्मपरायण ब्राह्मणोंका माहात्म्य १४६९
१८५–ब्राह्मणकी महिमाके विषयमें अत्रिमुनि तथा राजा पृथुकी प्रशंसा १४७१
१८६–तार्क्ष्यमुनि और सरस्वतीका संवाद ... १४७३
१८७–वैवस्वत मनुका चरित्र तथा मत्स्यावतारकी कथा १४७७
१८८–चारों युगोंकी वर्ष-संख्या एवं कलियुगके प्रभावका वर्णन, प्रलयकालका दृश्य और मार्कण्डेयजीको बालमुकुन्दजीके दर्शन, मार्कण्डेयजीका भगवान्‌के उदरमें प्रवेशकर ब्रह्माण्डदर्शन करना और फिर बाहर निकलकर उनसे वार्तालाप करना ... १४८१
१८९–भगवान् बालमुकुन्दका मार्कण्डेयको अपने स्वरूपका परिचय देना तथा मार्कण्डेयद्वारा श्रीकृष्णकी महिमाका प्रतिपादन और पाण्डवोंका श्रीकृष्णकी शरणमें जाना ... १४९०
१९०–युगान्तकालिक कलियुगके समयके बर्तावका तथा कल्कि-अवतारका वर्णन ... १४९४
१९१–भगवान् कल्कीके द्वारा सत्ययुगकी स्थापना और मार्कण्डेयजीका युधिष्ठिरके लिये धर्मोपदेश १५००

१९२–इक्ष्वाकुवंशी परीक्षित्‌का मण्डूकराजकी कन्यासे विवाह, शल और दलके चरित्र तथा वामदेव मुनिकी महत्ता १५०२
१९३–इन्द्र और बक मुनिका संवाद ... १५०९
१९४–क्षत्रिय राजाओंका महत्त्व–सुहोत्र और शिबिकी प्रशंसा १५१२
१९५–राजा ययातिद्वारा ब्राह्मणको सहस्र गौओंका दान १५१३
१९६–सेदुक और वृषदर्भका चरित्र ... १५१४
१९७–इन्द्र और अग्निद्वारा राजा शिबिकी परीक्षा १५१५
१९८–देवर्षि नारदद्वारा शिबिकी महत्ताका पतिपादन १५१८
१९९–राजा इन्द्रद्युम्न तथा अन्य चिरजीवी प्राणियों-की कथा १५२१
२००–निन्दित दान, निन्दित जन्म, योग्य दानपात्र, श्राद्धमें ग्राह्य और अग्राह्य ब्राह्मण, दानपात्रके लक्षण, अतिथि-सत्कार, विविध दानोंका महत्त्व, वाणीकी शुद्धि, गायत्री-जप, चित्तशुद्धि तथा इन्द्रियनिग्रह आदि विविध विषयोंका वर्णन १५२३
२०१ उत्तङ्ककी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान्‌का उन्हें वरदान देना तथा इक्ष्वाकुवंशी राजा कुवलाश्वका धुन्धुमार नाम पड़नेका कारण बताना १५३२
२०२ उत्तङ्कका राजा बृहदश्वसे धुन्धुका वध करनेके लिये आग्रह १५३५
२०३–ब्रह्माजीकी उत्पत्ति और भगवान् विष्णुके द्वारा मधु-कैटभका वध १५३७
२०४–धुन्धुकी तपस्या और वरप्राप्ति, कुवलाश्वद्वारा धुन्धुका वध और देवताओंका कुवलाश्वको वर देना १५३९
२०५–पतिव्रता स्त्री तथा पिता-माताकी सेवाका माहात्म्य १५४२
२०६–कौशिक ब्राह्मण और पतिव्रताके उपाख्यानके अन्तर्गत ब्राह्मणोंके धर्मका वर्णन ... १५४४
२०७–कौशिकका धर्मव्याधके पास जाना, धर्मव्याध-के द्वारा पतिव्रतासे प्रेषित जान लेनेपर कौशिकको आश्चर्य होना, धर्मव्याधके द्वारा वर्णधर्मका वर्णन, जनकराज्यकी प्रशंसा और शिष्टाचारका वर्णन १५४८
२०८–धर्मव्याधद्वारा हिंसा और अहिंसाका विवेचन १५५५
२०९–धर्मकी सूक्ष्मता, शुभाशुभ कर्म और उनके फल तथा ब्रह्मकी प्राप्तिके उपायोंका वर्णन १५५७
२१०–विषयसेवनसे हानि, सत्सङ्गसे लाभ और ब्राह्मी विद्याका वर्णन १५६१
२११–पञ्चमहाभूतोंके गुणोंका और इन्द्रियनिग्रहका वर्णन १५६३
२१२–तीनों गुणोंके स्वरूप और फलका वर्णन ... १५६५
२१३–प्राणवायुकी स्थितिका वर्णन तथा परमात्म-साक्षात्कारके उपाय १५६६
२१४–माता-पिताकी सेवाका दिग्दर्शन ... १५७०
२१५–धर्मव्याधका कौशिक ब्राह्मणको माता-पिताकी सेवाका उपदेश देकर अपने पूर्वजन्मकी कथा कहते हुए व्याध होनेका कारण बताना ... १५७२
२१६–कौशिक-धर्मव्याध-संवादका उपसंहार तथा कौशिकका अपने घरको प्रस्थान ... १५७४
२१७–अग्निका अङ्गिराको अपना प्रथम पुत्र स्वीकार करना तथा अङ्गिरासे बृहस्पतिकी उत्पत्ति ... १५७७
२१८–अङ्गिराकी संततिका वर्णन ... १५७९
२१९–बृहस्पतिकी संततिका वर्णन ... १५७९
२२०–पाञ्चजन्य अग्निकी उत्पत्ति तथा उसकी संततिका वर्णन १५८१
२२१–अग्निस्वरूप तप और भानु (मनुकी) संतति-का वर्णन १५८३
२२२–सह नामक अग्निका जलमें प्रवेश और अथर्वा अङ्गिराद्वारा पुनः उनका प्राकट्य ... १५८६
२२३–इन्द्रके द्वारा केशीके हाथसे देवसेनाका उद्धार १५८८
२२४–इन्द्रका देवसेनाके साथ ब्रह्माजीके पास तथा ब्रह्मर्षियोंके आश्रमपर जाना, अग्निका मोह और वनगमन १५८९
२२५–स्वाहाका मुनिपत्नियोंके रूपोंमें अग्निके साथ समागम, स्कन्दकी उत्पत्ति तथा उनके द्वारा क्रौञ्च आदि पर्वतोंका विदारण ... १५९३
२२६–विश्वामित्रका स्कन्दके जातकर्मादि तेरह संस्कार करना और विश्वामित्रके समझानेपर भी ऋषियोंका अपनी पत्नियोंको स्वीकार न करना तथा अग्निदेव आदिके द्वारा बालक स्कन्दकी रक्षा करना १५९५
२२७–पराजित होकर शरणमें आये हुए इन्द्रसहित देवताओंको स्कन्दका अभयदान ... १५९८
२२८–स्कन्दके पार्षदोंका वर्णन ... १५९९

२२९—स्कन्दका इन्द्रके साथ वार्तालाप, देवसेनापति-के पदपर अभिषेक तथा देवसेनाके साथ उनका विवाह १६००
२३०—कृत्तिकाओंको नक्षत्रमण्डलमें स्थानकी प्राप्ति तथा मनुष्योंको कष्ट देनेवाले विविध ग्रहोंका वर्णन १६०४
२३१—स्कन्दद्वारा स्वाहादेवीका सत्कार, रुद्रदेवके साथ स्कन्द और देवताओंकी भद्रवट-यात्रा, देवासुर-संग्राम, महिषासुर-वध तथा स्कन्दकी प्रशंसा १६०९
२३२—कार्तिकेयके प्रसिद्ध नामोंका वर्णन तथा उनका स्तवन १६१६

(द्रौपदीसत्यभामासंवादपर्व)

२३३—द्रौपदीका सत्यभामाको सती स्त्रीके कर्तव्यकी शिक्षा देना १६१८
२३४—पतिदेवको अनुकूल करनेका उपाय—पतिकी अनन्यभावसे सेवा १६२३
२३५—सत्यभामाका द्रौपदीको आश्वासन देकर श्रीकृष्णके साथ द्वारिकाको प्रस्थान ... १६२४

(घोषयात्रापर्व)

२३६—पाण्डवोंका समाचार सुनकर धृतराष्ट्रका खेद और चिन्तापूर्ण उद्गार १६२६
२३७—शकुनि और कर्णका दुर्योधनकी प्रशंसा करते हुए उसे वनमें पाण्डवोंके पास चलनेके लिये उभाड़ना १६२९
२३८—दुर्योधनके द्वारा कर्ण और शकुनिकी मन्त्रणा स्वीकार करना तथा कर्ण आदिका घोषयात्रा-को निमित्त बनाकर द्वैतवनमें जानेके लिये धृतराष्ट्रसे आज्ञा लेने जाना ... १६३१
२३९—कर्ण आदिके द्वारा द्वैतवनमें जानेका प्रस्ताव, राजा धृतराष्ट्रकी अस्वीकृति, शकुनिका समझाना, धृतराष्ट्रका अनुमति देना तथा दुर्योधनका प्रस्थान १६३३
२४०—दुर्योधनका सेनासहित वनमें जाकर गौओंकी देखभाल करना और उसके सैनिकों एवं गन्धर्वोंमें परस्पर कटु संवाद ... १६३५
२४१—कौरवोंका गन्धर्वोंके साथ युद्ध और कर्णकी पराजय १६३८
२४२—गन्धर्वोंद्वारा दुर्योधन आदिकी पराजय और उनका अपहरण १६४०
२४३—युधिष्ठिरका भीमसेनको गन्धर्वोंके हाथसे कौरवोंको छुड़ानेका आदेश और इसके लिये अर्जुनकी प्रतिज्ञा १६४२
२४४—पाण्डवोंका गन्धर्वोंके साथ युद्ध ... १६४४
२४५—पाण्डवोंके द्वारा गन्धर्वोंकी पराजय ... १६४६
२४६—चित्रसेन, अर्जुन तथा युधिष्ठिरका संवाद और दुर्योधनका छुटकारा १६४८
२४७—सेनासहित दुर्योधनका मार्गमें ठहरना और कर्णके द्वारा उसका अभिनन्दन ... १६५०
२४८—दुर्योधनका कर्णको अपनी पराजयका समाचार बताना १६५१
२४९—दुर्योधनका कर्णसे अपनी ग्लानिका वर्णन करते हुए आमरण अनशनका निश्चय, दुःशासनको राजा बननेका आदेश, दुःशासनका दुःख और कर्णका दुर्योधनको समझाना ... १६५३
२५०—कर्णके समझानेपर भी दुर्योधनका आमरण अनशन करनेका ही निश्चय ... १६५६
२५१—शकुनिके समझानेपर भी दुर्योधनको प्रायोप-वेशनसे विचलित होते न देखकर दैत्योंका कृत्याद्वारा उसे रसातलमें बुलाना ... १६५७
२५२—दानवोंका दुर्योधनको समझाना और कर्णके अनुरोध करनेपर दुर्योधनका अनशन त्याग करके हस्तिनापुरको प्रस्थान ... १६५९
२५३—भीष्मका कर्णकी निन्दा करते हुए दुर्योधन-को पाण्डवोंसे संधि करनेका परामर्श देना, कर्णके क्षोभपूर्ण वचन और दिग्विजयके लिये प्रस्थान १६६३
२५४—कर्णके द्वारा सारी पृथ्वीपर दिग्विजय और हस्तिनापुरमें उसका सत्कार ... १६६५
२५५—कर्ण और पुरोहितकी सलाहसे दुर्योधनकी वैष्णवयज्ञके लिये तैयारी ... १६६७
२५६—दुर्योधनके यज्ञका आरम्भ एवं समाप्ति १६६९
२५७—दुर्योधनके यज्ञके विषयमें लोगोंका मत, कर्ण-द्वारा अर्जुनके वधकी प्रतिज्ञा, युधिष्ठिरकी चिन्ता तथा दुर्योधनकी शासननीति ... १६७१

(मृगस्वप्नोद्भवपर्व)

२५८—पाण्डवोंका काम्यकवनमें गमन ... १६७३

(व्रीहिद्रौणिकपर्व)

२५९—युधिष्ठिरकी चिन्ता, व्यासजीका पाण्डवोंके पास आगमन और दानकी महत्ताका प्रतिपादन १६७४

२६०–दुर्वासाद्वारा महर्षि मुद्गलके दानधर्म एवं धैर्यकी परीक्षा तथा मुद्गलका देवदूतसे कुछ प्रश्न करना १६७७

२६१–देवदूतद्वारा स्वर्गलोकके गुण-दोषोंका तथा दोषरहित विष्णुधामका वर्णन सुनकर मुद्गलका देवदूतको लौटा देना एवं व्यासजीका युधिष्ठिरको समझाकर अपने आश्रमको लौट जाना १६८०

(द्रौपदीहरणपर्व)

२६२–दुर्योधनका महर्षि दुर्वासाको आतिथ्यसत्कारसे संतुष्ट करके उन्हें युधिष्ठिरके पास भेजकर प्रसन्न होना १६८४

२६३–दुर्वासाका पाण्डवोंके आश्रमपर असमयमें आतिथ्यके लिये जाना, द्रौपदीके द्वारा स्मरण किये जानेपर भगवान्‌का प्रकट होना तथा पाण्डवोंको दुर्वासाके भयसे मुक्त करना और उनको आश्वासन देकर द्वारका जाना ... १६८६

२६४–जयद्रथका द्रौपदीको देखकर मोहित होना और उसके पास कोटिकास्यको भेजना १६८९

२६५–कोटिकास्यका द्रौपदीसे जयद्रथ और उसके साथियोंका परिचय देते हुए उसका भी परिचय पूछना १६९१

२६६–द्रौपदीका कोटिकास्यको उत्तर ... १६९२

२६७–जयद्रथ और द्रौपदीका संवाद ... १६९३

२६८–द्रौपदीका जयद्रथको फटकारना और जयद्रथ-द्वारा उसका अपहरण ... १६९५

२६९–पाण्डवोंका आश्रमपर लौटना और धात्रेयिका-से द्रौपदीहरणका वृत्तान्त जानकर जयद्रथका पीछा करना १६९८

२७०–द्रौपदीद्वारा जयद्रथके सामने पाण्डवोंके पराक्रमका वर्णन १७०१

२७१–पाण्डवोंद्वारा जयद्रथकी सेनाका संहार, जयद्रथका पलायन, द्रौपदी तथा नकुल-सहदेवके साथ युधिष्ठिरका आश्रमपर लौटना तथा भीम और अर्जुनका वनमें जयद्रथका पीछा करना १७०४

(जयद्रथविमोक्षणपर्व)

२७२–भीमद्वारा बंदी होकर जयद्रथका युधिष्ठिरके सामने उपस्थित होना, उनकी आज्ञासे छूट-कर उसका गङ्गाद्वारमें तप करके भगवान् शिवसे वरदान पाना तथा भगवान् शिवद्वारा अर्जुनके सहायक भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाका वर्णन १७०८

(रामोपाख्यानपर्व)

२७३–अपनी दुरवस्थासे दुखी हुए युधिष्ठिरका मार्कण्डेय मुनिसे प्रश्न करना ... १७१४

२७४–श्रीराम आदिका जन्म तथा कुबेरकी उत्पत्ति और उन्हें ऐश्वर्यकी प्राप्ति ... १७१५

२७५–रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण, खर और शूर्पणखाकी उत्पत्ति, तपस्या और वर-प्राप्ति तथा कुबेरका रावणको शाप देना ... १७१६

२७६–देवताओंका ब्रह्माजीके पास जाकर रावणके अत्याचारसे बचानेके लिये प्रार्थना करना तथा ब्रह्माजीकी आज्ञासे देवताओंका रीछ और वानरयोनिमें संतान उत्पन्न करना एवं दुन्दुभी गन्धर्वीका मन्थरा बनकर आना १७१९

२७७–श्रीरामके राज्याभिषेककी तैयारी, रामवन-गमन, भरतकी चित्रकूटयात्रा, रामके द्वारा खर-दूषण आदि राक्षसोंका नाश तथा रावण-का मारीचके पास जाना ... १७२१

२७८–मृगरूपधारी मारीचका वध तथा सीताका अपहरण १७२५

२७९–रावणद्वारा जटायुका वध, श्रीरामद्वारा उसका अन्त्येष्टि-संस्कार, कबन्धका वध तथा उसके दिव्यस्वरूपसे वार्तालाप ... १७२९

२८०–राम और सुग्रीवकी मित्रता, वाली और सुग्रीवका युद्ध, श्रीरामके द्वारा वालीका वध तथा लङ्काकी अशोकवाटिकामें राक्षसियोंद्वारा डरायी हुई सीताको त्रिजटाका आश्वासन ... १७३३

२८१–रावण और सीताका संवाद ... १७३८

२८२–श्रीरामका सुग्रीवपर कोप, सुग्रीवका सीताकी खोजमें वानरोंको भेजना तथा श्रीहनुमान्‌जी-का लौटकर अपनी लङ्कायात्राका वृत्तान्त निवेदन करना १७४०

२८३–वानर-सेनाका संगठन, सेतुका निर्माण, विभीषणका अभिषेक और लङ्काकी सीमामें सेनाका प्रवेश तथा अंगदको रावणके पास दूत बनाकर भेजना १७४५

२८४–अंगदका रावणके पास जाकर रामका संदेश सुनाकर लौटना तथा राक्षसों और वानरोंका घोर संग्राम १७४९

२८५–श्रीराम और रावणकी सेनाओंका द्वन्द्व-युद्ध १७५२
२८६–प्रहस्त और धूम्राक्षके वधसे दुखी हुए रावणका कुम्भकर्णको जगाना और उसे युद्धमें भेजना १७५४
२८७–कुम्भकर्ण, वज्रवेग और प्रमाथीका वध ... १७५६
२८८–इन्द्रजित्का मायामय युद्ध तथा श्रीराम और लक्ष्मणकी मूर्छा १७५८
२८९–श्रीराम-लक्ष्मणका सचेत होकर कुबेरके भेजे हुए अभिमन्त्रित जलसे प्रमुख वानरोंसहित अपने नेत्र धोना, लक्ष्मणद्वारा इन्द्रजित्का वध एवं सीताको मारनेके लिये उद्यत हुए रावणका अविन्ध्यके द्वारा निवारण करना १७६०
२९०–राम और रावणका युद्ध तथा रावणका वध १७६२
२९१–श्रीरामका सीताके प्रति संदेह, देवताओंद्वारा सीताकी शुद्धिका समर्थन, श्रीरामका दल-बलसहित लङ्कासे प्रस्थान एवं किष्किन्धा होते हुए अयोध्यामें पहुँचकर भरतसे मिलना तथा राज्यपर अभिषिक्त होना ... १७६५
२९२–मार्कण्डेयजीके द्वारा राजा युधिष्ठिरको आश्वासन १७७०

(पतिव्रतामाहात्म्यपर्व)

२९३–राजा अश्वपतिको देवी सावित्रीके वरदानसे सावित्री नामक कन्याकी प्राप्ति तथा सावित्रीका पतिवरणके लिये विभिन्न देशोंमें भ्रमण १७७१
२९४–सावित्रीका सत्यवान्के साथ विवाह करनेका दृढ़ निश्चय १७७४
२९५–सत्यवान् और सावित्रीका विवाह तथा सावित्रीका अपनी सेवाओंद्वारा सबको संतुष्ट करना १७७७
२९६–सावित्रीकी व्रतचर्या तथा सास-ससुर और पतिकी आज्ञा लेकर सत्यवान्के साथ उसका वनमें जाना १७७९
२९७–सावित्री और यमका संवाद, यमराजका संतुष्ट होकर सावित्रीको अनेक वरदान देते हुए मरे हुए सत्यवान्को भी जीवित कर देना तथा सत्यवान् और सावित्रीका वार्तालाप एवं आश्रमकी ओर प्रस्थान ... १७८२
२९८–पत्नीसहित राजा द्युमत्सेनकी सत्यवान्के लिये चिन्ता, ऋषियोंका उन्हें आश्वासन देना, सावित्री और सत्यवान्का आगमन तथा सावित्रीद्वारा विलम्बसे आनेके कारणपर प्रकाश डालते हुए वर-प्राप्तिका विवरण बताना ... १७९३
२९९–शाल्वदेशकी प्रजाके अनुरोधसे महाराज द्युमत्सेनका राज्याभिषेक कराना तथा सावित्रीको सौ पुत्रों और सौ भाइयोंकी प्राप्ति ... १७९६

(कुण्डलाहरणपर्व)

३००–सूर्यका स्वप्नमें कर्णको दर्शन देकर उसे इन्द्रको कुण्डल और कवच न देनेके लिये सचेत करना तथा कर्णका आग्रहपूर्वक कुण्डल और कवच देनेका ही निश्चय रखना १७९८
३०१–सूर्यका कर्णको समझाते हुए उसे इन्द्रको कुण्डल न देनेका आदेश देना ... १८००
३०२–सूर्य-कर्ण-संवाद, सूर्यकी आज्ञाके अनुसार कर्णका इन्द्रसे शक्ति लेकर ही उन्हें कुण्डल और कवच देनेका निश्चय ... १८०२
३०३–कुन्तिभोजके यहाँ महर्षि दुर्वासाका आगमन तथा राजाका उनकी सेवाके लिये पृथाको आवश्यक उपदेश देना ... १८०४
३०४–कुन्तीका पितासे वार्तालाप और ब्राह्मणकी परिचर्या १८०६
३०५–कुन्तीकी सेवासे संतुष्ट होकर तपस्वी ब्राह्मणका उसको मन्त्रका उपदेश देना ... १८०७
३०६–कुन्तीके द्वारा सूर्यदेवताका आवाहन तथा कुन्ती-सूर्य-संवाद १८०९
३०७–सूर्यद्वारा कुन्तीके उदरमें गर्भस्थापन ... १८११
३०८–कर्णका जन्म, कुन्तीका उसे पिटारीमें रखकर जलमें बहा देना और विलाप करना ... १८१३
३०९–अधिरथ सूत तथा उसकी पत्नी राधाको बालक कर्णकी प्राप्ति, राधाके द्वारा उसका पालन, हस्तिनापुरमें उसकी शिक्षा-दीक्षा तथा कर्णके पास इन्द्रका आगमन ... १८१५
३१०–इन्द्रका कर्णको अमोघ-शक्ति देकर बदलेमें उसके कवच-कुण्डल लेना ... १८१७

(आरणेयपर्व)

३११–ब्राह्मणकी अरणि एवं मन्थन-काष्ठका पता लगानेके लिये पाण्डवोंका मृगके पीछे दौड़ना और दुखी होना १८२०

३१२–पानी लानेके लिये गये हुए नकुल आदि चार भाइयोंका सरोवरके तटपर अचेत होकर गिरना १८२२
३१३–यक्ष और युधिष्ठिरका प्रश्नोत्तर तथा युधिष्ठिर-के उत्तरसे संतुष्ट हुए यक्षका चारों भाइयोंके जीवित होनेका वरदान देना ... १८२५
३१४–यक्षका चारों भाइयोंको जिलाकर धर्मके रूपमें प्रकट हो युधिष्ठिरको वरदान देना ... १८३५
३१५–अज्ञातवासके लिये अनुमति लेते समय शोकाकुल हुए युधिष्ठिरको महर्षि धौम्यका समझाना, भीमसेनका उत्साह देना तथा आश्रमसे दूर जाकर पाण्डवोंका परस्पर परामर्शके लिये बैठना ... १८३७

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१–पाण्डवोंका वनगमन ९४५
२–उर्वशीका अर्जुनको शाप देना ... १०८१
३–नलका अपने पूर्वरूपमें प्रकट होकर दमयन्तीसे मिलना ... ११६२
४–भगवान् शिवका आकाशसे गिरती हुई गङ्गाको अपने सिरपर धारण करना ... ११९३
५–जमदग्निका परशुरामसे कार्तवीर्य-अर्जुनका अपराध बताना ... १२८०
६–महाप्रलयके समय भगवान् मत्स्यके सींगमें बँधी हुई मनु और सप्तर्षियों-सहित नौका १३९३
७–मार्कण्डेय मुनिको अक्षयवटकी शाखा-पर बालमुकुन्दका दर्शन १४८७
८–इन्द्रके द्वारा देवसेनाका स्कन्दको समर्पण १५९३
९–सागके एक पत्तेसे विश्वकी तृप्ति ... १६८७

(सादा)

१०–भगवान् सूर्यका युधिष्ठिरको अक्षयपात्र देना ९६०
११–श्रीकृष्णके द्वारा द्रौपदीको आश्वासन ... ९९७
१२–द्रौपदी और भीमसेनका युधिष्ठिरसे संवाद ... १०२८
१३–अर्जुनकी तपस्या १०६१
१४–अर्जुनका किरातवेषधारी भगवान् शिवपर बाण चलाना ... १०६१
१५–नलकी पहचानके लिये दमयन्तीकी लोकपालोंसे प्रार्थना ११०५
१६–सती दमयन्तीके तेजसे पापी व्याधका विनाश ११२०
१७–भगवान् शङ्करका मङ्कणक मुनिको नृत्य करनेसे रोकना ... ११८८
१८–देवताओंद्वारा वृत्रासुरके वधके लिये दधीचिसे उनकी अस्थियोंकी याचना ... १२४१
१९–देवराज इन्द्रका वज्रके प्रहारसे वृत्रासुरका वध करना १२४१
२०–महर्षि कपिलकी क्रोधाग्निमें सगर-पुत्रोंका भस्म होना १२५५
२१–महर्षि अगस्त्यका समुद्र-पान ... १२५५
२२–भगवान् परशुरामद्वारा सहस्रार्जुनका वध ... १२८५
२३–प्रभासक्षेत्रमें पाण्डवोंकी यादवोंसे भेंट ... १२८५
२४–सुकन्याकी अश्विनीकुमारोंसे अपने पतिको बतला देनेकी प्रार्थना ... १२९६
२५–राजा शिबिका कबूतरकी रक्षाके लिये बाजको अपने शरीरका मांस काटकर देना ... १३१३
२६–द्रौपदीका भीमसेनको सौगन्धिक पुष्प भेंट करके वैसे ही और पुष्प लानेका आग्रह ... १३५३
२७–स्वर्गसे लौटकर अर्जुन धर्मराजको प्रणाम कर रहे हैं १४१२

२८–वनमें पाण्डवोंसे श्रीकृष्ण-सत्यभामाका मिलना ... १४६१
२९–तार्क्ष्यको सरस्वतीका उपदेश ... १४७५
३०–तपस्वीके वेशमें मण्डूकराजका राजाको आश्वासन १५०४
३१–ययातिसे ब्राह्मणकी याचना ... १५०४
३२–भगवान् विष्णुके द्वारा मधुकैटभका जाँघोंपर वध १५३९
३३–माता-पिताके भक्त धर्मव्याध और कौशिक ब्राह्मण १५७०
३४–कार्तिकेयके द्वारा महिषासुरका वध ... १६१५
३५–द्रौपदी-सत्यभामा-संवाद १६११
३६–अर्जुन-चित्रसेन-युद्ध १६४७
३७–पाण्डवोंके पास दुर्योधनका दूत ... १६८३
३८–मुद्गलका स्वर्ग जानेसे इन्कार ... १६८३
३९–सीताजीका रावणको फटकारना ... १७४०
४०–हनुमान्‌जीकी श्रीसीताजीसे भेंट ... १७४०
४१–यम-सावित्री १७८३
४२–इन्द्रका शक्ति-दान १७९३
४३–युधिष्ठिर और बगुलारूपधारी यक्ष ... १७९३
४४–(१८४ लाइन चित्र फरमोंमें)

॥ श्रीहरिः ॥
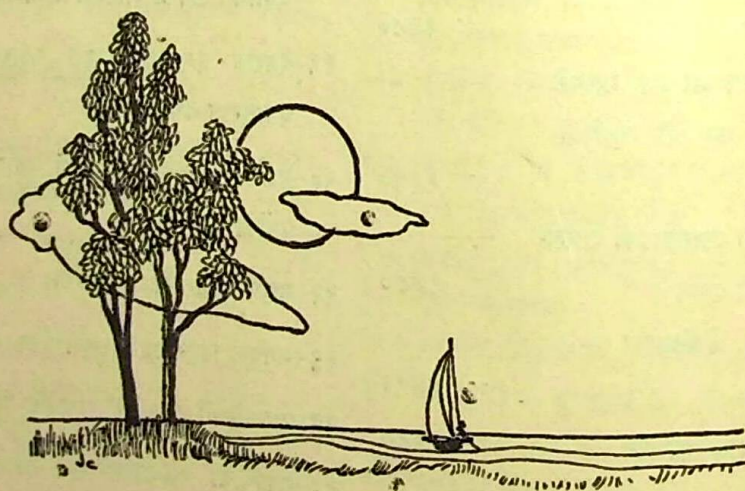
विराटपर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	(पाण्डवप्रवेशपर्व)	
१	विराटनगरमें अज्ञातवास करनेके लिये पाण्डवोंकी गुप्त मन्त्रणा तथा युधिष्ठिरके द्वारा अपने भावी कार्यक्रमका दिग्दर्शन ...	१८४१
२	भीमसेन और अर्जुनद्वारा विराटनगरमें किये जानेवाले अपने अनुकूल कार्योंका निर्देश	१८४३
३	नकुल, सहदेव तथा द्रौपदीद्वारा अपने-अपने भावी कर्तव्योंका दिग्दर्शन ...	१८४६
४	धौम्यका पाण्डवोंको राजाके यहाँ रहनेका ढंग बताना और सबका अपने-अपने अभीष्ट स्थानोंको जाना	१८४८
५	पाण्डवोंका विराटनगरके समीप पहुँचकर श्मशानमें एक शमीवृक्षपर अपने अस्त्र-शस्त्र रखना	१८५३
६	युधिष्ठिरद्वारा दुर्गादेवीकी स्तुति और देवीका प्रत्यक्ष प्रकट होकर उन्हें वर देना ...	१८५५
७	युधिष्ठिरका राजसभामें जाकर विराटसे मिलना और वहाँ आदरपूर्वक निवास पाना ...	१८५८
८	भीमसेनका राजा विराटकी सभामें प्रवेश और राजाके द्वारा आश्वासन पाना ...	१८६१
९	द्रौपदीका सैरन्ध्रीके वेशमें विराटके रनिवासमें जाकर रानी सुदेष्णासे वार्तालाप करना और वहाँ निवास पाना	१८६३
१०	सहदेवका राजा विराटके साथ वार्तालाप और गौओंकी देख-भालके लिये उनकी नियुक्ति	१८६६
११	अर्जुनका राजा विराटसे मिलना और राजाके द्वारा कन्याओंको नृत्य आदिकी शिक्षा देनेके लिये उनको नियुक्त करना ...	१८६८
१२	नकुलका विराटके अश्वोंकी देख-रेखमें नियुक्त होना	१८७०
	(समयपालनपर्व)	
१३	भीमसेनके द्वारा जीमूत नामक विश्वविख्यात मल्लका वध	१८७२
	(कीचकवधपर्व)	
१४	कीचकका द्रौपदीपर आसक्त हो उससे प्रणय-याचना करना और द्रौपदीका उसे फटकारना	१८७६
१५	रानी सुदेष्णाका द्रौपदीको कीचकके घर भेजना	१८८१
१६	कीचकद्वारा द्रौपदीका अपमान ...	१८८५
१७	द्रौपदीका भीमसेनके समीप जाना ...	१८९५
१८	द्रौपदीका भीमसेनके प्रति अपने दुःखके उद्गार प्रकट करना	१८९६
१९	पाण्डवोंके दुःखसे दुःखित द्रौपदीका भीमसेनके सम्मुख विलाप	१८९९
२०	द्रौपदीद्वारा भीमसेनसे अपना दुःख निवेदन करना	१९०३
२१	भीमसेन और द्रौपदीका संवाद ...	१९०५
२२	कीचक और भीमसेनका युद्ध तथा कीचकवध	१९०९
२३	उपकीचकोंका सैरन्ध्रीको बाँधकर श्मशानभूमिमें ले जाना और भीमसेनका उन सबको मारकर सैरन्ध्रीको छुड़ाना	१९१५
२४	द्रौपदीका राजमहलमें लौटकर आना और बृहन्नला एवं सुदेष्णासे उसकी बातचीत	१९१८
	(गोहरणपर्व)	
२५	दुर्योधनके पास उसके गुप्तचरोंका आना और उनका पाण्डवोंके विषयमें कुछ पता न लगा—यह बताकर कीचकवधका वृत्तान्त सुनाना	१९२१
२६	दुर्योधनका सभासदोंसे पाण्डवोंका पता लगानेके लिये परामर्श तथा इस विषयमें कर्ण और दुःशासनकी सम्मति	१९२३
२७	आचार्य द्रोणकी सम्मति ...	१९२४
२८	युधिष्ठिरकी महिमा कहते हुए भीष्मकी पाण्डवोंके अन्वेषणके विषयमें सम्मति ...	१९२५
२९	कृपाचार्यकी सम्मति और दुर्योधनका निश्चय	१९२८
३०	सुशर्माके प्रस्तावके अनुसार त्रिगर्तों और कौरवोंका मत्स्यदेशपर धावा ...	१९३०
३१	चारों पाण्डवोंसहित राजा विराटकी सेनाका युद्धके लिये प्रस्थान	१९३२
३२	मत्स्य तथा त्रिगर्तदेशीय सेनाओंका परस्पर युद्ध	१९३५
३३	सुशर्माका विराटको पकड़कर ले जाना, पाण्डवोंके प्रयत्नसे उनका छुटकारा, भीमद्वारा सुशर्माका निग्रह और युधिष्ठिरका अनुग्रह करके उसे छोड़ देना	१९३८
३४	राजा विराटद्वारा पाण्डवोंका सम्मान, युधिष्ठिरद्वारा राजाका अभिनन्दन तथा विराटनगरमें राजाकी विजय-घोषणा ...	१९४२
३५	कौरवोंद्वारा उत्तर दिशाकी ओरसे आकर विराटकी गौओंका अपहरण और गोपाध्यक्षका उत्तरकुमारको युद्धके लिये उत्साह दिलाना	१९४४
३६	उत्तरका अपने लिये सारथि ढूँढ़नेका प्रस्ताव, अर्जुनकी सम्मतिसे द्रौपदीका बृहन्नलाको सारथि बनानेके लिये सुझाव देना ...	१९४६
३७	बृहन्नलाको सारथि बनाकर राजकुमार उत्तरका रणभूमिकी ओर प्रस्थान	१९४८
३८	उत्तरकुमारका भय और अर्जुनका उसे आश्वासन देकर रथपर चढ़ाना	१९५१
३९	द्रोणाचार्यद्वारा अर्जुनके अलौकिक पराक्रमकी प्रशंसा	१९५५

४०–अर्जुनका उत्तरको शमीवृक्षसे अस्त्र उतारनेके लिये आदेश १९५७
४१–उत्तरका अर्जुनके आदेशके अनुसार शमीवृक्षसे पाण्डवोंके दिव्य धनुष आदि उतारना ... १९५८
४२–उत्तरका बृहन्नलासे पाण्डवोंके अस्त्र-शस्त्रोंके विषयमें प्रश्न करना १९५९
४३–बृहन्नलाद्वारा उत्तरको पाण्डवोंके आयुधोंका परिचय कराना १९६०
४४–अर्जुनका उत्तरकुमारसे अपना और अपने भाइयोंका यथार्थ परिचय देना ... १९६२
४५–अर्जुनद्वारा युद्धकी तैयारी, अस्त्र-शस्त्रोंका स्मरण, उनसे वार्तालाप तथा उत्तरके भयका निवारण १९६४
४६–उत्तरके रथपर अर्जुनको ध्वजकी प्राप्ति, अर्जुनका शङ्खनाद और द्रोणाचार्यका कौरवोंसे उत्पातसूचक अपशकुनोंका वर्णन ... १९६७
४७–दुर्योधनके द्वारा युद्धका निश्चय तथा कर्णकी उक्ति १९७०
४८–कर्णकी आत्मप्रशंसापूर्ण अहंकारोक्ति ... १९७२
४९–कृपाचार्यका कर्णको फटकारते हुए युद्धके विषयमें अपना विचार बताना ... १९७४
५०–अश्वत्थामाके उद्गार १९७६
५१–भीष्मजीके द्वारा सेनामें शान्ति और एकता बनाये रखनेकी चेष्टा तथा द्रोणाचार्यके द्वारा दुर्योधनकी रक्षाके लिये प्रयत्न ... १९७८
५२–पितामह भीष्मकी सम्मति ... १९८०
५३–अर्जुनका दुर्योधनकी सेनापर आक्रमण करके गौओंको लौटा लेना १९८२
५४–अर्जुनका कर्णपर आक्रमण, विकर्णकी पराजय, शत्रुंतप और संग्रामजित्‌का वध, कर्ण और अर्जुनका युद्ध तथा कर्णका पलायन ... १९८४
५५–अर्जुनद्वारा कौरवसेनाका संहार और उत्तरका उनके रथको कृपाचार्यके पास ले जाना ... १९८८
५६–अर्जुन और कृपाचार्यका युद्ध देखनेके लिये देवताओंका आकाशमें विमानोंपर आगमन ... १९९३
५७–कृपाचार्य और अर्जुनका युद्ध तथा कौरवपक्षके सैनिकोंद्वारा कृपाचार्यको हटा ले जाना ... १९९४
५८–अर्जुनका द्रोणाचार्यके साथ युद्ध और आचार्यका पलायन १९९७
५९–अश्वत्थामाके साथ अर्जुनका युद्ध ... २००२
६०–अर्जुन और कर्णका संवाद तथा कर्णका अर्जुनसे हारकर भागना २००४
६१–अर्जुनका उत्तरकुमारको आश्वासन तथा अर्जुनसे दुःशासन आदिकी पराजय ... २००६
६२–अर्जुनका सब योद्धाओं और महारथियोंके साथ युद्ध २००९
६३–अर्जुनपर समस्त कौरवपक्षीय महारथियोंका आक्रमण और सबका युद्धभूमिसे पीठ दिखाकर भागना २०११
६४–अर्जुन और भीष्मका अद्भुत युद्ध तथा मूर्छित भीष्मका सारथिद्वारा रणभूमिसे हटाया जाना २०१२
६५–अर्जुन और दुर्योधनका युद्ध, विकर्ण आदि योद्धाओंसहित दुर्योधनका युद्धके मैदानसे भागना २०१५
६६–अर्जुनके द्वारा समस्त कौरवदलकी पराजय तथा कौरवोंका स्वदेशको प्रस्थान ... २०१७
६७–विजयी अर्जुन और उत्तरका राजधानीकी ओर प्रस्थान २०२१
६८–राजा विराटकी उत्तरके विषयमें चिन्ता, विजयी उत्तरका नगरमें प्रवेश, प्रजाओंद्वारा उनका स्वागत, विराटद्वारा युधिष्ठिरका तिरस्कार और क्षमा-प्रार्थना एवं उत्तरसे युद्धका समाचार पूछना २०२३
६९–राजा विराट और उत्तरकी विजयके विषयमें बातचीत २०२९

(वैवाहिकपर्व)

७०–अर्जुनका राजा विराटको महाराज युधिष्ठिरका परिचय देना २०३०
७१–विराटको अन्य पाण्डवोंका भी परिचय प्राप्त होना तथा विराटके द्वारा युधिष्ठिरको राज्य समर्पण करके अर्जुनके साथ उत्तराके विवाहका प्रस्ताव करना २०३२
७२–अर्जुनका अपनी पुत्रवधूके रूपमें उत्तराको ग्रहण करना एवं अभिमन्यु और उत्तराका विवाह ... २०३५

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१–भीमसेन और द्रौपदी १९०७
२–कीचक-वध १९०७
३–कौरवोंद्वारा विराटकी गायोंका हरण ... १९४४

(सादा)

४–युधिष्ठिरद्वारा देवीकी स्तुति ... १८५६
५–विराटके यहाँ पाण्डव १८६२
६–विराटकी राजसभामें कीचकद्वारा सैरन्ध्रीका अपमान १८८६
७–पाण्डवोंके अन्वेषणके विषयमें भीष्मकी सम्मति १९२६
८–सुशर्मापर भीमसेनका प्रहार ... १९२६
९–अर्जुनका शङ्खनाद १९६७
१०–(३० लाइन चित्र फरमोंमें)

॥ श्रीहरिः ॥

उद्योगपर्व

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

(सेनोद्योगपर्व)

१–राजा विराटकी सभामें भगवान् श्रीकृष्णका भाषण २०३९
२–बलरामजीका भाषण २०४२
३–सात्यकिके वीरोचित उद्गार २०४३
४–राजा द्रुपदकी सम्मति २०४५
५–भगवान् श्रीकृष्णका द्वारकागमन, विराट और द्रुपदके संदेशसे राजाओंका पाण्डवपक्षकी ओरसे युद्धके लिये आगमन २०४७
६–द्रुपदका पुरोहितको दौत्यकर्मके लिये अनुमति देना तथा पुरोहितका हस्तिनापुरको प्रस्थान ... २०४८
७–श्रीकृष्णका दुर्योधन तथा अर्जुन दोनोंको सहायता देना २०५०
८–शल्यका दुर्योधनके सत्कारसे प्रसन्न हो उसे वर देना और युधिष्ठिरसे मिलकर उन्हें आश्वासन देना २०५३
९–इन्द्रके द्वारा त्रिशिराका वध, वृत्रासुरकी उत्पत्ति, उसके साथ इन्द्रका युद्ध तथा देवताओंकी पराजय २०५७
१०–इन्द्रसहित देवताओंका भगवान् विष्णुकी शरणमें जाना और इन्द्रका उनके आज्ञानुसार वृत्रासुरसे संधि करके अवसर पाकर उसे मारना एवं ब्रह्महत्याके भयसे जलमें छिपना ... २०६२
११–देवताओं तथा ऋषियोंके अनुरोधसे राजा नहुषका इन्द्रके पदपर अभिषिक्त होना एवं काम-भोगमें आसक्त होना और चिन्तामें पड़ी हुई इन्द्राणीको बृहस्पतिका आश्वासन ... २०६६
१२–देवता-नहुष-संवाद, बृहस्पतिके द्वारा इन्द्राणीकी रक्षा तथा इन्द्राणीका नहुषके पास कुछ समयकी अवधि माँगनेके लिये जाना ... २०६८
१३–नहुषका इन्द्राणीको कुछ कालकी अवधि देना, इन्द्रका ब्रह्महत्यासे उद्धार तथा शचीद्वारा रात्रिदेवीकी उपासना ... २०७१
१४–उपश्रुति देवीकी सहायतासे इन्द्राणीकी इन्द्रसे भेंट २०७३
१५–इन्द्रकी आज्ञासे इन्द्राणीके अनुरोधपर नहुषका ऋषियोंको अपना वाहन बनाना तथा बृहस्पति और अग्निका संवाद ... २०७४
१६–बृहस्पतिद्वारा अग्नि और इन्द्रका स्तवन तथा बृहस्पति एवं लोकपालोंकी इन्द्रसे बातचीत ... २०७७
१७–अगस्त्यजीका इन्द्रसे नहुषके पतनका वृत्तान्त बताना २०८०
१८–इन्द्रका स्वर्गमें जाकर अपने राज्यका पालन करना, शल्यका युधिष्ठिरको आश्वासन देना और उनसे विदा लेकर दुर्योधनके यहाँ जाना २०८२
१९–युधिष्ठिर और दुर्योधनके यहाँ सहायताके लिये आयी हुई सेनाओंका संक्षिप्त विवरण ... २०८३

(संजययानपर्व)

२०–द्रुपदके पुरोहितका कौरवसभामें भाषण ... २०८६
२१–भीष्मके द्वारा द्रुपदके पुरोहितकी बातका समर्थन करते हुए अर्जुनकी प्रशंसा करना, इसके विरुद्ध कर्णके आक्षेपपूर्ण वचन तथा धृतराष्ट्रद्वारा भीष्मकी बातका समर्थन करते हुए दूतको सम्मानित करके विदा करना ... २०८७
२२–धृतराष्ट्रका संजयसे पाण्डवोंके प्रभाव-प्रतिभाका वर्णन करते हुए उसे संदेश देकर पाण्डवोंके पास भेजना २०८९
२३–संजयका युधिष्ठिरसे मिलकर उनकी कुशल पूछना एवं युधिष्ठिरका संजयसे कौरवपक्षका कुशल-समाचार पूछते हुए उससे सारगर्भित प्रश्न करना ... २०९४
२४–संजयका युधिष्ठिरको उनके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए उन्हें राजा धृतराष्ट्रका संदेश सुनानेकी प्रतिज्ञा करना ... २०९७
२५–संजयका युधिष्ठिरको धृतराष्ट्रका संदेश सुनाना एवं अपनी ओरसे भी शान्तिके लिये प्रार्थना करना २०९८
२६–युधिष्ठिरका संजयको इन्द्रप्रस्थ लौटानेसे ही शान्ति होना सम्भव बतलाना ... २१००
२७–संजयका युधिष्ठिरको युद्धमें दोषकी सम्भावना बतलाकर उन्हें युद्धसे उपरत करनेका प्रयत्न करना २१०३
२८–संजयको युधिष्ठिरका उत्तर ... २१०६
२९–संजयकी बातोंका प्रत्युत्तर देते हुए श्रीकृष्णका उसे धृतराष्ट्रके लिये चेतावनी देना ... २१०८
३०–संजयकी विदाई तथा युधिष्ठिरका संदेश ... २११५
३१–युधिष्ठिरका मुख्य-मुख्य कुरुवंशियोंके प्रति संदेश ... २१२०
३२–अर्जुनद्वारा कौरवोंके लिये संदेश देना, संजयका हस्तिनापुर जा धृतराष्ट्रसे मिलकर उन्हें युधिष्ठिरका कुशल-समाचार कहकर धृतराष्ट्रके कार्यकी निन्दा करना ... २१२२

(प्रजागरपर्व)

३३–धृतराष्ट्र-विदुर-संवाद ... २१२६
३४–धृतराष्ट्रके प्रति विदुरजीके नीतियुक्त वचन ... २१३६

३५–विदुरके द्वारा केशिनीके लिये सुधन्वाके साथ विरोचनके विवादका वर्णन करते हुए धृतराष्ट्रको धर्मोपदेश ... २१४२
३६–दत्तात्रेय और साध्य देवताओंके संवादका उल्लेख करके महाकुलीन लोगोंका लक्षण बतलाते हुए विदुरका धृतराष्ट्रको समझाना ... २१४८
३७–धृतराष्ट्रके प्रति विदुरजीका हितोपदेश ... २१५४
३८–विदुरजीका नीतियुक्त उपदेश ... २१६०
३९–धृतराष्ट्रके प्रति विदुरजीका नीतियुक्त उपदेश २१६३
४०–धर्मकी महत्ताका प्रतिपादन तथा ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके धर्मका संक्षिप्त वर्णन ... २१६९

(सनत्सुजातपर्व)

४१–विदुरजीके द्वारा स्मरण करनेपर आये हुए सनत्सुजात ऋषिसे धृतराष्ट्रको उपदेश देनेके लिये उनकी प्रार्थना २१७२
४२–सनत्सुजातजीके द्वारा धृतराष्ट्रके विविध प्रश्नोंका उत्तर २१७३
४३–ब्रह्मज्ञानमें उपयोगी मौन, तप, त्याग, अप्रमाद एवं दम आदिके लक्षण तथा मदादि दोषोंका निरूपण २१७८
४४–ब्रह्मचर्य तथा ब्रह्मका निरूपण ... २१८३
४५–गुण-दोषोंके लक्षणोंका वर्णन और ब्रह्मविद्याका प्रतिपादन २१८६
४६–परमात्माके स्वरूपका वर्णन और योगीजनोंके द्वारा उनके साक्षात्कारका प्रतिपादन ... २१८८

(यानसंधिपर्व)

४७–पाण्डवोंके यहाँसे लौटे हुए संजयका कौरव-सभामें आगमन २१९३
४८–संजयका कौरवसभामें अर्जुनका संदेश सुनाना २१९४
४९–भीष्मका दुर्योधनको संधिके लिये समझाते हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनकी महिमा बताना एवं कर्णपर आक्षेप करना, कर्णकी आत्म-प्रशंसा, भीष्मके द्वारा उसका पुनः उपहास एवं द्रोणाचार्यद्वारा भीष्मजीके कथनका अनुमोदन २२०६
५०–संजयद्वारा युधिष्ठिरके प्रधान सहायकोंका वर्णन २२१०
५१–भीमसेनके पराक्रमसे डरे हुए धृतराष्ट्रका विलाप २२१४
५२–धृतराष्ट्रद्वारा अर्जुनसे प्राप्त होनेवाले भयका वर्णन २२१८
५३–कौरवसभामें धृतराष्ट्रका युद्धसे भय दिखाकर शान्तिके लिये प्रस्ताव करना ... २२२०
५४–संजयका धृतराष्ट्रको उनके दोष बताते हुए दुर्योधनपर शासन करनेकी सलाह देना ... २२२१
५५–धृतराष्ट्रको धैर्य देते हुए दुर्योधनद्वारा अपने उत्कर्ष और पाण्डवोंके अपकर्षका वर्णन ... २२२३
५६–संजयद्वारा अर्जुनके ध्वज एवं अश्वोंका तथा युधिष्ठिर आदिके घोड़ोंका वर्णन ... २२२७
५७–संजयद्वारा पाण्डवोंकी युद्धविषयक तैयारीका वर्णन, धृतराष्ट्रका विलाप, दुर्योधनद्वारा अपनी प्रबलताका प्रतिपादन, धृतराष्ट्रका उसपर अविश्वास तथा संजयद्वारा धृष्टद्युम्नकी शक्ति एवं संदेशका कथन ... २२२९
५८–धृतराष्ट्रका दुर्योधनको संधिके लिये समझाना, दुर्योधनका अहंकारपूर्वक पाण्डवोंसे युद्ध करनेका ही निश्चय तथा धृतराष्ट्रका अन्य योद्धाओंको युद्धसे भय दिखाना ... २२३३
५९–संजयका धृतराष्ट्रके पूछनेपर उन्हें श्रीकृष्ण और अर्जुनके अन्तःपुरमें कहे हुए संदेश सुनाना २२३६
६०–धृतराष्ट्रके द्वारा कौरव-पाण्डवोंकी शक्तिका तुलनात्मक वर्णन २२३८
६१–दुर्योधनद्वारा आत्मप्रशंसा ... २२४०
६२–कर्णकी आत्मप्रशंसा, भीष्मके द्वारा उसपर आक्षेप, कर्णका सभा त्यागकर जाना और भीष्मका उसके प्रति पुनः आक्षेपयुक्त वचन कहना २२४२
६३–दुर्योधनद्वारा अपने पक्षकी प्रबलताका वर्णन करना और विदुरका दमकी महिमा बताना २२४४
६४–विदुरका कौटुम्बिक कलहसे हानि बताते हुए धृतराष्ट्रको संधिकी सलाह देना ... २२४६
६५–धृतराष्ट्रका दुर्योधनको समझाना ... २२४८
६६–संजयका धृतराष्ट्रको अर्जुनका संदेश सुनाना २२५०
६७–धृतराष्ट्रके पास व्यास और गान्धारीका आगमन तथा व्यासजीका संजयको श्रीकृष्ण और अर्जुनके सम्बन्धमें कुछ कहनेका आदेश २२५१
६८–संजयका धृतराष्ट्रको भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा बतलाना २२५२
६९–संजयका धृतराष्ट्रको श्रीकृष्ण-प्राप्ति एवं तत्त्वज्ञानका साधन बताना ... २२५३
७०–भगवान् श्रीकृष्णके विभिन्न नामोंकी व्युत्पत्तियोंका कथन २२५५
७१–धृतराष्ट्रके द्वारा भगवद्-गुणगान ... २२५७

(भगवद्यानपर्व)

७२–युधिष्ठिरका श्रीकृष्णसे अपना अभिप्राय निवेदन करना, श्रीकृष्णका शान्तिदूत बनकर कौरवसभामें जानेके लिये उद्यत होना और इस विषयमें उन दोनोंका वार्तालाप ... २२५८
७३–श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको युद्धके लिये प्रोत्साहन देना २२६५

७४–भीमसेनका शान्तिविषयक प्रस्ताव ... २२६८
७५–श्रीकृष्णका भीमसेनको उत्तेजित करना ... २२७०
७६–भीमसेनका उत्तर २२७२
७७–श्रीकृष्णका भीमसेनको आश्वासन देना ... २२७३
७८–अर्जुनका कथन २२७५
७९–श्रीकृष्णका अर्जुनको उत्तर देना ... २२७६
८०–नकुलका निवेदन २२७८
८१–युद्धके लिये सहदेव तथा सात्यकिकी सम्मति और समस्त योद्धाओंका समर्थन ... २२७९
८२–द्रौपदीका श्रीकृष्णसे अपना दुःख सुनाना और श्रीकृष्णका उसे आश्वासन देना ... २२८०
८३–श्रीकृष्णका हस्तिनापुरको प्रस्थान, युधिष्ठिरका माता कुन्ती एवं कौरवोंके लिये संदेश तथा श्रीकृष्णको मार्गमें दिव्य महर्षियोंका दर्शन २२८३
८४–मार्गके शुभाशुभ शकुनोंका वर्णन तथा मार्गमें लोगोंद्वारा सत्कार पाते हुए श्रीकृष्णका वृकस्थल पहुँचकर वहाँ विश्राम करना २२८९
८५–दुर्योधनका धृतराष्ट्र आदिकी अनुमतिसे श्रीकृष्णके स्वागत-सत्कारके लिये मार्गमें विश्राम-स्थान बनवाना २२९१
८६–धृतराष्ट्रका भगवान् श्रीकृष्णकी अगवानी करके उन्हें भेंट देने एवं दुःशासनके महलमें ठहरानेका विचार प्रकट करना ... २२९३
८७–विदुरका धृतराष्ट्रको श्रीकृष्णकी आज्ञाका पालन करनेके लिये समझाना ... २२९४
८८–दुर्योधनका श्रीकृष्णके विषयमें अपने विचार कहना एवं उसकी कुमन्त्रणासे कुपित हो भीष्मजीका सभासे उठ जाना ... २२९५
८९–श्रीकृष्णका स्वागत, धृतराष्ट्र तथा विदुरके घरोंपर उनका आतिथ्य ... २२९७
९०–श्रीकृष्णका कुन्तीके समीप जाना एवं युधिष्ठिरका कुशल-समाचार पूछकर अपने दुःखोंका स्मरण करके विलाप करती हुई कुन्तीको आश्वासन देना ... २३००
९१–श्रीकृष्णका दुर्योधनके घर जाना एवं उसके निमन्त्रणको अस्वीकार करके विदुरजीके घरपर भोजन करना २३०७
९२–विदुरजीका धृतराष्ट्रपुत्रोंकी दुर्भावना बताकर श्रीकृष्णको उनके कौरवसभामें जानेका अनौचित्य बतलाना २३१०
९३–श्रीकृष्णका कौरव-पाण्डवोंमें संधिस्थापनके प्रयत्नका औचित्य बताना ... २३१२
९४–दुर्योधन एवं शकुनिके द्वारा बुलाये जानेपर भगवान् श्रीकृष्णका रथपर बैठकर प्रस्थान एवं कौरवसभामें प्रवेश और स्वागतके पश्चात् आसनग्रहण २३१४
९५–कौरवसभामें श्रीकृष्णका प्रभावशाली भाषण २३१९
९६–परशुरामजीका दम्भोद्भवकी कथाद्वारा नर-नारायणस्वरूप अर्जुन और श्रीकृष्णका महत्त्व वर्णन करना २३२३
९७–कण्व मुनिका दुर्योधनको संधिके लिये समझाते हुए मातलिका उपाख्यान आरम्भ करना ... २३२७
९८–मातलिका अपनी पुत्रीके लिये वर खोजनेके निमित्त नारदजीके साथ वरुणलोकमें भ्रमण करते हुए अनेक आश्चर्यजनक वस्तुएँ देखना २३२९
९९–नारदजीके द्वारा पाताललोकका प्रदर्शन ... २३३१
१००–हिरण्यपुरका दिग्दर्शन और वर्णन ... २३३२
१०१–गरुडलोक तथा गरुडकी संतानोंका वर्णन ... २३३४
१०२–सुरभि और उसकी संतानोंके साथ रसातलके सुखका वर्णन २३३५
१०३–नागलोकके नागोंका वर्णन और मातलिका नागकुमार सुमुखके साथ अपनी कन्याको ब्याहनेका निश्चय २३३६
१०४–नारदजीका नागराज आर्यकके सम्मुख सुमुखके साथ मातलिकी कन्याके विवाहका प्रस्ताव एवं मातलिका नारदजी, सुमुख एवं आर्यकके साथ इन्द्रके पास आकर उनके द्वारा सुमुखको दीर्घायु प्रदान कराना तथा सुमुख-गुणकेशी-विवाह २३३८
१०५–भगवान् विष्णुके द्वारा गरुडका गर्वभञ्जन तथा दुर्योधनद्वारा कण्वमुनिके उपदेशकी अवहेलना २३४०
१०६–नारदजीका दुर्योधनको समझाते हुए धर्मराजके द्वारा विश्वामित्रजीकी परीक्षा तथा गालवके विश्वामित्रसे गुरुदक्षिणा माँगनेके लिये हठका वर्णन २३४३
१०७–गालवकी चिन्ता और गरुड़का आकर उन्हें आश्वासन देना २३४५
१०८–गरुड़का गालवसे पूर्व दिशाका वर्णन करना २३४६
१०९–दक्षिण दिशाका वर्णन ... २३४८
११०–पश्चिम दिशाका वर्णन ... २३४९
१११–उत्तर दिशाका वर्णन ... २३५१
११२–गरुड़की पीठपर बैठकर पूर्व दिशाकी ओर जाते हुए गालवका उनके वेगसे व्याकुल होना २३५३
११३–ऋषभ पर्वतके शिखरपर महर्षि गालव और गरुड़की तपस्विनी शाण्डिलीसे भेंट तथा गरुड़ और गालवका गुरुदक्षिणा चुकानेके विषयमें परस्पर विचार ... २३५४
११४–गरुड़ और गालवका राजा ययातिके यहाँ जाकर गुरुको देनेके लिये श्यामकर्ण घोड़ोंकी याचना करना २३५६

११५–राजा ययातिका गालवको अपनी कन्या देना और गालवका उसे लेकर अयोध्या-नरेशके यहाँ जाना २३५८

११६–हर्यश्वका दो सौ श्यामकर्ण घोड़े देकर ययाति-कन्याके गर्भसे वसुमना नामक पुत्र उत्पन्न करना और गालवका इस कन्याके साथ वहाँसे प्रस्थान २३५९

११७–दिवोदासका ययातिकन्या माधवीके गर्भसे प्रतर्दन नामक पुत्र उत्पन्न करना ... २३६१

११८–उशीनरका ययातिकन्या माधवीके गर्भसे शिबि नामक पुत्र उत्पन्न करना, गालवका उस कन्याको साथ लेकर जाना और मार्गमें गरुड़का दर्शन करना २३६२

११९–गालवका छः सौ घोड़ोंके साथ माधवीको विश्वामित्रजीकी सेवामें देना और उनके द्वारा उसके गर्भसे अष्टक नामक पुत्रकी उत्पत्ति होनेके बाद उस कन्याको ययातिके यहाँ लौटा देना २३६४

१२०–माधवीका वनमें जाकर तप करना तथा ययातिका स्वर्गमें जाकर सुखभोगके पश्चात् मोहवश तेजोहीन होना २३६५

१२१–ययातिका स्वर्गलोकसे पतन और उनके दौहित्रों, पुत्री तथा गालव मुनिका उन्हें पुनः स्वर्गलोकमें पहुँचानेके लिये अपना-अपना पुण्य देनेके लिये उद्यत होना ... २३६७

१२२–सत्सङ्ग एवं दौहित्रोंके पुण्यदानसे ययातिका पुनः स्वर्गारोहण २३६९

१२३–स्वर्गलोकमें ययातिका स्वागत, ययातिके पूछनेपर ब्रह्माजीका अभिमानको ही पतनका कारण बताना तथा नारदजीका दुर्योधनको समझाना २३७०

१२४–धृतराष्ट्रके अनुरोधसे भगवान् श्रीकृष्णका दुर्योधनको समझाना २३७२

१२५–भीष्म, द्रोण, विदुर और धृतराष्ट्रका दुर्योधनको समझाना २३७७

१२६–भीष्म और द्रोणका दुर्योधनको पुनः समझाना २३७९

१२७–श्रीकृष्णको दुर्योधनका उत्तर, उसका पाण्डवोंको राज्य न देनेका निश्चय ... २३८०

१२८–श्रीकृष्णका दुर्योधनको फटकारना और उसे कुपित होकर सभासे जाते देख उसे कैद करनेकी सलाह देना २३८२

१२९–धृतराष्ट्रका गान्धारीको बुलाना और उसका दुर्योधनको समझाना २३८५

१३०–दुर्योधनके षड्यन्त्रका सात्यकिद्वारा भंडाफोड़, श्रीकृष्णकी सिंहगर्जना तथा धृतराष्ट्र और विदुरका दुर्योधनको पुनः समझाना २३८९

१३१–भगवान् श्रीकृष्णका विश्वरूप दर्शन कराकर कौरवसभासे प्रस्थान ... २३९३

१३२–श्रीकृष्णके पूछनेपर कुन्तीका उन्हें पाण्डवोंसे कहनेके लिये संदेश देना ... २३९५

१३३–कुन्तीके द्वारा विदुलोपाख्यानका आरम्भ, विदुलाका रणभूमिसे भागकर आये हुए अपने पुत्रको कड़ी फटकार देकर पुनः युद्धके लिये उत्साहित करना ... २३९८

१३४–विदुलाका अपने पुत्रको युद्धके लिये उत्साहित करना २४०१

१३५–विदुला और उसके पुत्रका संवाद—विदुलाके द्वारा कार्यमें सफलता प्राप्त करने तथा शत्रुवशीकरणके उपायोंका निर्देश ... २४०४

१३६–विदुलाके उपदेशसे उसके पुत्रका युद्धके लिये उद्यत होना २४०७

१३७–कुन्तीका पाण्डवोंके लिये संदेश देना और श्रीकृष्णका उनसे विदा लेकर उपप्लव्य नगरमें जाना २४०९

१३८–भीष्म और द्रोणका दुर्योधनको समझाना २४११

१३९–भीष्मसे वार्तालाप आरम्भ करके द्रोणाचार्यका दुर्योधनको पुनः संधिके लिये समझाना ... २४१३

१४०–भगवान् श्रीकृष्णका कर्णको पाण्डवपक्षमें आ जानेके लिये समझाना ... २४१५

१४१–कर्णका दुर्योधनके पक्षमें रहनेके निश्चित विचारका प्रतिपादन करते हुए समरयज्ञके रूपकका वर्णन करना ... २४१६

१४२–भगवान् श्रीकृष्णका कर्णसे पाण्डवपक्षकी निश्चित विजयका प्रतिपादन ... २४२०

१४३–कर्णके द्वारा पाण्डवोंकी विजय और कौरवोंकी पराजय सूचित करनेवाले लक्षणों एवं अपने स्वप्नका वर्णन २४२१

१४४–विदुरकी बात सुनकर युद्धके भावी दुष्परिणामसे व्यथित हुई कुन्तीका बहुत सोच-विचारके बाद कर्णके पास जाना ... २४२५

१४५–कुन्तीका कर्णको अपना प्रथम पुत्र बताकर उससे पाण्डवपक्षमें मिल जानेका अनुरोध २४२७

१४६–कर्णका कुन्तीको उत्तर तथा अर्जुनको छोड़कर शेष चारों पाण्डवोंको न मारनेकी प्रतिज्ञा ... २४२८

१४७–युधिष्ठिरके पूछनेपर श्रीकृष्णका कौरव-सभामें व्यक्त किये हुए भीष्मजीके वचन सुनाना २४३०

१४८–द्रोणाचार्य, विदुर तथा गान्धारीके युक्तियुक्त एवं महत्त्वपूर्ण वचनोंका भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा कथन २४३१

१४९-दुर्योधनके प्रति धृतराष्ट्रके युक्तिसंगत वचन-पाण्डवोंको आधा राज्य देनेके लिये आदेश ··· २४३६
१५०-श्रीकृष्णका कौरवोंके प्रति साम, दान और भेदनीतिके प्रयोगकी असफलता बताकर दण्डके प्रयोगपर जोर देना ··· २४३८

(सैन्यनिर्याणपर्व)

१५१-पाण्डवपक्षके सेनापतिका चुनाव तथा पाण्डवसेनाका कुरुक्षेत्रमें प्रवेश ··· २४३९
१५२-कुरुक्षेत्रमें पाण्डवसेनाका पड़ाव तथा शिविर-निर्माण ··· ··· २४४४
१५३-दुर्योधनका सेनाको सुसज्जित होने और शिविर निर्माण करनेके लिये आज्ञा देना तथा सैनिकोंकी रणयात्राके लिये तैयारी २४४५
१५४-युधिष्ठिरका भगवान् श्रीकृष्णसे अपने समयोचित कर्तव्यके विषयमें पूछना, भगवान्‌का युद्धको ही कर्तव्य बताना तथा इस विषयमें युधिष्ठिरका संताप और अर्जुनद्वारा श्रीकृष्णके वचनोंका समर्थन ··· २४४७
१५५-दुर्योधनके द्वारा सेनाओंका विभाजन और पृथक्-पृथक् अक्षौहिणियोंके सेनापतियोंका अभिषेक ··· ··· २४४९
१५६-दुर्योधनके द्वारा भीष्मजीका प्रधान-सेनापतिके पदपर अभिषेक और कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर शिविर-निर्माण ··· ··· २४५१
१५७-युधिष्ठिरके द्वारा अपने सेनापतियोंका अभिषेक, यदुवंशियोंसहित बलरामजीका आगमन तथा पाण्डवोंसे विदा लेकर उनका तीर्थयात्राके लिये प्रस्थान ··· २४५४
१५८-रुक्मीका सहायता देनेके लिये आना; परंतु पाण्डव और कौरव दोनों पक्षोंके द्वारा कोरा उत्तर पाकर लौट जाना ··· २४५६
१५९-धृतराष्ट्र और संजयका संवाद ··· २४५९

(उलूकदूतागमनपर्व)

१६०-दुर्योधनका उलूकको दूत बनाकर पाण्डवोंके पास भेजना और उनसे कहनेके लिये संदेश देना २४६०
१६१-पाण्डवोंके शिविरमें पहुँचकर उलूकका भरी सभामें दुर्योधनका संदेश सुनाना ··· २४६८
१६२-पाण्डवपक्षकी ओरसे दुर्योधनको उसके संदेशका उत्तर ··· ··· २४७१
१६३-पाँचों पाण्डवों, विराट, द्रुपद, शिखण्डी और धृष्टद्युम्नका संदेश लेकर उलूकका लौटना और उलूककी बात सुनकर दुर्योधनका सेनाको युद्धके लिये तैयार होनेका आदेश देना ·· ··· २४७५
१६४-पाण्डवसेनाका युद्धके मैदानमें जाना और धृष्टद्युम्नके द्वारा योद्धाओंकी अपने-अपने योग्य विपक्षियोंके साथ युद्ध करनेके लिये नियुक्ति २४७८

(रथातिरथसंख्यानपर्व)

१६५-दुर्योधनके पूछनेपर भीष्मका कौरवपक्षके रथियों और अतिरथियोंका परिचय देना ··· २४७९
१६६-कौरवपक्षके रथियोंका परिचय ··· २४८१
१६७-कौरवपक्षके रथी, महारथी और अतिरथियोंका वर्णन ··· ··· २४८३
१६८-कौरवपक्षके रथियों और अतिरथियोंका वर्णन, कर्ण और भीष्मका रोषपूर्वक संवाद तथा दुर्योधनद्वारा उसका निवारण ··· २४८५
१६९-पाण्डवपक्षके रथी आदिका एवं उनकी महिमाका वर्णन ··· ··· २४८८
१७०-पाण्डवपक्षके रथियों और महारथियोंका वर्णन तथा विराट और द्रुपदकी प्रशंसा ··· २४८९
१७१-पाण्डवपक्षके रथी, महारथी एवं अतिरथी आदिका वर्णन ··· ··· २४९०
१७२-भीष्मका पाण्डवपक्षके अतिरथी वीरोंका वर्णन करते हुए शिखण्डी और पाण्डवोंका वध न करनेका कथन ··· २४९२

(अम्बोपाख्यानपर्व)

१७३-अम्बोपाख्यानका आरम्भ—भीष्मजीके द्वारा काशिराजकी कन्याओंका अपहरण ··· २४९३
१७४-अम्बाका शाल्वराजके प्रति अनुराग प्रकट करके उनके पास जानेके लिये भीष्मसे आज्ञा माँगना ··· ··· २४९५
१७५-अम्बाका शाल्वके यहाँ जाना और उससे परित्यक्त होकर तापसोंके आश्रममें आना, वहाँ शैखावत्य और अम्बाका संवाद ··· २४९५
१७६-तापसोंके आश्रममें राजर्षि होत्रवाहन और अकृतव्रणका आगमन तथा उनसे अम्बाकी बातचीत ··· ··· २४९८
१७७-अकृतव्रण और परशुरामजीकी अम्बासे बातचीत ··· ··· २५०२
१७८-अम्बा और परशुरामजीका संवाद, अकृतव्रणकी सलाह, परशुराम और भीष्मकी रोषपूर्ण बातचीत तथा उन दोनोंका युद्धके लिये कुरुक्षेत्रमें उतरना ··· २५०४
१७९-संकल्पनिर्मित रथपर आरूढ़ परशुरामजीके साथ भीष्मका युद्ध प्रारम्भ करना ··· २५१०
१८०-भीष्म और परशुरामका घोर युद्ध ··· २५१२
१८१-भीष्म और परशुरामका युद्ध ··· २५१५
१८२-भीष्म और परशुरामका युद्ध ··· २५१६

१८३–भीष्मको अष्टवसुओंसे प्रस्वापनास्त्रकी प्राप्ति ··· २५१८
१८४–भीष्म तथा परशुरामजीका एक दूसरेपर शक्ति और ब्रह्मास्त्रका प्रयोग ··· २५१९
१८५–देवताओंके मना करनेसे भीष्मका प्रस्वापनास्त्रको प्रयोगमें न लाना तथा पितर, देवता और गङ्गाके आग्रहसे भीष्म और परशुरामके युद्धकी समाप्ति ··· २५२०
१८६–अम्बाकी कठोर तपस्या ··· २५२३
१८७–अम्बाका द्वितीय जन्ममें पुनः तप करना और महादेवजीसे अभीष्ट वरकी प्राप्ति तथा उसका चिताकी आगमें प्रवेश ··· २५२५
१८८–अम्बाका राजा द्रुपदके यहाँ कन्याके रूपमें जन्म, राजा तथा रानीका उसे पुत्ररूपमें प्रसिद्ध करके उसका नाम शिखण्डी रखना ··· २५२६
१८९–शिखण्डीका विवाह तथा उसके स्त्री होनेका समाचार पाकर उसके श्वशुर दशार्णराजका महान् कोप ··· २५२८
१९०–हिरण्यवर्माके आक्रमणके भयसे घबराये हुए द्रुपदका अपनी महारानीसे संकटनिवारणका उपाय पूछना ··· २५२९
१९१–द्रुपदपत्नीका उत्तर, द्रुपदके द्वारा नगररक्षाकी व्यवस्था और देवाराधन तथा शिखण्डिनीका वनमें जाकर स्थूणाकर्ण नामक यक्षसे अपने दुःखनिवारणके लिये प्रार्थना करना ··· २५३०
१९२–शिखण्डीको पुरुषत्वकी प्राप्ति, द्रुपद और हिरण्यवर्माकी प्रसन्नता, स्थूणाकर्णको कुबेरका शाप तथा भीष्मका शिखण्डीको न मारनेका निश्चय ··· २५३२
१९३–दुर्योधनके पूछनेपर भीष्म आदिके द्वारा अपनी-अपनी शक्तिका वर्णन ··· २५३७
१९४–अर्जुनके द्वारा अपनी, अपने सहायकोंकी तथा युधिष्ठिरकी भी शक्तिका परिचय देना २५३८
१९५–कौरवसेनाका रणके लिये प्रस्थान ··· २५३९
१९६–पाण्डवसेनाका युद्धके लिये प्रस्थान ··· २५४१

चित्र-सूची

(रंगीन)

१–विराटकी राजसभामें श्रीकृष्णका भाषण ··· २०३९
२–संजयकी श्रीकृष्ण एवं पाण्डवोंसे भेंट ··· २०९८
३–द्रौपदीका श्रीकृष्णसे खुले केशोंकी बात याद रखनेका अनुरोध ··· २१९३
४–हस्तिनापुरके मार्गमें ऋषियोंका आकर श्रीकृष्णसे मिलना ··· २२८७
५–कौरवसभामें विराट् रूप ··· २३९३

(सादा)

६–दुर्योधन और अर्जुनका श्रीकृष्णसे युद्धके लिये सहायता माँगना ··· २०५०
७–नहुषका स्वर्गसे पतन ··· २०८०
८–आकाशचारी भगवान् सूर्यदेव ··· २१०९
९–विदुर और धृतराष्ट्र ··· २१२६
१०–प्रह्लादजीका न्याय ··· २१४५
११–आत्रेय मुनि और साध्यगण ··· २१४५
१२–श्रीसनत्सुजात और महाराज धृतराष्ट्र ··· २१७३
१३–धृतराष्ट्रकी सभामें संजय पाण्डवोंका संदेश सुना रहे हैं ··· २२१६
१४–भीमसेनका बल बखानते हुए धृतराष्ट्रका विलाप ··· २२१६
१५–धृतराष्ट्रके द्वारा श्रीकृष्णका स्वागत ··· २२९९
१६–श्रीकृष्णका कौरव-सभामें प्रवेश ··· २३१७
१७–गोमाता सुरभि ··· २३३५
१८–भगवान् विष्णुके द्वारा गरुड़का गर्वनाश ··· २३३५
१९–ययातिका स्वर्गारोहण ··· २३७०
२०–दुर्योधनको गान्धारीकी फटकार ··· २३८६
२१–भगवान् श्रीकृष्ण कर्णको समझा रहे हैं ··· २४१५
२२–पाण्डवोंके डेरेमें बलरामजी ··· २४५५
२३–पाण्डवोंकी विशाल सेना ··· २४७८
२४–भीष्म-दुर्योधन-संवाद ··· २४८०
२५–पाण्डव-सेनापति धृष्टद्युम्न ··· २४९०
२६–भीष्म और परशुरामके युद्धमें नारदजी-द्वारा बीच-बचाव ··· २५११
२७–(६० लाइन चित्र फरमोंमें)

॥ श्रीहरिः ॥

भीष्मपर्व

अध्याय — विषय — पृष्ठ-संख्या

(जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व)

१–कुरुक्षेत्रमें उभय पक्षके सैनिकोंकी स्थिति तथा युद्धके नियमोंका निर्माण ... २५४३
२–वेदव्यासजीके द्वारा संजयको दिव्य दृष्टिका दान तथा भयसूचक उत्पातोंका वर्णन ... २५४५
३–व्यासजीके द्वारा अमङ्गलसूचक उत्पातों तथा विजयसूचक लक्षणोंका वर्णन ... २५४७
४–धृतराष्ट्रके पूछनेपर संजयके द्वारा भूमिके महत्त्वका वर्णन २५५३
५–पञ्चमहाभूतों तथा सुदर्शनद्वीपका संक्षिप्त वर्णन २५५५
६–सुदर्शनके वर्ष, पर्वत, मेरुगिरि, गङ्गानदी तथा शशाकृतिका वर्णन २५५६
७–उत्तर कुरु, भद्राश्ववर्ष तथा माल्यवान्‌का वर्णन २५५९
८–रमणक, हिरण्यक, शृङ्गवान् पर्वत तथा ऐरावतवर्षका वर्णन २५६१
९–भारतवर्षकी नदियों, देशों तथा जनपदोंके नाम और भूमिका महत्त्व ... २५६३
१०–भारतवर्षमें युगोंके अनुसार मनुष्योंकी आयु तथा गुणोंका निरूपण २५६६

(भूमिपर्व)

११–शाकद्वीपका वर्णन ... २५६७
१२–कुश, क्रौञ्च और पुष्कर आदि द्वीपोंका तथा राहु, सूर्य एवं चन्द्रमाके प्रमाणका वर्णन २५७०

(श्रीमद्भगवद्गीतापर्व)

१३–संजयका युद्धभूमिसे लौटकर धृतराष्ट्रको भीष्मकी मृत्युका समाचार सुनाना ... २५७३
१४–धृतराष्ट्रका विलाप करते हुए भीष्मजीके मारे जानेकी घटनाको विस्तारपूर्वक जाननेके लिये संजयसे प्रश्न करना ... २५७४
१५–संजयका युद्धके वृत्तान्तका वर्णन आरम्भ करना—दुर्योधनका दुःशासनको भीष्मकी रक्षाके लिये समुचित व्यवस्था करनेका आदेश २५७९
१६–दुर्योधनकी सेनाका वर्णन ... २५८०
१७–कौरवमहारथियोंका युद्धके लिये आगे बढ़ना तथा उनके व्यूह, वाहन और ध्वज आदिका वर्णन २५८२
१८–कौरवसेनाका कोलाहल तथा भीष्मके रक्षकोंका वर्णन २५८५
१९–व्यूहनिर्माणके विषयमें युधिष्ठिर और अर्जुनकी बातचीत, अर्जुनद्वारा वज्रव्यूहकी रचना, भीमसेनकी अध्यक्षतामें सेनाका आगे बढ़ना २५८६
२०–दोनों सेनाओंकी स्थिति तथा कौरवसेनाका अभियान २५८९
२१–कौरवसेनाको देखकर युधिष्ठिरका विषाद करना और 'श्रीकृष्णकी कृपासे ही विजय होती है' यह कहकर अर्जुनका उन्हें आश्वासन देना २५९१
२२–युधिष्ठिरकी रणयात्रा, अर्जुन और भीमसेनकी प्रशंसा तथा श्रीकृष्णका अर्जुनसे कौरवसेनाको मारनेके लिये कहना २५९२
२३–अर्जुनके द्वारा दुर्गादेवीकी स्तुति, वरप्राप्ति और अर्जुनकृत दुर्गास्तवनके पाठकी महिमा २५९४
२४–सैनिकोंके हर्ष और उत्साहके विषयमें धृतराष्ट्र और संजयका संवाद २५९६

२५–(श्रीमद्भगवद्गीतायां प्रथमोऽध्यायः)
दोनों सेनाओंके प्रधान-प्रधान वीरों एवं शङ्खध्वनिका वर्णन तथा स्वजनवधके पापसे भयभीत हुए अर्जुनका विषाद ... २५९७

२६–(श्रीमद्भगवद्गीतायां द्वितीयोऽध्यायः)
अर्जुनको युद्धके लिये उत्साहित करते हुए भगवान्‌के द्वारा नित्यानित्य वस्तुके विवेचनपूर्वक सांख्ययोग, कर्मयोग एवं स्थितप्रज्ञकी स्थिति और महिमाका प्रतिपादन ... २६०१

२७–(श्रीमद्भगवद्गीतायां तृतीयोऽध्यायः)
ज्ञानयोग और कर्मयोग आदि समस्त साधनोंके अनुसार कर्तव्य कर्म करनेकी आवश्यकताका प्रतिपादन एवं स्वधर्मपालनकी महिमा तथा कामनिरोधके उपायका वर्णन ... २६१२

२८–(श्रीमद्भगवद्गीतायां चतुर्थोऽध्यायः)

सगुण भगवान्‌के प्रभाव, निष्काम कर्मयोग तथा योगी महात्मा पुरुषोंके आचरण और उनकी महिमाका वर्णन करते हुए विविध यज्ञों एवं ज्ञानकी महिमाका वर्णन ... २६२३

२९–(श्रीमद्भगवद्गीतायां पञ्चमोऽध्यायः)

सांख्ययोग, निष्काम कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तिसहित ध्यानयोगका वर्णन ... २६३६

३०–(श्रीमद्भगवद्गीतायां षष्ठोऽध्यायः)

निष्काम कर्मयोगका प्रतिपादन करते हुए आत्मोद्धारके लिये प्रेरणा तथा मनोनिग्रहपूर्वक ध्यानयोग एवं योगभ्रष्टकी गतिका वर्णन ... २६४५

३१–(श्रीमद्भगवद्गीतायां सप्तमोऽध्यायः)

ज्ञान-विज्ञान, भगवान्‌की व्यापकता, अन्य देवताओंकी उपासना एवं भगवान्‌को प्रभावसहित न जाननेवालोंकी निन्दा और जाननेवालोंकी महिमाका कथन ... २६५८

३२–(श्रीमद्भगवद्गीतायामष्टमोऽध्यायः)

ब्रह्म, अध्यात्म और कर्मादिके विषयमें अर्जुनके सात प्रश्न और उनका उत्तर एवं भक्तियोग तथा शुक्ल और कृष्ण मार्गोंका प्रतिपादन ... २६६५

३३–(श्रीमद्भगवद्गीतायां नवमोऽध्यायः)

ज्ञान, विज्ञान और जगत्‌की उत्पत्तिका, आसुरी और दैवी सम्पदावालोंका, प्रभावसहित भगवान्‌के स्वरूपका, सकाम-निष्काम उपासनाका एवं भगवद्-भक्तिकी महिमाका वर्णन ... २६७५

३४–(श्रीमद्भगवद्गीतायां दशमोऽध्यायः)

भगवान्‌की विभूति और योगशक्तिका तथा प्रभावसहित भक्तियोगका कथन, अर्जुनके पूछनेपर भगवान्‌द्वारा अपनी विभूतियोंका और योगशक्तिका पुनः वर्णन ... २६९१

३५–(श्रीमद्भगवद्गीतायामेकादशोऽध्यायः)

विश्वरूपका दर्शन करानेके लिये अर्जुनकी प्रार्थना, भगवान् और संजयद्वारा विश्वरूपका वर्णन, अर्जुनद्वारा भगवान्‌के विश्वरूपका देखा जाना, भयभीत हुए अर्जुनद्वारा भगवान्‌की स्तुति-प्रार्थना, भगवान्‌द्वारा विश्वरूप और चतुर्भुजरूपके दर्शनकी महिमा और केवल अनन्यभक्तिसे ही भगवान्‌की प्राप्तिका कथन २७०८

३६–(श्रीमद्भगवद्गीतायां द्वादशोऽध्यायः)

साकार और निराकारके उपासकोंकी उत्तमताका निर्णय तथा भगवत्प्राप्तिके उपायका एवं भगवत्प्राप्तिवाले पुरुषोंके लक्षणोंका वर्णन ... २७२७

३७–(श्रीमद्भगवद्गीतायां त्रयोदशोऽध्यायः)

ज्ञानसहित क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ और प्रकृति-पुरुषका वर्णन २७३१

३८–(श्रीमद्भगवद्गीतायां चतुर्दशोऽध्यायः)

ज्ञानकी महिमा और प्रकृति-पुरुषसे जगत्‌की उत्पत्तिका, सत्त्व, रज, तम—तीनों गुणोंका, भगवत्प्राप्तिके उपायका एवं गुणातीत पुरुषके लक्षणोंका वर्णन २७५२

३९–(श्रीमद्भगवद्गीतायां पञ्चदशोऽध्यायः)

संसारवृक्षका, भगवत्प्राप्तिके उपायका, जीवात्माका, प्रभावसहित परमेश्वरके स्वरूपका एवं क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तमके तत्त्वका वर्णन २७६२

४०–(श्रीमद्भगवद्गीतायां षोडशोऽध्यायः)

फलसहित दैवी और आसुरी सम्पदाका वर्णन तथा शास्त्रविपरीत आचरणोंको त्यागने और शास्त्रके अनुकूल आचरण करनेके लिये प्रेरणा २७६९

४१–(श्रीमद्भगवद्गीतायां सप्तदशोऽध्यायः)

श्रद्धाका और शास्त्रविपरीत घोर तप करनेवालोंका वर्णन, आहार, यज्ञ, तप और दानके पृथक्-पृथक् भेद तथा ॐ, तत्, सत्‌के प्रयोगकी व्याख्या २७७५

४२–(श्रीमद्भगवद्गीतायामष्टादशोऽध्यायः)

त्यागका, सांख्यसिद्धान्तका, फलसहित वर्णधर्मका, उपासनासहित ज्ञाननिष्ठाका, भक्तिसहित निष्काम कर्मयोगका एवं गीताके माहात्म्यका वर्णन २७८४

(भीष्मवधपर्व)

४३–गीताका माहात्म्य तथा युधिष्ठिरका भीष्म, द्रोण, कृप और शल्यसे अनुमति लेकर युद्धके लिये तैयार होना २८१३

४४–कौरव-पाण्डवोंके प्रथम दिनके युद्धका आरम्भ २८२१

४५–उभयपक्षके सैनिकोंका द्वन्द्व-युद्ध ... २८२३

४६–कौरव-पाण्डवसेनाका घमासान युद्ध ... २८२८
४७–भीष्मके साथ अभिमन्युका भयंकर युद्ध, शल्यके द्वारा उत्तरकुमारका वध और श्वेतका पराक्रम ... २८३१
४८–श्वेतका महाभयंकर पराक्रम और भीष्मके द्वारा उसका वध ... २८३६
४९–शङ्खका युद्ध, भीष्मका प्रचण्ड पराक्रम तथा प्रथम दिनके युद्धकी समाप्ति ... २८४३
५०–युधिष्ठिरकी चिन्ता, भगवान् श्रीकृष्णद्वारा आश्वासन, धृष्टद्युम्नका उत्साह तथा द्वितीय दिनके युद्धके लिये क्रौञ्चारुण व्यूहका निर्माण २८४६
५१–कौरव-सेनाकी व्यूह-रचना तथा दोनों दलोंमें शङ्खध्वनि और सिंहनाद ... २८५०
५२–भीष्म और अर्जुनका युद्ध ... २८५२
५३–धृष्टद्युम्न तथा द्रोणाचार्यका युद्ध ... २८५७
५४–भीमसेनका कलिंगों और निषादोंसे युद्ध, भीमसेनके द्वारा शक्रदेव, भानुमान् और केतुमान्‌का वध तथा उनके बहुत-से सैनिकोंका संहार ... २८५९
५५–अभिमन्यु और अर्जुनका पराक्रम तथा दूसरे दिनके युद्धकी समाप्ति ... २८६७
५६–तीसरे दिन—कौरव-पाण्डवोंकी व्यूह-रचना तथा युद्धका आरम्भ ... २८७०
५७–उभयपक्षकी सेनाओंका घमासान युद्ध ... २८७१
५८–पाण्डव-वीरोंका पराक्रम, कौरव-सेनामें भगदड़ तथा दुर्योधन और भीष्मका संवाद ... २८७४
५९–भीष्मका पराक्रम, श्रीकृष्णका भीष्मको मारनेके लिये उद्यत होना, अर्जुनकी प्रतिज्ञा और उनके द्वारा कौरवसेनाकी पराजय, तृतीय दिवसके युद्धकी समाप्ति ... २८७७
६०–चौथे दिन—दोनों सेनाओंका व्यूहनिर्माण तथा भीष्म और अर्जुनका द्वैरथ-युद्ध ... २८८८
६१–अभिमन्युका पराक्रम और धृष्टद्युम्नद्वारा शलके पुत्रका वध ... २८९१
६२–धृष्टद्युम्न और शल्य आदि दोनों पक्षके वीरोंका युद्ध तथा भीमसेनके द्वारा गजसेनाका संहार २८९३
६३–युद्धस्थलमें प्रचण्ड पराक्रमकारी भीमसेनका भीष्मके साथ युद्ध तथा सात्यकि और भूरिश्रवाकी मुठभेड़ ... २८९७
६४–भीमसेन और घटोत्कचका पराक्रम, कौरवोंकी पराजय तथा चौथे दिनके युद्धकी समाप्ति ... २९००
६५–धृतराष्ट्र-संजय-संवादके प्रसङ्गमें दुर्योधनके द्वारा पाण्डवोंकी विजयका कारण पूछनेपर भीष्मका ब्रह्माजीके द्वारा की हुई भगवत्-स्तुतिका कथन २९०५
६६–नारायणावतार श्रीकृष्ण एवं नरावतार अर्जुनकी महिमाका प्रतिपादन ... २९१०
६७–भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा ... २९१३
६८–ब्रह्मभूतस्तोत्र तथा श्रीकृष्ण और अर्जुनकी महत्ता ... २९१५
६९–कौरवोंद्वारा मकरव्यूह तथा पाण्डवोंद्वारा श्येनव्यूहका निर्माण एवं पाँचवें दिनके युद्धका आरम्भ ... २९१६
७०–भीष्म और भीमसेनका घमासान युद्ध ... २९१८
७१–भीष्म, अर्जुन आदि योद्धाओंका घमासान युद्ध २९२०
७२–दोनों सेनाओंका परस्पर घोर युद्ध ... २९२३
७३–विराट-भीष्म, अश्वत्थामा-अर्जुन, दुर्योधन-भीमसेन तथा अभिमन्यु और लक्ष्मणके द्वन्द्वयुद्ध ... २९२५
७४–सात्यकि और भूरिश्रवाका युद्ध, भूरिश्रवाद्वारा सात्यकिके दस पुत्रोंका वध, अर्जुनका पराक्रम तथा पाँचवें दिनके युद्धका उपसंहार ... २९२८
७५–छठे दिनके युद्धका आरम्भ, पाण्डव तथा कौरवसेनाका क्रमशः मकरव्यूह एवं क्रौञ्चव्यूह बनाकर युद्धमें प्रवृत्त होना ... २९३१
७६–धृतराष्ट्रकी चिन्ता ... २९३३
७७–भीमसेन, धृष्टद्युम्न तथा द्रोणाचार्यका पराक्रम २९३५
७८–उभय पक्षकी सेनाओंका संकुलयुद्ध ... २९४०
७९–भीमसेनके द्वारा दुर्योधनकी पराजय, अभिमन्यु और द्रौपदीपुत्रोंका धृतराष्ट्रपुत्रोंके साथ युद्ध तथा छठे दिनके युद्धकी समाप्ति ... २९४३
८०–भीष्मद्वारा दुर्योधनको आश्वासन तथा सातवें दिनके युद्धके लिये कौरवसेनाका प्रस्थान ... २९४७
८१–सातवें दिनके युद्धमें कौरव-पाण्डव-सेनाओंका मण्डल और वज्रव्यूह बनाकर भीषण संघर्ष २९४९
८२–श्रीकृष्ण और अर्जुनसे डरकर कौरव-सेनामें भगदड़, द्रोणाचार्य और विराटका युद्ध, विराट-पुत्र शङ्खका वध, शिखण्डी और अश्वत्थामाका युद्ध, सात्यकिके द्वारा अलम्बुषकी पराजय, धृष्टद्युम्नके द्वारा दुर्योधनकी हार तथा भीमसेन और कृतवर्माका युद्ध ... २९५२
८३–इरावान्‌के द्वारा विन्द और अनुविन्दकी पराजय, भगदत्तसे घटोत्कचका हारना तथा मद्रराजपर नकुल और सहदेवकी विजय ... २९५६

८४–युधिष्ठिरसे राजा श्रुतायुका पराजित होना, युद्धमें चेकितान और कृपाचार्यका मूर्छित होना, भूरिश्रवासे धृष्टकेतुका और अभिमन्युसे चित्रसेन आदिका पराजित होना एवं सुशर्मा आदिसे अर्जुनका युद्धारम्भ २९६०
८५–अर्जुनका पराक्रम, पाण्डवोंका भीष्मपर आक्रमण, युधिष्ठिरका शिखण्डीको उपालम्भ और भीमका पुरुषार्थ २९६४
८६–भीष्म और युधिष्ठिरका युद्ध, धृष्टद्युम्न और सात्यकिके साथ विन्द और अनुविन्दका संग्राम, द्रोण आदिका पराक्रम और सातवें दिनके युद्धकी समाप्ति २९६८
८७–आठवें दिन व्यूहबद्ध कौरव-पाण्डव-सेनाओंकी रणयात्रा और उनका परस्पर घमासान युद्ध २९७२
८८–भीष्मका पराक्रम, भीमसेनके द्वारा धृतराष्ट्रके आठ पुत्रोंका वध तथा दुर्योधन और भीष्मकी युद्धविषयक बातचीत २९७४
८९–कौरव-पाण्डव-सेनाका घमासान युद्ध और भयानक जनसंहार २९७७
९०–इरावान्‌के द्वारा शकुनिके भाइयोंका तथा राक्षस अलम्बुषके द्वारा इरावान्‌का वध ... २९८०
९१–घटोत्कच और दुर्योधनका भयानक युद्ध ... २९८५
९२–घटोत्कचका दुर्योधन एवं द्रोण आदि प्रमुख वीरोंके साथ भयंकर युद्ध ... २९८७
९३–घटोत्कचकी रक्षाके लिये आये हुए भीम आदि शूरवीरोंके साथ कौरवोंका युद्ध और उनका पलायन २९९०
९४–दुर्योधन और भीमसेनका एवं अश्वत्थामा और राजा नीलका युद्ध तथा घटोत्कचकी मायासे मोहित होकर कौरवसेनाका पलायन ... २९९३
९५–दुर्योधनके अनुरोध और भीष्मजीकी आज्ञासे भगदत्तका घटोत्कच, भीमसेन और पाण्डव-सेनाके साथ घोर युद्ध ... २९९६
९६–इरावान्‌के वधसे अर्जुनका दुःखपूर्ण उद्गार, भीमसेनके द्वारा धृतराष्ट्रके नौ पुत्रोंका वध, अभिमन्यु और अम्बष्ठका युद्ध, युद्धकी भयानक स्थितिका वर्णन तथा आठवें दिनके युद्धका उपसंहार ३००१
९७–दुर्योधनका अपने मन्त्रियोंसे सलाह करके भीष्मसे पाण्डवोंको मारने अथवा कर्णको युद्धके लिये आज्ञा देनेका अनुरोध करना ... ३००७
९८–भीष्मका दुर्योधनको अर्जुनका पराक्रम बताना और भयंकर युद्धके लिये प्रतिज्ञा करना तथा प्रातःकाल दुर्योधनके द्वारा भीष्मकी रक्षाकी व्यवस्था ३००९
९९–नवें दिनके युद्धके लिये उभयपक्षकी सेनाओंकी व्यूहरचना और उनके घमासान युद्धका आरम्भ तथा विनाशसूचक उत्पातोंका वर्णन ३०१३
१००–द्रौपदीके पाँचों पुत्रों और अभिमन्युका राक्षस अलम्बुषके साथ घोर युद्ध एवं अभिमन्युके द्वारा नष्ट होती हुई कौरवसेनाका युद्धभूमिसे पलायन ३०१५
१०१–अभिमन्युके द्वारा अलम्बुषकी पराजय, अर्जुनके साथ भीष्मका तथा कृपाचार्य, अश्वत्थामा और द्रोणाचार्यके साथ सात्यकिका युद्ध ३०१८
१०२–द्रोणाचार्य और सुशर्माके साथ अर्जुनका युद्ध तथा भीमसेनके द्वारा गजसेनाका संहार ३०२२
१०३–उभय पक्षकी सेनाओंका घमासान युद्ध और रक्तमयी रणनदीका वर्णन ... ३०२४
१०४–अर्जुनके द्वारा त्रिगर्तोंकी पराजय, कौरव-पाण्डव सैनिकोंका घोर युद्ध, अभिमन्युसे चित्रसेनकी, द्रोणसे द्रुपदकी और भीमसेनसे बाह्लीककी पराजय तथा सात्यकि और भीष्मका युद्ध ३०२७
१०५–दुर्योधनका दुःशासनको भीष्मकी रक्षाके लिये आदेश, युधिष्ठिर और नकुल-सहदेवके द्वारा शकुनिकी घुड़सवार-सेनाकी पराजय तथा शल्यके साथ उन सबका युद्ध ... ३०३०
१०६–भीष्मके द्वारा पराजित पाण्डवसेनाका पलायन और भीष्मको मारनेके लिये उद्यत हुए श्रीकृष्णको अर्जुनका रोकना ... ३०३२
१०७–नवें दिनके युद्धकी समाप्ति, रातमें पाण्डवोंकी गुप्त मन्त्रणा तथा श्रीकृष्णसहित पाण्डवोंका भीष्मसे मिलकर उनके वधका उपाय जानना ३०३६

१०८–दसवें दिन उभयपक्षकी सेनाका रणके लिये प्रस्थान तथा भीष्म और शिखण्डीका समागम एवं अर्जुनका शिखण्डीको भीष्मका वध करनेके लिये उत्साहित करना ... ३०४५
१०९–भीष्म और दुर्योधनका संवाद तथा भीष्मके द्वारा लाखों सैनिकोंका संहार ... ३०४९
११०–अर्जुनके प्रोत्साहनसे शिखण्डीका भीष्मपर, आक्रमण और दोनों सेनाओंके प्रमुख वीरोंका परस्पर युद्ध तथा दुःशासनका अर्जुनके साथ घोर युद्ध ३०५१
१११–कौरव-पाण्डवपक्षके प्रमुख महारथियोंके द्वन्द्व युद्धका वर्णन ३०५४
११२–द्रोणाचार्यका अश्वत्थामाको अशुभ शकुनोंकी सूचना देते हुए उसे भीष्मकी रक्षाके लिये धृष्टद्युम्नसे युद्ध करनेका आदेश देना ... ३०५८
११३–कौरवपक्षके दस प्रमुख महारथियोंके साथ अकेले घोर युद्ध करते हुए भीमसेनका अद्भुत पराक्रम ३०६१
११४–कौरवपक्षके प्रमुख महारथियोंके साथ युद्धमें भीमसेन और अर्जुनका अद्भुत पुरुषार्थ ... ३०६४
११५–भीष्मके आदेशसे युधिष्ठिरका उनपर आक्रमण तथा कौरव-पाण्डव-सैनिकोंका भीषण युद्ध ३०६७
११६–कौरव-पाण्डव-महारथियोंके द्वन्द्वयुद्धका वर्णन तथा भीष्मका पराक्रम ... ३०६९
११७–उभय पक्षकी सेनाओंका युद्ध, दुःशासनका पराक्रम तथा अर्जुनके द्वारा भीष्मका मूर्च्छित होना ३०७४
११८–भीष्मका अद्भुत पराक्रम करते हुए पाण्डव-सेनाका भीषण संहार ... ३०७८
११९–कौरवपक्षके प्रमुख महारथियोंद्वारा सुरक्षित होनेपर भी अर्जुनका भीष्मको रथसे गिराना, शरशय्यापर स्थित भीष्मके समीप हंसरूप-धारी ऋषियोंका आगमन एवं उनके कथन-से भीष्मका उत्तरायणकी प्रतीक्षा करते हुए प्राण धारण करना ३०८२
१२०–भीष्मजीकी महत्ता तथा अर्जुनके द्वारा भीष्म-को तकिया देना एवं उभय पक्षकी सेनाओं-का अपने शिविरमें जाना और श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-संवाद ३०८९
१२१–अर्जुनका दिव्य जल प्रकट करके भीष्मजीकी प्यास बुझाना तथा भीष्मजीका अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए दुर्योधनको संधिके लिये समझाना ३०९३
१२२–भीष्म और कर्णका रहस्यमय संवाद ... ३०९७

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१–संजयको दिव्य दृष्टि २५४६
२–द्रोणाचार्यके प्रति दुर्योधन-का सैन्य प्रदर्शन २५९७
३–देवताओं और मनुष्योंको प्रजापतिकी शिक्षा २६१४
४–सूर्यके प्रति नारायणका उपदेश ... २६२३
५–समदर्शिता २६४०
६–सबमें भगवद्-दर्शन २६५३
७–अर्थार्थी भक्त ध्रुव २६६१
८–आर्तभक्त द्रौपदी २६६२
९–ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म २६६८
१०–भक्तोंके द्वारा प्रेमसे दिये हुए पत्र, पुष्प, फल, जल आदिको भगवान् प्रत्यक्ष प्रकट होकर ग्रहण करते हैं २६८६
११–पुण्यात्मा ब्राह्मण सुतीक्ष्ण २६८९
१२–राजर्षि अम्बरीष २६८९
१३–भगवान्‌की प्रह्लाद आदि तीन विभूतियाँ २७०४
१४–भगवान् विष्णु २७२४
१५–भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनके साथ विजय, विभूति, नीति और श्री २८१२
१६–भीष्मपितामहपर भगवान् श्रीकृष्ण-की कृपा २८१३

१७–भीष्म और अर्जुनका युद्ध ... २८९०
१८–भीष्मपितामहकी सेवामें श्रीकृष्णसहित पाण्डव ... ३०१३

(सादा)

१९–शरणागत अर्जुन २६०१
२०–पञ्च महायज्ञ २६१५
२१–अर्जुनके प्रति भगवान्का विराट्रूप-प्रदर्शन २७१२
२२–भगवान्के द्वारा भक्तका संसारसागरसे उद्धार २७२९
२३–चार अवस्था २७४२
२४–संसार-वृक्ष २७६२
२५–मोह-नाश २८११
२६–श्रीकृष्ण एवं भाइयोंसहित युधिष्ठिर-का भीष्मको प्रणाम करके उनसे युद्धके लिये आज्ञा माँगना ... २८१५
२७–भीमसेन और भीष्मका युद्ध ... २९२०
२८–अभिमन्युका युद्ध-कौशल ... २९२७
२९–भीमसेनके बाणसे मूर्च्छित दुर्योधन ... २९४४
३०–अर्जुनका व्यूहबद्ध कौरव-सेनाकी ओर श्रीकृष्णका ध्यान आकृष्ट करना ... २९५१
३१–आकाशमें स्थित हुए घटोत्कचकी गर्जना और दुर्योधनके साथ उसका युद्ध ... २९९१
३२–भीष्मजीका शिखण्डीसे युद्ध न करनेकी इच्छा प्रकट करना ३०४८
३३–अर्जुनका बाणद्वारा पृथ्वीसे जल प्रकट करके भीष्मजीको पिलाना ... ३०९५
३४–(२० लाइन चित्र फरमोंमें)

॥ श्रीहरिः ॥

द्रोणपर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	(द्रोणाभिषेकपर्व)	
१	भीष्मजीके धराशायी होनेसे कौरवोंका शोक तथा उनके द्वारा कर्णका स्मरण	३१०१
२	कर्णकी रणयात्रा	३१०५
३	भीष्मजीके प्रति कर्णका कथन	३१०९
४	भीष्मजीका कर्णको प्रोत्साहन देकर युद्धके लिये भेजना तथा कर्णके आगमनसे कौरवोंका हर्षोल्लास	३१११
५	कर्णका दुर्योधनके समक्ष सेनापति-पदके लिये द्रोणाचार्यका नाम प्रस्तावित करना	३११२
६	दुर्योधनका द्रोणाचार्यसे सेनापति होनेके लिये प्रार्थना करना	३११४
७	द्रोणाचार्यका सेनापतिके पदपर अभिषेक, कौरव-पाण्डव-सेनाओंका युद्ध और द्रोणका पराक्रम	३११५
८	द्रोणाचार्यके पराक्रम और वधका संक्षिप्त समाचार	३११८
९	द्रोणाचार्यकी मृत्युका समाचार सुनकर धृतराष्ट्रका शोक करना	३१२१
१०	राजा धृतराष्ट्रका शोकसे व्याकुल होना और संजयसे युद्धविषयक प्रश्न	३१२४
११	धृतराष्ट्रका भगवान् श्रीकृष्णकी संक्षिप्त लीलाओंका वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनकी महिमा बताना	३१२९
१२	दुर्योधनका वर माँगना और द्रोणाचार्यका युधिष्ठिरको अर्जुनकी अनुपस्थितिमें जीवित पकड़ लानेकी प्रतिज्ञा करना	३१३२
१३	अर्जुनका युधिष्ठिरको आश्वासन देना तथा युद्धमें द्रोणाचार्यका पराक्रम	३१३४
१४	द्रोणका पराक्रम, कौरव-पाण्डव वीरोंका द्वन्द्वयुद्ध, रणनदीका वर्णन तथा अभिमन्युकी वीरता	३१३६
१५	शल्यके साथ भीमसेनका युद्ध तथा शल्यकी पराजय	३१४२
१६	वृषसेनका पराक्रम, कौरव-पाण्डव वीरोंका तुमुलयुद्ध, द्रोणाचार्यके द्वारा पाण्डवपक्षके अनेक वीरोंका वध तथा अर्जुनकी विजय	३१४४
	(संशप्तकवधपर्व)	
१७	सुशर्मा आदि संशप्तक वीरोंकी प्रतिज्ञा तथा अर्जुनका युद्धके लिये उनके निकट जाना	३१४८
१८	संशप्तक-सेनाओंके साथ अर्जुनका युद्ध और सुधन्वाका वध	३१५१
१९	संशप्तक-गणोंके साथ अर्जुनका घोर युद्ध	३१५४
२०	द्रोणाचार्यके द्वारा गरुडव्यूहका निर्माण, युधिष्ठिरका भय, धृष्टद्युम्नका आश्वासन, धृष्टद्युम्न और दुर्मुखका युद्ध तथा संकुल-युद्धमें गजसेनाका संहार	३१५६
२१	द्रोणाचार्यके द्वारा सत्यजित्, शतानीक, दृढसेन, क्षेम, वसुदान तथा पाञ्चालराजकुमार आदिका वध और पाण्डव-सेनाकी पराजय	३१६०
२२	द्रोणके युद्धके विषयमें दुर्योधन और कर्णका संवाद	३१६४
२३	पाण्डव-सेनाके महारथियोंके रथ, घोड़े, ध्वज तथा धनुषोंका विवरण	३१६६
२४	धृतराष्ट्रका अपना खेद प्रकाशित करते हुए युद्धके समाचार पूछना	३१७३
२५	कौरव-पाण्डव-सैनिकोंके द्वन्द्व-युद्ध	३१७४
२६	भीमसेनका भगदत्तके हाथीके साथ युद्ध, हाथी और भगदत्तका भयानक पराक्रम	३१७९
२७	अर्जुनका संशप्तक-सेनाके साथ भयंकर युद्ध और उसके अधिकांश भागका वध	३१८३
२८	संशप्तकोंका संहार करके अर्जुनका कौरव-सेनापर आक्रमण तथा भगदत्त और उनके हाथीका पराक्रम	३१८५
२९	अर्जुन और भगदत्तका युद्ध, श्रीकृष्णद्वारा भगदत्तके वैष्णवास्त्रसे अर्जुनकी रक्षा तथा अर्जुनद्वारा हाथीसहित भगदत्तका वध	३१८७
३०	अर्जुनके द्वारा वृषक और अचलका वध, शकुनिकी माया और उसकी पराजय तथा कौरव-सेनाका पलायन	३१९१
३१	कौरव-पाण्डव सेनाओंका घमासान युद्ध तथा अश्वत्थामाके द्वारा राजा नीलका वध	३१९४

३२–कौरव-पाण्डव सेनाओंका घमासान युद्ध, भीमसेनका कौरव महारथियोंके साथ संग्राम, भयंकर संहार, पाण्डवोंका द्रोणाचार्यपर आक्रमण, अर्जुन और कर्णका युद्ध, कर्णके भाइयोंका वध तथा कर्ण और सात्यकिका संग्राम ३१९५

(अभिमन्युवधपर्व)

३३–दुर्योधनका उपालम्भ, द्रोणाचार्यकी प्रतिज्ञा और अभिमन्युवधके वृत्तान्तका संक्षेपसे वर्णन ३२०१
३४–संजयके द्वारा अभिमन्युकी प्रशंसा, द्रोणाचार्य-द्वारा चक्रव्यूहका निर्माण ... ३२०३
३५–युधिष्ठिर और अभिमन्युका संवाद तथा व्यूह-भेदनके लिये अभिमन्युकी प्रतिज्ञा ... ३२०४
३६–अभिमन्युका उत्साह तथा उसके द्वारा कौरवों-की चतुरङ्गिणी सेनाका संहार ... ३२०७
३७–अभिमन्युका पराक्रम, उसके द्वारा अश्मक-पुत्रका वध, शल्यका मूर्च्छित होना और कौरव-सेनाका पलायन ... ३२१०
३८–अभिमन्युके द्वारा शल्यके भाईका वध तथा द्रोणाचार्यकी रथसेनाका पलायन ... ३२१३
३९–द्रोणाचार्यके द्वारा अभिमन्युके पराक्रमकी प्रशंसा तथा दुर्योधनके आदेशसे दुःशासनका अभिमन्युके साथ युद्ध आरम्भ करना ... ३२१४
४०–अभिमन्युके द्वारा दुःशासन और कर्णकी पराजय ३२१६
४१–अभिमन्युके द्वारा कर्णके भाईका वध तथा कौरवसेनाका संहार और पलायन ... ३२१९
४२–अभिमन्युके पीछे जानेवाले पाण्डवोंको जयद्रथका वरके प्रभावसे रोक देना ... ३२२०
४३–पाण्डवोंके साथ जयद्रथका युद्ध और व्यूहद्वार-को रोक रखना ३२२२
४४–अभिमन्युका पराक्रम और उसके द्वारा वसातीय आदि अनेक योद्धाओंका वध ... ३२२४
४५–अभिमन्युके द्वारा सत्यश्रवा, क्षत्रियसमूह, रुक्मरथ तथा उसके मित्रगणों और सैकड़ों राजकुमारोंका वध और दुर्योधनकी पराजय ... ३२२५
४६–अभिमन्युके द्वारा लक्ष्मण तथा क्राथपुत्रका वध और सेनासहित छः महारथियोंका पलायन ३२२७
४७–अभिमन्युका पराक्रम, छः महारथियोंके साथ घोर युद्ध और उसके द्वारा वृन्दारक तथा दस हजार अन्य राजाओंके सहित कोसलनरेश बृहद्बलका वध ... ३२२९
४८–अभिमन्युद्वारा अश्वकेतु, भोज और कर्णके मन्त्री आदिका वध एवं छः महारथियोंके साथ घोर युद्ध और उन महारथियोंद्वारा अभिमन्युके धनुष, रथ, ढाल और तलवारका नाश ३२३१
४९–अभिमन्युका कालिकेय, वसाति और कैकय रथियोंको मार डालना एवं छः महारथियोंके सहयोगसे अभिमन्युका वध और भागती हुई अपनी सेनाको युधिष्ठिरका आश्वासन देना ३२३४
५०–तीसरे (तेरहवें) दिनके युद्धकी समाप्तिपर सेनाका शिविरको प्रस्थान एवं रणभूमिका वर्णन ३२३७
५१–युधिष्ठिरका विलाप ३२३८
५२–विलाप करते हुए युधिष्ठिरके पास व्यासजी-का आगमन और अकम्पन-नारद-संवादकी प्रस्तावना करते हुए मृत्युकी उत्पत्तिका प्रसंग आरम्भ करना ३२४०
५३–शंकर और ब्रह्माका संवाद, मृत्युकी उत्पत्ति तथा उसे समस्त प्रजाके संहारका कार्य सौंपा जाना ३२४३
५४–मृत्युकी घोर तपस्या, ब्रह्माजीके द्वारा उसे वरकी प्राप्ति तथा नारद-अकम्पन-संवादका उपसंहार ३२४५
५५–षोडशराजकीयोपाख्यानका आरम्भ, नारदजी-की कृपासे राजा सृञ्जयको पुत्रकी प्राप्ति, दस्युओं-द्वारा उसका वध तथा पुत्रशोकसंतप्त सृञ्जयको नारदजीका मरुत्तका चरित्र सुनाना ... ३२४९
५६–राजा सुहोत्रकी दानशीलता ... ३२५३
५७–राजा पौरवके अद्भुत दानका वृत्तान्त ... ३२५४
५८–राजा शिबिके यज्ञ और दानकी महत्ता ... ३२५५
५९–भगवान् श्रीरामका चरित्र ... ३२५६
६०–राजा भगीरथका चरित्र ... ३२५९
६१–राजा दिलीपका उत्कर्ष ... ३२६०
६२–राजा मान्धाताकी महत्ता ... ३२६१
६३–राजा ययातिका उपाख्यान ... ३२६३
६४–राजा अम्बरीषका चरित्र ... ३२६४
६५–राजा शशबिन्दुका चरित्र ... ३२६५
६६–राजा गयका चरित्र ३२६६
६७–राजा रन्तिदेवकी महत्ता ३२६८
६८–राजा भरतका चरित्र ३२६९
६९–राजा पृथुका चरित्र ३२७१
७०–परशुरामजीका चरित्र ३२७३

७१–नारदजीका सृञ्जयके पुत्रको जीवित करना और व्यासजीका युधिष्ठिरको समझाकर अन्तर्धान होना ३२७५

(प्रतिज्ञापर्व)

७२–अभिमन्युकी मृत्युके कारण अर्जुनका विषाद और क्रोध ३२७७
७३–युधिष्ठिरके मुखसे अभिमन्युवधका वृत्तान्त सुनकर अर्जुनकी जयद्रथको मारनेके लिये शपथपूर्ण प्रतिज्ञा ३२८३
७४–जयद्रथका भय तथा दुर्योधन और द्रोणाचार्यका उसे आश्वासन देना ... ३२८७
७५–श्रीकृष्णका अर्जुनको कौरवोंके जयद्रथकी रक्षाविषयक उद्योगका समाचार बताना ... ३२८९
७६–अर्जुनके वीरोचित वचन ... ३२९१
७७–नाना प्रकारके अशुभसूचक उत्पात, कौरवसेनामें भय और श्रीकृष्णका अपनी बहिन सुभद्राको आश्वासन देना ... ३२९३
७८–सुभद्राका विलाप और श्रीकृष्णका सबको आश्वासन ३२९५
७९–श्रीकृष्णका अर्जुनकी विजयके लिये रात्रिमें भगवान् शिवका पूजन करवाना, जागते हुए पाण्डव सैनिकोंकी अर्जुनके लिये शुभाशंसा तथा अर्जुनकी सफलताके लिये श्रीकृष्णके दारुकके प्रति उत्साहभरे वचन ३२९८
८०–अर्जुनका स्वप्नमें भगवान् श्रीकृष्णके साथ शिवजीके समीप जाना और उनकी स्तुति करना ३३०१
८१–अर्जुनको स्वप्नमें ही पुनः पाशुपतास्त्रकी प्राप्ति ३३०५
८२–युधिष्ठिरका प्रातःकाल उठकर स्नान और नित्यकर्म आदिसे निवृत्त हो ब्राह्मणोंको दान देना, वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो सिंहासनपर बैठना और वहाँ पधारे हुए भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करना ३३०७
८३–अर्जुनकी प्रतिज्ञाको सफल बनानेके लिये युधिष्ठिरकी श्रीकृष्णसे प्रार्थना और श्रीकृष्णका उन्हें आश्वासन देना ... ३३०९
८४–युधिष्ठिरका अर्जुनको आशीर्वाद, अर्जुनका स्वप्न सुनकर समस्त सुहृदोंकी प्रसन्नता, सात्यकि और श्रीकृष्णके साथ रथपर बैठकर अर्जुनकी रण-यात्रा तथा अर्जुनके कहनेसे सात्यकिका युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये जाना ... ३३११

(जयद्रथवधपर्व)

८५–धृतराष्ट्रका विलाप ३३१४
८६–संजयका धृतराष्ट्रको उपालम्भ ... ३३१७
८७–कौरव-सैनिकोंका उत्साह तथा आचार्य द्रोणके द्वारा चक्रशकटव्यूहका निर्माण ... ३३१९
८८–कौरव-सेनाके लिये अपशकुन, दुर्मर्षणका अर्जुनसे लड़नेको उत्साह तथा अर्जुनका रणभूमिमें प्रवेश एवं शङ्खनाद ... ३३२१
८९–अर्जुनके द्वारा दुर्मर्षणकी गजसेनाका संहार और समस्त सैनिकोंका पलायन ... ३३२३
९०–अर्जुनके बाणोंसे हताहत होकर सेनासहित दुःशासनका पलायन ३३२५
९१–अर्जुन और द्रोणाचार्यका वार्तालाप तथा युद्ध एवं द्रोणाचार्यको छोड़कर आगे बढ़े हुए अर्जुनका कौरवसैनिकोंद्वारा प्रतिरोध ... ३३२७
९२–अर्जुनका द्रोणाचार्य और कृतवर्माके साथ युद्ध करते हुए कौरव-सेनामें प्रवेश तथा श्रुतायुधका अपनी गदासे और सुदक्षिणका अर्जुनद्वारा वध ३३३०
९३–अर्जुनद्वारा श्रुतायु, अच्युतायु, नियतायु, दीर्घायु, म्लेच्छ सैनिक और अम्बष्ठ आदिका वध ३३३५
९४–दुर्योधनका उपालम्भ सुनकर द्रोणाचार्यका उसके शरीरमें दिव्य कवच बाँधकर उसीको अर्जुनके साथ युद्धके लिये भेजना ... ३३३९
९५–द्रोण और धृष्टद्युम्नका भीषण संग्राम तथा उभय पक्षके प्रमुख वीरोंका परस्पर संकुल युद्ध ... ३३४४
९६–दोनों पक्षोंके प्रधान वीरोंका द्वन्द्व-युद्ध ... ३३४७
९७–द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नका युद्ध तथा सात्यकिद्वारा धृष्टद्युम्नकी रक्षा ३३४९
९८–द्रोणाचार्य और सात्यकिका अद्भुत युद्ध ... ३३५२
९९–अर्जुनके द्वारा तीव्रगतिसे कौरवसेनामें प्रवेश, विन्द और अनुविन्दका वध तथा अद्भुत जलाशयका निर्माण ३३५५
१००–श्रीकृष्णके द्वारा अश्वपरिचर्या तथा खा-पीकर हृष्ट-पुष्ट हुए अश्वोंद्वारा अर्जुनका पुनः शत्रु-सेनापर आक्रमण करते हुए जयद्रथकी ओर बढ़ना ३३६०
१०१–श्रीकृष्ण और अर्जुनको आगे बढ़ा देख कौरवसैनिकोंकी निराशा तथा दुर्योधनका युद्धके लिये आना ३३६३

१०२–श्रीकृष्णका अर्जुनकी प्रशंसापूर्वक उसे प्रोत्साहन देना, अर्जुन और दुर्योधनका एक दूसरेके सम्मुख आना, कौरव-सैनिकोंका भय तथा दुर्योधनका अर्जुनको ललकारना ... ३३६५
१०३–दुर्योधन और अर्जुनका युद्ध तथा दुर्योधनकी पराजय ३३६८
१०४–अर्जुनका कौरव महारथियोंके साथ घोर युद्ध ३३७१
१०५–अर्जुन तथा कौरव महारथियोंके ध्वजोंका वर्णन और नौ महारथियोंके साथ अकेले अर्जुनका युद्ध ३३७३
१०६–द्रोण और उनकी सेनाके साथ पाण्डवसेनाका द्वन्द्व-युद्ध तथा द्रोणाचार्यके साथ युद्ध करते समय रथ-भंग हो जानेपर युधिष्ठिरका पलायन ३३७६
१०७–कौरव-सेनाके क्षेमधूर्ति, वीरधन्वा, निरमित्र तथा व्याघ्रदत्तका वध और दुर्मुख एवं विकर्णकी पराजय ३३७९
१०८–द्रौपदी-पुत्रोंके द्वारा सोमदत्तकुमार शलका वध तथा भीमसेनके द्वारा अलम्बुषकी पराजय ३३८१
१०९–घटोत्कचद्वारा अलम्बुषका वध और पाण्डव-सेनामें हर्ष-ध्वनि ३३८४
११०–द्रोणाचार्य और सात्यकिका युद्ध तथा युधिष्ठिरका सात्यकिकी प्रशंसा करते हुए उसे अर्जुनकी सहायताके लिये कौरव-सेनामें प्रवेश करनेका आदेश ३३८७
१११–सात्यकि और युधिष्ठिरका संवाद ... ३३९३
११२–सात्यकिकी अर्जुनके पास जानेकी तैयारी और सम्मानपूर्वक विदा होकर उनका प्रस्थान तथा साथ आते हुए भीमको युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये लौटा देना ३३९६
११३–सात्यकिका द्रोण और कृतवर्माके साथ युद्ध करते हुए काम्बोजोंकी सेनाके पास पहुँचना ३४०१
११४–धृतराष्ट्रका विषादयुक्त वचन, संजयका धृतराष्ट्रको ही दोषी बताना, कृतवर्माका भीमसेन और शिखण्डीके साथ युद्ध तथा पाण्डव-सेनाकी पराजय ३४०६
११५–सात्यकिके द्वारा कृतवर्माकी पराजय, त्रिगर्तोंकी गजसेनाका संहार और जलसंधका वध ३४१३
११६–सात्यकिका पराक्रम तथा दुर्योधन और कृतवर्माकी पुनः पराजय ... ३४१७
११७–सात्यकि और द्रोणाचार्यका युद्ध, द्रोणकी पराजय तथा कौरव-सेनाका पलायन .. ३४१९
११८–सात्यकिद्वारा सुदर्शनका वध ... ३४२२
११९–सात्यकि और उनके सारथिका संवाद तथा सात्यकिद्वारा काम्बोजों और यवन आदिकी सेनाकी पराजय ... ३४२४
१२०–सात्यकिद्वारा दुर्योधनकी सेनाका संहार तथा भाइयोंसहित दुर्योधनका पलायन ... ३४२७
१२१–सात्यकिके द्वारा पाषाणयोधी म्लेच्छोंकी सेनाका संहार और दुःशासनका सेनासहित पलायन ३४३०
१२२–द्रोणाचार्यका दुःशासनको फटकारना और द्रोणाचार्यके द्वारा वीरकेतु आदि पाञ्चालोंका वध एवं उनका धृष्टद्युम्नके साथ घोर युद्ध, द्रोणाचार्यका मूर्च्छित होना, धृष्टद्युम्नका पलायन, आचार्यकी विजय ... ३४३४
१२३–सात्यकिका घोर युद्ध और दुःशासनकी पराजय ३४३९
१२४–कौरव-पाण्डव-सेनाका घोर युद्ध तथा पाण्डवोंके साथ दुर्योधनका संग्राम ... ३४४१
१२५–द्रोणाचार्यके द्वारा बृहत्क्षत्र, धृष्टकेतु, जरासंधपुत्र सहदेव तथा धृष्टद्युम्नकुमार क्षत्रधर्माका वध और चेकितानकी पराजय ३४४४
१२६–युधिष्ठिरका चिन्तित होकर भीमसेनको अर्जुन और सात्यकिका पता लगानेके लिये भेजना ३४४९
१२७–भीमसेनका कौरवसेनामें प्रवेश, द्रोणाचार्यके सारथिसहित रथका चूर्ण कर देना तथा उनके द्वारा धृतराष्ट्रके ग्यारह पुत्रोंका वध, अवशिष्ट पुत्रोंसहित सेनाका पलायन ... ३४५२
१२८–भीमसेनका द्रोणाचार्य और अन्य कौरव-योद्धाओंको पराजित करते हुए द्रोणाचार्यके रथको आठ बार फेंक देना तथा श्रीकृष्ण और अर्जुनके समीप पहुँचकर गर्जना करना तथा युधिष्ठिरका प्रसन्न होकर अनेक प्रकारकी बातें सोचना ३४५७
१२९–भीमसेन और कर्णका युद्ध तथा कर्णकी पराजय ३४६१
१३०–दुर्योधनका द्रोणाचार्यको उपालम्भ देना, द्रोणाचार्यका उसे द्यूतका परिणाम दिखाकर युद्धके लिये वापस भेजना और उसके साथ युधामन्यु तथा उत्तमौजाका युद्ध ... ३४६३
१३१–भीमसेनके द्वारा कर्णकी पराजय ... ३४६६
१३२–भीमसेन और कर्णका घोर युद्ध ... ३४७०
१३३–भीमसेन और कर्णका युद्ध, कर्णके सारथिसहित रथका विनाश तथा धृतराष्ट्रपुत्र दुर्जयका वध ३४७२

१३४–भीमसेन और कर्णका युद्ध, धृतराष्ट्रपुत्र दुर्मुखका वध तथा कर्णका पलायन ... ३४७५
१३५–धृतराष्ट्रका खेदपूर्वक भीमसेनके बलका वर्णन और अपने पुत्रोंकी निन्दा करना तथा भीमके द्वारा दुर्मर्षण आदि धृतराष्ट्रके पाँच पुत्रोंका वध ३४७८
१३६–भीमसेन और कर्णका युद्ध, कर्णका पलायन, धृतराष्ट्रके सात पुत्रोंका वध तथा भीमका पराक्रम ३४८०
१३७–भीमसेन और कर्णका युद्ध तथा दुर्योधनके सात भाइयोंका वध ३४८३
१३८–भीमसेन और कर्णका भयंकर युद्ध ... ३४८६
१३९–भीमसेन और कर्णका भयंकर युद्ध, पहले भीमकी और पीछे कर्णकी विजय, उसके बाद अर्जुनके बाणोंसे व्यथित होकर कर्ण और अश्वत्थामाका पलायन ... ३४८८
१४०–सात्यकिद्वारा राजा अलम्बुषका और दुःशासनके घोड़ोंका वध ... ३४९६
१४१–सात्यकिका अद्भुत पराक्रम, श्रीकृष्णका अर्जुनको सात्यकिके आगमनकी सूचना देना और अर्जुनकी चिन्ता ... ३४९८
१४२–भूरिश्रवा और सात्यकिका रोषपूर्वक सम्भाषण और युद्ध तथा सात्यकिका सिर-काटनेके लिये उद्यत हुए भूरिश्रवाकी भुजा-का अर्जुनद्वारा उच्छेद ... ३५०१
१४३–भूरिश्रवाका अर्जुनको उपालम्भ देना, अर्जुन-का उत्तर और आमरण अनशनके लिये बैठे हुए भूरिश्रवाका सात्यकिके द्वारा वध ... ३५०६
१४४–सात्यकिके भूरिश्रवाद्वारा अपमानित होनेका कारण तथा वृष्णिवंशी वीरोंकी प्रशंसा ... ३५११
१४५–अर्जुनका जयद्रथपर आक्रमण, कर्ण और दुर्योधनकी बातचीत, कर्णके साथ अर्जुनका युद्ध और कर्णकी पराजय तथा सब योद्धाओं-के साथ अर्जुनका घोर युद्ध ... ३५१३
१४६–अर्जुनका अद्भुत पराक्रम और सिन्धुराज जयद्रथका वध ३५२०
१४७–अर्जुनके बाणोंसे कृपाचार्यका मूर्च्छित होना, अर्जुनका खेद तथा कर्ण और सात्यकिका युद्ध एवं कर्णकी पराजय ... ३५२९
१४८–अर्जुनका कर्णको फटकारना और वृषसेनके वधकी प्रतिज्ञा करना, श्रीकृष्णका अर्जुनको बधाई देकर उन्हें रणभूमिका भयानक दृश्य दिखाते हुए युधिष्ठिरके पास ले जाना ... ३५३४
१४९–श्रीकृष्णका युधिष्ठिरसे विजयका समाचार सुनाना और युधिष्ठिरद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति तथा अर्जुन, भीम एवं सात्यकिका अभिनन्दन ३५३९
१५०–व्याकुल हुए दुर्योधनका खेद प्रकट करते हुए द्रोणाचार्यको उपालम्भ देना ... ३५४३
१५१–द्रोणाचार्यका दुर्योधनको उत्तर और युद्धके लिये प्रस्थान ३५४५
१५२–दुर्योधन और कर्णकी बातचीत तथा पुनः युद्धका आरम्भ ३५४८

(घटोत्कचवधपर्व)

१५३–कौरव-पाण्डव-सेनाका युद्ध, दुर्योधन और युधिष्ठिरका संग्राम तथा दुर्योधनकी पराजय ३५५०
१५४–रात्रियुद्धमें पाण्डव-सैनिकोंका द्रोणाचार्यपर आक्रमण और द्रोणाचार्यद्वारा उनका संहार ३५५४
१५५–द्रोणाचार्यद्वारा शिबिका वध तथा भीमसेन-द्वारा घुस्से और थप्पड़से कलिङ्गराजकुमार-का एवं ध्रुव, जयरात तथा धृतराष्ट्रपुत्र दुष्कर्ण और दुर्मदका वध ... ३५५६
१५६–सोमदत्त और सात्यकिका युद्ध, सोमदत्तकी पराजय, घटोत्कच और अश्वत्थामाका युद्ध और अश्वत्थामाद्वारा घटोत्कचके पुत्रका, एक अक्षौहिणी राक्षस-सेनाका तथा द्रुपदपुत्रों-का वध एवं पाण्डव-सेनाकी पराजय ... ३५५९
१५७–सोमदत्तकी मूर्छा, भीमके द्वारा बाह्लीकका वध, धृतराष्ट्रके दस पुत्रों और शकुनिके सात रथियों एवं पाँच भाइयोंका संहार तथा द्रोणाचार्य और युधिष्ठिरके युद्धमें युधिष्ठिर-की विजय ३५७१
१५८–दुर्योधन और कर्णकी बातचीत, कृपाचार्यद्वारा कर्णको फटकारना तथा कर्ण-द्वारा कृपाचार्यका अपमान ... ३५७४
१५९–अश्वत्थामाका कर्णको मारनेके लिये उद्यत होना, दुर्योधनका उसे मनाना, पाण्डवों और पाञ्चालोंका कर्णपर आक्रमण, कर्णका पराक्रम, अर्जुनके द्वारा कर्णकी पराजय तथा दुर्योधनका अश्वत्थामासे पाञ्चालोंके वधके लिये अनुरोध ३५७९
१६०–अश्वत्थामाका दुर्योधनको उपालम्भपूर्ण आश्वासन देकर पाञ्चालोंके साथ युद्ध करते हुए धृष्टद्युम्नके रथसहित सारथिको नष्ट करके उसकी सेनाको भगाकर अद्भुत पराक्रम दिखाना ३५८५
१६१–भीमसेन और अर्जुनका आक्रमण और कौरव-सेनाका पलायन ... ३५८८

१६२–सात्यकिद्वारा सोमदत्तका वध, द्रोणाचार्य और युधिष्ठिरका युद्ध तथा भगवान् श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको द्रोणाचार्यसे दूर रहनेका आदेश ३५९०

१६३–कौरवों और पाण्डवोंकी सेनाओंमें प्रदीपों (मशालों) का प्रकाश ... ३५९३

१६४–दोनों सेनाओंका घमासान युद्ध और दुर्योधनका द्रोणाचार्यकी रक्षाके लिये सैनिकोंको आदेश ३५९७

१६५–दोनों सेनाओंका युद्ध और कृतवर्माद्वारा युधिष्ठिरकी पराजय ३५९९

१६६–सात्यकिके द्वारा भूरिका वध, घटोत्कच और अश्वत्थामाका घोर युद्ध तथा भीमके साथ दुर्योधनका युद्ध एवं दुर्योधनका पलायन ३६०२

१६७–कर्णके द्वारा सहदेवकी पराजय, शल्यके द्वारा विराटके भाई शतानीकका वध और विराटकी पराजय तथा अर्जुनसे पराजित होकर अलम्बुषका पलायन ३६०६

१६८–शतानीकके द्वारा चित्रसेनकी और वृषसेनके द्वारा द्रुपदकी पराजय तथा प्रतिविन्ध्य एवं दुःशासनका युद्ध ३६०९

१६९–नकुलके द्वारा शकुनिकी पराजय तथा शिखण्डी और कृपाचार्यका घोर युद्ध ... ३६१३

१७०–धृष्टद्युम्न और द्रोणाचार्यका युद्ध, धृष्टद्युम्नद्वारा द्रुमसेनका वध, सात्यकि और कर्णका युद्ध, कर्णकी दुर्योधनको सलाह तथा शकुनिका पाण्डवसेनापर आक्रमण ... ३६१६

१७१–सात्यकिसे दुर्योधनकी, अर्जुनसे शकुनि और उलूककी तथा धृष्टद्युम्नसे कौरवसेनाकी पराजय ३६२०

१७२–दुर्योधनके उपालम्भसे द्रोणाचार्य और कर्णका घोर युद्ध, पाण्डवसेनाका पलायन, भीमसेनका सेनाको लौटाकर लाना और अर्जुनसहित भीमसेनका कौरवोंपर आक्रमण करना ... ३६२३

१७३–कर्णद्वारा धृष्टद्युम्न एवं पाञ्चालोंकी पराजय, युधिष्ठिरकी घबराहट तथा श्रीकृष्ण और अर्जुनका घटोत्कचको प्रोत्साहन देकर कर्णके साथ युद्धके लिये भेजना ... ३६२६

१७४–घटोत्कच और जटासुरके पुत्र अलम्बुषका घोर युद्ध तथा अलम्बुषका वध ... ३६३०

१७५–घटोत्कच और उसके रथ आदिके स्वरूपका वर्णन तथा कर्ण और घटोत्कचका घोर संग्राम ३६३३

१७६–अलायुधका युद्धस्थलमें प्रवेश तथा उसके स्वरूप और रथ आदिका वर्णन ... ३६४१

१७७–भीमसेन और अलायुधका घोर युद्ध ... ३६४३

१७८–दोनों सेनाओंमें परस्पर घोर युद्ध और घटोत्कचके द्वारा अलायुधका वध एवं दुर्योधनका पश्चात्ताप ३६४६

१७९–घटोत्कचका घोर युद्ध तथा कर्णके द्वारा चलायी हुई इन्द्रप्रदत्त शक्तिसे उसका वध ३६४८

१८०–घटोत्कचके वधसे पाण्डवोंका शोक तथा श्रीकृष्णकी प्रसन्नता और उसका कारण ३६५५

१८१–भगवान् श्रीकृष्णका अर्जुनको जरासंध आदि धर्मद्रोहियोंके वध करनेका कारण बताना ३६५७

१८२–कर्णने अर्जुनपर शक्ति क्यों नहीं छोड़ी, इसके उत्तरमें संजयका धृतराष्ट्रसे और श्रीकृष्णका सात्यकिसे रहस्ययुक्त कथन ... ३६५९

१८३–धृतराष्ट्रका पश्चात्ताप, संजयका उत्तर एवं राजा युधिष्ठिरका शोक और भगवान् श्रीकृष्ण तथा महर्षि व्यासद्वारा उसका निवारण ३६६३

(द्रोणवधपर्व)

१८४–निद्रासे व्याकुल हुए उभयपक्षके सैनिकोंका अर्जुनके कहनेसे सो जाना और चन्द्रोदयके बाद पुनः उठकर युद्धमें लग जाना ... ३६६७

१८५–दुर्योधनका उपालम्भ और द्रोणाचार्यका व्यंगपूर्ण उत्तर ३६७१

१८६–पाण्डव-वीरोंका द्रोणाचार्यपर आक्रमण, द्रुपदके पौत्रों तथा द्रुपद एवं विराट् आदिका वध, धृष्टद्युम्नकी प्रतिज्ञा और दोनों दलोंमें घमासान युद्ध ३६७४

१८७–युद्धस्थलकी भीषण अवस्थाका वर्णन और नकुलके द्वारा दुर्योधनकी पराजय ... ३६७८

१८८–दुःशासन और सहदेवका, कर्ण और भीमसेनका तथा द्रोणाचार्य और अर्जुनका घोर युद्ध ३६८१

१८९–धृष्टद्युम्नका दुःशासनको हराकर द्रोणाचार्यपर आक्रमण, नकुल-सहदेवद्वारा उनकी रक्षा, दुर्योधन तथा सात्यकिका संवाद तथा युद्ध, कर्ण और भीमसेनका संग्राम और अर्जुनका कौरवोंपर आक्रमण ३६८५

१९०–द्रोणाचार्यका घोर कर्म, ऋषियोंका द्रोणको अस्त्र त्यागनेका आदेश तथा अश्वत्थामाकी मृत्यु सुनकर द्रोणका जीवनसे निराश होना ३६८९

१९१–द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नका युद्ध तथा सात्यकिकी शूरवीरता और प्रशंसा ... ३६९३

१९२–उभयपक्षके श्रेष्ठ महारथियोंका परस्पर युद्ध, धृष्टद्युम्नका आक्रमण, द्रोणाचार्यका अस्त्र त्यागकर योग-धारणाके द्वारा ब्रह्मलोक-गमन और धृष्टद्युम्नद्वारा उनके मस्तकका उच्छेद ३६९७

(नारायणास्त्र-मोक्षपर्व)

१९३–कौरव-सैनिकों तथा सेनापतियोंका भागना, अश्वत्थामाके पूछनेपर कृपाचार्यका उसे द्रोण-वधका वृत्तान्त सुनाना ... ३७०३
१९४–धृतराष्ट्रका प्रश्न ३७०७
१९५–अश्वत्थामाके क्रोधपूर्ण उद्गार और उसके द्वारा नारायणास्त्रका प्राकट्य ... ३७०८
१९६–कौरवसेनाका सिंहनाद सुनकर युधिष्ठिरका अर्जुनसे कारण पूछना और अर्जुनके द्वारा अश्वत्थामाके क्रोध एवं गुरुहत्याके भीषण परिणामका वर्णन ३७१२
१९७–भीमसेनके वीरोचित उद्गार और धृष्टद्युम्नके द्वारा अपने कृत्यका समर्थन ... ३७१५
१९८–सात्यकि और धृष्टद्युम्नका परस्पर क्रोधपूर्वक वाग्बाणोंसे लड़ना तथा भीमसेन, सहदेव और श्रीकृष्ण एवं युधिष्ठिरके प्रयत्नसे उनका निवारण ३७१८
१९९–अश्वत्थामाके द्वारा नारायणास्त्रका प्रयोग, राजा युधिष्ठिरका खेद, भगवान् श्रीकृष्णके बताये हुए उपायसे सैनिकोंकी रक्षा, भीमसेनका वीरोचित उद्गार और उनपर उस अस्त्रका प्रबल आक्रमण ... ३७२३
२००–श्रीकृष्णका भीमसेनको रथसे उतारकर नारायणास्त्रको शान्त करना, अश्वत्थामाका उसके पुनःप्रयोगमें अपनी असमर्थता बताना तथा अश्वत्थामाद्वारा धृष्टद्युम्नकी पराजय, सात्यकिका दुर्योधन, कृपाचार्य, कृतवर्मा, कर्ण और वृषसेन—इन छः महारथियोंको भगा देना। फिर अश्वत्थामाद्वारा मालव, पौरव और चेदिदेशके युवराजका वध एवं भीम और अश्वत्थामाका घोर युद्ध तथा पाण्डवसेनाका पलायन ३७२७
२०१–अश्वत्थामाके द्वारा आग्नेयास्त्रके प्रयोगसे एक अक्षौहिणी पाण्डवसेनाका संहार, श्रीकृष्ण और अर्जुनपर उस अस्त्रका प्रभाव न होनेसे चिन्तित हुए अश्वत्थामाको व्यासजीका शिव और श्रीकृष्णकी महिमा बताना ... ३७३६
२०२–व्यासजीका अर्जुनसे भगवान् शिवकी महिमा बताना तथा द्रोणपर्वके पाठ और श्रवणका फल ३७४४

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१–सेनापति द्रोणाचार्य ३१०१
२–श्रीकृष्णद्वारा अर्जुनके अश्वोंकी परिचर्या ३२१३
३–श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको आश्वासन ... ३३११
४–अर्जुनका जयद्रथके मस्तकको काटकर समन्त-पञ्चक क्षेत्रसे बाहर फेंकना ... ३४१३
५–जयद्रथवधके पश्चात् श्रीकृष्ण और अर्जुनका युधिष्ठिरसे मिलना ... ३५३९
६–व्यासजी अर्जुनको शङ्करजीकी महिमा कह रहे हैं ... ३६१३

(सादा)

७–दुर्योधनद्वारा द्रोणाचार्यका सेनापतिके पदपर अभिषेक ... ३११५
८–अर्जुनके द्वारा भगदत्तका वध ... ३१९०
९–चक्रव्यूह ३२०४
१०–अभिमन्युके द्वारा कौरव-सेनाके प्रमुख वीरोंका संहार ३२०८
११–अभिमन्युपर अनेक महारथियोंद्वारा एक साथ प्रहार ३२३३
१२–रुद्रदेवका ब्रह्माजीसे उनके क्रोधकी शान्तिके लिये वर माँगना ... ३२४३

१३–अर्जुनका जयद्रथवधके लिये प्रतिज्ञा करना ३२८४
१४–अर्जुनका स्वप्नदर्शन ३३०२
१५–श्रीकृष्ण और अर्जुनका दुर्मर्षणकी गजसेनामें प्रवेश ३३२३
१६–घटोत्कचद्वारा अलम्बुषका वध ... ३३८६
१७–सात्यकिका कौरव-सेनामें प्रवेश और युद्ध ३४२४
१८–भीमसेनके द्वारा द्रोणाचार्यके रथको दूर फेंकनेका उपक्रम ३४५८
१९–भीमसेनके द्वारा कर्णकी पराजय ... ३४७०
२०–भीमसेनका कर्णके रथपर हाथीकी लाश फेंकना ३४९३
२१–जयद्रथके कटे हुए मस्तकका उसके पिताकी गोदमें गिरना ३५२८
२२–घटोत्कचका रथ ३५६३
२३–घटोत्कचको कर्णके साथ युद्ध करनेकी प्रेरणा ३६२१
२४–घटोत्कचने गिरते समय कौरवोंकी एक अक्षौहिणी सेना पीस डाली ... ३६५४
२५–द्रोणाचार्यका ध्यानावस्थामें देह-त्याग एवं तेजस्वी-स्वरूपसे ऊर्ध्वलोक-गमन ... ३७००
२६–अश्वत्थामाके द्वारा पाण्डव-सेनापर नारायणास्त्रका प्रयोग ३७२४
२७–अश्वत्थामाके द्वारा अर्जुनपर आग्नेयास्त्रका प्रयोग एवं उसके द्वारा पाण्डव-सेनाका संहार ... ३७३७
२८–वेदव्यासजीका अश्वत्थामाको आश्वासन ... ३७४०
२९–(७५ लाइन चित्र फरमोंमें)

श्रीहरिः

कर्णपर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१	कर्णवधका संक्षिप्त वृत्तान्त सुनकर जनमेजयका वैशम्पायनजीसे उसे विस्तारपूर्वक कहनेका अनुरोध ...	३७५७
२	धृतराष्ट्र और संजयका संवाद ...	३७५८
३	दुर्योधनके द्वारा सेनाको आश्वासन देना तथा सेनापति कर्णके युद्ध और वधका संक्षित वृत्तान्त ...	३७६०
४	धृतराष्ट्रका शोक और समस्त स्त्रियोंकी व्याकुलता	३७६२
५	संजयका धृतराष्ट्रको कौरवपक्षके मारे गये प्रमुख वीरोंका परिचय देना ...	३७६३
६	कौरवोंद्वारा मारे गये प्रधान-प्रधान पाण्डव पक्षके वीरोंका परिचय ...	३७६६
७	कौरव-पक्षके जीवित योद्धाओंका वर्णन और धृतराष्ट्रकी मूर्च्छा ...	३७६९
८	धृतराष्ट्रका विलाप ...	३७७१
९	धृतराष्ट्रका संजयसे विलाप करते हुए कर्णवधका विस्तारपूर्वक वृत्तान्त पूछना ...	३७७३
१०	कर्णको सेनापति बनानेके लिये अश्वत्थामाका प्रस्ताव और सेनापतिके पदपर उसका अभिषेक	३७७९
११	कर्णके सेनापतित्वमें कौरव-सेनाका युद्धके लिये प्रस्थान और मकरव्यूहका निर्माण तथा पाण्डव-सेनाके अर्धचन्द्राकार व्यूहकी रचना और युद्धका आरम्भ ...	३७८३
१२	दोनों सेनाओंका घोर युद्ध और भीमसेनके द्वारा क्षेमधूर्तिका वध ...	३७८५
१३	दोनों सेनाओंका परस्पर घोर युद्ध तथा सात्यकिके द्वारा विन्द और अनुविन्दका वध ...	३७८९
१४	द्रौपदीपुत्र श्रुतकर्मा और प्रतिविन्ध्यद्वारा क्रमशः चित्रसेन एवं चित्रका वध, कौरवसेनाका पलायन तथा अश्वत्थामाका भीमसेनपर आक्रमण	३७९१
१५	अश्वत्थामा और भीमसेनका अद्भुत युद्ध तथा दोनोंका मूर्च्छित हो जाना ...	३७९४
१६	अर्जुनका संशप्तकों तथा अश्वत्थामाके साथ अद्भुत युद्ध ...	३७९६
१७	अर्जुनके द्वारा अश्वत्थामाकी पराजय ...	३८००
१८	अर्जुनके द्वारा हाथियोंसहित दण्डधार और दण्ड आदिका वध तथा उनकी सेनाका पलायन	३८०३
१९	अर्जुनके द्वारा संशप्तक सेनाका संहार, श्रीकृष्णका अर्जुनको युद्धस्थलका दृश्य दिखाते हुए उनके पराक्रमकी प्रशंसा करना तथा पाण्ड्यनरेशका कौरवसेनाके साथ युद्धारम्भ ...	३८०५
२०	अश्वत्थामाके द्वारा पाण्ड्यनरेशका वध ...	३८०९
२१	कौरव-पाण्डव-दलोंका भयंकर घमासान युद्ध ...	३८१३
२२	पाण्डवसेनापर भयानक गज-सेनाका आक्रमण, पाण्डवोंद्वारा पुण्ड्रकी पराजय तथा वङ्गराज और अङ्गराजका वध, गज-सेनाका विनाश और पलायन ...	३८१५
२३	सहदेवके द्वारा दुःशासनकी पराजय ...	३८१७
२४	नकुल और कर्णका घोर युद्ध तथा कर्णके द्वारा नकुलकी पराजय और पाञ्चाल-सेनाका संहार	३८१९
२५	युयुत्सु और उलूकका युद्ध, युयुत्सुका पलायन, शतानीक और धृतराष्ट्रपुत्र श्रुतकर्माका तथा सुतसोम और शकुनिका घोर युद्ध एवं शकुनिद्वारा पाण्डवसेनाका विनाश ...	३८२३
२६	कृपाचार्यसे धृष्टद्युम्नका भय तथा कृतवर्माके द्वारा शिखण्डीकी पराजय ...	३८२६
२७	अर्जुनद्वारा राजा श्रुतंजय, सौश्रुति, चन्द्रदेव और सत्यसेन आदि महारथियोंका वध एवं संशप्तक-सेनाका संहार ...	३८२९
२८	युधिष्ठिर और दुर्योधनका युद्ध, दुर्योधनकी पराजय तथा उभय पक्षकी सेनाओंका अमर्यादित भयंकर संग्राम ...	३८३१
२९	युधिष्ठिरके द्वारा दुर्योधनकी पराजय ...	३८३४
३०	सात्यकि और कर्णका युद्ध तथा अर्जुनके द्वारा कौरव-सेनाका संहार और पाण्डवोंकी विजय ...	३८३६
३१	रात्रिमें कौरवोंकी मन्त्रणा, धृतराष्ट्रके द्वारा दैवकी प्रबलताका प्रतिपादन, संजयद्वारा धृतराष्ट्रपर दोषारोप तथा कर्ण और दुर्योधनकी बातचीत ...	३८४०
३२	दुर्योधनकी शल्यसे कर्णका सारथि बननेके लिये प्रार्थना और शल्यका इस विषयमें घोर विरोध करना, पुनः श्रीकृष्णके समान अपनी प्रशंसा सुनकर उसे स्वीकार कर लेना ...	३८४४

३३–दुर्योधनका शल्यसे त्रिपुरोंकी उत्पत्तिका वर्णन, त्रिपुरोंसे भयभीत इन्द्र आदि देवताओंका ब्रह्माजीके साथ भगवान् शङ्करके पास जाकर उनकी स्तुति करना ... ३८४९
३४–दुर्योधनका शल्यको शिवके विचित्र रथका विवरण सुनाना और शिवजीद्वारा त्रिपुर-वधका उपाख्यान सुनाना एवं परशुरामजीके द्वारा कर्णको दिव्य अस्त्र मिलनेकी बात कहना ... ३८५३
३५–शल्य और दुर्योधनका वार्तालाप, कर्णका सारथि होनेके लिये शल्यकी स्वीकृति ... ३८६३
३६–कर्णका युद्धके लिये प्रस्थान और शल्यसे उसकी बातचीत ३८६६
३७–कौरवसेनामें अपशकुन, कर्णकी आत्मप्रशंसा, शल्यके द्वारा उसका उपहास और अर्जुनके बल-पराक्रमका वर्णन ३८६९
३८–कर्णके द्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुनका पता बतानेवालेको नाना प्रकारकी भोगसामग्री और इच्छानुसार धन देनेकी घोषणा ... ३८७३
३९–शल्यका कर्णके प्रति अत्यन्त आक्षेपपूर्ण वचन कहना ३८७५
४०–कर्णका शल्यको फटकारते हुए मद्रदेशके निवासियोंकी निन्दा करना एवं उसे मार डालनेकी धमकी देना ३८७७
४१–राजा शल्यका कर्णको एक हंस और कौएका उपाख्यान सुनाकर उसे श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए उनकी शरणमें जानेकी सलाह देना ३८८१
४२–कर्णका श्रीकृष्ण और अर्जुनके प्रभावको स्वीकार करते हुए अभिमानपूर्वक शल्यको फटकारना और उनसे अपनेको परशुरामजीद्वारा और ब्राह्मणद्वारा प्राप्त हुए शापोंकी कथा सुनाना ३८८७
४३–कर्णका आत्मप्रशंसापूर्वक शल्यको फटकारना ... ३८९२
४४–कर्णके द्वारा मद्र आदि बाहीक देशवासियोंकी निन्दा ३८९२
४५–कर्णका मद्र आदि बाहीकनिवासियोंके दोष बताना, शल्यका उत्तर देना और दुर्योधनका दोनोंको शान्त करना ३८९५
४६–कौरव-सेनाकी व्यूहरचना, युधिष्ठिरके आदेशसे अर्जुनका आक्रमण, शल्यके द्वारा पाण्डव-सेनाके प्रमुख वीरोंका वर्णन तथा अर्जुनकी प्रशंसा ... ३८९९
४७–कौरवों और पाण्डवोंकी सेनाओंका भयंकर युद्ध तथा अर्जुन और कर्णका पराक्रम ... ३९०५
४८–कर्णके द्वारा बहुत-से योद्धाओंसहित पाण्डव-सेनाका संहार, भीमसेनके द्वारा कर्णपुत्र भानुसेनका वध, नकुल और सात्यकिके साथ वृषसेनका युद्ध तथा कर्णका राजा युधिष्ठिरपर आक्रमण ... ३९०७
४९–कर्ण और युधिष्ठिरका संग्राम, कर्णकी मूर्च्छा, कर्णद्वारा युधिष्ठिरकी पराजय और तिरस्कार तथा पाण्डवोंके हजारों योद्धाओंका वध और रक्त-नदीका वर्णन तथा पाण्डव-महारथियोंद्वारा कौरव-सेनाका विध्वंस और उसका पलायन ... ३९११
५०–कर्ण और भीमसेनका युद्ध तथा कर्णका पलायन ३९१८
५१–भीमसेनके द्वारा धृतराष्ट्रके छः पुत्रोंका वध, भीम और कर्णका युद्ध, भीमके द्वारा गजसेना, रथसेना और घुड़सवारोंका संहार तथा उभय-पक्षकी सेनाओंका घोर युद्ध ... ३९२२
५२–दोनों सेनाओंका घोर युद्ध और कौरव-सेनाका व्यथित होना ३९२७
५३–अर्जुनद्वारा दस हजार संशप्तक योद्धाओं और उनकी सेनाका संहार ... ३९२९
५४–कृपाचार्यके द्वारा शिखण्डीकी पराजय और सुकेतुका वध तथा धृष्टद्युम्नके द्वारा कृतवर्माका परास्त होना ३९३२
५५–अश्वत्थामाका घोर युद्ध, सात्यकिके सारथिका वध एवं युधिष्ठिरका अश्वत्थामाको छोड़कर दूसरी ओर चले जाना ३९३५
५६–नकुल-सहदेवके साथ दुर्योधनका युद्ध, धृष्टद्युम्नसे दुर्योधनकी पराजय, कर्णद्वारा पाञ्चाल-सेनासहित योद्धाओंका संहार, भीमसेनद्वारा कौरव-योद्धाओंका सेनासहित विनाश, अर्जुनद्वारा संशप्तकोंका वध तथा अश्वत्थामाका अर्जुनके साथ घोर युद्ध करके पराजित होना ... ३९३७
५७–दुर्योधनका सैनिकोंको प्रोत्साहन देना और अश्वत्थामाकी प्रतिज्ञा ३९४६
५८–अर्जुनका श्रीकृष्णसे युधिष्ठिरके पास चलनेका आग्रह तथा श्रीकृष्णका उन्हें युद्ध-भूमि दिखाते और वहाँका समाचार बताते हुए रथको आगे बढ़ाना ३९४७
५९–धृष्टद्युम्न और कर्णका युद्ध, अश्वत्थामाका धृष्टद्युम्नपर आक्रमण तथा अर्जुनके द्वारा धृष्टद्युम्नकी रक्षा और अश्वत्थामाकी पराजय ... ३९५०
६०–श्रीकृष्णका अर्जुनसे दुर्योधन और कर्णके पराक्रमका वर्णन करके कर्णको मारनेके लिये अर्जुनको उत्साहित करना तथा भीमसेनके दुष्कर पराक्रमका वर्णन करना ... ३९५४

६१–कर्णद्वारा शिखण्डीकी पराजय, धृष्टद्युम्न और दुःशासनका तथा वृषसेन और नकुलका युद्ध, सहदेवद्वारा उलूककी तथा सात्यकिद्वारा शकुनिकी पराजय, कृपाचार्यद्वारा युधामन्युकी एवं कृतवर्माद्वारा उत्तमौजाकी पराजय तथा भीमसेनद्वारा दुर्योधनकी पराजय, गजसेनाका संहार और पलायन ३९६०
६२–युधिष्ठिरपर कौरव-सैनिकोंका आक्रमण ... ३९६५
६३–कर्णद्वारा नकुल-सहदेवसहित युधिष्ठिरकी पराजय एवं पीड़ित होकर युधिष्ठिरका अपनी छावनीमें जाकर विश्राम करना ३९६७
६४–अर्जुनद्वारा अश्वत्थामाकी पराजय, कौरवसेनामें भगदड़ एवं दुर्योधनसे प्रेरित कर्णद्वारा भार्गवास्त्रसे पाञ्चालोंका संहार ... ३९६९
६५–भीमसेनको युद्धका भार सौंपकर श्रीकृष्ण और अर्जुनका युधिष्ठिरके पास जाना ... ३९७४
६६–युधिष्ठिरका अर्जुनसे भ्रमवश कर्णके मारे जानेका वृत्तान्त पूछना ३९७६
६७–अर्जुनका युधिष्ठिरसे अबतक कर्णको न मार सकनेका कारण बताते हुए उसे मारनेके लिये प्रतिज्ञा करना ३९७९
६८–युधिष्ठिरका अर्जुनके प्रति अपमानजनक क्रोधपूर्ण वचन ३९८१
६९–युधिष्ठिरका वध करनेके लिये उद्यत हुए अर्जुनको भगवान् श्रीकृष्णका बलाक व्याध और कौशिक मुनिकी कथा सुनाते हुए धर्मका तत्त्व बताकर समझाना ३९८५
७०–भगवान् श्रीकृष्णका अर्जुनको प्रतिज्ञा-भङ्ग, भ्रातृवध तथा आत्मघातसे बचाना और युधिष्ठिरको सान्त्वना देकर संतुष्ट करना ... ३९९१
७१–अर्जुनसे भगवान् श्रीकृष्णका उपदेश, अर्जुन और युधिष्ठिरका प्रसन्नतापूर्वक मिलन एवं अर्जुनद्वारा कर्णवधकी प्रतिज्ञा, युधिष्ठिरका आशीर्वाद ... ३९९७
७२–श्रीकृष्ण और अर्जुनकी रणयात्रा, मार्गमें शुभ शकुन तथा श्रीकृष्णका अर्जुनको प्रोत्साहन देना ३९९९
७३–भीष्म और द्रोणके पराक्रमका वर्णन करते हुए अर्जुनके बलकी प्रशंसा करके श्रीकृष्णका कर्ण और दुर्योधनके अन्यायकी याद दिलाकर अर्जुनको कर्णवधके लिये उत्तेजित करना ... ४००२
७४–अर्जुनके वीरोचित उद्गार ... ४००९
७५–दोनों पक्षोंकी सेनाओंमें द्वन्द्वयुद्ध तथा सुषेणका वध ४०१३
७६–भीमसेनका अपने सारथि विशोकसे संवाद ४०१४
७७–अर्जुन और भीमसेनके द्वारा कौरव-सेनाका संहार तथा भीमसेनसे शकुनिकी पराजय एवं दुर्योधनादि धृतराष्ट्र-पुत्रोंका सेनासहित भागकर कर्णका आश्रय लेना ... ४०१८
७८–कर्णके द्वारा पाण्डव-सेनाका संहार और पलायन ४०२३
७९–अर्जुनका कौरव-सेनाको विनाश करके खूनकी नदी बहा देना और अपना रथ कर्णके पास ले चलनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णसे कहना तथा श्रीकृष्ण और अर्जुनको आते देख शल्य और कर्णकी बातचीत तथा अर्जुनद्वारा कौरव-सेनाका विध्वंस ४०२७
८०–अर्जुनका कौरव-सेनाको नष्ट करके आगे बढ़ना ४०३४
८१–अर्जुन और भीमसेनके द्वारा कौरववीरोंका संहार तथा कर्णका पराक्रम .. ४०३६
८२–सात्यकिके द्वारा कर्णपुत्र प्रसेनका वध, कर्णका पराक्रम और दुःशासन एवं भीमसेनका युद्ध ४०४०
८३–भीमद्वारा दुःशासनका रक्तपान और उसका वध, युधामन्युद्वारा चित्रसेनका वध तथा भीमका हर्षोद्गार ४०४४
८४–धृतराष्ट्रके दस पुत्रोंका वध, कर्णका भय और शल्यका समझाना तथा नकुल और वृषसेनका युद्ध ४०४९
८५–कौरववीरोंद्वारा कुलिन्दराजके पुत्रों और हाथियोंका संहार तथा अर्जुनद्वारा वृषसेनका वध ४०५२
८६–कर्णके साथ युद्ध करनेके विषयमें श्रीकृष्ण और अर्जुनकी बातचीत तथा अर्जुनका कर्णके सामने उपस्थित होना ४०५६
८७–कर्ण और अर्जुनका द्वैरथ-युद्धमें समागम, उनकी जय-पराजयके सम्बन्धमें सब प्राणियोंका संशय, ब्रह्मा और महादेवजीद्वारा अर्जुनकी विजय-घोषणा तथा कर्णकी शल्यसे और अर्जुनकी श्रीकृष्णसे वार्ता ... ४०५८
८८–अर्जुनद्वारा कौरव-सेनाका संहार, अश्वत्थामाका दुर्योधनसे संधिके लिये प्रस्ताव और दुर्योधनद्वारा उसकी अस्वीकृति ... ४०६५
८९–कर्ण और अर्जुनका भयंकर युद्ध और कौरववीरोंका पलायन ४०६९

९०–अर्जुन और कर्णका घोर युद्ध, भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा अर्जुनकी सर्पमुख बाणसे रक्षा तथा कर्णका अपना पहिया पृथ्वीमें फँस जानेपर अर्जुनसे बाण न चलानेके लिये अनुरोध करना ४०७९
९१–भगवान् श्रीकृष्णका कर्णको चेतावनी देना और कर्णका वध ४०८९
९२–कौरवोंका शोक, भीम आदि पाण्डवोंका हर्ष, कौरव-सेनाका पलायन और दुःखित शल्यका दुर्योधनको सान्त्वना देना ... ४०९४
९३–भीमसेनद्वारा पचीस हजार पैदल सैनिकोंका वध, अर्जुनद्वारा रथसेनाका विध्वंस, कौरवसेनाका पलायन और दुर्योधनका उसे रोकनेके लिये विफल प्रयास ... ४०९६
९४–शल्यके द्वारा रणभूमिका दिग्दर्शन, कौरव-सेनाका पलायन और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनका शिविरकी ओर गमन ४१००
९५–कौरव-सेनाका शिविरकी ओर पलायन और शिविरोंमें प्रवेश ४१०५
९६–युधिष्ठिरका रणभूमिमें कर्णको मारा गया देखकर प्रसन्न हो श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा करना, धृतराष्ट्रका शोकमग्न होना तथा कर्णपर्वके श्रवणकी महिमा ... ४१०६

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१–कर्ण और अर्जुनका युद्ध ३७५७
२–त्रिपुर-विनाशके लिये देवताओं-द्वारा शङ्करजीकी स्तुति ३८१३
३–श्रीकृष्ण आगे जाते हुए युधिष्ठिरको देखनेके लिये अर्जुनसे कह रहे हैं ३९५०
४–भगवान्‌के द्वारा अर्जुनकी सर्पमुख बाणसे रक्षा ४०१३

(सादा)

५–अर्जुनके द्वारा मित्रसेनका शिरश्छेद ३८३०
६–दुर्योधनकी शल्यसे कर्णका सारथि बननेके लिये प्रार्थना ... ३८४५
७–शल्य कर्णको हंस और कौएका उपाख्यान सुनाकर अपमानित कर रहे हैं ३८८५
८–भीमसेनके द्वारा धृतराष्ट्रके कई पुत्रों एवं कौरवयोद्धाओंका संहार ३९२३
९–अर्जुनके द्वारा संशप्तकोंका संहार ... ३९४३
१०–धर्मराजके चरणोंमें श्रीकृष्ण एवं अर्जुन प्रणाम कर रहे हैं ... ३९७५
११–कर्णद्वारा पृथ्वीमें धँसे हुए पहियेको उठानेका प्रयत्न ४०८८
१२–कर्णवध ४०९३
१३–(१६ लाइन चित्र फरमोंमें)

* श्रीहरिः *

शल्यपर्व

अध्याय विषय	पृष्ठ-संख्या
१–संजयके मुखसे शल्य और दुर्योधनके वधका वृत्तान्त सुनकर राजा धृतराष्ट्रका मूर्च्छित होना और सचेत होनेपर उन्हें विदुरका आश्वासन देना ...	४१११
२–राजा धृतराष्ट्रका विलाप करना और संजयसे युद्धका वृत्तान्त पूछना ...	४११४
३–कर्णके मारे जानेपर पाण्डवोंके भयसे कौरव-सेनाका पलायन, सामना करनेवाले पचीस हजार पैदलोंका भीमसेनद्वारा वध तथा दुर्योधनका अपने सैनिकोंको समझा-बुझाकर पुनः पाण्डवोंके साथ युद्धमें लगाना ...	४११८
४–कृपाचार्यका दुर्योधनको संधिके लिये समझाना	४१२२
५–दुर्योधनका कृपाचार्यको उत्तर देते हुए संधि स्वीकार न करके युद्धका ही निश्चय करना ...	४१२५
६–दुर्योधनके पूछनेपर अश्वत्थामाका शल्यको सेनापति बनानेके लिये प्रस्ताव, दुर्योधनका शल्यसे अनुरोध और शल्यद्वारा उसकी स्वीकृति	४१२८
७–राजा शल्यके वीरोचित उद्गार तथा श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको शल्यवधके लिये उत्साहित करना	४१३०
८–उभय-पक्षकी सेनाओंका समराङ्गणमें उपस्थित होना एवं बची हुई दोनों सेनाओंकी संख्याका वर्णन ...	४१३२
९–उभय-पक्षकी सेनाओंका घमासान युद्ध और कौरव-सेनाका पलायन ...	४१३५
१०–नकुलद्वारा कर्णके तीन पुत्रोंका वध तथा उभय पक्षकी सेनाओंका भयानक युद्ध ...	४१३८
११–शल्यका पराक्रम, कौरव-पाण्डव योद्धाओंके द्वन्द्वयुद्ध तथा भीमसेनके द्वारा शल्यकी पराजय	४१४२
१२–भीमसेन और शल्यका भयानक गदायुद्ध तथा युधिष्ठिरके साथ शल्यका युद्ध, दुर्योधनद्वारा चेकितानका और युधिष्ठिरद्वारा चन्द्रसेन एवं द्रुमसेनका वध, पुनः युधिष्ठिर और माद्री-पुत्रोंके साथ शल्यका युद्ध ...	४१४५
१३–मद्रराज शल्यका अद्भुत पराक्रम ...	४१४९
१४–अर्जुन और अश्वत्थामाका युद्ध तथा पाञ्चाल वीर सुरथका वध	४१५१
१५–दुर्योधन और धृष्टद्युम्नका एवं अर्जुन और अश्वत्थामाका तथा शल्यके साथ नकुल और सात्यकि आदिका घोर संग्राम ...	४१५४
१६–पाण्डव-सैनिकों और कौरव-सैनिकोंका द्वन्द्व-युद्ध, भीमसेनद्वारा दुर्योधनकी तथा युधिष्ठिर-द्वारा शल्यकी पराजय	४१५६
१७–भीमसेनद्वारा राजा शल्यके घोड़े और सारथिका तथा युधिष्ठिरद्वारा राजा शल्य और उनके भाईका वध एवं कृतवर्माकी पराजय ...	४१६०
१८–मद्रराजके अनुचरोंका वध और कौरव-सेनाका पलायन	४१६७
१९–पाण्डव-सैनिकोंका आपसमें बातचीत करते हुए पाण्डवोंकी प्रशंसा और धृतराष्ट्रकी निन्दा करना तथा कौरव-सेनाका पलायन, भीमद्वारा इक्कीस हजार पैदलोंका संहार और दुर्योधनका अपनी सेनाको उत्साहित करना ...	४१६९
२०–धृष्टद्युम्नद्वारा राजा शाल्वके हाथीका और सात्यकिद्वारा राजा शाल्वका वध ...	४१७३
२१–सात्यकिद्वारा क्षेमधूर्तिका वध, कृतवर्माका युद्ध और उसकी पराजय एवं कौरव-सेनाका पलायन	४१७६
२२–दुर्योधनका पराक्रम और उभयपक्षकी सेनाओं-का घोर संग्राम	४१७८
२३–कौरव-पक्षके सात सौ रथियोंका वध, उभय-पक्षकी सेनाओंका मर्यादाशून्य घोर संग्राम तथा शकुनिका कूट युद्ध और उसकी पराजय ...	४१८०
२४–श्रीकृष्णके सम्मुख अर्जुनद्वारा दुर्योधनके दुराग्रहकी निन्दा और रथियोंकी सेनाका संहार	४१८५
२५–अर्जुन और भीमसेनद्वारा कौरवोंकी रथसेना एवं गजसेनाका संहार, अश्वत्थामा आदिके द्वारा दुर्योधनकी खोज, कौरव-सेनाका पलायन तथा सात्यकिद्वारा संजयका पकड़ा जाना	४१८९

२६–भीमसेनके द्वारा धृतराष्ट्रके ग्यारह पुत्रोंका और बहुत-सी चतुरङ्गिणी सेनाका वध ... ४१९३

२७–श्रीकृष्ण और अर्जुनकी बातचीत, अर्जुनद्वारा सत्यकर्मा, सत्येषु तथा पैंतालीस पुत्रों और सेनासहित सुशर्माका वध तथा भीमके द्वारा धृतराष्ट्रपुत्र सुदर्शनका अन्त ... ४१९५

२८–सहदेवके द्वारा उलूक और शकुनिका वध एवं बची हुई सेनासहित दुर्योधनका पलायन ... ४१९८

(ह्रदप्रवेशपर्व)

२९–बची हुई समस्त कौरव-सेनाका वध, संजयका कैदसे छूटना, दुर्योधनका सरोवरमें प्रवेश तथा युयुत्सुका राजमहिलाओंके साथ हस्तिनापुरमें जाना ४२०२

(गदापर्व)

३०–अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्यका सरोवर-पर जाकर दुर्योधनसे युद्ध करनेके विषयमें बातचीत करना, व्याधोंसे दुर्योधनका पता पाकर युधिष्ठिरका सेनासहित सरोवरपर जाना और कृपाचार्य आदिका दूर हट जाना ... ४२०८

३१–पाण्डवोंका द्वैपायनसरोवरपर जाना, वहाँ युधिष्ठिर और श्रीकृष्णकी बातचीत तथा तालाबमें छिपे हुए दुर्योधनके साथ युधिष्ठिरका संवाद ४२१२

३२–युधिष्ठिरके कहनेसे दुर्योधनका तालाबसे बाहर होकर किसी एक पाण्डवके साथ गदायुद्धके लिये तैयार होना ४२१६

३३–श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको फटकारना, भीमसेनकी प्रशंसा तथा भीम और दुर्योधनमें वाग्युद्ध ... ४२२१

३४–बलरामजीका आगमन और स्वागत तथा भीमसेन और दुर्योधनके युद्धका आरम्भ ... ४२२४

३५–बलदेवजीकी तीर्थयात्रा तथा प्रभासक्षेत्रके प्रभावका वर्णनके प्रसंगमें चन्द्रमाके शाप-मोचनकी कथा ४२२५

३६–उदपानतीर्थकी उत्पत्तिकी तथा त्रित मुनि-के कूपमें गिरने, वहाँ यज्ञ करने और अपने भाइयोंको शाप देनेकी कथा ... ४२३०

३७–विनशन, सुभूमिक, गन्धर्व, गर्गस्रोत, शङ्ख, द्वैतवन तथा नैमिषेय आदि तीर्थोंमें होते हुए बलभद्रजीका सप्त सारस्वततीर्थमें प्रवेश ... ४२३३

३८–सप्तसारस्वततीर्थकी उत्पत्ति, महिमा और मङ्कणक मुनिका चरित्र ४२३७

३९–औशनस एवं कपालमोचनतीर्थकी माहात्म्यकथा तथा रुषङ्गुके आश्रम पृथूदक तीर्थकी महिमा ४२४०

४०–आर्ष्टिषेण एवं विश्वामित्रकी तपस्या तथा वरप्राप्ति ४२४२

४१–अवाकीर्ण और यायात तीर्थकी महिमाके प्रसंग-में दाल्भ्यकी कथा और ययातिके यज्ञका वर्णन ४२४४

४२–वसिष्ठापवाह तीर्थकी उत्पत्तिके प्रसंगमें विश्वामित्र-का क्रोध और वसिष्ठजीकी सहनशीलता ... ४२४७

४३–ऋषियोंके प्रयत्नसे सरस्वतीके शापकी निवृत्ति, जलकी शुद्धि तथा अरुणासङ्गममें स्नान करनेसे राक्षसों और इन्द्रका संकटमोचन ... ४२४९

४४–कुमार कार्तिकेयका प्राकट्य और उनके अभिषेककी तैयारी ४२५२

४५–स्कन्दका अभिषेक और उनके महापार्षदोंके नाम, रूप आदिका वर्णन ... ४२५५

४६–मातृकाओंका परिचय तथा स्कन्ददेवकी रण-यात्रा और उनके द्वारा तारकासुर, महिषासुर आदि दैत्योंका सेनासहित संहार ... ४२६०

४७–वरुणका अभिषेक तथा अग्नितीर्थ, ब्रह्मयोनि और कुबेरतीर्थकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग ... ४२६६

४८–बदरपाचनतीर्थकी महिमाके प्रसङ्गमें श्रुतावती और अरुन्धतीके तपकी कथा ... ४२६८

४९–इन्द्रतीर्थ, रामतीर्थ, यमुनातीर्थ और आदित्य-तीर्थकी महिमा ४२७१

५०–आदित्यतीर्थकी महिमाके प्रसङ्गमें असित देवल तथा जैगीषव्य मुनिका चरित्र ... ४२७३

५१–सारस्वततीर्थकी महिमाके प्रसङ्गमें दधीच ऋषि और सारस्वत मुनिके चरित्रका वर्णन ... ४२७६

५२–वृद्धकन्याका चरित्र, शृङ्गवान्‌के साथ उसका विवाह और स्वर्गगमन तथा उस तीर्थका माहात्म्य ४२७९

५३–ऋषियोंद्वारा कुरुक्षेत्रकी सीमा और महिमाका वर्णन ४२८१

५४–प्लक्षप्रस्रवण आदि तीर्थों तथा सरस्वतीकी महिमा एवं नारदजीसे कौरवोंके विनाश और भीम तथा दुर्योधनके युद्धका समाचार सुनकर बलरामजीका उसे देखनेके लिये जाना ... ४२८३

५५–बलरामजीकी सलाहसे सबका कुरुक्षेत्रके समन्तपञ्चकतीर्थमें जाना और वहाँ भीम तथा दुर्योधनमें गदायुद्धकी तैयारी ... ४२८५

५६–दुर्योधनके लिये अपशकुन, भीमसेनका उत्साह तथा भीम और दुर्योधनमें वाग्युद्धके पश्चात् गदायुद्धका आरम्भ ४२८८

५७–भीमसेन और दुर्योधनका गदायुद्ध ... ४२९१

५८–श्रीकृष्ण और अर्जुनकी बातचीत तथा अर्जुनके संकेतके अनुसार भीमसेनका गदासे दुर्योधनकी जाँघें तोड़कर उसे धराशायी करना एवं भीषण उत्पातोंका प्रकट होना ४२९५

५९–भीमसेनके द्वारा दुर्योधनका तिरस्कार, युधिष्ठिरका भीमसेनको समझाकर अन्यायसे रोकना और दुर्योधनको सान्त्वना देते हुए खेद प्रकट करना ४२९९

६०–क्रोधमें भरे हुए बलरामको श्रीकृष्णका समझाना और युधिष्ठिरके साथ श्रीकृष्णकी तथा भीमसेनकी बातचीत ... ४३०१

६१–पाण्डव-सैनिकोंद्वारा भीमकी स्तुति, श्रीकृष्णका दुर्योधनपर आक्षेप, दुर्योधनका उत्तर तथा श्रीकृष्णके द्वारा पाण्डवोंका समाधान एवं शङ्खध्वनि ४३०४

६२–पाण्डवोंका कौरवशिविरमें पहुँचना, अर्जुनके रथका दग्ध होना और पाण्डवोंका भगवान् श्रीकृष्णको हस्तिनापुर भेजना ... ४३०९

६३–युधिष्ठिरकी प्रेरणासे श्रीकृष्णका हस्तिनापुरमें जाकर धृतराष्ट्र और गान्धारीको आश्वासन दे पुनः पाण्डवोंके पास लौट आना ... ४३१२

६४–दुर्योधनका संजयके सम्मुख विलाप और वाहकोंद्वारा अपने साथियोंको संदेश भेजना ... ४३१७

६५–दुर्योधनकी दशा देखकर अश्वत्थामाका विषाद, प्रतिज्ञा और सेनापतिके पदपर अभिषेक ... ४३२०

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१–युधिष्ठिरकी ललकारपर दुर्योधनका पानीसे बाहर निकल आना ४१११

२–मित्रावरुणके आश्रममें बलरामजीकी देवर्षि नारदजीसे भेंट ४२२१

(सादा)

३–शल्यका कौरवोंके सेनापति-पदपर अभिषेक ४१३०

४–युधिष्ठिरद्वारा शल्यपर शक्तिका घातक प्रहार ४१६४

५–श्रीकृष्ण दुर्योधनकी ओर संकेत करते हुए उसे मरनेके लिये अर्जुनको प्रेरित कर रहे हैं ४१९५

६–विश्रामके लिये सरोवरमें छिपे हुए दुर्योधन ... ४२७५

७–पाण्डवोंद्वारा बलरामजीकी पूजा ... ४२२४

८–दुर्योधन और भीमका गदायुद्ध ... ४२९१

९–युद्धके अन्तमें अर्जुनके रथका दाह ... ४३१०

* श्रीहरिः *

सौप्तिकपर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१	तीनों महारथियोंका एक वनमें विश्राम, कौओंपर उल्लूका आक्रमण देख अश्वत्थामाके मनमें क्रूर संकल्पका उदय तथा अपने दोनों साथियों-से उसका सलाह पूछना	४३२३
२	कृपाचार्यका अश्वत्थामाको दैवकी प्रबलता बताते हुए कर्तव्यके विषयमें सत्पुरुषोंसे सलाह लेनेकी प्रेरणा देना	४३२७
३	अश्वत्थामाका कृपाचार्य और कृतवर्माको उत्तर देते हुए उन्हें अपना क्रूरतापूर्ण निश्चय बताना	४३२९
४	कृपाचार्यका कल प्रातःकाल युद्ध करनेकी सलाह देना और अश्वत्थामाका इसी रात्रिमें सोते हुओंको मारनेका आग्रह प्रकट करना ...	४३३१
५	अश्वत्थामा और कृपाचार्यका संवाद तथा तीनोंका पाण्डवोंके शिबिरकी ओर प्रस्थान ...	४३३४
६	अश्वत्थामाका शिबिरद्वारपर एक अद्भुत पुरुष-को देखकर उसपर अस्त्रोंका प्रहार करना और अस्त्रोंके अभावमें चिन्तित हो भगवान् शिवकी शरणमें जाना	४३३६
७	अश्वत्थामाद्वारा शिवकी स्तुति, उसके सामने एक अग्निवेदी तथा भूतगणोंका प्राकट्य और उसका आत्मसमर्पण करके भगवान् शिवसे खड्ग प्राप्त करना	४३३८
८	अश्वत्थामाके द्वारा रात्रिमें सोये हुए पाञ्चाल आदि समस्त वीरोंका संहार तथा फाटकसे निकलकर भागते हुए योद्धाओंका कृतवर्मा और कृपाचार्यद्वारा वध	४३४२
९	दुर्योधनकी दशा देखकर कृपाचार्य और अश्वत्थामाका विलाप तथा उनके मुखसे पाञ्चालोंके वधका वृत्तान्त जानकर दुर्योधनका प्रसन्न होकर प्राणत्याग करना ...	४३५१
	(ऐषीकपर्व)	
१०	धृष्टद्युम्नके सारथिके मुखसे पुत्रों और पाञ्चालोंके वधका वृत्तान्त सुनकर युधिष्ठिरका विलाप, द्रौपदीको बुलानेके लिये नकुलको भेजना, सुहृदोंके साथ शिबिरमें जाना तथा मारे हुए पुत्रादिको देखकर भाईसहित शोकातुर होना	४३५५
११	युधिष्ठिरका शोकमें व्याकुल होना, द्रौपदीका विलाप तथा द्रोणकुमारके वधके लिये आग्रह, भीमसेनका अश्वत्थामाको मारनेके लिये प्रस्थान	४३५८
१२	श्रीकृष्णका अश्वत्थामाकी चपलता एवं क्रूरताके प्रसंगमें सुदर्शनचक्र माँगनेकी बात सुनाते हुए उससे भीमसेनकी रक्षाके लिये प्रयत्न करनेका आदेश देना	४३६०
१३	श्रीकृष्ण, अर्जुन और युधिष्ठिरका भीमसेनके पीछे जाना, भीमका गङ्गातटपर पहुँचकर अश्वत्थामाको ललकारना और अश्वत्थामाके द्वारा ब्रह्मास्त्रका प्रयोग	४३६२
१४	अश्वत्थामाके अस्त्रका निवारण करनेके लिये अर्जुनके द्वारा ब्रह्मास्त्रका प्रयोग एवं वेदव्यासजी और देवर्षि नारदका प्रकट होना ...	४३६३
१५	वेदव्यासजीकी आज्ञासे अर्जुनके द्वारा अपने अस्त्रका उपसंहार तथा अश्वत्थामाका अपनी मणि देकर पाण्डवोंके गर्भोंपर दिव्यास्त्र छोड़ना	४३६५
१६	श्रीकृष्णसे शाप पाकर अश्वत्थामाका वनको प्रस्थान तथा पाण्डवोंका मणि देकर द्रौपदीको शान्त करना	४३६७
१७	अपने समस्त पुत्रों और सैनिकोंके मारे जानेके विषयमें युधिष्ठिरका श्रीकृष्णसे पूछना और उत्तरमें श्रीकृष्णके द्वारा महादेवजीकी महिमाका प्रतिपादन	४३६९
१८	महादेवजीके कोपसे देवता, यज्ञ और जगत्की दुरवस्था तथा उनके प्रसादसे सबका स्वस्थ होना	४३७१

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१-भीमसेन अश्वत्थामासे प्राप्त हुई मणि द्रौपदीको दे रहे हैं ... ४३२३

(सादा)

२-अश्वत्थामा एवं अर्जुनके छोड़े हुए ब्रह्मास्त्रोंको शान्त करनेके लिये नारद-जी और व्यासजीका आगमन ... ४३६४

॥ श्रीहरिः ॥
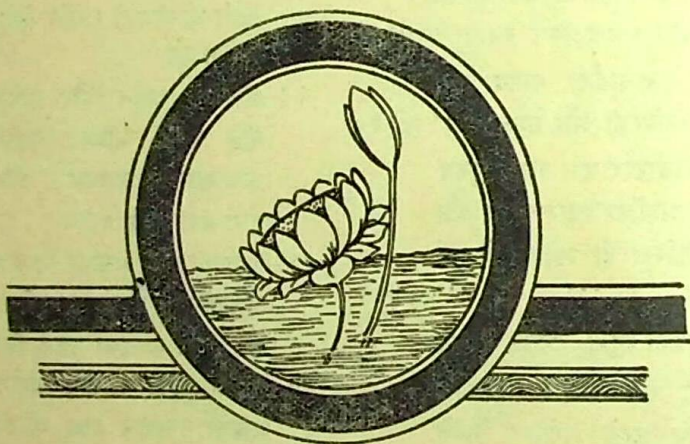
स्त्रीपर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	(जलप्रदानिकपर्व)	
१	धृतराष्ट्रका विलाप और संजयका उनको सान्त्वना देना ...	४३७३
२	विदुरजीका राजा धृतराष्ट्रको समझाकर उनको शोकका त्याग करनेके लिये कहना ...	४३७६
३	विदुरजीका शरीरकी अनित्यता बताते हुए धृतराष्ट्रको शोक त्यागनेके लिये कहना ...	४३७८
४	दुःखमय संसारके गहन स्वरूपका वर्णन और उससे छूटनेका उपाय ...	४३७९
५	गहन वनके दृष्टान्तसे संसारके भयंकर स्वरूपका वर्णन ...	४३८१
६	संसाररूपी वनके रूपकका स्पष्टीकरण ...	४३८२
७	संसारचक्रका वर्णन और रथके रूपकसे संयम और ज्ञान आदिको मुक्तिका उपाय बताना ...	४३८३
८	व्यासजीका संहारको अवश्यम्भावी बताकर धृतराष्ट्रको समझाना ...	४३८५
९	धृतराष्ट्रका शोकातुर हो जाना और विदुरजीका उन्हें पुनः शोक-निवारणके लिये उपदेश ...	४३८८
१०	स्त्रियों और प्रजाके लोगोंके सहित राजा धृतराष्ट्रका रणभूमिमें जानेके लिये नगरसे बाहर निकलना ...	४३८९
११	राजा धृतराष्ट्रसे कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्माकी भेंट और कृपाचार्यका कौरव-पाण्डवोंकी सेनाके विनाशकी सूचना देना ...	४३९१
१२	पाण्डवोंका धृतराष्ट्रसे मिलना, धृतराष्ट्रके द्वारा भीमकी लोहमयी प्रतिमाका भङ्ग होना और शोक करनेपर श्रीकृष्णका उन्हें समझाना ...	४३९२
१३	श्रीकृष्णका धृतराष्ट्रको फटकारकर उनका क्रोध शान्त करना और धृतराष्ट्रका पाण्डवोंको हृदयसे लगाना ...	४३९४
१४	पाण्डवोंको शाप देनेके लिये उद्यत हुई गान्धारीको व्यासजीका समझाना ...	४३९५
१५	भीमसेनका गान्धारीको अपनी सफाई देते हुए उनसे क्षमा माँगना, युधिष्ठिरका अपना अपराध स्वीकार करना, गान्धारीके दृष्टिपातसे युधिष्ठिरके पैरोंके नखोंका काला पड़ जाना, अर्जुनका भयभीत होकर श्रीकृष्णके पीछे छिप जाना, पाण्डवोंका अपनी मातासे मिलना, द्रौपदीका विलाप, कुन्तीका आश्वासन तथा गान्धारीका उन दोनोंको धीरज बँधाना ...	४३९६
	(स्त्रीविलापपर्व)	
१६	वेदव्यासजीके वरदानसे दिव्य दृष्टिसम्पन्न हुई गान्धारीका युद्धस्थलमें मारे गये योद्धाओं तथा रोती हुई बहुओंको देखकर श्रीकृष्णके सम्मुख विलाप ...	४३९९
१७	दुर्योधन तथा उसके पास रोती हुई पुत्रवधूको देखकर गान्धारीका श्रीकृष्णके सम्मुख विलाप	४४०२
१८	अपने अन्य पुत्रों तथा दुःशासनको देखकर गान्धारीका श्रीकृष्णके सम्मुख विलाप ...	४४०४
१९	विकर्ण, दुर्मुख, चित्रसेन, विविंशति तथा दुःसहको देखकर गान्धारीका श्रीकृष्णके सम्मुख विलाप ...	४४०६
२०	गान्धारीद्वारा श्रीकृष्णके प्रति उत्तरा और विराट-कुलकी स्त्रियोंके शोक एवं विलापका वर्णन ...	४४०७
२१	गान्धारीके द्वारा कर्णको देखकर उसके शौर्य तथा उसकी स्त्रीके विलापका श्रीकृष्णके सम्मुख वर्णन ...	४४०९
२२	अपनी-अपनी स्त्रियोंसे घिरे हुए अवन्ती-नरेश और जयद्रथको देखकर तथा दुःशलापर दृष्टिपात करके गान्धारीका श्रीकृष्णके सम्मुख विलाप ...	४४१०
२३	शल्य, भगदत्त, भीष्म और द्रोणको देखकर श्रीकृष्णके सम्मुख गान्धारीका विलाप ...	४४१२
२४	भूरिश्रवाके पास उसकी पत्नियोंका विलाप, उन सबको तथा शकुनिको देखकर गान्धारीका श्रीकृष्णके सम्मुख शोकोद्गार ...	४४१४
२५	अन्यान्य वीरोंको मरा हुआ देखकर गान्धारीका शोकातुर होकर विलाप करना और क्रोधपूर्वक श्रीकृष्णको यदुवंशविनाशविषयक शाप देना	४४१६
	(श्राद्धपर्व)	
२६	प्राप्त अनुस्मृति विद्या और दिव्य दृष्टिके प्रभावसे युधिष्ठिरका महाभारत-युद्धमें मारे गये लोगोंकी संख्या और गतिका वर्णन तथा युधिष्ठिरकी आज्ञासे सबका दाह-संस्कार ...	४४२०

२७–सभी स्त्री-पुरुषोंका अपने मरे हुए सम्बन्धियों-को जलाञ्जलि देना, कुन्तीका अपने गर्भसे कर्णके जन्म होनेका रहस्य प्रकट करना तथा युधिष्ठिरका कर्णके लिये शोक प्रकट करते हुए उनका प्रेतकृत्य सम्पन्न करना और स्त्रियोंके मनमें रहस्यकी बात न छिपनेका शाप देना ··· ४४२२

चित्र-सूची

(सादा)

१–व्यासजी गान्धारीको समझा रहे हैं ··· ४३९५

२–युद्धमें काम आये हुए वीरोंको उनके सम्बन्धियोंद्वारा जलदान ··· ४४२२

॥ श्रीहरिः ॥

शान्तिपर्व

अध्याय | विषय | पृष्ठ-संख्या

(राजधर्मानुशासनपर्व)

१–युधिष्ठिरके पास नारद आदि महर्षियोंका आगमन और युधिष्ठिरका कर्णके साथ अपना सम्बन्ध बताते हुए कर्णको शाप मिलनेका वृत्तान्त पूछना ४४२५
२–नारदजीका कर्णको शाप प्राप्त होनेका प्रसङ्ग सुनाना ४४२८
३–कर्णको ब्रह्मास्त्रकी प्राप्ति और परशुरामजीका शाप ४४३०
४–कर्णकी सहायतासे समागत राजाओंको पराजित करके दुर्योधनद्वारा स्वयंवरसे कलिङ्गराजकी कन्याका अपहरण ४४३२
५–कर्णके बल और पराक्रमका वर्णन, उसके द्वारा जरासंधकी पराजय और जरासंधका कर्णको अङ्गदेशमें मालिनी नगरीका राज्य प्रदान करना ४४३३
६–युधिष्ठिरकी चिन्ता, कुन्तीका उन्हें समझाना और स्त्रियोंको युधिष्ठिरका शाप ... ४४३४
७–युधिष्ठिरका अर्जुनसे आन्तरिक खेद प्रकट करते हुए अपने लिये राज्य छोड़कर वनमें चले जानेका प्रस्ताव करना ४४३५
८–अर्जुनका युधिष्ठिरके मतका निराकरण करते हुए उन्हें धनकी महत्ता बताना और राजधर्मके पालनके लिये जोर देते हुए यज्ञानुष्ठानके लिये प्रेरित करना ४४३८
९–युधिष्ठिरका वानप्रस्थ एवं संन्यासीके अनुसार जीवन व्यतीत करनेका निश्चय ... ४४४१
१०–भीमसेनका राजाके लिये संन्यासका विरोध करते हुए अपने कर्तव्यके ही पालनपर जोर देना ४४४३
११–अर्जुनका पक्षिरूपधारी इन्द्र और ऋषिबालकोंके संवादका उल्लेखपूर्वक गृहस्थ-धर्मके पालनपर जोर देना ४४४५
१२–नकुलका गृहस्थ-धर्मकी प्रशंसा करते हुए राजा युधिष्ठिरको समझाना ४४४७
१३–सहदेवका युधिष्ठिरको ममता और आसक्तिसे रहित होकर राज्य करनेकी सलाह देना ... ४४५०
१४–द्रौपदीका युधिष्ठिरको राजदण्डधारणपूर्वक पृथ्वीका शासन करनेके लिये प्रेरित करना ... ४४५१
१५–अर्जुनके द्वारा राजदण्डकी महत्ताका वर्णन ... ४४५४
१६–भीमसेनका राजाको भुक्त दुःखोंकी स्मृति कराते हुए मोह छोड़कर मनको काबूमें करके राज्य-शासन और यज्ञके लिये प्रेरित करना ... ४४५७
१७–युधिष्ठिरद्वारा भीमकी बातका विरोध करते हुए मुनिवृत्तिकी और ज्ञानी महात्माओंकी प्रशंसा ४४५९
१८–अर्जुनका राजा जनक और उनकी रानीका दृष्टान्त देते हुए युधिष्ठिरको संन्यास ग्रहण करनेसे रोकना ४४६१
१९–युधिष्ठिरद्वारा अपने मतकी यथार्थताका प्रतिपादन ४४६४
२०–मुनिवर देवस्थानका राजा युधिष्ठिरको यज्ञानुष्ठानके लिये प्रेरित करना ... ४४६६
२१–देवस्थान मुनिके द्वारा युधिष्ठिरके प्रति उत्तम धर्मका और यज्ञादि करनेका उपदेश ... ४४६७
२२–क्षत्रियधर्मकी प्रशंसा करते हुए अर्जुनका पुनः राजा युधिष्ठिरको समझाना ... ४४६८
२३–व्यासजीका शङ्ख और लिखितकी कथा सुनाते हुए राजा सुद्युम्नके दण्डधर्मपालनका महत्त्व सुनाकर युधिष्ठिरको राजधर्ममें ही दृढ़ रहनेकी आज्ञा देना ४४६९
२४–व्यासजीका युधिष्ठिरको राजा हयग्रीवका चरित्र सुनाकर उन्हें राजोचित कर्तव्यका पालन करनेके लिये जोर देना ४४७२
२५–सेनजित्के उपदेशयुक्त उद्गारोंका उल्लेख करके व्यासजीका युधिष्ठिरको समझाना ... ४४७५
२६–युधिष्ठिरके द्वारा धनके त्यागकी ही महत्ताका प्रतिपादन ४४७८
२७–युधिष्ठिरको शोकवश शरीर त्याग देनेके लिये उद्यत देख व्यासजीका उन्हें उससे निवारण करके समझाना ४४८०
२८–अश्मा ऋषि और जनकके संवादद्वारा प्रारब्धकी प्रबलता बतलाते हुए व्यासजीका युधिष्ठिरको समझाना ४४८२
२९–श्रीकृष्णके द्वारा नारद-संजय-संवादके रूपमें सोलह राजाओंका उपाख्यान संक्षेपमें सुनाकर युधिष्ठिरके शोकनिवारणका प्रयत्न ... ४४८६
३०–महर्षि नारद और पर्वतका उपाख्यान ... ४४९६
३१–सुवर्णष्ठीवीके जन्म, मृत्यु और पुनर्जीवनका वृत्तान्त ४४९९
३२–व्यासजीका अनेक युक्तियोंसे राजा युधिष्ठिरको समझाना ४५०२

३३–व्यासजीका युधिष्ठिरको समझाते हुए कालकी प्रबलता बताकर देवासुर-संग्रामके उदाहरणसे धर्मद्रोहियोंके दमनका औचित्य सिद्ध करना और प्रायश्चित्त करनेकी आवश्यकता बताना ... ४५०४
३४–जिन कर्मोंके करने और न करनेसे कर्ता प्रायश्चित्तका भागी होता और नहीं होता उनका विवेचन ४५०७
३५–पापकर्मके प्रायश्चित्तोंका वर्णन ... ४५०९
३६–स्वायम्भुव मनुके कथनानुसार धर्मका स्वरूप, पापसे शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त, अभक्ष्य वस्तुओंका वर्णन तथा दानके अधिकारी एवं अनधिकारीका विवेचन ... ४५१२
३७–व्यासजी तथा भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे महाराज युधिष्ठिरका नगरमें प्रवेश ... ४५१६
३८–नगर-प्रवेशके समय पुरवासियों तथा ब्राह्मणोंद्वारा राजा युधिष्ठिरका सत्कार और उनपर आक्षेप करनेवाले चार्वाकका ब्राह्मणोंद्वारा वध ४५१९
३९–चार्वाकको प्राप्त हुए वर आदिका श्रीकृष्णद्वारा वर्णन ४५२१
४०–युधिष्ठिरका राज्याभिषेक ... ४५२२
४१–राजा युधिष्ठिरका धृतराष्ट्रके अधीन रहकर राज्यकी व्यवस्थाके लिये भाइयों तथा अन्य लोगोंको विभिन्न कार्योंपर नियुक्त करना ... ४५२४
४२–राजा युधिष्ठिर तथा धृतराष्ट्रका युद्धमें मारे गये सगे सम्बन्धियों तथा अन्य राजाओंके लिये श्राद्धकर्म करना ४५२५
४३–युधिष्ठिरद्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति ४५२६
४४–महाराज युधिष्ठिरके दिये हुए विभिन्न भवनोंमें भीमसेन आदि सब भाइयोंका प्रवेश और विश्राम ४५२७
४५–युधिष्ठिरके द्वारा ब्राह्मणों तथा आश्रितोंका सत्कार एवं दान और श्रीकृष्णके पास जाकर उनकी स्तुति करते हुए कृतज्ञता-प्रकाशन ... ४५२८
४६–युधिष्ठिर और श्रीकृष्णका संवाद, श्रीकृष्णद्वारा भीष्मकी प्रशंसा और युधिष्ठिरको उनके पास चलनेका आदेश ४५३०
४७–भीष्मद्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति—भीष्मस्तवराज ४५३२
४८–परशुरामजीद्वारा होनेवाले क्षत्रियसंहारके विषयमें राजा युधिष्ठिरका प्रश्न ... ४५४१
४९–परशुरामजीके उपाख्यानमें क्षत्रियोंके विनाश और पुनः उत्पन्न होनेकी कथा ... ४५४२
५०–श्रीकृष्णद्वारा भीष्मजीके गुण-प्रभावका सविस्तर वर्णन ४५४८
५१–भीष्मके द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति तथा श्रीकृष्णका भीष्मकी प्रशंसा करते हुए उन्हें युधिष्ठिरके लिये धर्मोपदेश करनेका आदेश ... ४५५०
५२–भीष्मका अपनी असमर्थता प्रकट करना, भगवान्‌का उन्हें वर देना तथा ऋषियों एवं पाण्डवोंका दूसरे दिन आनेका संकेत करके वहाँसे विदा होकर अपने-अपने स्थानोंको जाना ४५५२
५३–भगवान् श्रीकृष्णकी प्रातश्चर्या, सात्यकिद्वारा उनका संदेश पाकर भाइयोंसहित युधिष्ठिरका उन्हींके साथ कुरुक्षेत्रमें पधारना ... ४५५४
५४–भगवान् श्रीकृष्ण और भीष्मजीकी बातचीत ... ४५५६
५५–भीष्मका युधिष्ठिरके गुण-कथनपूर्वक उनको प्रश्न करनेका आदेश देना, श्रीकृष्णका उनके लज्जित और भयभीत होनेका कारण बताना और भीष्मका आश्वासन पाकर युधिष्ठिरका उनके समीप जाना ४५५८
५६–युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा राजधर्मका वर्णन, राजाके लिये पुरुषार्थ और सत्यकी आवश्यकता, ब्राह्मणोंकी अदण्डनीयता तथा राजाकी परिहासशीलता और मृदुतासे प्रकट होनेवाले दोष ४५६०
५७–राजाके धर्मानुकूल नीतिपूर्ण बर्तावका वर्णन ... ४५६४
५८–भीष्मद्वारा राज्यरक्षाके साधनोंका वर्णन तथा संध्याके समय युधिष्ठिर आदिका विदा होना और रास्तेमें स्नान-संध्यादि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर हस्तिनापुरमें प्रवेश ... ४५६७
५९–ब्रह्माजीके नीतिशास्त्रका तथा राजा पृथुके चरित्रका वर्णन ४५६९
६०–वर्णधर्मका वर्णन ४५७८
६१–आश्रमधर्मका वर्णन ४५८२
६२–ब्राह्मणधर्म और कर्तव्यपालनका महत्त्व ... ४५८४
६३–वर्णाश्रमधर्मका वर्णन तथा राजधर्मकी श्रेष्ठता ४५८५
६४–राजधर्मकी श्रेष्ठताका वर्णन और इस विषयमें इन्द्ररूपधारी विष्णु और मान्धाताका संवाद ४५८७
६५–इन्द्ररूपधारी विष्णु और मान्धाताका संवाद ४५९०
६६–राजधर्मके पालनसे चारों आश्रमोंके धर्मका फल मिलनेका कथन ४५९२
६७–राष्ट्रकी रक्षा और उन्नतिके लिये राजाकी आवश्यकताका प्रतिपादन ... ४५९५
६८–वसुमना और बृहस्पतिके संवादमें राजाके न होनेसे प्रजाकी हानि और होनेसे लाभका वर्णन ४५९७
६९–राजाके प्रधान कर्तव्योंका तथा दण्डनीतिके द्वारा युगोंके निर्माणका वर्णन ... ४६०१

७०–राजाको इहलोक और परलोकमें सुखकी प्राप्ति करानेवाले छत्तीस गुणोंका वर्णन ... ४६०८
७१–धर्मपूर्वक प्रजाका पालन ही राजाका महान् धर्म है, इसका प्रतिपादन ... ४६०९
७२–राजाके लिये सदाचारी विद्वान् पुरोहितकी आवश्यकता तथा प्रजापालनका महत्त्व ... ४६१२
७३–विद्वान् सदाचारी पुरोहितकी आवश्यकता तथा ब्राह्मण और क्षत्रियमें मेल रहनेसे लाभ-विषयक राजा पुरूरवाका उपाख्यान ... ४६१३
७४–ब्राह्मण और क्षत्रियके मेलसे लाभका प्रतिपादन करनेवाला मुचुकुन्दका उपाख्यान ... ४६१७
७५–राजाके कर्तव्यका वर्णन, युधिष्ठिरका राज्यसे विरक्त होना एव भीष्मजीका पुनः राज्यकी महिमा सुनाना ... ४६१८
७६–उत्तम-अधम ब्राह्मणोंके साथ राजाका बर्ताव ... ४६२१
७७–केकयराजा तथा राक्षसका उपाख्यान और केकयराज्यकी श्रेष्ठताका विस्तृत वर्णन ... ४६२२
७८–आपत्तिकालमें ब्राह्मणके लिये वैश्यवृत्तिसे निर्वाह करनेकी छूट तथा लुटेरोंसे अपनी और दूसरोंकी रक्षा करनेके लिये सभी जातियोंको शस्त्रधारण करनेका अधिकार एवं रक्षकको सम्मानका पात्र स्वीकार करना ... ४६२५
७९–ऋत्विजोंके लक्षण, यज्ञ और दक्षिणाका महत्त्व तथा तपकी श्रेष्ठता ... ४६२८
८०–राजाके लिये मित्र और अमित्रकी पहचान तथा उन सबके साथ नीतिपूर्ण बर्तावका और मन्त्रीके लक्षणोंका वर्णन ... ४६२९
८१–कुटुम्बीजनोंमें दलबंदी होनेपर उस कुलके प्रधान पुरुषको क्या करना चाहिये ? इसके विषयमें श्रीकृष्ण और नारदजीका संवाद ... ४६३२
८२–मन्त्रियोंकी परीक्षाके विषयमें तथा राजा और राजकीय मनुष्योंसे सतर्क रहनेके विषयमें कालकवृक्षीय मुनिका उपाख्यान ... ४६३५
८३–सभासद् आदिके लक्षण, गुप्त सलाह सुननेके अधिकारी और अनधिकारी तथा गुप्त-मन्त्रणाकी विधि एवं स्थानका निर्देश ... ४६४०
८४–इन्द्र और बृहस्पतिके संवादमें सान्त्वनापूर्ण मधुर वचन बोलनेका महत्त्व ... ४६४३
८५–राजाकी व्यावहारिक नीति, मन्त्रिमण्डलका संघटन, दण्डका औचित्य तथा दूत, द्वारपाल, शिरोरक्षक, मन्त्री और सेनापतिके गुण ... ४६४४
८६–राजाके निवासयोग्य नगर एवं दुर्गका वर्णन, उसके लिये प्रजापालनसम्बन्धी व्यवहार तथा तपस्वीजनोंके समादरका निर्देश ... ४६४७
८७–राष्ट्रकी रक्षा तथा वृद्धिके उपाय ... ४६४९
८८–प्रजासे कर लेने तथा कोश संग्रह करनेका प्रकार ४६५२
८९–राजाके कर्तव्यका वर्णन ... ४६५४
९०–उतथ्यका मान्धाताको उपदेश—राजाके लिये धर्मपालनकी आवश्यकता ... ४६५६
९१–उतथ्यके उपदेशमें धर्माचरणका महत्त्व और राजाके धर्मका वर्णन ४६५९
९२–राजाके धर्मपूर्वक आचारके विषयमें वामदेवजीका वसुमनाको उपदेश ... ४६६३
९३–वामदेवजीके द्वारा राजोचित बर्तावका वर्णन ४६६४
९४–वामदेवके उपदेशमें राजा और राज्यके लिये हितकर बर्ताव ४६६७
९५–विजयाभिलाषी राजाके धर्मानुकूल बर्ताव तथा युद्धनीतिका वर्णन ४६६८
९६–राजाके छलरहित धर्मयुक्त बर्तावकी प्रशंसा ४६६९
९७–शूरवीर क्षत्रियोंके कर्तव्यका तथा उनकी आत्मशुद्धि और सद्गतिका वर्णन ... ४६७१
९८–इन्द्र और अम्बरीषके संवादमें नदी और यज्ञके रूपकोंका वर्णन तथा समरभूमिमें जूझते हुए मारे जानेवाले शूरवीरोंको उत्तम लोकोंकी प्राप्तिका कथन ... ४६७३
९९–शूरवीरोंको स्वर्ग और कायरोंको नरककी प्राप्तिके विषयमें मिथिलेश्वर जनकका इतिहास ४६७८
१००–सैन्यसंचालनकी रीति-नीतिका वर्णन ... ४६७९
१०१–भिन्न-भिन्न देशके योद्धाओंके स्वभाव, रूप, बल, आचरण और लक्षणोंका वर्णन ... ४६८३
१०२–विजयसूचक शुभाशुभ लक्षणोंका तथा उत्साही और बलवान् सैनिकोंका वर्णन एवं राजाको युद्धसम्बन्धी नीतिका निर्देश ... ४६८४
१०३–शत्रुको वशमें करनेके लिये राजाको किस नीतिसे काम लेना चाहिये और दुष्टोंको कैसे पहचानना चाहिये—इसके विषयमें इन्द्र और बृहस्पतिका संवाद ... ४६८७
१०४–राज्य, खजाना और सेना आदिसे वञ्चित हुए असहाय क्षेमदर्शी राजाके प्रति कालकवृक्षीय मुनिका वैराग्यपूर्ण उपदेश ... ४६९१
१०५–कालकवृक्षीय मुनिके द्वारा गये हुए राज्यकी प्राप्तिके लिये विभिन्न उपायोंका वर्णन ... ४६९५
१०६–कालकवृक्षीय मुनिका विदेहराज तथा कोसलराजकुमारमें मेल कराना और विदेहराजका कोसलराजको अपना जामाता बना लेना ४६९७
१०७–गणतन्त्र राज्यका वर्णन और उसकी नीति ... ४६९९
१०८–माता-पिता तथा गुरुकी सेवाका महत्त्व ... ४७०२

१०९–सत्य-असत्यका विवेचन, धर्मका लक्षण तथा व्यावहारिक नीतिका वर्णन ... ४७०४
११०–सदाचार और ईश्वरभक्ति आदिको दुःखोंसे छूटनेका उपाय बताना ... ४७०६
१११–मनुष्यके स्वभावकी पहचान बतानेवाली बाघ और सियारकी कथा ... ४७०९
११२–एक तपस्वी ऊँटके आलस्यका कुपरिणाम और राजाका कर्तव्य ... ४७१५
११३–शक्तिशाली शत्रुके सामने बेंतकी भाँति नत-मस्तक होनेका उपदेश—सरिताओं और समुद्रका संवाद ... ४७१६
११४–दुष्ट मनुष्यद्वारा की हुई निन्दाको सह लेनेसे लाभ ... ४७१७
११५–राजा तथा राजसेवकोंके आवश्यक गुण ... ४७१९
११६–सज्जनोंके चरित्रके विषयमें दृष्टान्तरूपसे एक महर्षि और कुत्तेकी कथा ... ४७२०
११७–कुत्तेका शरभकी योनिमें जाकर महर्षिके शापसे पुनः कुत्ता हो जाना ... ४७२२
११८–राजाके सेवक, सचिव तथा सेनापति आदि और राजाके उत्तम गुणोंका वर्णन एवं उनसे लाभ ४७२४
११९–सेवकोंको उनके योग्य स्थानपर नियुक्त करने, कुलीन और सत्पुरुषोंका संग्रह करने, कोष बढ़ाने तथा सबकी देखभाल करनेके लिये राजाको प्रेरणा ... ४७२६
१२०–राजधर्मका साररूपमें वर्णन ... ४७२८
१२१–दण्डके स्वरूप, नाम, लक्षण, प्रभाव और प्रयोगका वर्णन ... ४७३२
१२२–दण्डकी उत्पत्ति तथा उसके क्षत्रियोंके हाथमें आनेकी परम्पराका वर्णन ... ४७३६
१२३–त्रिवर्गका विचार तथा पापके कारण पदच्युत हुए राजाके पुनरुत्थानके विषयमें आङ्गरिष्ठ और कामन्दकका संवाद ... ४७३९
१२४–इन्द्र और प्रह्लादकी कथा–शीलका प्रभाव, शीलके अभावमें धर्म, सत्य, सदाचार, बल और लक्ष्मीके न रहनेका वर्णन ... ४७४१
१२५–युधिष्ठिरका आशाविषयक प्रश्न–उत्तरमें राजा सुमित्र और ऋषभनामक ऋषिके इतिहासका आरम्भ; उसमें राजा सुमित्रका एक मृगके पीछे दौड़ना ... ४७४६
१२६–राजा सुमित्रका मृगकी खोज करते हुए तपस्वी मुनियोंके आश्रमपर पहुँचना और उनसे आशाके विषयमें प्रश्न करना ... ४७४७
१२७–ऋषभका राजा सुमित्रको वीरद्युम्न और तनु मुनिका वृत्तान्त सुनाना ... ४७४८
१२८–तनु मुनिका राजा वीरद्युम्नको आशाके स्वरूपका परिचय देना और ऋषभके उपदेशसे सुमित्रका आशाको त्याग देना ... ४७५०
१२९–यम और गौतमका संवाद ... ४७५२
१३०–आपत्तिके समय राजाका धर्म ... ४७५३

(आपद्धर्मपर्व)

१३१–आपत्तिग्रस्त राजाके कर्तव्यका वर्णन ... ४७५६
१३२–ब्राह्मणों और श्रेष्ठ राजाओंके धर्मका वर्णन तथा धर्मकी गतिको सूक्ष्म बताना ... ४७५८
१३३–राजाके लिये कोशसंग्रहकी आवश्यकता, मर्यादाकी स्थापना और अमर्यादित दस्युवृत्तिकी निन्दा ... ४७५९
१३४–बलकी महत्ता और पापसे छूटनेका प्रायश्चित्त ४७६१
१३५–मर्यादाका पालन करने-करानेवाले कायव्य-नामक दस्युकी सद्गतिका वर्णन ... ४७६२
१३६–राजा किसका धन ले और किसका न ले तथा किसके साथ कैसा बर्ताव करे—इसका विचार ४७६४
१३७–आनेवाले संकटसे सावधान रहनेके लिये दूरदर्शी, तत्कालज्ञ और दीर्घसूत्री—इन तीन मत्स्योंका दृष्टान्त ... ४७६५
१३८–शत्रुओंसे घिरे हुए राजाके कर्तव्यके विषयमें बिडाल और चूहेका आख्यान ... ४७६६
१३९–शत्रुसे सदा सावधान रहनेके विषयमें राजा ब्रह्मदत्त और पूजनी चिड़ियाका संवाद ... ४७८०
१४०–भारद्वाज कणिकका सौराष्ट्रदेशके राजाको कूटनीतिका उपदेश ... ४७८७
१४१–'ब्राह्मण भयंकर संकटकालमें किस तरह जीवन-निर्वाह करे' इस विषयमें विश्वामित्र मुनि और चाण्डालका संवाद ... ४७९३
१४२–आपत्कालमें राजाके धर्मका निश्चय तथा उत्तम ब्राह्मणोंके सेवनका आदेश ... ४८००
१४३–शरणागतकी रक्षा करनेके विषयमें एक बहेलिये और कपोत-कपोतीका प्रसङ्ग, सर्दीसे पीड़ित हुए बहेलियेका एक वृक्षके नीचे जाकर सोना ४८०३
१४४–कबूतरद्वारा अपनी भार्याका गुणगान तथा पतिव्रता स्त्रीकी प्रशंसा ... ४८०५
१४५–कबूतरीका कबूतरसे शरणागत व्याधकी सेवाके लिये प्रार्थना ... ४८०६
१४६–कबूतरके द्वारा अतिथि-सत्कार और अपने शरीरका बहेलियेके लिये परित्याग ... ४८०७
१४७–बहेलियेका वैराग्य ... ४८०९
१४८–कबूतरीका विलाप और अग्निमें प्रवेश तथा उन दोनोंको स्वर्गलोककी प्राप्ति ... ४८०९

१४९–बहेलियेको स्वर्गलोककी प्राप्ति ... ४८१०
१५०–इन्द्रोत मुनिका राजा जनमेजयको फटकारना ४८११
१५१–ब्रह्महत्याके अपराधी जनमेजयका इन्द्रोत मुनिकी शरणमें जाना और इन्द्रोत मुनिका उससे ब्राह्मणद्रोह न करनेकी प्रतिज्ञा कराकर उसे शरण देना ४८१३
१५२–इन्द्रोतका जनमेजयको धर्मोपदेश करके उनसे अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान कराना तथा निष्पाप राजाका पुनः अपने राज्यमें प्रवेश ४८१४
१५३–मृतककी पुनर्जीवन-प्राप्तिके विषयमें एक ब्राह्मण बालकके जीवित होनेकी कथामें गीध और सियारकी बुद्धिमत्ता ... ४८१७
१५४–नारदजीका सेमल-वृक्षसे प्रशंसापूर्वक प्रश्न ... ४८२५
१५५–नारदजीका सेमलवृक्षको उसका अहंकार देखकर फटकारना ४८२६
१५६–नारदजीकी बात सुनकर वायुका सेमलको धमकाना और सेमलका वायुको तिरस्कृत करके विचारमग्न होना ... ४८२७
१५७–सेमलका हार स्वीकार करना तथा बलवान्के साथ वैर न करनेका उपदेश ... ४८२८
१५८–समस्त अनर्थोंका कारण लोभको बताकर उससे होनेवाले विभिन्न पापोंका वर्णन तथा श्रेष्ठ महापुरुषोंके लक्षण ४८२९
१५९–अज्ञान और लोभको एक दूसरेका कारण बताकर दोनोंकी एकता करना और दोनोंको ही समस्त दोषोंका कारण सिद्ध करना ... ४८३२
१६०–मन और इन्द्रियोंके संयमरूप दमका माहात्म्य ४८३३
१६१–तपकी महिमा ४८३५
१६२–सत्यके लक्षण, स्वरूप और महिमाका वर्णन ४८३६
१६३–काम, क्रोध आदि तेरह दोषोंका निरूपण और उनके नाशका उपाय ... ४८३८
१६४–नृशंस अर्थात् अत्यन्त नीच पुरुषके लक्षण ४८३९
१६५–नाना प्रकारके पापों और उनके प्रायश्चित्तोंका वर्णन ४८४०
१६६–खड्गकी उत्पत्ति और प्राप्तिकी परम्पराकी महिमाका वर्णन ४८४६
१६७–धर्म, अर्थ और कामके विषयमें विदुर तथा पाण्डवोंके पृथक्-पृथक् विचार तथा अन्तमें युधिष्ठिरका निर्णय ४८५१
१६८–मित्र बनाने एवं न बनानेयोग्य पुरुषोंके लक्षण तथा कृतघ्न गौतमकी कथाका आरम्भ ४८५५
१६९–गौतमका समुद्रकी ओर प्रस्थान और संध्याके समय एक दिव्य बक पक्षीके घरपर अतिथि होना ४८५८
१७०–गौतमका राजधर्माद्वारा आतिथ्य-सत्कार और उसका राक्षसराज विरूपाक्षके भवनमें प्रवेश ४८६०
१७१–गौतमका राक्षसराजके यहाँसे सुवर्णराशि लेकर लौटना और अपने मित्र बकके वधका घृणित विचार मनमें लाना ४८६१
१७२–कृतघ्न गौतमद्वारा मित्र राजधर्माका वध तथा राक्षसोंद्वारा उसकी हत्या और कृतघ्नके मांसको अभक्ष्य बताना ४८६३
१७३–राजधर्मा और गौतमका पुनः जीवित होना ४८६५

(मोक्षधर्मपर्व)

१७४–शोकाकुल चित्तकी शान्तिके लिये राजा सेनजित् और ब्राह्मणके संवादका वर्णन ... ४८६७
१७५–अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषका क्या कर्तव्य है, इस विषयमें पिताके प्रति पुत्रद्वारा ज्ञानका उपदेश ४८७१
१७६–त्यागकी महिमाके विषयमें शम्पाक ब्राह्मणका उपदेश ४८७४
१७७–मङ्कि-गीता—धनकी तृष्णासे दुःख और उसकी कामनाके त्यागसे परम सुखकी प्राप्ति ... ४८७६
१७८–जनककी उक्ति तथा राजा नहुषके प्रश्नोंके उत्तरमें बोध्यगीता ४८८०
१७९–प्रह्लाद और अवधूतका संवाद—आजगरवृत्तिकी प्रशंसा ४८८१
१८०–सद्बुद्धिका आश्रय लेकर आत्महत्यादि पापकर्मसे निवृत्त होनेके सम्बन्धमें काश्यप ब्राह्मण और इन्द्रका संवाद ४८८४
१८१–शुभाशुभ कर्मोंका परिणाम कर्ताको अवश्य भोगना पड़ता है, इसका पतिपादन ... ४८८७
१८२–भरद्वाज और भृगुके संवादमें जगत्की उत्पत्तिका और विभिन्न तत्त्वोंका वर्णन ... ४८८९
१८३–आकाशसे अन्य चार स्थूल भूतोंकी उत्पत्तिका वर्णन ४८९१
१८४–पञ्चमहाभूतोंके गुणका विस्तारपूर्वक वर्णन ४८९३
१८५–शरीरके भीतर जठरानल तथा प्राण-अपान आदि-वायुओंकी स्थिति आदिका वर्णन ... ४८९६
१८६–जीवकी सत्तापर नाना प्रकारकी युक्तियोंसे शङ्का उपस्थित करना ४८९७
१८७–जीवकी सत्ता तथा नित्यताको युक्तियोंसे सिद्ध करना ४८९८
१८८–वर्णविभागपूर्वक मनुष्योंकी और समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिका वर्णन ... ४९०१
१८९–चारों वर्णोंके अलग-अलग कर्मोंका और सदाचारका वर्णन तथा वैराग्यसे परब्रह्मकी प्राप्ति ४९०२

१९०–सत्यकी महिमा, असत्यके दोष तथा लोक और परलोकके सुख-दुःखका विवेचन ... ४९०३
१९१–ब्रह्मचर्य और गार्हस्थ्य-आश्रमोंके धर्मका वर्णन ४९०५
१९२–वानप्रस्थ और संन्यास-धर्मोंका वर्णन तथा हिमालयके उत्तर पार्श्वमें स्थित उत्कृष्ट लोककी विलक्षणता एवं महत्ताका प्रतिपादन, भृगु-भरद्वाज-संवादका उपसंहार ... ४९०७
१९३–शिष्टाचारका फलसहित वर्णन, पापको छिपानेसे हानि और धर्मकी प्रशंसा ... ४९१०
१९४–अध्यात्मज्ञानका निरूपण ... ४९१३
१९५–ध्यानयोगका वर्णन ४९१७
१९६–जपयज्ञके विषयमें युधिष्ठिरका प्रश्न, उसके उत्तरमें जप और ध्यानकी महिमा और उसका फल ४९१९
१९७–जापकमें दोष आनेके कारण उसे नरककी प्राप्ति ४९२०
१९८–परमधामके अधिकारी जापकके लिये देवलोक भी नरकतुल्य हैं—इसका प्रतिपादन ... ४९२२
१९९–जापकको सावित्रीका वरदान, उसके पास धर्म, यम और काल आदिका आगमन, राजा इक्ष्वाकु और जापक ब्राह्मणका संवाद, सत्यकी महिमा तथा जापककी परमगतिका वर्णन ... ४९२३
२००–जापक ब्राह्मण और राजा इक्ष्वाकुकी उत्तम गतिका वर्णन तथा जापकको मिलनेवाले फलकी उत्कृष्टता ४९३२
२०१–बृहस्पतिके प्रश्नके उत्तरमें मनुद्वारा कामनाओंके त्यागकी एवं ज्ञानकी प्रशंसा तथा परमात्मतत्त्वका निरूपण ... ४९३४
२०२–आत्मतत्त्वका और बुद्धि आदि प्राकृत पदार्थोंका विवेचन तथा उसके साक्षात्कारका उपाय ४९३७
२०३–शरीर, इन्द्रिय और मन-बुद्धिसे अतिरिक्त आत्माकी नित्य-सत्ताका प्रतिपादन ... ४९४०
२०४–आत्मा एवं परमात्माके साक्षात्कारका उपाय तथा महत्त्व ४९४२
२०५–परब्रह्मकी प्राप्तिका उपाय ... ४९४३
२०६–परमात्मतत्त्वका निरूपण, मनु-बृहस्पति-संवादकी समाप्ति ४९४५
२०७–श्रीकृष्णसे सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्तिका तथा उनकी महिमाका कथन ... ४९४८
२०८–ब्रह्माके पुत्र मरीचि आदि प्रजापतियोंके वंशका तथा प्रत्येक दिशामें निवास करनेवाले महर्षियोंका वर्णन ४९५२
२०९–भगवान् विष्णुका वराहरूपमें प्रकट होकर देवताओंकी रक्षा और दानवोंका विनाश कर देना तथा नारदको अनुस्मृतिस्तोत्रका उपदेश और नारदद्वारा भगवान्‌की स्तुति ... ४९५४
२१०–गुरु-शिष्यके संवादका उल्लेख करते हुए श्रीकृष्ण-सम्बन्धी अध्यात्मतत्त्वका वर्णन ... ४९६२
२११–संसारचक्र और जीवात्माकी स्थितिका वर्णन ४९६५
२१२–निषिद्ध आचरणके त्याग, सत्त्व, रज और तमके कार्य एवं परिणामका तथा सत्त्वगुणके सेवनका उपदेश ४९६६
२१३–जीवोत्पत्तिका वर्णन करते हुए दोषों और बन्धनोंसे मुक्त होनेके लिये विषयासक्तिके त्यागका उपदेश ४९६८
२१४–ब्रह्मचर्य तथा वैराग्यसे मुक्ति ... ४९७०
२१५–आसक्ति छोड़कर सनातन ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करनेका उपदेश ... ४९७२
२१६–स्वप्न और सुषुप्ति-अवस्थामें मनकी स्थिति तथा गुणातीत ब्रह्मकी प्राप्तिका उपाय ... ४९७४
२१७–सच्चिदानन्दघन परमात्मा, दृश्यवर्ग, प्रकृति और पुरुष (जीवात्मा)—उन चारोंके ज्ञानसे मुक्तिका कथन तथा परमात्मप्राप्तिके अन्य साधनोंका भी वर्णन ४९७६
२१८–राजा जनकके दरबारमें पञ्चशिखका आगमन और उनके द्वारा नास्तिक मतोंके निराकरणपूर्वक शरीरसे भिन्न आत्माकी नित्य-सत्ताका प्रतिपादन ... ४९७९
२१९–पञ्चशिखके द्वारा मोक्षतत्त्वका विवेचन एवं भगवान् विष्णुद्वारा मिथिलानरेश जनकवंशी जनदेवकी परीक्षा और उनके लिये वर-प्रदान ४९८३
२२०–श्वेतकेतु और सुवर्चलाका विवाह, दोनों पति-पत्नीका अध्यात्मविषयक संवाद तथा गार्हस्थ्यधर्मका पालन करते हुए ही उनका परमात्माको प्राप्त होना एवं दमकी महिमाका वर्णन ४९८८
२२१–व्रत, तप, उपवास, ब्रह्मचर्य तथा अतिथि-सेवा आदिका विवेचन तथा यज्ञशिष्ट अन्नका भोजन करनेवालेको परम उत्तम गतिकी प्राप्तिका कथन ४९९७
२२२–सनत्कुमारजीका ऋषियोंको भगवत्स्वरूपका उपदेश देना ४९९८
२२३–इन्द्र और बलिका संवाद—इन्द्रके आक्षेपयुक्त वचनोंका बलिके द्वारा कठोर प्रत्युत्तर ५००४

२२४–बलि और इन्द्रका संवाद, बलिके द्वारा कालकी प्रबलताका प्रतिपादन करते हुए इन्द्रको फटकारना ५००६
२२५–इन्द्र और लक्ष्मीका संवाद, बलिको त्यागकर आयी हुई लक्ष्मीकी इन्द्रके द्वारा प्रतिष्ठा ... ५०१०
२२६–इन्द्र और नमुचिका संवाद ५०१४
२२७–इन्द्र और बलिका संवाद, काल और प्रारब्धकी महिमाका वर्णन ५०१६
२२८–दैत्योंको त्यागकर इन्द्रके पास लक्ष्मीदेवीका आना तथा किन सद्गुणोंके होनेपर लक्ष्मी आती हैं और किन दुर्गुणोंके होनेपर वे त्यागकर चली जाती हैं, इस बातको विस्तारपूर्वक बताना ५०२५
२२९–जैगीषव्यका असित-देवलको समत्वबुद्धिका उपदेश ५०३१
२३०–श्रीकृष्ण और उग्रसेनका संवाद–नारदजीकी लोकप्रियताके हेतुभूत गुणोंका वर्णन ... ५०३३
२३१–शुकदेवजीका प्रश्न और व्यासजीका उनके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए कालका स्वरूप बताना ५०३५
२३२–व्यासजीका शुकदेवको सृष्टिके उत्पत्ति-क्रम तथा युगधर्मोंका उपदेश ... ५०३७
२३३–ब्राह्मप्रलय एवं महाप्रलयका वर्णन ... ५०४०
२३४–ब्राह्मणोंका कर्तव्य और उन्हें दान देनेकी महिमाका वर्णन ५०४१
२३५–ब्राह्मणके कर्तव्यका प्रतिपादन करते हुए कालरूप नदको पार करनेका उपाय बतलाना ५०४४
२३६–ध्यानके सहायक योग, उनके फल और सात प्रकारकी धारणाओंका वर्णन तथा सांख्य एवं योगके अनुसार ज्ञानद्वारा मोक्षकी प्राप्ति ... ५०४६
२३७–सृष्टिके समस्त कार्योंमें बुद्धिकी प्रधानता और प्राणियोंकी श्रेष्ठताके तारतम्यका वर्णन ... ५०४९
२३८–नाना प्रकारके भूतोंकी समीक्षापूर्वक कर्मतत्त्वका विवेचन, युगधर्मका वर्णन एवं कालका महत्त्व ५०५१
२३९–ज्ञानका साधन और उसकी महिमा ... ५०५३
२४०–योगसे परमात्माकी प्राप्तिका वर्णन ... ५०५५
२४१–कर्म और ज्ञानका अन्तर तथा ब्रह्म-प्राप्तिके उपायका वर्णन ५०५८
२४२–आश्रमधर्मकी प्रस्तावना करते हुए ब्रह्मचर्य-आश्रमका वर्णन ५०५९
२४३–ब्राह्मणोंके उपलक्षणसे गार्हस्थ्य-धर्मका वर्णन ५०६१
२४४–वानप्रस्थ और संन्यास-आश्रमके धर्म और महिमाका वर्णन ५०६३
२४५–संन्यासीके आचरण और ज्ञानवान् संन्यासीकी प्रशंसा ५०६६
२४६–परमात्माकी श्रेष्ठता, उसके दर्शनका उपाय तथा इस ज्ञानमय उपदेशके पात्रका निर्णय ५०६९
२४७–महाभूतादि तत्त्वोंका विवेचन ... ५०७१
२४८–बुद्धिकी श्रेष्ठता और प्रकृति-पुरुष-विवेक ... ५०७२
२४९–ज्ञानके साधन तथा ज्ञानीके लक्षण और महिमा ५०७४
२५०–परमात्माकी प्राप्तिका साधन, संसार-नदीका वर्णन और ज्ञानसे ब्रह्मकी प्राप्ति ... ५०७५
२५१–ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणके लक्षण और परब्रह्मकी प्राप्तिका उपाय ५०७७
२५२–शरीरमें पञ्चभूतोंके कार्य और गुणोंकी पहचान ५०७९
२५३–स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीरसे भिन्न जीवात्माका और परमात्माका योगके द्वारा साक्षात्कार करनेका प्रकार ५०८०
२५४–कामरूपी अद्भुत वृक्षका तथा उसे काटकर मुक्ति प्राप्त करनेके उपायका और शरीररूपी नगरका वर्णन ५०८१
२५५–पञ्चभूतोंके तथा मन और बुद्धिके गुणोंका विस्तृत वर्णन ५०८२
२५६–युधिष्ठिरका मृत्युविषयक प्रश्न, नारदजीका राजा अकम्पनसे मृत्युकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग सुनाते हुए ब्रह्माजीकी रोषाग्निसे प्रजाके दग्ध होनेका वर्णन ५०८३
२५७–महादेवजीकी प्रार्थनासे ब्रह्माजीके द्वारा अपनी रोषाग्निका उपसंहार तथा मृत्युकी उत्पत्ति ५०८५
२५८–मृत्युकी घोर तपस्या और प्रजापतिकी आज्ञासे उसका प्राणियोंके संहारका कार्य स्वीकार करना ५०८६
२५९–धर्माधर्मके स्वरूपका निर्णय ... ५०८९
२६०–युधिष्ठिरका धर्मकी प्रामाणिकतापर संदेह उपस्थित करना ५०९१
२६१–जाजलिकी घोर तपस्या, सिरपर जटाओंमें पक्षियोंके घोंसला बनानेसे उनका अभिमान और आकाशवाणीकी प्रेरणासे उनका तुलाधार वैश्यके पास जाना ५०९३
२६२–जाजलि और तुलाधारका धर्मके विषयमें संवाद ५०९६
२६३–जाजलिको तुलाधारका आत्मयज्ञविषयक धर्मका उपदेश ५१००
२६४–जाजलिको पक्षियोंका उपदेश ... ५१०३

२६५–राजा विचख्नुके द्वारा अहिंसा-धर्मकी प्रशंसा ५१०५
२६६–महर्षि गौतम और चिरकारीका उपाख्यान—दीर्घकालतक सोच-विचारकर कार्य करनेकी प्रशंसा ५१०६
२६७–द्युमत्सेन और सत्यवान्का संवाद—अहिंसापूर्वक राज्यशासनकी श्रेष्ठताका कथन ... ५११२
२६८–स्यूमरश्मि और कपिलका संवाद-स्यूमरश्मिके द्वारा यज्ञकी अवश्यकर्तव्यताका निरूपण ... ५११५
२६९–प्रवृत्ति एवं निवृत्तिमार्गके विषयमें स्यूमरश्मि-कपिल-संवाद ५११७
२७०–स्यूमरश्मि-कपिल-संवाद–चारों आश्रमोंमें उत्तम साधनोंके द्वारा ब्रह्मकी प्राप्तिका कथन ५१२३
२७१–धन और काम-भोगोंकी अपेक्षा धर्म और तपस्याका उत्कर्ष सूचित करनेवाली ब्राह्मण और कुण्डधार मेघकी कथा ... ५१२६
२७२–यज्ञमें हिंसाकी निन्दा और अहिंसाकी प्रशंसा ५१३०
२७३–धर्म, अधर्म, वैराग्य और मोक्षके विषयमें युधिष्ठिरके चार प्रश्न और उनका उत्तर ... ५१३२
२७४–मोक्षके साधनका वर्णन ... ५१३३
२७५–जीवात्माके देहाभिमानसे मुक्त होनेके विषयमें नारद और असित देवलका संवाद ... ५१३५
२७६–तृष्णाके परित्यागके विषयमें माण्डव्य मुनि और जनकका संवाद ५१३७
२७७–शरीर और संसारकी अनित्यता तथा आत्म-कल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषके कर्तव्यका निर्देश—पिता-पुत्रका संवाद ... ५१३८
२७८–हारीत मुनिके द्वारा प्रतिपादित संन्यासीके स्वभाव, आचरण और धर्मोंका वर्णन ... ५१४२
२७९–ब्रह्मकी प्राप्तिका उपाय तथा उस विषयमें वृत्र-शुक्र-संवादका आरम्भ ... ५१४३
२८०–वृत्रासुरको सनत्कुमारका अध्यात्मविषयक उपदेश देना और उसकी परम गति तथा भीष्मद्वारा युधिष्ठिरकी शङ्काका निवारण ५१४६
२८१–इन्द्र और वृत्रासुरके युद्धका वर्णन ... ५१५३
२८२–वृत्रासुरका वध और उससे प्रकट हुई ब्रह्म-हत्याका ब्रह्माजीके द्वारा चार स्थानोंमें विभाजन ५१५५
२८३–शिवजीद्वारा दक्षयज्ञका भंग और उनके क्रोधसे ज्वरकी उत्पत्ति तथा उसके विविध रूप ... ५१६०
२८४–पार्वतीके रोष एवं खेदका निवारण करनेके लिये भगवान् शिवके द्वारा दक्षयज्ञका विध्वंस, दक्ष-द्वारा किये हुए शिवसहस्रनामस्तोत्रसे संतुष्ट होकर महादेवजीका उन्हें वरदान देना तथा इस स्तोत्रकी महिमा ५१६४
२८५–अध्यात्मज्ञानका और उसके फलका वर्णन ५१७८
२८६–समङ्गके द्वारा नारदजीसे अपनी शोकहीन स्थितिका वर्णन ५१८२
२८७–नारदजीका गालवमुनिको श्रेयका उपदेश ५१८३
२८८–अरिष्टनेमिका राजा सगरको वैराग्योत्पादक मोक्षविषयक उपदेश ५१८८
२८९–भृगुपुत्र उशनाका चरित्र और उन्हें शुक्र नामकी प्राप्ति ५१९१
२९०–पराशरगीताका आरम्भ—पराशरमुनिका राजा जनकको कल्याणकी प्राप्तिके साधनका उपदेश ५१९४
२९१–पराशरगीता—कर्मफलकी अनिवार्यता तथा पुण्यकर्मसे लाभ ५१९६
२९२–पराशरगीता—धर्मोपार्जित धनकी श्रेष्ठता, अतिथि-सत्कारका महत्त्व, पाँच प्रकारके ऋणोंसे छूटनेकी विधि, भगवत्स्तवनकी महिमा एवं सदाचार तथा गुरुजनोंकी सेवासे महान् लाभ ५१९८
२९३–पराशरगीता—शूद्रके लिये सेवावृत्तिकी प्रधानता, सत्सङ्गकी महिमा और चारों वर्णोंके धर्मपालनका महत्त्व ... ५२००
२९४–पराशरगीता—ब्राह्मण और शूद्रकी जीविका, निन्दनीय कर्मोंके त्यागकी आज्ञा, मनुष्योंमें आसुरभावकी उत्पत्ति और भगवान् शिवके द्वारा उसका निवारण तथा स्वधर्मके अनुसार कर्तव्यपालनका आदेश ... ५२०२
२९५–पराशरगीता—विषयासक्त मनुष्यका पतन, तपोबलकी श्रेष्ठता तथा दृढ़तापूर्वक स्वधर्म-पालनका आदेश ५२०४
२९६–पराशरगीता–वर्णविशेषकी उत्पत्तिका रहस्य, तपोबलसे उत्कृष्ट वर्णकी प्राप्ति, विभिन्न वर्णोंके विशेष और सामान्य धर्म, सत्कर्मकी श्रेष्ठता तथा हिंसारहित धर्मका वर्णन ... ५२०७
२९७–पराशरगीता – नाना प्रकारके धर्म और कर्तव्योंका उपदेश ५२०९
२९८–पराशरगीताका उपसंहार—राजा जनकके विविध प्रश्नोंका उत्तर ५२१३
२९९–हंसगीता–हंसरूपधारी ब्रह्माका साध्यगणोंको उपदेश ५२१६
३००–सांख्य और योगका अन्तर बतलाते हुए योगमार्गके स्वरूप, साधन, फल और प्रभाव-का वर्णन ५२२०

३०१–सांख्ययोगके अनुसार साधन और उसके फलका वर्णन ५२२५
३०२–वसिष्ठ और करालजनकका संवाद—क्षर और अक्षरतत्त्वका निरूपण और इनके ज्ञानसे मुक्ति ५२३२
३०३–प्रकृति-संसर्गके कारण जीवका अपनेको नाना प्रकारके कर्मोंका कर्ता और भोक्ता मानना, एवं नाना योनियोंमें बारंबार जन्म ग्रहण करना ५२३५
३०४–प्रकृतिके संसर्गदोषसे जीवका पतन ... ५२३९
३०५–क्षर-अक्षर एवं प्रकृति-पुरुषके विषयमें राजा जनककी शङ्का और उसका वसिष्ठजीद्वारा उत्तर ५२४०
३०६–योग और सांख्यके स्वरूपका वर्णन तथा आत्मज्ञानसे मुक्ति ... ५२४२
३०७–विद्या-अविद्या, अक्षर और क्षर तथा प्रकृति और पुरुषके स्वरूपका एवं विवेकीके उद्गारका वर्णन ५२४६
३०८–क्षर-अक्षर और परमात्मतत्त्वका वर्णन, जीवके नानात्व और एकत्वका दृष्टान्त, उपदेशके अधिकारी और अनधिकारी तथा इस ज्ञानकी परम्पराको बताते हुए वसिष्ठ-करालजनक-संवादका उपसंहार ५२४९
३०९–जनकवंशी वसुमान्‌को एक मुनिका धर्म-विषयक उपदेश ५२५३
३१०–याज्ञवल्क्यका राजा जनकको उपदेश—सांख्यमतके अनुसार चौबीस तत्त्वों और नौ प्रकारके सर्गोंका निरूपण ... ५२५५
३११–अव्यक्त, महत्तत्त्व, अहंकार, मन और विषयोंकी कालसंख्याका एवं सृष्टिका वर्णन तथा इन्द्रियोंमें मनकी प्रधानताका प्रतिपादन ५२५७
३१२–संहारक्रमका वर्णन ५२५८
३१३–अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवतका वर्णन तथा सात्त्विक, राजस और तामस भावोंके लक्षण ५२५९
३१४–सात्त्विक, राजस और तामस प्रकृतिके मनुष्योंकी गतिका वर्णन तथा राजा जनकके प्रश्न ५२६१
३१५–प्रकृति-पुरुषका विवेक और उसका फल ... ५२६२
३१६–योगका वर्णन और उसके साधनसे परब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति ५२६४
३१७–विभिन्न अङ्गोंसे प्राणोंके उत्क्रमणका फल तथा मृत्युसूचक लक्षणोंका वर्णन और मृत्युको जीतनेका उपाय ... ५२६६
३१८–याज्ञवल्क्यद्वारा अपनेको सूर्यसे वेदज्ञानकी प्राप्तिका प्रसङ्ग सुनाना, विश्वावसुको जीवात्मा और परमात्माकी एकताके ज्ञानका उपदेश देकर उसका फल मुक्ति बताना तथा जनकको उपदेश देकर विदा होना ... ५२६७
३१९–जरा-मृत्युको उल्लङ्घन करनेके विषयमें पञ्चशिख और राजा जनकका संवाद ... ५२७५
३२०–राजा जनककी परीक्षा करनेके लिये आयी हुई सुलभाका उनके शरीरमें प्रवेश करना, राजा जनकका उसपर दोषारोपण करना एवं सुलभाका युक्तियोंद्वारा निराकरण करते हुए राजा जनकको अज्ञानी बताना ... ५२७६
३२१–व्यासजीका अपने पुत्र शुकदेवको वैराग्य और धर्मपूर्ण उपदेश देते हुए सावधान करना ५२८९
३२२–शुभाशुभ कर्मोंका परिणाम कर्ताको अवश्य भोगना पड़ता है, इसका प्रतिपादन ... ५२९६
३२३–व्यासजीकी पुत्रप्राप्तिके लिये तपस्या और भगवान् शङ्करसे वर-प्राप्ति ... ५२९८
३२४–शुकदेवजीकी उत्पत्ति और उनके यज्ञोपवीत, वेदाध्ययन एवं समावर्तन संस्कारका वृत्तान्त ५२९९
३२५–पिताकी आज्ञासे शुकदेवजीका मिथिलामें जाना और वहाँ उनका द्वारपाल, मन्त्री और युवती स्त्रियोंके द्वारा सत्कृत होनेके उपरान्त ध्यानमें स्थित हो जाना ... ५३०१
३२६–राजा जनकके द्वारा शुकदेवजीका पूजन तथा उनके प्रश्नका समाधान करते हुए ब्रह्मचर्याश्रममें परमात्माकी प्राप्ति होनेके बाद अन्य तीनों आश्रमोंकी अनावश्यकताका प्रतिपादन करना तथा मुक्त पुरुषके लक्षणोंका वर्णन ... ५३०४
३२७–शुकदेवजीका पिताके पास लौट आना तथा व्यासजीका अपने शिष्योंको स्वाध्यायकी विधि बताना ५३०८
३२८–शिष्योंके जानेके बाद व्यासजीके पास नारदजीका आगमन और व्यासजीको वेदपाठके लिये प्रेरित करना तथा व्यासजीका शुकदेवको अनध्यायका कारण बताते हुए 'प्रवह' आदि सात वायुओंका परिचय देना ... ५३११
३२९–शुकदेवजीको नारदजीका वैराग्य और ज्ञानका उपदेश ५३१५
३३०–शुकदेवको नारदजीका सदाचार और अध्यात्मविषयक उपदेश ... ५३१८
३३१–नारदजीका शुकदेवको कर्मफल-प्राप्तिमें परतन्त्रताविषयक उपदेश तथा शुकदेवजीका सूर्यलोकमें जानेका निश्चय ... ५३२१
३३२–शुकदेवजीकी ऊर्ध्वगतिका वर्णन ... ५३२५
३३३–शुकदेवजीकी परमपद-प्राप्ति तथा पुत्र-शोकसे व्याकुल व्यासजीको महादेवजीका आश्वासन देना ५३२७

२६५–राजा विचख्नुके द्वारा अहिंसा-धर्मकी प्रशंसा ५१०५
२६६–महर्षि गौतम और चिरकारीका उपाख्यान—दीर्घकालतक सोच-विचारकर कार्य करनेकी प्रशंसा ५१०६
२६७–द्युमत्सेन और सत्यवान्‌का संवाद—अहिंसा-पूर्वक राज्यशासनकी श्रेष्ठताका कथन ... ५११२
२६८–स्यूमरश्मि और कपिलका संवाद–स्यूमरश्मिके द्वारा यज्ञकी अवश्यकर्तव्यताका निरूपण ... ५११५
२६९–प्रवृत्ति एवं निवृत्तिमार्गके विषयमें स्यूमरश्मि-कपिल-संवाद ५११७
२७०–स्यूमरश्मि-कपिल-संवाद–चारों आश्रमोंमें उत्तम साधनोंके द्वारा ब्रह्मकी प्राप्तिका कथन ५१२३
२७१–धन और काम-भोगोंकी अपेक्षा धर्म और तपस्याका उत्कर्ष सूचित करनेवाली ब्राह्मण और कुण्डधार मेघकी कथा ... ५१२६
२७२–यज्ञमें हिंसाकी निन्दा और अहिंसाकी प्रशंसा ५१३०
२७३–धर्म, अधर्म, वैराग्य और मोक्षके विषयमें युधिष्ठिरके चार प्रश्न और उनका उत्तर ... ५१३२
२७४–मोक्षके साधनका वर्णन ... ५१३३
२७५–जीवात्माके देहाभिमानसे मुक्त होनेके विषयमें नारद और असित देवलका संवाद ... ५१३५
२७६–तृष्णाके परित्यागके विषयमें माण्डव्य मुनि और जनकका संवाद ५१३७
२७७–शरीर और संसारकी अनित्यता तथा आत्म-कल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषके कर्तव्यका निर्देश—पिता-पुत्रका संवाद ... ५१३८
२७८–हारीत मुनिके द्वारा प्रतिपादित संन्यासीके स्वभाव, आचरण और धर्मोंका वर्णन ... ५१४२
२७९–ब्रह्मकी प्राप्तिका उपाय तथा उस विषयमें वृत्र-शुक्र-संवादका आरम्भ ... ५१४३
२८०–वृत्रासुरको सनत्कुमारका अध्यात्मविषयक उपदेश देना और उसकी परम गति तथा भीष्मद्वारा युधिष्ठिरकी शङ्काका निवारण ५१४६
२८१–इन्द्र और वृत्रासुरके युद्धका वर्णन ... ५१५३
२८२–वृत्रासुरका वध और उससे प्रकट हुई ब्रह्म-हत्याका ब्रह्माजीके द्वारा चार स्थानोंमें विभाजन ५१५५
२८३–शिवजीद्वारा दक्षयज्ञका भंग और उनके क्रोधसे ज्वरकी उत्पत्ति तथा उसके विविध रूप ... ५१६०
२८४–पार्वतीके रोष एवं खेदका निवारण करनेके लिये भगवान् शिवके द्वारा दक्षयज्ञका विध्वंस, दक्ष-द्वारा किये हुए शिवसहस्रनामस्तोत्रसे संतुष्ट होकर महादेवजीका उन्हें वरदान देना तथा इस स्तोत्रकी महिमा ५१६४
२८५–अध्यात्मज्ञानका और उसके फलका वर्णन ५१७८
२८६–समङ्गके द्वारा नारदजीसे अपनी शोकहीन स्थितिका वर्णन ५१८२
२८७–नारदजीका गालवमुनिको श्रेयका उपदेश ५१८३
२८८–अरिष्टनेमिका राजा सगरको वैराग्योत्पादक मोक्षविषयक उपदेश ५१८८
२८९–भृगुपुत्र उशनाका चरित्र और उन्हें शुक्र नामकी प्राप्ति ५१९१
२९०–पराशरगीताका आरम्भ—पराशरमुनिका राजा जनकको कल्याणकी प्राप्तिके साधनका उपदेश ५१९४
२९१–पराशरगीता—कर्मफलकी अनिवार्यता तथा पुण्यकर्मसे लाभ ५१९६
२९२–पराशरगीता—धर्मोपार्जित धनकी श्रेष्ठता, अतिथि-सत्कारका महत्त्व, पाँच प्रकारके ऋणोंसे छूटनेकी विधि, भगवत्स्तवनकी महिमा एवं सदाचार तथा गुरुजनोंकी सेवासे महान् लाभ ५१९८
२९३–पराशरगीता—शूद्रके लिये सेवावृत्तिकी प्रधानता, सत्सङ्गकी महिमा और चारों वर्णोंके धर्मपालनका महत्त्व ... ५२००
२९४–पराशरगीता—ब्राह्मण और शूद्रकी जीविका, निन्दनीय कर्मोंके त्यागकी आज्ञा, मनुष्योंमें आसुरभावकी उत्पत्ति और भगवान् शिवके द्वारा उसका निवारण तथा स्वधर्मके अनुसार कर्तव्यपालनका आदेश ... ५२०२
२९५–पराशरगीता—विषयासक्त मनुष्यका पतन, तपोबलकी श्रेष्ठता तथा दृढ़तापूर्वक स्वधर्म-पालनका आदेश ५२०४
२९६–पराशरगीता–वर्णविशेषकी उत्पत्तिका रहस्य, तपोबलसे उत्कृष्ट वर्णकी प्राप्ति, विभिन्न वर्णोंके विशेष और सामान्य धर्म, सत्कर्मकी श्रेष्ठता तथा हिंसारहित धर्मका वर्णन ... ५२०७
२९७–पराशरगीता – नाना प्रकारके धर्म और कर्तव्योंका उपदेश ५२०९
२९८–पराशरगीताका उपसंहार—राजा जनकके विविध प्रश्नोंका उत्तर ५२१३
२९९–हंसगीता–हंसरूपधारी ब्रह्माका साध्यगणोंको उपदेश ५२१६
३००–सांख्य और योगका अन्तर बतलाते हुए योगमार्गके स्वरूप, साधन, फल और प्रभाव-का वर्णन ५२२०

३०१–सांख्ययोगके अनुसार साधन और उसके फलका वर्णन ५२२५
३०२–वसिष्ठ और करालजनकका संवाद—क्षर और अक्षरतत्त्वका निरूपण और इनके ज्ञानसे मुक्ति ५२३२
३०३–प्रकृति-संसर्गके कारण जीवका अपनेको नाना प्रकारके कर्मोंका कर्ता और भोक्ता मानना एवं नाना योनियोंमें बारंबार जन्म ग्रहण करना ५२३५
३०४–प्रकृतिके संसर्गदोषसे जीवका पतन ... ५२३९
३०५–क्षर-अक्षर एवं प्रकृति-पुरुषके विषयमें राजा जनककी शङ्का और उसका वसिष्ठजीद्वारा उत्तर ५२४०
३०६–योग और सांख्यके स्वरूपका वर्णन तथा आत्मज्ञानसे मुक्ति ... ५२४२
३०७–विद्या-अविद्या, अक्षर और क्षर तथा प्रकृति और पुरुषके स्वरूपका एवं विवेकीके उद्गारका वर्णन ५२४६
३०८–क्षर-अक्षर और परमात्मतत्त्वका वर्णन, जीवके नानात्व और एकत्वका दृष्टान्त, उपदेशके अधिकारी और अनधिकारी तथा इस ज्ञानकी परम्पराको बताते हुए वसिष्ठ-करालजनक-संवादका उपसंहार ५२४९
३०९–जनकवंशी वसुमान्‌को एक मुनिका धर्म-विषयक उपदेश ५२५३
३१०–याज्ञवल्क्यका राजा जनकको उपदेश—सांख्यमतके अनुसार चौबीस तत्त्वों और नौ प्रकारके सर्गोंका निरूपण ... ५२५५
३११–अव्यक्त, महत्तत्त्व, अहंकार, मन और विषयोंकी कालसंख्याका एवं सृष्टिका वर्णन तथा इन्द्रियोंमें मनकी प्रधानताका प्रतिपादन ५२५७
३१२–संहारक्रमका वर्णन ५२५८
३१३–अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवतका वर्णन तथा सात्त्विक, राजस और तामस भावोंके लक्षण ५२५९
३१४–सात्त्विक, राजस और तामस प्रकृतिके मनुष्योंकी गतिका वर्णन तथा राजा जनकके प्रश्न ५२६१
३१५–प्रकृति-पुरुषका विवेक और उसका फल ... ५२६२
३१६–योगका वर्णन और उसके साधनसे परब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति ५२६४
३१७–विभिन्न अङ्गोंसे प्राणोंके उत्क्रमणका फल तथा मृत्युसूचक लक्षणोंका वर्णन और मृत्युको जीतनेका उपाय ... ५२६६
३१८–याज्ञवल्क्यद्वारा अपनेको सूर्यसे वेदज्ञानकी प्राप्तिका प्रसङ्ग सुनाना, विश्वावसुको जीवात्मा और परमात्माकी एकताके ज्ञानका उपदेश देकर उसका फल मुक्ति बताना तथा जनकको उपदेश देकर विदा होना ... ५२६७
३१९–जरा-मृत्युका उल्लङ्घन करनेके विषयमें पञ्चशिख और राजा जनकका संवाद ... ५२७५
३२०–राजा जनककी परीक्षा करनेके लिये आयी हुई सुलभाका उनके शरीरमें प्रवेश करना, राजा जनकका उसपर दोषारोपण करना एवं सुलभाका युक्तियोंद्वारा निराकरण करते हुए राजा जनकको अज्ञानी बताना ... ५२७६
३२१–व्यासजीका अपने पुत्र शुकदेवको वैराग्य और धर्मपूर्ण उपदेश देते हुए सावधान करना ५२८९
३२२–शुभाशुभ कर्मोंका परिणाम कर्ताको अवश्य भोगना पड़ता है, इसका प्रतिपादन ... ५२९६
३२३–व्यासजीकी पुत्रप्राप्तिके लिये तपस्या और भगवान् शङ्करसे वर-प्राप्ति ... ५२९८
३२४–शुकदेवजीकी उत्पत्ति और उनके यज्ञोपवीत, वेदाध्ययन एवं समावर्तन संस्कारका वृत्तान्त ५२९९
३२५–पिताकी आज्ञासे शुकदेवजीका मिथिलामें जाना और वहाँ उनका द्वारपाल, मन्त्री और युवती स्त्रियोंके द्वारा सत्कृत होनेके उपरान्त ध्यानमें स्थित हो जाना ... ५३०१
३२६–राजा जनकके द्वारा शुकदेवजीका पूजन तथा उनके प्रश्नका समाधान करते हुए ब्रह्मचर्याश्रममें परमात्माकी प्राप्ति होनेके बाद अन्य तीनों आश्रमोंकी अनावश्यकताका प्रतिपादन करना तथा मुक्त पुरुषके लक्षणोंका वर्णन ... ५३०४
३२७–शुकदेवजीका पिताके पास लौट आना तथा व्यासजीका अपने शिष्योंको स्वाध्यायकी विधि बताना ५३०८
३२८–शिष्योंके जानेके बाद व्यासजीके पास नारदजीका आगमन और व्यासजीको वेदपाठके लिये प्रेरित करना तथा व्यासजीका शुकदेवको अनध्यायका कारण बताते हुए 'प्रवह' आदि सात वायुओंका परिचय देना ... ५३११
३२९–शुकदेवजीको नारदजीका वैराग्य और ज्ञानका उपदेश ५३१५
३३०–शुकदेवको नारदजीका सदाचार और अध्यात्मविषयक उपदेश ... ५३१८
३३१–नारदजीका शुकदेवको कर्मफल-प्राप्तिमें परतन्त्रताविषयक उपदेश तथा शुकदेवजीका सूर्यलोकमें जानेका निश्चय ... ५३२१
३३२–शुकदेवजीकी ऊर्ध्वगतिका वर्णन ... ५३२५
३३३–शुकदेवजीकी परमपद-प्राप्ति तथा पुत्र-शोकसे व्याकुल व्यासजीको महादेवजीका आश्वासन देना ५३२७

३३४–बदरिकाश्रममें नारदजीके पूछनेपर भगवान् नारायणका परमदेव परमात्माको ही सर्वश्रेष्ठ पूजनीय बताना ५३२९
३३५–नारदजीका श्वेतद्वीपदर्शन, वहाँके निवासियोंके स्वरूपका वर्णन, राजा उपरिचरका चरित्र तथा पाञ्चरात्रकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग ... ५३३२
३३६–राजा उपरिचरके यज्ञमें भगवान्पर बृहस्पतिका क्रोधित होना, एकत आदि मुनियोंका बृहस्पतिसे श्वेतद्वीप एवं भगवान्की महिमाका वर्णन करके उनको शान्त करना ... ५३३६
३३७–यज्ञमें आहुतिके लिये अजका अर्थ अन्न है बकरा नहीं—इस बातको जानते हुए भी पक्षपात करनेके कारण राजा उपरिचरके अधःपतनकी और भगवत्-कृपासे उनके पुनरुत्थानकी कथा ५३४०
३३८–नारदजीका दो सौ नामोंद्वारा भगवान्की स्तुति करना ५३४३
३३९–श्वेतद्वीपमें नारदजीको भगवान्का दर्शन, भगवान्का वासुदेव-सङ्कर्षण आदि अपने व्यूहस्वरूपोंका परिचय कराना और भविष्यमें होनेवाले अवतारोंके कार्योंकी सूचना देना और इस कथाके श्रवण-पठनका माहात्म्य ... ५३४५
३४०–व्यासजीका अपने शिष्योंको भगवान्‌द्वारा ब्रह्मादि देवताओंसे कहे हुए प्रवृत्ति और निवृत्तिरूप धर्मके उपदेशका रहस्य बताना ... ५३५४
३४१–भगवान् श्रीकृष्णका अर्जुनको अपने प्रभावका वर्णन करते हुए अपने नामोंकी व्युत्पत्ति एवं माहात्म्य बताना ५३६२
३४२–सृष्टिकी प्रारम्भिक अवस्थाका वर्णन, ब्राह्मणोंकी महिमा बतानेवाली अनेक प्रकारकी संक्षिप्त कथाओंका उल्लेख, भगवन्नामोंके हेतु तथा रुद्रके साथ होनेवाले युद्धमें नारायणकी विजय ५३६५
३४३–जनमेजयका प्रश्न, देवर्षि नारदका श्वेतद्वीपसे लौटकर नर-नारायणके पास जाना और उनके पूछनेपर उनसे वहाँके महत्त्वपूर्ण दृश्यका वर्णन करना ५३७८
३४४–नर-नारायणका नारदजीकी प्रशंसा करते हुए उन्हें भगवान् वासुदेवका माहात्म्य बतलाना ५३८२
३४५–भगवान् वराहके द्वारा पितरोंके पूजनकी मर्यादाका स्थापित होना ... ५३८४
३४६–नारायणकी महिमासम्बन्धी उपाख्यानका उपसंहार ५३८६
३४७–हयग्रीव-अवतारकी कथा, वेदोंका उद्धार, मधुकैटभ-वध तथा नारायणकी महिमाका वर्णन ५३८८
३४८–सात्वत-धर्मकी उपदेश-परम्परा तथा भगवान्के प्रति ऐकान्तिक भावकी महिमा ... ५३९४
३४९–व्यासजीका सृष्टिके प्रारम्भमें भगवान् नारायणके अंशसे सरस्वती-पुत्र अपान्तरतमाके रूपमें जन्म होनेकी और उनके प्रभावकी कथा ५४००
३५०–वैजयन्त पर्वतपर ब्रह्मा और रुद्रका मिलन एवं ब्रह्माजीद्वारा परम पुरुष नारायणकी महिमाका वर्णन ५४०५
३५१–ब्रह्मा और रुद्रके संवादमें नारायणकी महिमाका विशेषरूपसे वर्णन ... ५४०७
३५२–नारदके द्वारा इन्द्रको उञ्छवृत्तिवाले ब्राह्मणकी कथा सुनानेका उपक्रम ... ५४०९
३५३–महापद्मपुरमें एक श्रेष्ठ ब्राह्मणके सदाचारका वर्णन और उसके घरपर अतिथिका आगमन ५४१०
३५४–अतिथिद्वारा स्वर्गके विभिन्न मार्गोंका कथन ५४११
३५५–अतिथिद्वारा नागराज पद्मनाभके सदाचार और सद्गुणोंका वर्णन तथा ब्राह्मणको उसके पास जानेके लिये प्रेरणा ५४१२
३५६–अतिथिके वचनोंसे संतुष्ट होकर ब्राह्मणका उसके कथनानुसार नागराजके घरकी ओर प्रस्थान ५४१३
३५७–नागपत्नीके द्वारा ब्राह्मणका सत्कार और वार्तालापके बाद ब्राह्मणके द्वारा नागराजके आगमनकी प्रतीक्षा ५४१४
३५८–नागराजके दर्शनके लिये ब्राह्मणकी तपस्या तथा नागराजके परिवारवालोंका भोजनके लिये ब्राह्मणसे आग्रह करना ... ५४१५
३५९–नागराजका घर लौटना, पत्नीके साथ उनकी धर्मविषयक बातचीत तथा पत्नीका उनसे ब्राह्मणको दर्शन देनेके लिये अनुरोध ५४१७
३६०–पत्नीके धर्मयुक्त वचनोंसे नागराजके अभिमान एवं रोषका नाश और उनका ब्राह्मणको दर्शन देनेके लिये उद्यत होना ... ५४१८
३६१–नागराज और ब्राह्मणका परस्पर मिलन तथा बातचीत ५४१९
३६२–नागराजका ब्राह्मणके पूछनेपर सूर्यमण्डलकी आश्चर्यजनक घटनाओंको सुनाना ... ५४२१
३६३–उञ्छ एवं शीलवृत्तिसे सिद्ध हुए पुरुषकी दिव्य गति ५४२२
३६४–ब्राह्मणका नागराजसे बातचीत करके और उञ्छव्रतके पालनका निश्चय करके अपने घरको जानेके लिये नागराजसे विदा माँगना ५४२३
३६५–नागराजसे विदा ले ब्राह्मणका च्यवन मुनिसे उञ्छवृत्तिकी दीक्षा लेकर साधनपरायण होना और इस कथाकी परम्पराका वर्णन ५४२४

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१–शोकाकुल युधिष्ठिरकी देवर्षि नारदके द्वारा सान्त्वना ... ४४२५
२–महाभारतकी समाप्तिपर महाराज युधिष्ठिरका हस्तिनापुरमें प्रवेश ... ४५१८
३–इन्द्रकी ब्राह्मणवेषमें दैत्यराज प्रह्लादसे भेंट ... ४६२५
४–कपोतके द्वारा व्याधका आतिथ्य-सत्कार ... ४८०८
५–भगवान् नारायणके नाभि-कमलसे लोकपितामह ब्रह्माकी उत्पत्ति ... ४८२५
६–कौशिक ब्राह्मणको सावित्रीदेवीका प्रत्यक्ष दर्शन ... ४९२३
७–श्रीकृष्णकी उग्रसेनसे भेंट ... ५०२५
८–वैश्य तुलाधारके द्वारा मुनि जाजलिका सत्कार ... ५०९७
९–नारदजीको भगवान्के विश्वरूपका दर्शन ... ५२२५
१०–भगवान् हयग्रीव वेदोंको रसातलसे लाकर ब्रह्माजीको लौटा रहे हैं ... ५३९१

(सादा)

११–सुवर्णमय पक्षीके रूपमें देवराज इन्द्रका संन्यासी बने हुए ब्राह्मण-बालकोंको उपदेश ... ४४४६
१२–स्वयं श्रीकृष्ण शोकमग्न युधिष्ठिरको समझा रहे हैं ... ४४८७
१३–ध्यानमग्न श्रीकृष्णसे युधिष्ठिर प्रश्न कर रहे हैं ... ४५३०
१४–भगवान् श्रीकृष्णका देवर्षि नारद एवं पाण्डवोंको लेकर शरशय्या-स्थित भीष्मके निकट गमन ... ४५५६
१५–राजासे हीन प्रजाकी ब्रह्माजीसे राजाके लिये प्रार्थना ... ४५७१
१६–राजा वेनके बाहु-मन्थनसे महाराज पृथुका प्राकट्य ... ४५७६
१७–राजा क्षेमदर्शी और कालकवृक्षीय मुनि ... ४६३६
१८–राजर्षि जनक अपने सैनिकोंको स्वर्ग और नरककी बात कह रहे हैं ... ४६७८
१९–कालकवृक्षीय मुनि राजा जनकका राजकुमार क्षेमदर्शीके साथ मेल करा रहे हैं ... ४६९८
२०–समुद्र देवताका मूर्तिमती नदियोंके साथ संवाद ... ४७१६
२१–चूहेकी सहायताके फलस्वरूप चाण्डालके जालसे बिलावकी मुक्ति ... ४७७४
२२–मरे हुए ब्राह्मण-बालकपर तथा गीध एवं गीदड़पर शङ्करजीकी कृपा ... ४८२४
२३–काश्यप ब्राह्मणके प्रति गीदड़के रूपमें इन्द्रका उपदेश ... ४८८४
२४–इन्द्रको पहचाननेपर काश्यपद्वारा उनकी पूजा ... ४८८४
२५–महर्षि भृगुके साथ भरद्वाज मुनिका प्रश्नोत्तर ... ४८८९
२६–जापक ब्राह्मण एवं महाराज इक्ष्वाकुकी ऊर्ध्वगति ... ४९३३
२७–प्रजापति मनु एवं महर्षि बृहस्पतिका संवाद ... ४९३४
२८–भगवान् वराहकी ऋषियोंद्वारा स्तुति ... ४९५६
२९–महर्षि पञ्चशिखका महाराज जनकको उपदेश ... ४९८०
३०–देवर्षि एवं देवराजको भगवती लक्ष्मीका दर्शन ... ५०२६
३१–मुनि जाजलिकी तपस्या ... ५०९४
३२–चिरकारी शस्त्र त्यागकर अपने पिताको प्रणाम कर रहे हैं ... ५१११
३३–सनकादि महर्षियोंकी शुक्राचार्य एवं वृत्रासुरसे भेंट ... ५१४६
३४–दक्षके यज्ञमें शिवजीका प्राकट्य ... ५१६८
३५–साध्यगणोंको हंसरूपमें ब्रह्माजीका उपदेश ... ५२१७
३६–महर्षि वशिष्ठका राजा कराल जनकको उपदेश ... ५२३३
३७–महर्षि याज्ञवल्क्यके स्मरणसे देवी सरस्वतीका प्राकट्य ... ५२६८
३८–राजा जनकके द्वारपर शुकदेवजी ... ५३०३
३९–राजा जनकके द्वारपर शुकदेवजीका पूजन ... ५३०४
४०–शुकदेवजीको नारदजीका उपदेश ... ५३१५
४१–नर-नारायणका नारदजीके साथ संवाद ... ५३३१
४२–(१६ लाइन चित्र फरमोंमें)

* श्रीहरिः *

अनुशासनपर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	(दान-धर्म-पर्व)	
१	युधिष्ठिरको सान्त्वना देनेके लिये भीष्मजीके द्वारा गौतमी ब्राह्मणी, व्याध, सर्प, मृत्यु और कालके संवादका वर्णन … …	५४२५
२	प्रजापति मनुके वंशका वर्णन, अग्निपुत्र सुदर्शनका अतिथि-सत्काररूपी धर्मके पालनसे मृत्युपर विजय पाना … …	५४३१
३	विश्वामित्रको ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति कैसे हुई—इस विषयमें युधिष्ठिरका प्रश्न …	५४३८
४	आजमीढके वंशका वर्णन तथा विश्वामित्रके जन्मकी कथा और उनके पुत्रोंके नाम …	५४३९
५	स्वामिभक्त एवं दयालु पुरुषकी श्रेष्ठता बतानेके लिये इन्द्र और तोतेके संवादका उल्लेख …	५४४३
६	दैवकी अपेक्षा पुरुषार्थकी श्रेष्ठताका वर्णन …	५४४५
७	कर्मोंके फलका वर्णन … …	५४४८
८	श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी महिमा … …	५४५१
९	ब्राह्मणको देनेकी प्रतिज्ञा करके न देने तथा उसके धनका अपहरण करनेसे दोषकी प्राप्तिके विषयमें सियार और वानरके संवादका उल्लेख एवं ब्राह्मणोंको दान देनेकी महिमा …	५४५३
१०	अनधिकारीको उपदेश देनेसे हानिके विषयमें एक शूद्र और तपस्वी ब्राह्मणकी कथा …	५४५५
११	लक्ष्मीके निवास करने और न करने योग्य पुरुष, स्त्री और स्थानोंका वर्णन …	५४५९
१२	कृतघ्नकी गति और प्रायश्चित्तका वर्णन तथा स्त्री-पुरुषके संयोगमें स्त्रीको ही अधिक सुख होनेके सम्बन्धमें भंगास्वनका उपाख्यान …	५४६२
१३	शरीर, वाणी और मनसे होनेवाले पापोंके परित्यागका उपदेश … …	५४६७
१४	भीष्मजीकी आज्ञासे भगवान् श्रीकृष्णका युधिष्ठिरसे महादेवजीके माहात्म्यकी कथामें उपमन्युद्वारा महादेवजीकी स्तुति-प्रार्थना, उनके दर्शन और वरदान पानेका तथा अपनेको दर्शन प्राप्त होनेका कथन …	५४८०
१५	शिव और पार्वतीका श्रीकृष्णको वरदान और उपमन्युके द्वारा महादेवजीकी महिमा …	५५०७
१६	उपमन्यु-श्रीकृष्ण-संवाद—महात्मा तण्डिद्वारा की गयी महादेवजीकी स्तुति, प्रार्थना और उसका फल … …	५५०८
१७	शिवसहस्रनामस्तोत्र और उसके पाठका फल	५५१२
१८	शिवसहस्रनामके पाठकी महिमा तथा ऋषियोंका भगवान् शङ्करकी कृपासे अभीष्ट सिद्धि होनेके विषयमें अपना-अपना अनुभव सुनाना और श्रीकृष्णके द्वारा भगवान् शिवजीकी महिमाका वर्णन … …	५५२९
१९	अष्टावक्र मुनिका वदान्य ऋषिके कहनेसे उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान, मार्गमें कुबेरके द्वारा उनका स्वागत तथा स्त्रीरूपधारिणी उत्तर दिशाके साथ उनका संवाद …	५५३४
२०	अष्टावक्र और उत्तर दिशाका संवाद …	५५४०
२१	अष्टावक्र और उत्तर दिशाका संवाद, अष्टावक्रका अपने घर लौटकर वदान्य ऋषिकी कन्याके साथ विवाह करना … …	५५४२
२२	युधिष्ठिरके विविध धर्मयुक्त प्रश्नोंका उत्तर तथा श्राद्ध और दानके उत्तम पात्रोंका लक्षण …	५५४४
२३	देवता और पितरोंके कार्यमें निमन्त्रण देने योग्य पात्रों तथा नरकगामी और स्वर्गगामी मनुष्योंके लक्षणोंका वर्णन … …	५५५१
२४	ब्रह्महत्याके समान पापोंका निरूपण …	५५५८
२५	विभिन्न तीर्थोंके माहात्म्यका वर्णन …	५५५९
२६	श्रीगङ्गाजीके माहात्म्यका वर्णन …	५५६३
२७	ब्राह्मणत्वके लिये तपस्या करनेवाले मतङ्गकी इन्द्रसे बातचीत … …	५५७१
२८	ब्राह्मणत्व प्राप्त करनेका आग्रह छोड़कर दूसरा वर माँगनेके लिये इन्द्रका मतङ्गको समझाना	५५७३
२९	मतङ्गकी तपस्या और इन्द्रका उसे वरदान देना	५५७५
३०	वीतहव्यके पुत्रोंसे काशी-नरेशोंका घोर युद्ध, प्रतर्दनद्वारा उनका वध और राजा वीतहव्यको भृगुके कथनसे ब्राह्मणत्व प्राप्त होनेकी कथा …	५५७७
३१	नारदजीके द्वारा पूजनीय पुरुषोंके लक्षण तथा उनके आदर-सत्कार और पूजनसे प्राप्त होनेवाले लाभका वर्णन … …	५५८१
३२	राजर्षि वृषदर्भ (या उशीनर) के द्वारा शरणागत कपोतकी रक्षा तथा उस पुण्यके प्रभावसे अक्षयलोककी प्राप्ति … …	५५८४
३३	ब्राह्मणके महत्त्वका वर्णन … …	५५८७
३४	श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी प्रशंसा … …	५५८९

३५–ब्रह्माजीके द्वारा ब्राह्मणोंकी महत्ताका वर्णन ... ५५९१
३६–ब्राह्मणकी प्रशंसाके विषयमें इन्द्र और शम्बरासुरका संवाद ५५९३
३७–दान-पात्रकी परीक्षा ५५९५
३८–पञ्चचूड़ा अप्सराका नारदजीसे स्त्रियोंके दोषोंका वर्णन करना ५५९७
३९–स्त्रियोंकी रक्षाके विषयमें युधिष्ठिरका प्रश्न ... ५५९९
४०–भृगुवंशी विपुलके द्वारा योगबलसे गुरुपत्नीके शरीरमें प्रवेश करके उसकी रक्षा करना ... ५६०१
४१–विपुलका देवराज इन्द्रसे गुरुपत्नीको बचाना और गुरुसे वरदान प्राप्त करना ... ५६०५
४२–विपुलका गुरुकी आज्ञासे दिव्य पुष्प लाकर उन्हें देना और अपने द्वारा किये गये दुष्कर्मका स्मरण करना ५६०८
४३–देवशर्माका विपुलको निर्दोष बताकर समझाना और भीष्मका युधिष्ठिरको स्त्रियोंकी रक्षाके लिये आदेश देना ५६१०
४४–कन्या-विवाहके सम्बन्धमें पात्रविषयक विभिन्न विचार ५६१२
४५–कन्याके विवाहका तथा कन्या और दौहित्र आदिके उत्तराधिकारका विचार ... ५६१७
४६–स्त्रियोंके वस्त्राभूषणोंसे सत्कार करनेकी आवश्यकताका प्रतिपादन ५६१९
४७–ब्राह्मण आदि वर्णोंकी दायभाग-विधिका वर्णन ५६२०
४८–वर्णसंकर संतानोंकी उत्पत्तिका विस्तारसे वर्णन ५६२५
४९–नाना प्रकारके पुत्रोंका वर्णन ... ५६२९
५०–गौओंकी महिमाके प्रसङ्गमें च्यवन मुनिके उपाख्यानका आरम्भ, मुनिका मत्स्योंके साथ जालमें फँसकर जलसे बाहर आना ... ५६३१
५१–राजा नहुषका एक गौके मोलपर च्यवन मुनिको खरीदना, मुनिके द्वारा गौओंका माहात्म्य-कथन तथा मत्स्यों और मल्लाहोंकी सद्गति ... ५६३३
५२–राजा कुशिक और उनकी रानीके द्वारा महर्षि च्यवनकी सेवा ५६३७
५३–च्यवन मुनिके द्वारा राजा-रानीके धैर्यकी परीक्षा और उनकी सेवासे प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद देना ५६३९
५४–महर्षि च्यवनके प्रभावसे राजा कुशिक और उनकी रानीको अनेक आश्चर्यमय दृश्योंका दर्शन एवं च्यवन मुनिका प्रसन्न होकर राजाको वर माँगनेके लिये कहना ... ५६४४
५५–च्यवनका कुशिकके पूछनेपर उनके घरमें अपने निवासका कारण बताना और उन्हें वरदान देना ५६४७
५६–च्यवन ऋषिका भृगुवंशी और कुशिकवंशियोंके सम्बन्धका कारण बताकर तीर्थयात्राके लिये प्रस्थान ५६४९
५७–विविध प्रकारके तप और दानोंका फल ... ५६५१
५८–जलाशय बनानेका तथा बगीचे लगानेका फल ५६५४
५९–भीष्मद्वारा उत्तम दान तथा उत्तम ब्राह्मणोंकी प्रशंसा करते हुए उनके सत्कारका उपदेश ५६५६
६०–श्रेष्ठ, अयाचक, धर्मात्मा, निर्धन एवं गुणवान्‌को दान देनेका विशेष फल ... ५६५९
६१–राजाके लिये यज्ञ, दान और ब्राह्मण आदि प्रजाकी रक्षाका उपदेश ५६६१
६२–सब दानोंसे बढ़कर भूमिदानका महत्त्व तथा उसीके विषयमें इन्द्र और बृहस्पतिका संवाद ५६६३
६३–अन्नदानका विशेष माहात्म्य ... ५६७०
६४–विभिन्न नक्षत्रोंके योगमें भिन्न-भिन्न वस्तुओंके दानका माहात्म्य ५६७३
६५–सुवर्ण और जल आदि विभिन्न वस्तुओंके दानकी महिमा ५६७६
६६–जूता, शकट, तिल, भूमि, गौ और अन्नके दानका माहात्म्य ५६७७
६७–अन्न और जलके दानकी महिमा ... ५६८१
६८–तिल, जल, दीप तथा रत्न आदिके दानका माहात्म्य—धर्मराज और ब्राह्मणका संवाद ... ५६८२
६९–गोदानकी महिमा तथा गौओं और ब्राह्मणोंकी रक्षासे पुण्यकी प्राप्ति ५६८५
७०–ब्राह्मणके धनका अपहरण करनेसे होनेवाली हानिके विषयमें दृष्टान्तके रूपमें राजा नृगका उपाख्यान ५६८७
७१–पिताके शापसे नाचिकेतका यमराजके पास जाना और यमराजका नाचिकेतको गोदानकी महिमा बताना ५६८९
७२–गौओंके लोक और गोदानविषयक युधिष्ठिर और इन्द्रके प्रश्न ५६९५
७३–ब्रह्माजीका इन्द्रसे गोलोक और गोदानकी महिमा बताना ५६९५
७४–दूसरोंकी गायको चुराकर देने या बेचनेसे दोष, गोहत्याके भयंकर परिणाम तथा गोदान एवं सुवर्ण-दक्षिणाका माहात्म्य ... ५७००
७५–व्रत, नियम, दम, सत्य, ब्रह्मचर्य, माता-पिता, गुरु आदिकी सेवाकी महत्ता ... ५७०१
७६–गोदानकी विधि, गौओंसे प्रार्थना, गौओंके निष्क्रय और गोदान करनेवाले नरेशोंके नाम ५७०४

७७–कपिला गौओंकी उत्पत्ति और महिमाका वर्णन ५७०७

७८–वसिष्ठका सौदासको गोदानकी विधि एवं महिमा बताना ५७१०

७९–गौओंको तपस्याद्वारा अभीष्ट वरकी प्राप्ति तथा उनके दानकी महिमा, विभिन्न प्रकारके गौओंके दानसे विभिन्न उत्तम लोकोंमें गमनका कथन ५७१२

८०–गौओं तथा गोदानकी महिमा ... ५७१४

८१–गौओंका माहात्म्य तथा व्यासजीके द्वारा शुकदेवसे गौओंकी, गोलोककी और गोदानकी महत्ताका वर्णन ५७१५

८२–लक्ष्मी और गौओंका संवाद तथा लक्ष्मीकी प्रार्थनापर गौओंके द्वारा गोबर और गोमूत्रमें लक्ष्मीको निवासके लिये स्थान दिया जाना ... ५७१८

८३–ब्रह्माजीका इन्द्रसे गोलोक और गौओंका उत्कर्ष बताना और गौओंको वरदान देना ... ५७२०

८४–भीष्मजीका अपने पिता शान्तनुके हाथमें पिण्ड न देकर कुशपर देना, सुवर्णकी उत्पत्ति और उसके दानकी महिमाके सम्बन्धमें वसिष्ठ और परशुरामका संवाद, पार्वतीका देवताओंको शाप, तारकासुरसे डरे हुए देवताओंका ब्रह्माजीकी शरणमें जाना ५७२४

८५–ब्रह्माजीका देवताओंको आश्वासन, अग्निकी खोज, अग्निके द्वारा स्थापित किये हुए शिवके तेजसे संतप्त हो गङ्गाका उसे मेरुपर्वतपर छोड़ना, कार्तिकेय और सुवर्णकी उत्पत्ति, वरुणरूपधारी महादेवजीके यज्ञमें अग्निसे ही प्रजापतियों और सुवर्णका प्रादुर्भाव, कार्तिकेयद्वारा तारकासुरका वध ५७२९

८६–कार्तिकेयकी उत्पत्ति, पालन-पोषण और उनका देवसेनापति-पदपर अभिषेक, उनके द्वारा तारकासुरका वध ५७४०

८७–विविध तिथियोंमें श्राद्ध करनेका फल ... ५७४२

८८–श्राद्धमें पितरोंके तृप्तिविषयका वर्णन ... ५७४४

८९–विभिन्न नक्षत्रोंमें श्राद्ध करनेका फल ... ५७४४

९०–श्राद्धमें ब्राह्मणोंकी परीक्षा, पंक्तिदूषक और पंक्तिपावन ब्राह्मणोंका वर्णन, श्राद्धमें लाख मूर्ख ब्राह्मणोंको भोजन करानेकी अपेक्षा एक वेदवेत्ताको भोजन करानेकी श्रेष्ठताका कथन ... ५७४६

९१–शोकातुर निमिका पुत्रके निमित्त पिण्डदान तथा श्राद्धके विषयमें निमिको महर्षि अत्रिका उपदेश, विश्वेदेवोंके नाम एवं श्राद्धमें त्याज्य वस्तुओंका वर्णन ५७५०

९२–पितर और देवताओंका श्राद्धान्नसे अजीर्ण होकर ब्रह्माजीके पास जाना और अग्निके द्वारा अजीर्णका निवारण, श्राद्धसे तृप्त हुए पितरोंका आशीर्वाद ... ५७५३

९३–गृहस्थके धर्मोंका रहस्य, प्रतिग्रहके दोष बतानेके लिये वृषादर्भि और सप्तर्षियोंकी कथा, भिक्षुरूपधारी इन्द्रके द्वारा कृत्याका वध करके सप्तर्षियोंकी रक्षा तथा कमलोंकी चोरीके विषयमें शपथ खानेके बहानेसे धर्मपालनका संकेत ... ५७५४

९४–ब्रह्मसर तीर्थमें अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर ब्रह्मर्षियों और राजर्षियोंकी धर्मोपदेशपूर्ण शपथ तथा धर्मज्ञानके उद्देश्यसे चुराये हुए कमलोंका वापस देना ५७६६

९५–छत्र और उपानह्‌की उत्पत्ति एवं दानविषयक युधिष्ठिरका प्रश्न तथा सूर्यकी प्रचण्ड धूपसे रेणुकाका मस्तक और पैरोंके संतप्त होनेपर जमदग्निका सूर्यपर कुपित होना और विप्ररूपधारी सूर्यसे वार्तालाप ५७७१

९६–छत्र और उपानह्‌की उत्पत्ति एवं दानकी प्रशंसा ५७७३

९७–गृहस्थधर्म, पञ्चयज्ञ-कर्मके विषयमें पृथ्वीदेवी और भगवान् श्रीकृष्णका संवाद ... ५७८६

९८–तपस्वी सुवर्ण और मनुका संवाद—पुष्प, धूप, दीप और उपहारके दानका माहात्म्य ५७८८

९९–नहुषका ऋषियोंपर अत्याचार तथा उसके प्रतीकारके लिये महर्षि भृगु और अगस्त्यकी बातचीत ५७९२

१००–नहुषका पतन, शतक्रतुका इन्द्रपदपर पुनः अभिषेक तथा दीपदानकी महिमा ... ५७९५

१०१–ब्राह्मणोंके धनका अपहरण करनेसे प्राप्त होनेवाले दोषके विषयमें क्षत्रिय और चाण्डालका संवाद तथा ब्रह्मस्वकी रक्षामें प्राणोत्सर्ग करनेसे चाण्डालको मोक्षकी प्राप्ति ... ५७९७

१०२–भिन्न-भिन्न कर्मोंके अनुसार भिन्न-भिन्न लोकोंकी प्राप्ति बतानेके लिये धृतराष्ट्ररूपधारी इन्द्र और गौतम ब्राह्मणके संवादका उल्लेख ... ५८०१

१०३–ब्रह्माजी और भगीरथका संवाद, यज्ञ, तप, दान आदिसे भी अनशन व्रतकी विशेष महिमा ५८०६

१०४–आयुकी वृद्धि और क्षय करनेवाले शुभाशुभ कर्मोंके वर्णनसे गृहस्थाश्रमके कर्तव्योंका विस्तारपूर्वक निरूपण ५८१०

१०५–बड़े और छोटे भाईके पारस्परिक बर्ताव तथा माता-पिता, आचार्य आदि गुरुजनोंके गौरवका वर्णन ५८२३

१०६–मास, पक्ष एवं तिथिसम्बन्धी विभिन्न व्रतो-पवासके फलका वर्णन ... ५८२५
१०७–दरिद्रोंके लिये यज्ञतुल्य फल देनेवाले उपवास-व्रत और उसके फलका विस्तारपूर्वक वर्णन ५८२९
१०८–मानस तथा पार्थिव तीर्थकी महत्ता ... ५८३८
१०९–प्रत्येक मासकी द्वादशी तिथिको उपवास और भगवान् विष्णुकी पूजा करनेका विशेष माहात्म्य ५८३९
११०–रूप-सौन्दर्य और लोकप्रियताकी प्राप्तिके लिये मार्गशीर्षमासमें चन्द्र-व्रत करनेका प्रतिपादन ५८४१
१११–बृहस्पतिका युधिष्ठिरसे प्राणियोंके जन्मके प्रकारका और नानाविध पापोंके फलस्वरूप नरकादिकी प्राप्ति एवं तिर्यग्योनियोंमें जन्म लेनेका वर्णन ५८४१
११२–पापसे छूटनेके उपाय तथा अन्न-दानकी विशेष महिमा ५८५०
११३–बृहस्पतिजीका युधिष्ठिरको अहिंसा एवं धर्मकी महिमा बताकर स्वर्गलोकको प्रस्थान ... ५८५२
११४–हिंसा और मांसभक्षणकी घोर निन्दा ... ५८५३
११५–मद्य और मांसके भक्षणमें महान् दोष, उनके त्यागकी महिमा एवं त्यागमें परम लाभका प्रतिपादन ५८५५
११६–मांस न खानेसे लाभ और अहिंसाधर्मकी प्रशंसा ५८६०
११७–शुभ कर्मसे एक कीड़ेको पूर्व-जन्मकी स्मृति होना और कीट-योनिमें भी मृत्युका भय एवं सुखकी अनुभूति बताकर कीड़ेका अपने कल्याणका उपाय पूछना ... ५८६२
११८–कीड़ेका क्रमशः क्षत्रिययोनिमें जन्म लेकर व्यासजीका दर्शन करना और व्यासजीका उसे ब्राह्मण होने तथा स्वर्गसुख और अक्षय सुखकी प्राप्ति होनेका वरदान देना ... ५८६४
११९–कीड़ेका ब्राह्मणयोनिमें जन्म लेकर, ब्रह्मलोकमें जाकर सनातन ब्रह्मको प्राप्त करना ... ५८६६
१२०–व्यास और मैत्रेयका संवाद—दानकी प्रशंसा और कर्मका रहस्य ५८६७
१२१–व्यास-मैत्रेय-संवाद—विद्वान् एवं सदाचारी ब्राह्मणको अन्नदानकी प्रशंसा ... ५८६९
१२२–व्यास-मैत्रेय-संवाद—तपकी प्रशंसा तथा गृहस्थके उत्तम कर्तव्यका निर्देश ... ५८७१
१२३–शाण्डिली और सुमनाका संवाद—पतिव्रता स्त्रियोंके कर्तव्यका वर्णन ... ५८७३
१२४–नारदका पुण्डरीकको भगवान् नारायणकी आराधनाका उपदेश तथा उन्हें भगवद्धामकी प्राप्ति, सामगुणकी प्रशंसा, ब्राह्मणका राक्षसके सफेद और दुर्बल होनेका कारण बताना ... ५८७४
१२५–श्राद्धके विषयमें देवदूत और पितरोंका, पापोंसे छूटनेके विषयमें महर्षि विद्युत्प्रभ और इन्द्रका, धर्मके विषयमें इन्द्र और बृहस्पतिका तथा वृषोत्सर्ग आदिके विषयमें देवताओं, ऋषियों और पितरोंका संवाद ... ५८८०
१२६–विष्णु, बलदेव, देवगण, धर्म, अग्नि, विश्वामित्र, गोसमुदाय और ब्रह्माजीके द्वारा धर्मके गूढ़ रहस्यका वर्णन ... ५८८६
१२७–अग्नि, लक्ष्मी, अङ्गिरा, गार्ग्य, धौम्य तथा जमदग्निके द्वारा धर्मके रहस्यका वर्णन ... ५८८९
१२८–वायुके द्वारा धर्माधर्मके रहस्यका वर्णन ... ५८९१
१२९–लोमशद्वारा धर्मके रहस्यका वर्णन ... ५८९१
१३०–अरुन्धती, धर्मराज और चित्रगुप्तद्वारा धर्मसम्बन्धी रहस्यका वर्णन ... ५८९३
१३१–प्रमथगणोंके द्वारा धर्माधर्मसम्बन्धी रहस्यका कथन ५८९५
१३२–दिग्गजोंका धर्मसम्बन्धी रहस्य एवं प्रभाव ... ५८९६
१३३–महादेवजीका धर्मसम्बन्धी रहस्य ... ५८९७
१३४–स्कन्ददेवका धर्मसम्बन्धी रहस्य तथा भगवान् विष्णु और भीष्मजीके द्वारा माहात्म्यका वर्णन ५८९८
१३५–जिनका अन्न ग्रहण करनेयोग्य है और जिनका ग्रहण करने योग्य नहीं है, उन मनुष्योंका वर्णन ५९००
१३६–दान लेने और अनुचित भोजन करनेका प्रायश्चित्त ५९०१
१३७–दानसे स्वर्गलोकमें जानेवाले राजाओंका वर्णन ५९०३
१३८–पाँच प्रकारके दानोंका वर्णन ... ५९०५
१३९–तपस्वी श्रीकृष्णके पास ऋषियोंका आना, उनका प्रभाव देखना और उनसे वार्तालाप करना ५९०६
१४०–नारदजीके द्वारा हिमालय पर्वतपर भूतगणोंके सहित शिवजीकी शोभाका विस्तृत वर्णन, पार्वतीका आगमन, शिवजीकी दोनों आँखोंको अपने हाथोंसे बंद करना और तीसरे नेत्रका प्रकट होना, हिमालयका भस्म होना और पुनः प्राकृत अवस्थामें हो जाना तथा शिव-पार्वतीके धर्मविषयक संवादकी उत्थापना ... ५९१०
१४१–शिव-पार्वतीका धर्मविषयक संवाद—वर्णाश्रम-धर्मसम्बन्धी आचार एवं प्रवृत्ति-निवृत्तिरूप धर्मका निरूपण ५९१४

१४२–उमा-महेश्वर-संवाद, वानप्रस्थ धर्म तथा उसके पालनकी विधि और महिमा ... ५९२८
१४३–ब्राह्मणादि वर्णोंकी प्राप्तिमें मनुष्यके शुभाशुभ कर्मोंकी प्रधानताका प्रतिपादन ... ५९३५
१४४–बन्धन-मुक्ति, स्वर्ग, नरक एवं दीर्घायु और अल्पायु प्रदान करनेवाले शरीर, वाणी और मनद्वारा किये जानेवाले शुभाशुभ कर्मोंका वर्णन ५९३९
१४५–स्वर्ग और नरक तथा उत्तम और अधम कुलमें जन्मकी प्राप्ति करानेवाले कर्मोंका वर्णन ... ५९४३
१. राजधर्मका वर्णन ५९४७
२. योद्धाओंके धर्मका वर्णन तथा रणयज्ञमें प्राणोत्सर्गकी महिमा ... ५९५१
३. संक्षेपसे राजधर्मका वर्णन ... ५९५३
४. अहिंसाकी और इन्द्रियसंयमकी प्रशंसा तथा दैवकी प्रधानता ... ५९५५
५. त्रिवर्गका निरूपण तथा कल्याणकारी आचार-व्यवहारका वर्णन ... ५९५५
६. विविध प्रकारके कर्मफलोंका वर्णन ... ५९५९
७. अन्धत्व और पङ्गुत्व आदि नाना प्रकारके दोषों और रोगोंके कारणभूत दुष्कर्मोंका वर्णन ५९६४
८. उमा-महेश्वर-संवादमें कितने ही महत्त्वपूर्ण विषयोंका विवेचन ५९६९
९. प्राणियोंके चार भेदोंका निरूपण, पूर्वजन्मकी स्मृतिका रहस्य, मरकर फिर लौटनेमें कारण स्वप्नदर्शन, दैव और पुरुषार्थ तथा पुनर्जन्मका विवेचन ... ५९७६
१०. यमलोक तथा वहाँके मार्गोंका वर्णन, पापियोंकी नरकयातनाओं तथा कर्मानुसार विभिन्न योनियोंमें उनके जन्मका उल्लेख ५९८०
११. शुभाशुभ मानस आदि तीन प्रकारके कर्मोंका स्वरूप और उनके फलका एवं मद्यसेवनके दोषोंका वर्णन, आहार-शुद्धि, मांस-भक्षणसे दोष, मांस न खानेसे लाभ, जीवदयाके महत्त्व, गुरुपूजाकी विधि, उपवास-विधि, ब्रह्मचर्य-पालन, तीर्थचर्चा, सर्वसाधारण द्रव्यके दानसे पुण्य, अन्न, सुवर्ण, गौ, भूमि, कन्या और विद्यादानका माहात्म्य, पुण्यतम देश, काल, दिये हुए दान और धर्मकी निष्फलता, विविध प्रकारके दान, लौकिक-वैदिक यज्ञ तथा देवताओंकी पूजाका निरूपण ५९८६
१२. श्राद्ध-विधान आदिका वर्णन; दानकी त्रिविधतासे उसके फलकी भी त्रिविधताका उल्लेख, दानके पाँच फल, नाना प्रकारके धर्म और उनके फलोंका प्रतिपादन ६००१
१३. प्राणियोंकी शुभ और अशुभ गतिका निश्चय करानेवाले लक्षणोंका वर्णन, मृत्युके दो भेद और यत्नसाध्य मृत्युके चार भेदोंका कथन, कर्तव्यपालनपूर्वक शरीर-त्यागका महान् फल और काम-क्रोध आदिद्वारा देह-त्याग करनेसे नरककी प्राप्ति ६००५
१४. मोक्षधर्मकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन, मोक्ष-साधक ज्ञानकी प्राप्तिका उपाय और मोक्षकी प्राप्तिमें वैराग्यकी प्रधानता ... ६००८
१५. सांख्यज्ञानका प्रतिपादन करते हुए अव्यक्तादि चौबीस तत्त्वोंकी उत्पत्ति आदिका वर्णन ६०१३
१६. योगधर्मका प्रतिपादनपूर्वक उसके फलका वर्णन ६०१६
१७. पाशुपत योगका वर्णन तथा शिवलिङ्ग-पूजनका माहात्म्य ६०१९
१४६–पार्वतीजीके द्वारा स्त्री-धर्मका वर्णन ... ६०२१
१४७–वंशपरम्पराका कथन और भगवान् श्रीकृष्णके माहात्म्यका वर्णन ६०२५
१४८–भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाका वर्णन और भीष्मजीका युधिष्ठिरको राज्य करनेके लिये आदेश देना ६०२८
१४९–श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् ... ६०३३
१५०–जपने योग्य मन्त्र और सबेरे-शाम कीर्तन करनेयोग्य देवता, ऋषियों और राजाओंके मङ्गलमय नामोंका कीर्तन-माहात्म्य तथा गायत्री-जपका फल ६०५०
१५१–ब्राह्मणोंकी महिमाका वर्णन ... ६०५५
१५२–कार्तवीर्य अर्जुनको दत्तात्रेयजीसे चार वरदान प्राप्त होनेका एवं उनमें अभिमानकी उत्पत्तिका वर्णन तथा ब्राह्मणोंकी महिमाके विषयमें कार्तवीर्य अर्जुन और वायुदेवताके संवादका उल्लेख ६०५७
१५३–वायुद्वारा उदाहरणसहित ब्राह्मणोंकी महत्ताका वर्णन ६०५९
१५४–ब्राह्मणशिरोमणि उतथ्यके प्रभावका वर्णन ... ६०६०
१५५–ब्रह्मर्षि अगस्त्य और वसिष्ठके प्रभावका वर्णन ६०६२
१५६–अत्रि और च्यवन ऋषिके प्रभावका वर्णन ६०६४

१५७–कपनामक दानवोंके द्वारा स्वर्गलोकपर अधिकार जमा लेनेपर ब्राह्मणोंका कपोंको भस्म कर देना, वायुदेव और कार्तवीर्य अर्जुनके संवादका उपसंहार ··· ··· ६०६६
१५८–भीष्मजीके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाका वर्णन ··· ··· ६०६८
१५९–श्रीकृष्णका प्रद्युम्नको ब्राह्मणोंकी महिमा बताते हुए दुर्वासाके चरित्रका वर्णन करना और यह सारा प्रसङ्ग युधिष्ठिरको सुनाना ··· ६०७३
१६०–श्रीकृष्णद्वारा भगवान् शङ्करके माहात्म्यका वर्णन ··· ··· ६०७७
१६१–भगवान् शङ्करके माहात्म्यका वर्णन ··· ६०८०
१६२–धर्मके विषयमें आगम-प्रमाणकी श्रेष्ठता, धर्माधर्मके फल, साधु-असाधुके लक्षण तथा शिष्टाचारका निरूपण ··· ६०८१
१६३–युधिष्ठिरका विद्या, बल और बुद्धिकी अपेक्षा भाग्यकी प्रधानता बताना और भीष्मजीद्वारा उसका उत्तर ··· ··· ६०८६
१६४–भीष्मका शुभाशुभ कर्मोंको ही सुख-दुःखकी प्राप्तिमें कारण बताते हुए धर्मके अनुष्ठानपर जोर देना ··· ··· ६०८७
१६५–नित्य स्मरणीय देवता, नदी, पर्वत, ऋषि और राजाओंके नाम-कीर्तनका माहात्म्य ··· ६०८८
१६६–भीष्मकी अनुमति पाकर युधिष्ठिरका सपरिवार हस्तिनापुरको प्रस्थान ··· ··· ६०९१

(भीष्मस्वर्गारोहणपर्व)

१६७–भीष्मके अन्त्येष्टि-संस्कारकी सामग्री लेकर युधिष्ठिर आदिका उनके पास जाना और भीष्मका श्रीकृष्ण आदिसे देह-त्यागकी अनुमति लेते हुए धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरको कर्तव्यका उपदेश देना ··· ··· ६०९३
१६८–भीष्मजीका प्राणत्याग, धृतराष्ट्र आदिके द्वारा उनका दाह-संस्कार, कौरवोंका गङ्गाके जलसे भीष्मको जलाञ्जलि देना, गङ्गाजीका प्रकट होकर पुत्रके लिये शोक करना और श्रीकृष्णका उन्हें समझाना ··· ··· ६०९६

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१–देवाधिदेव भगवान् शङ्कर ··· ५४२५
२–दण्ड-मेखलाधारी भगवान् श्रीकृष्णको शिव-पार्वतीके दर्शन ··· ··· ५५८०
३–ब्रह्माजीका गौओंको वरदान ··· ५६२५
४–राजा नृगका गिरगिटकी योनिसे उद्धार ··· ५६८७
५–शिव-पार्वती ··· ··· ५८२५
६–पार्वतीजी भगवान् शंकरको शरीरधारिणी समस्त नदियोंका परिचय दे रही हैं ··· ६०२२
७–पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु ··· ६०३३

(सादा)

८–वृद्धा गौतमीकी आदर्श क्षमा ··· ५४३१
९–धर्मात्मा शुक और इन्द्रकी बात-चीत ··· ५४४४
१०–महर्षि वशिष्ठका ब्रह्माजीके साथ प्रश्नोत्तर ··· ५४४५
११–भगवान् श्रीकृष्ण एवं विभिन्न महर्षियोंका युधिष्ठिरको उपदेश ··· ··· ५५२९
१२–भयभीत कबूतर महाराज शिविकी गोदमें ··· ५५८४
१३–पृथ्वी और श्रीकृष्णका संवाद ··· ५५९१
१४–जालके साथ नदीमेंसे निकाले गये महर्षि च्यवन ५६३३
१५–महर्षि च्यवनका मूल्याङ्कन ··· ५६३५
१६–इन्द्रका ब्रह्माजीके साथ गौओंके सम्बन्धमें प्रश्नोत्तर ··· ··· ५६९५
१७–महर्षि वशिष्ठका राजा सौदाससे गौओंका माहात्म्य-कथन ··· ··· ५७१०
१८–भगवती लक्ष्मीकी गौओंसे आश्रयके लिये प्रार्थना ५७१९
१९–गृहस्थ-धर्मके सम्बन्धमें श्रीकृष्णका पृथ्वीके साथ संवाद ··· ··· ५७८६
२०–बृहस्पतिजीका युधिष्ठिरको उपदेश ··· ५८४२
२१–देवलोकमें पतिव्रता शाण्डिली और सुमनाकी बात-चीत ··· ··· ५८७३
२२–सामनीतिकी विजय ··· ··· ५८७७
२३–इन्द्रका भगवान् विष्णुके साथ प्रश्नोत्तर ··· ५८८६
२४–भगवान् श्रीकृष्णकी तपस्या ··· ५९०७
२५–भगवान् शंकर श्रीकृष्णका माहात्म्य कह रहे हैं ··· ··· ६०२५
२६–भगवान् दत्तात्रेयकी कार्तवीर्यपर कृपा ··· ६०५७
२७–शरशय्यापर पड़े भीष्मकी युधिष्ठिरसे बातचीत ६०९३
२८–श्रीकृष्ण और व्यासजीके द्वारा पुत्र-शोकाकुल गङ्गाजीकी सान्त्वना ··· ६०९८
२९–(१७ लाइन चित्र फरमोंमें)

* श्रीहरिः *

आश्वमेधिकपर्व

अध्याय — विषय — पृष्ठ-संख्या

(अश्वमेधपर्व)

१–युधिष्ठिरका शोकमग्न होकर गिरना और धृतराष्ट्रका उन्हें समझाना ६०९९

२–श्रीकृष्ण और व्यासजीका युधिष्ठिरको समझाना ६१००

३–व्यासजीका युधिष्ठिरको अश्वमेध यज्ञके लिये धनकी प्राप्तिका उपाय बताते हुए संवर्त और मरुत्तका प्रसङ्ग उपस्थित करना ... ६१०२

४–मरुत्तके पूर्वजोंका परिचय देते हुए व्यासजीके द्वारा उनके गुण, प्रभाव एवं यज्ञका दिग्दर्शन ६१०३

५–इन्द्रकी प्रेरणासे बृहस्पतिजीका मनुष्यको यज्ञ न करानेकी प्रतिज्ञा करना ... ६१०५

६–नारदजीकी आज्ञासे मरुत्तका उनकी बतायी हुई युक्तिके अनुसार संवर्तसे भेंट करना ... ६१०७

७–संवर्त और मरुत्तकी बातचीत, मरुत्तके विशेष आग्रहपर संवर्तका यज्ञ करानेकी स्वीकृति देना ६११०

८–संवर्तका मरुत्तको सुवर्णकी प्राप्तिके लिये महादेवजीकी नाममयी स्तुतिका उपदेश और धनकी प्राप्ति तथा मरुत्तकी सम्पत्तिसे बृहस्पतिका चिन्तित होना ... ६११२

९–बृहस्पतिका इन्द्रसे अपनी चिन्ताका कारण बताना, इन्द्रकी आज्ञासे अग्निदेवका मरुत्तके पास उनका संदेश लेकर जाना और संवर्तके भयसे पुनः लौटकर इन्द्रसे ब्रह्मबलकी श्रेष्ठता बताना ६११५

१०–इन्द्रका गन्धर्वराजको भेजकर मरुत्तको भय दिखाना और संवर्तका मन्त्र-बलसे इन्द्रसहित सब देवताओंको बुलाकर मरुत्तका यज्ञ पूर्ण करना ६११९

११–श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको इन्द्रद्वारा शरीरस्थ वृत्रासुरका संहार करनेका इतिहास सुनाकर समझाना ६१२३

१२–भगवान् श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको मनपर विजय करनेके लिये आदेश ६१२५

१३–श्रीकृष्णद्वारा ममताके त्यागका महत्त्व, काम-गीताका उल्लेख और युधिष्ठिरको यज्ञके लिये प्रेरणा करना ६१२६

१४–ऋषियोंका अन्तर्धान होना, भीष्म आदिका श्राद्ध करके युधिष्ठिर आदिका हस्तिनापुरमें जाना तथा युधिष्ठिरके धर्म-राज्यका वर्णन ... ६१२८

१५–भगवान् श्रीकृष्णका अर्जुनसे द्वारका जानेका प्रस्ताव करना ६१३१

(अनुगीतापर्व)

१६–अर्जुनका श्रीकृष्णसे गीताका विषय पूछना और श्रीकृष्णका अर्जुनसे सिद्ध, महर्षि एवं काश्यपका संवाद सुनाना ... ६१३३

१७–काश्यपके प्रश्नोंके उत्तरमें सिद्ध महात्माद्वारा जीवकी विविध गतियोंका वर्णन ... ६१३६

१८–जीवके गर्भ-प्रवेश, आचार-धर्म, कर्म-फलकी अनिवार्यता तथा संसारसे तरनेके उपायका वर्णन ६१३९

१९–गुरु-शिष्यके संवादमें मोक्ष-प्राप्तिके उपायका वर्णन ६१४२

२०–ब्राह्मणगीता—एक ब्राह्मणका अपनी पत्नीसे ज्ञानयज्ञका उपदेश करना ... ६१४६

२१–दस होताओंसे सम्पन्न होनेवाले यज्ञका वर्णन तथा मन और वाणीकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन ६१४८

२२–मन-बुद्धि और इन्द्रियरूप सप्त होताओंका, यज्ञ तथा मन-इन्द्रिय-संवादका वर्णन ... ६१५०

२३–प्राण, अपान आदिका संवाद और ब्रह्माजीका सबकी श्रेष्ठता बतलाना ६१५३

२४–देवर्षि नारद और देवमतका संवाद एवं उदानके उत्कृष्ट रूपका वर्णन ... ६१५५

२५–चातुर्होम यज्ञका वर्णन ६१५६

२६–अन्तर्यामीकी प्रधानता ६१५७

२७–अध्यात्मविषयक महान् वनका वर्णन ... ६१५९

२८–ज्ञानी पुरुषकी स्थिति तथा अध्वर्यु और यतिका संवाद ६१६१

२९–परशुरामजीके द्वारा क्षत्रिय-कुलका संहार ... ६१६३

३०–अलर्कके ध्यान-योगका उदाहरण देकर पितामहोंका परशुरामजीको समझाना और परशुरामजीका तपस्याके द्वारा सिद्धि प्राप्त करना ६१६५

३१–राजा अम्बरीषकी गायी हुई आध्यात्मिक स्वराज्यविषयक गाथा ६१६८

३२–ब्राह्मण-रूपधारी धर्म और जनकका ममत्वत्याग-विषयक संवाद ६१६९

३३–ब्राह्मणका पत्नीके प्रति अपने ज्ञाननिष्ठ स्वरूपका परिचय देना ६१७१

३४-भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा ब्राह्मण, ब्राह्मणी और क्षेत्रज्ञका रहस्य बतलाते हुए ब्राह्मण-गीताका उपसंहार ६१७२
३५-श्रीकृष्णके द्वारा अर्जुनसे मोक्ष-धर्मका वर्णन—गुरु और शिष्यके संवादमें ब्रह्मा और महर्षियोंके प्रश्नोत्तर ६१७३
३६-ब्रह्माजीके द्वारा तमोगुणका, उसके कार्यका और फलका वर्णन ६१७६
३७-रजोगुणके कार्यका वर्णन और उसके जाननेका फल ६१७९
३८-सत्त्वगुणके कार्यका वर्णन और उसके जाननेका फल ६१८०
३९-सत्त्व आदि गुणोंका और प्रकृतिके नामोंका वर्णन ६१८१
४०-महत्तत्त्वके नाम और परमात्मतत्त्वको जाननेकी महिमा ६१८३
४१-अहंकारकी उत्पत्ति और उसके स्वरूपका वर्णन ६१८४
४२-अहंकारसे पञ्च महाभूतों और इन्द्रियोंकी सृष्टि, अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवतका वर्णन तथा निवृत्तिमार्गका उपदेश ... ६१८४
४३-चराचर प्राणियोंके अधिपतियोंका, धर्म आदिके लक्षणोंका और विषयोंकी अनुभूतिके साधनोंका वर्णन तथा क्षेत्रज्ञकी विलक्षणता ... ६१८८
४४-सब पदार्थोंके आदि-अन्तका और ज्ञानकी नित्यताका वर्णन ६१९१
४५-देहरूपी कालचक्रका तथा गृहस्थ और ब्राह्मणके धर्मका कथन ६१९३
४६-ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासीके धर्मका वर्णन ६१९४
४७-मुक्तिके साधनोंका, देहरूपी वृक्षका तथा ज्ञान-खड्गसे उसे काटनेका वर्णन ... ६१९८
४८-आत्मा और परमात्माके स्वरूपका विवेचन ६२००
४९-धर्मका निर्णय जाननेके लिये ऋषियोंका प्रश्न ६२०१
५०-सत्त्व और पुरुषकी भिन्नता, बुद्धिमान्की प्रशंसा, पञ्चभूतोंके गुणोंका विस्तार और परमात्माकी श्रेष्ठताका वर्णन ६२०२
५१-तपस्याका प्रभाव, आत्माका स्वरूप और उसके ज्ञानकी महिमा तथा अनुगीताका उपसंहार ६२०६
५२-श्रीकृष्णका अर्जुनके साथ हस्तिनापुर जाना और वहाँ सबसे मिलकर युधिष्ठिरकी आज्ञा ले सुभद्राके साथ द्वारकाको प्रस्थान करना ... ६२०९
५३-मार्गमें श्रीकृष्णसे कौरवोंके विनाशकी बात सुनकर उत्तङ्कमुनिका कुपित होना और श्रीकृष्णका उन्हें शान्त करना ... ६२१३
५४-भगवान् श्रीकृष्णका उत्तङ्कसे अध्यात्मतत्त्वका वर्णन करना तथा दुर्योधनके अपराधको कौरवोंके विनाशका कारण बतलाना ... ६२१५
५५-श्रीकृष्णका उत्तङ्क मुनिको विश्वरूपका दर्शन कराना और मरुदेशमें जल प्राप्त होनेका वरदान देना ६२१७
५६-उत्तङ्ककी गुरुभक्तिका वर्णन, गुरुपुत्रीके साथ उत्तङ्कका विवाह, गुरुपत्नीकी आज्ञासे दिव्यकुण्डल लानेके लिये उत्तङ्कका राजा सौदासके पास जाना ६२२०
५७-उत्तङ्कका सौदाससे उनकी रानीके कुण्डल माँगना और सौदासके कहनेसे रानी मदयन्तीके पास जाना ६२२२
५८-कुण्डल लेकर उत्तङ्कका लौटना, मार्गमें उन कुण्डलोंका अपहरण होना तथा इन्द्र और अग्निदेवकी कृपासे फिर उन्हें पाकर गुरुपत्नीको देना ६२२५
५९-भगवान् श्रीकृष्णका द्वारकामें जाकर रैवतक पर्वतपर महोत्सवमें सम्मिलित होना और सबसे मिलना ६२२९
६०-वसुदेवजीके पूछनेपर श्रीकृष्णका उन्हें महाभारत-युद्धका वृत्तान्त संक्षेपसे सुनाना .. ६२३१
६१-श्रीकृष्णका सुभद्राके कहनेसे वसुदेवजीको अभिमन्युवधका वृत्तान्त सुनाना ... ६२३३
६२-वसुदेव आदि यादवोंका अभिमन्युके निमित्त श्राद्ध करना तथा व्यासजीका उत्तरा और अर्जुनको समझाकर युधिष्ठिरको अश्वमेधयज्ञ करनेकी आज्ञा देना ६२३६
६३-युधिष्ठिरका अपने भाइयोंके साथ परामर्श करके सबको साथ ले धन ले आनेके लिये प्रस्थान करना ६२३७
६४-पाण्डवोंका हिमालयपर पहुचकर वहाँ पड़ाव डालना और रातमें उपवासपूर्वक निवास करना ६२४०
६५-ब्राह्मणोंकी आज्ञासे भगवान् शिव और उनके पार्षद आदिकी पूजा करके युधिष्ठिरका उस धनराशिको खुदवाकर अपने साथ ले जाना .. ६२४१
६६-श्रीकृष्णका हस्तिनापुरमें आगमन और उत्तराके मृत बालकको जिलानेके लिये कुन्तीकी उनसे प्रार्थना ६२४३
६७-परीक्षित्को जिलानेके लिये सुभद्राकी श्रीकृष्णसे प्रार्थना ६२४५
६८-श्रीकृष्णका प्रसूतिकागृहमें प्रवेश, उत्तराका विलाप और अपने पुत्रको जीवित करनेके लिये प्रार्थना ६२४६

६९–उत्तराका विलाप और भगवान् श्रीकृष्णका उसके मृत बालकको जीवन-दान देना ··· ६२४८
७०–श्रीकृष्णद्वारा राजा परीक्षित्‌का नामकरण तथा पाण्डवोंका हस्तिनापुरके समीप आगमन ··· ६२४९
७१–भगवान् श्रीकृष्ण और उनके साथियोंद्वारा पाण्डवोंका स्वागत, पाण्डवोंका नगरमें आकर सबसे मिलना और व्यासजी तथा श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको यज्ञके लिये आज्ञा देना ··· ६२५१
७२–व्यासजीकी आज्ञासे अश्वकी रक्षाके लिये अर्जुनकी, राज्य और नगरकी रक्षाके लिये भीमसेन और नकुलकी तथा कुटुम्ब-पालनके लिये सहदेवकी नियुक्ति ··· ··· ६२५२
७३–सेनासहित अर्जुनके द्वारा अश्वका अनुसरण ··· ६२५४
७४–अर्जुनके द्वारा त्रिगर्तोंकी पराजय ··· ६२५६
७५–अर्जुनका प्राग्ज्यौतिषपुरके राजा वज्रदत्तके साथ युद्ध ··· ··· ६२५८
७६–अर्जुनके द्वारा वज्रदत्तकी पराजय ··· ६२६०
७७–अर्जुनका सैन्धवोंके साथ युद्ध ··· ६२६२
७८–अर्जुनका सैन्धवोंके साथ युद्ध और दुःशला-के अनुरोधसे उसकी समाप्ति ··· ६२६४
७९–अर्जुन और बभ्रुवाहनका युद्ध एवं अर्जुन-की मृत्यु ··· ··· ६२६७
८०–चित्राङ्गदाका विलाप, मूर्च्छासे जगनेपर बभ्रुवाहनका शोकोद्गार और उलूपीके प्रयत्न-से संजीवनीमणिके द्वारा अर्जुनका पुनः जीवित होना ··· ··· ६२७०
८१–उलूपीका अर्जुनके पूछनेपर अपने आगमन-का कारण एवं अर्जुनकी पराजयका रहस्य बताना, पुत्र और पत्नीसे विदा लेकर पार्थ-का पुनः अश्वके पीछे जाना ··· ६२७४
८२–मगधराज मेघसन्धिकी पराजय ··· ६२७६
८३–दक्षिण और पश्चिम समुद्रके तटवर्ती देशोंमें होते हुए अश्वका द्वारका, पञ्चनद एवं गान्धार देशमें प्रवेश ··· ··· ६२७८
८४–शकुनिपुत्रकी पराजय ··· ··· ६२८०
८५–यज्ञभूमिकी तैयारी, नाना देशोंसे आये हुए राजाओंका यज्ञकी सजावट और आयोजन देखना ··· ··· ६२८१
८६–राजा युधिष्ठिरका भीमसेनको राजाओंकी पूजा करनेका आदेश और श्रीकृष्णका युधिष्ठिरसे अर्जुनका संदेश कहना ··· ६२८४
८७–अर्जुनके विषयमें श्रीकृष्ण और युधिष्ठिरकी बातचीत, अर्जुनका हस्तिनापुरमें आना तथा उलूपी और चित्राङ्गदाके साथ बभ्रुवाहनका आगमन ··· ··· ६२[illegible]
८८–उलूपी और चित्राङ्गदाके सहित बभ्रुवाहनका रत्न-आभूषण आदिसे सत्कार तथा अश्वमेध-यज्ञका आरम्भ ··· ··· ६२८७
८९–युधिष्ठिरका ब्राह्मणोंको दक्षिणा देना और राजाओंको भेंट देकर विदा करना ··· ६२९०
९०–युधिष्ठिरके यज्ञमें एक नेवलेका उञ्छवृत्तिधारी ब्राह्मणके द्वारा किये गये सेरभर सत्तूदानकी महिमा उस अश्वमेधयज्ञसे भी बढ़कर बतलाना ६२९३
९१–हिंसामिश्रित यज्ञ और धर्मकी निन्दा ··· ६३०१
९२–महर्षि अगस्त्यके यज्ञकी कथा ··· ६३०३

(वैष्णवधर्मपर्व)

१. युधिष्ठिरका वैष्णवधर्मविषयक प्रश्न और भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा धर्मका तथा अपनी महिमाका वर्णन ··· ··· ६३०७
२. चारों वर्णोंके कर्म और उनके फलोंका वर्णन तथा धर्मकी वृद्धि और पापके क्षय होनेका उपाय ६३१०
३. व्यर्थ जन्म, दान और जीवनका वर्णन, सात्त्विक दानोंका लक्षण, दानका योग्य पात्र और [illegible]की महिमा ··· ··· ६३१३
४. [illegible]ज और योनिकी शुद्धि तथा गायत्री-जपकी और ब्राह्मणोंकी महिमाका और उनके तिरस्कारके भयानक फलका वर्णन ··· ६३१८
५. यमलोकके मार्गका कष्ट और उससे बचनेके उपाय ··· ··· ६३२१
६. जल-दान, अन्नदान और अतिथि-सत्कारका माहात्म्य ··· ··· ६३२६
७. भूमिदान, तिलदान और उत्तम ब्राह्मणकी महिमा ··· ··· ६३३०
८. अनेक प्रकारके दानोंकी महिमा ··· ६३[illegible]४
९. पञ्चमहायज्ञ, विधिवत् स्नान और उसके अङ्ग-भूत कर्म, भगवान्‌के प्रिय पुष्प तथा भगवद्भक्तोंका वर्णन ··· ··· ६३३७
१०. कपिला गौका तथा उसके दानका माहात्म्य और कपिला गौके दस भेद ··· ६३४४
११. कपिला गौमें देवताओंके निवासस्थानका तथा उसके माहात्म्यका, अयोग्य ब्राह्मणका, नरकमें ले जानेवाले पापोंका तथा स्वर्गमें ले जानेवाले पुण्योंका वर्णन ··· ··· ६३४७

१२. ब्रह्महत्याके समान पापका, अन्नदानकी प्रशंसा-का, जिनका अन्न वर्जनीय है, उन पापियोंका, दानके फलका और धर्मकी प्रशंसाका वर्णन ६३५१
१३. धर्म और शौचके लक्षण, संन्यासी और अतिथिके सत्कारके उपदेश, शिष्टाचार, दानपात्र ब्राह्मण तथा अन्नदानकी प्रशंसा ··· ६३५३
१४. भोजनकी विधि, गौओंको घास डालनेका विधान और तिलका माहात्म्य तथा ब्राह्मणके लिये तिल और गन्ना पेरनेका निषेध ··· ६३५६
१५. आपद्धर्म, श्रेष्ठ और निन्द्य ब्राह्मण, श्राद्धका उत्तम काल और मानव-धर्म-सारका वर्णन ··· ६३५८
१६. अग्निके स्वरूपमें अग्निहोत्रकी विधि तथा उसके माहात्म्यका वर्णन ··· ६३६२
१७. चान्द्रायणव्रतकी विधि, प्रायश्चित्तरूपमें उसके करनेका विधान तथा महिमाका वर्णन ६३६६
१८. सर्वहितकारी धर्मका वर्णन, द्वादशीव्रतका माहात्म्य तथा युधिष्ठिरके द्वारा भगवान्‌की स्तुति ··· ··· ६३६९
१९. विषुवयोग और ग्रहण आदिमें दानकी महिमा, पीपलका महत्त्व, तीर्थभूत गुणोंकी प्रशंसा और उत्तम प्रायश्चित्त ··· ··· ६३७२
२०. उत्तम और अधम ब्राह्मणोंके लक्षण, भक्त, गौ और पीपलकी महिमा ··· ६३७६
२१. भगवान्‌के उपदेशका उपसंहार और द्वारका-गमन ··· ··· ६३७८

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१–अर्जुनका भगवान् श्रीकृष्णके साथ प्रश्नोत्तर ··· ··· ६१३४
२–भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा उत्तराके मृत बालकको जिलानेकी प्रतिज्ञा ··· ६२२५
३–सर्वदेवमयी गो-माता ··· ··· ६३४८

(सादा)

४–महाराज मरुत्तकी देवर्षिसे भेंट ··· ६१०९
५–महाराज मरुत्तका संवर्त मुनिसे संवाद ··· ६१०९
६–ब्रह्माजीका ऋषियोंको उपदेश ··· ६२०२
७–उत्तङ्क मुनिकी श्रीकृष्णसे विश्व-रूप दिखानेके लिये प्रार्थना ··· ६२१७
८–महारानी मदयन्तीका उत्तङ्कको कुण्डल-दान ··· ··· ६२२९
९–उत्तङ्कका गुरुपत्नीको कुण्डल-अर्पण ··· ६२२९
१०–भगवान् श्रीकृष्ण अपने पिता-माता आदिको महाभारतका वृत्तान्त सुना रहे हैं ··· ६२३१
११–अश्वमेधयज्ञके लिये छोड़े हुए घोड़ेका अर्जुनके द्वारा अनुगमन ··· ६२५५
१२–अर्जुन अपने पुत्र बभ्रुवाहनको छातीसे लगा रहे हैं ··· ··· ६२७४
१३–महाराज युधिष्ठिरके अश्वमेधयज्ञमें एक नेवलेका आगमन ··· ··· ६२९३
१४–महर्षि अगस्त्यकी यज्ञके समय प्रतिज्ञा ··· ६३०४
१५–(२० लाइन चित्र फरमोंमें)

* श्रीहरिः *

आश्रमवासिकपर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

(आश्रमवासपर्व)

१–भाइयोंसहित युधिष्ठिर तथा कुन्ती आदि देवियों-के द्वारा धृतराष्ट्र और गान्धारीकी सेवा ... ६३८३
२–पाण्डवोंका धृतराष्ट्र और गान्धारीके अनुकूल बर्ताव ६३८५
३–राजा धृतराष्ट्रका गान्धारीके साथ वनमें जानेके लिये उद्योग एवं युधिष्ठिरसे अनुमति देनेके लिये अनुरोध तथा युधिष्ठिर और कुन्ती आदिका दुखी होना ६३८७
४–व्यासजीके समझानेसे युधिष्ठिरका धृतराष्ट्रको वनमें जानेके लिये अनुमति देना ... ६३९३
५–धृतराष्ट्रके द्वारा युधिष्ठिरको राजनीतिका उपदेश ६३९४
६–धृतराष्ट्रद्वारा राजनीतिका उपदेश ... ६३९८
७–युधिष्ठिरको धृतराष्ट्रके द्वारा राजनीतिका उपदेश ६३९९
८–धृतराष्ट्रका कुरुजाङ्गल देशकी प्रजासे वनमें जानेके लिये आज्ञा माँगना ... ६४०१
९–प्रजाजनोंसे धृतराष्ट्रकी क्षमा-प्रार्थना ... ६४०३
१०–प्रजाकी ओरसे साम्बनामक ब्राह्मणका धृतराष्ट्रको सान्त्वनापूर्ण उत्तर देना ... ६४०४
११–धृतराष्ट्रका विदुरके द्वारा युधिष्ठिरसे श्राद्धके लिये धन माँगना, अर्जुनकी सहमति और भीमसेनका विरोध ६४०८
१२–अर्जुनका भीमको समझाना और युधिष्ठिरका धृतराष्ट्रको यथेष्ट धन देनेकी स्वीकृति प्रदान करना ६४१०
१३–विदुरका धृतराष्ट्रको युधिष्ठिरका उदारतापूर्ण उत्तर सुनाना ६४११
१४–राजा धृतराष्ट्रके द्वारा मृत व्यक्तियोंके लिये श्राद्ध एवं विशाल दान-यज्ञका अनुष्ठान ... ६४१२
१५–गान्धारीसहित धृतराष्ट्रका वनको प्रस्थान ... ६४१३
१६–धृतराष्ट्रका पुरवासियोंको लौटाना और पाण्डवोंके अनुरोध करनेपर भी कुन्तीका वनमें जानेसे न रुकना ६४१५
१७–कुन्तीका पाण्डवोंको उनके अनुरोधका उत्तर ६४१७
१८–पाण्डवोंका स्त्रियोंसहित निराश लौटना, कुन्ती-सहित गान्धारी और धृतराष्ट्र आदिका मार्गमें गङ्गा-तटपर निवास करना ... ६४१९
१९–धृतराष्ट्र आदिका गङ्गातटपर निवास करके वहाँसे कुरुक्षेत्रमें जाना और शतयूपके आश्रमपर निवास करना ६४२१
२०–नारदजीका प्राचीन राजर्षियोंकी तपःसिद्धिका दृष्टान्त देकर धृतराष्ट्रकी तपस्याविषयक श्रद्धाको बढ़ाना तथा शतयूपके पूछनेपर धृतराष्ट्रको मिलनेवाली गतिका भी वर्णन करना ... ६४२२
२१–धृतराष्ट्र आदिके लिये पाण्डवों तथा पुरवासियों-की चिन्ता ६४२५
२२–माताके लिये पाण्डवोंकी चिन्ता, युधिष्ठिरकी वनमें जानेकी इच्छा, सहदेव और द्रौपदीका साथ जानेका उत्साह तथा रनिवास और सेना-सहित युधिष्ठिरका वनको प्रस्थान ... ६४२६
२३–सेनासहित पाण्डवोंकी यात्रा और उनका कुरुक्षेत्रमें पहुँचना ६४२८
२४–पाण्डवों तथा पुरवासियोंका कुन्ती, गान्धारी और धृतराष्ट्रके दर्शन करना ... ६४२९
२५–संजयका ऋषियोंसे पाण्डवों, उनकी पत्नियों तथा अन्यान्य स्त्रियोंका परिचय देना ... ६४३०
२६–धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरकी बातचीत तथा विदुरजीका युधिष्ठिरके शरीरमें प्रवेश ... ६४३२
२७–युधिष्ठिर आदिका ऋषियोंके आश्रम देखना, कलश आदि बाँटना और धृतराष्ट्रके पास आकर बैठना, उन सबके पास अन्यान्य ऋषियोंसहित महर्षि व्यासका आगमन ... ६४३५
२८–महर्षि व्यासका धृतराष्ट्रसे कुशल पूछते हुए विदुर और युधिष्ठिरकी धर्मरूपताका प्रतिपादन करना और उनसे अभीष्ट वस्तु माँगनेके लिये कहना ... ... ६४[illegible]७

(पुत्रदर्शनपर्व)

२९–धृतराष्ट्रका मृत बान्धवोंके शोकसे दुखी होना तथा गान्धारी और कुन्तीका व्यासजीसे अपने मरे हुए पुत्रोंके दर्शन करनेका अनुरोध ... ६४३९
३०–कुन्तीका कर्णके जन्मका गुप्त रहस्य बताना और व्यासजीका उन्हें सान्त्वना देना ... ६४४२
३१–व्यासजीके द्वारा धृतराष्ट्र आदिके पूर्वजन्मका परिचय तथा उनके कहनेसे सब लोगोंका गङ्गा-तटपर जाना ... ... ६४४[illegible]

१२. ब्रह्महत्याके समान पापका, अन्नदानकी प्रशंसा, जिनका अन्न वर्जनीय है, उन पापियोंका दानके फलका और धर्मकी प्रशंसाका वर्णन ... ६३५१
१३. धर्म और शौचके लक्षण, संन्यासी और अतिथिके सत्कारके उपदेश, शिष्टाचार, दानपात्र ब्राह्मण तथा अन्नदानकी प्रशंसा ... ६३५३
१४. भोजनकी विधि, गौओंको घास डालनेका विधान और तिलका माहात्म्य तथा ब्राह्मणके लिये तिल और गन्ना पेरनेका निषेध ... ६३५६
१५. आपद्धर्म, श्रेष्ठ और निन्द्य ब्राह्मण, श्राद्धका उत्तम काल और मानव-धर्म-सारका वर्णन ... ६३५८
१६. अग्निके स्वरूपमें अग्निहोत्रकी विधि तथा उसके माहात्म्यका वर्णन ... ६३६२
१७. चान्द्रायणव्रतकी विधि, प्रायश्चित्तरूपमें उसके करनेका विधान तथा महिमाका वर्णन ६३६६
१८. सर्वहितकारी धर्मका वर्णन, द्वादशीव्रतका माहात्म्य तथा युधिष्ठिरके द्वारा भगवान्‌की स्तुति ६३६९
१९. विषुवयोग और ग्रहण आदिमें दानकी महिमा, पीपलका महत्त्व, तीर्थभूत गुणोंकी प्रशंसा और उत्तम प्रायश्चित्त ६३७२
२०. उत्तम और अधम ब्राह्मणोंके लक्षण, भक्त, गौ और पीपलकी महिमा ... ६३७६
२१. भगवान्‌के उपदेशका उपसंहार और द्वारका-गमन ६३७८

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१–अर्जुनका भगवान् श्रीकृष्णके साथ प्रश्नोत्तर ६१३४
२–भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा उत्तराके मृत बालकको जिलानेकी प्रतिज्ञा ... ६२२५
३–सर्वदेवमयी गो-माता ६३४८

(सादा)

४–महाराज मरुत्तकी देवर्षिसे भेंट ... ६१०९
५–महाराज मरुत्तका संवर्त मुनिसे संवाद ... ६१०९
६–ब्रह्माजीका ऋषियोंको उपदेश ... ६२०२
७–उत्तङ्क मुनिकी श्रीकृष्णसे विश्व-रूप दिखानेके लिये प्रार्थना ... ६२१७
८–महारानी मदयन्तीका उत्तङ्कको कुण्डल-दान ६२२९
९–उत्तङ्कका गुरुपत्नीको कुण्डल-अर्पण ... ६२२९
१०–भगवान् श्रीकृष्ण अपने पिता-माता आदिको महाभारतका वृत्तान्त सुना रहे हैं ... ६२३१
११–अश्वमेधयज्ञके लिये छोड़े हुए घोड़ेका अर्जुनके द्वारा अनुगमन ... ६२५५
१२–अर्जुन अपने पुत्र बभ्रुवाहनको छातीसे लगा रहे हैं ६२७४
१३–महाराज युधिष्ठिरके अश्वमेधयज्ञमें एक नेवलेका आगमन ६२९३
१४–महर्षि अगस्त्यकी यज्ञके समय प्रतिज्ञा ... ६३०४
१५–(२० लाइन चित्र फरमोंमें)

॥ श्रीहरिः ॥

आश्रमवासिकपर्व

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

(आश्रमवासपर्व)

१–भाइयोंसहित युधिष्ठिर तथा कुन्ती आदि देवियों-के द्वारा धृतराष्ट्र और गान्धारीकी सेवा ... ६३८३

२–पाण्डवोंका धृतराष्ट्र और गान्धारीके अनुकूल बर्ताव ६३८५

३–राजा धृतराष्ट्रका गान्धारीके साथ वनमें जानेके लिये उद्योग एवं युधिष्ठिरसे अनुमति देनेके लिये अनुरोध तथा युधिष्ठिर और कुन्ती आदिका दुखी होना ६३८७

४–व्यासजीके समझानेसे युधिष्ठिरका धृतराष्ट्रको वनमें जानेके लिये अनुमति देना ... ६३९३

५–धृतराष्ट्रके द्वारा युधिष्ठिरको राजनीतिका उपदेश ६३९४

६–धृतराष्ट्रद्वारा राजनीतिका उपदेश ... ६३९८

७–युधिष्ठिरको धृतराष्ट्रके द्वारा राजनीतिका उपदेश ६३९९

८–धृतराष्ट्रका कुरुजाङ्गल देशकी प्रजासे वनमें जानेके लिये आज्ञा माँगना ... ६४०१

९–प्रजाजनोंसे धृतराष्ट्रकी क्षमा-प्रार्थना ... ६४०३

१०–प्रजाकी ओरसे साम्बनामक ब्राह्मणका धृतराष्ट्रको सान्त्वनापूर्ण उत्तर देना ... ६४०४

११–धृतराष्ट्रका विदुरके द्वारा युधिष्ठिरसे श्राद्धके लिये धन माँगना, अर्जुनकी सहमति और भीमसेनका विरोध ६४०८

१२–अर्जुनका भीमको समझाना और युधिष्ठिरका धृतराष्ट्रको यथेष्ट धन देनेकी स्वीकृति प्रदान करना ६४१०

१३–विदुरका धृतराष्ट्रको युधिष्ठिरका उदारतापूर्ण उत्तर सुनाना ६४११

१४–राजा धृतराष्ट्रके द्वारा मृत व्यक्तियोंके लिये श्राद्ध एवं विशाल दान-यज्ञका अनुष्ठान ... ६४१२

१५–गान्धारीसहित धृतराष्ट्रका वनको प्रस्थान ... ६४१३

१६–धृतराष्ट्रका पुरवासियोंको लौटाना और पाण्डवोंके अनुरोध करनेपर भी कुन्तीका वनमें जानेसे न रुकना ६४१५

१७–कुन्तीका पाण्डवोंको उनके अनुरोधका उत्तर ६४१७

१८–पाण्डवोंका स्त्रियोंसहित निराश लौटना, कुन्ती-सहित गान्धारी और धृतराष्ट्र आदिका मार्गमें गङ्गा-तटपर निवास करना ... ६४१९

१९–धृतराष्ट्र आदिका गङ्गातटपर निवास करके वहाँसे कुरुक्षेत्रमें जाना और शतयूपके आश्रमपर निवास करना ६४२१

२०–नारदजीका प्राचीन राजर्षियोंकी तपःसिद्धिका दृष्टान्त देकर धृतराष्ट्रकी तपस्याविषयक श्रद्धाको बढ़ाना तथा शतयूपके पूछनेपर धृतराष्ट्रको मिलनेवाली गतिका भी वर्णन करना ... ६४२२

२१–धृतराष्ट्र आदिके लिये पाण्डवों तथा पुरवासियों-की चिन्ता ६४२५

२२–माताके लिये पाण्डवोंकी चिन्ता, युधिष्ठिरकी वनमें जानेकी इच्छा, सहदेव और द्रौपदीका साथ जानेका उत्साह तथा रनिवास और सेना-सहित युधिष्ठिरका वनको प्रस्थान ... ६४२६

२३–सेनासहित पाण्डवोंकी यात्रा और उनका कुरुक्षेत्रमें पहुँचना ६४२८

२४–पाण्डवों तथा पुरवासियोंका कुन्ती, गान्धारी और धृतराष्ट्रके दर्शन करना ... ६४२९

२५–संजयका ऋषियोंसे पाण्डवों, उनकी पत्नियों तथा अन्यान्य स्त्रियोंका परिचय देना ... ६४३०

२६–धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरकी बातचीत तथा विदुरजीका युधिष्ठिरके शरीरमें प्रवेश ... ६४३२

२७–युधिष्ठिर आदिका ऋषियोंके आश्रम देखना, कलश आदि बाँटना और धृतराष्ट्रके पास आकर बैठना, उन सबके पास अन्यान्य ऋषियोंसहित महर्षि व्यासका आगमन ... ६४३५

२८–महर्षि व्यासका धृतराष्ट्रसे कुशल पूछते हुए विदुर और युधिष्ठिरकी धर्मरूपताका प्रतिपादन करना और उनसे अभीष्ट वस्तु माँगनेके लिये कहना ६४३७

(पुत्रदर्शनपर्व)

२९–धृतराष्ट्रका मृत बान्धवोंके शोकसे दुखी होना तथा गान्धारी और कुन्तीका व्याससे अपने मरे हुए पुत्रोंके दर्शन करनेका अनुरोध ... ६४३९

३०–कुन्तीका कर्णके जन्मका गुप्त रहस्य बताना और व्यासजीका उन्हें सान्त्वना देना ... ६४४२

३१–व्यासजीके द्वारा धृतराष्ट्र आदिके पूर्वजन्मका परिचय तथा उनके कहनेसे सब लोगोंका गङ्गा-तटपर जाना ६४४५

३२–व्यासजीके प्रभावसे कुरुक्षेत्रके युद्धमें [illegible] कौरव-पाण्डववीरोंका [illegible] गङ्गाजीके जलसे प्रकट होना ... ... ६४४[illegible]
३३–परलोकसे आये हुए व्यक्तियोंका परस्पर राग-द्वेषसे रहित होकर मिलना और रात बीतनेपर अदृश्य हो जाना, व्यासजीकी आज्ञासे विधवा क्षत्राणियोंका गङ्गाजीमें गोता लगाकर अपने-अपने पतिके लोकको प्राप्त करना तथा इस पर्वके श्रवणकी महिमा ६४४७
३४–मरे हुए पुरुषोंका अपने पूर्व शरीरसे ही यहाँ पुनः दर्शन देना कैसे सम्भव है ? जनमेजयकी इस शङ्काका वैशम्पायनद्वारा समाधान ... ६४४९
३५–व्यासजीकी कृपासे जनमेजयको अपने पिताका दर्शन प्राप्त होना ६४५१
३६–व्यासजीकी आज्ञासे धृतराष्ट्र आदिका पाण्डवोंको विदा करना और पाण्डवोंका सदलबल हस्तिनापुरमें जाना ६४५२

[illegible](नारदागमनपर्व)

३७–नारदजीसे धृतराष्ट्र आदिके दावानलमें दग्ध हो जानेका हाल जानकर युधिष्ठिर आदिका शोक ... ६४५६
३८–नारदजीके सम्मुख युधिष्ठिरका धृतराष्ट्र आदिके लौकिक अग्निमें दग्ध हो जानेका वर्णन करते हुए विलाप और अन्य पाण्डवोंका भी रोदन ६४५९
३९–राजा युधिष्ठिरद्वारा धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती—इन तीनोंकी हड्डियोंको गङ्गामें प्रवाहित कराना तथा श्राद्धकर्म करना ... ६४६१

चित्र-सूची

(सादा)

१–विदुरका सूक्ष्मशरीरसे युधिष्ठिरमें प्रवेश ६४२५
२–व्यासजीके द्वारा कौरव-पाण्डवपक्षके मरे हुए सम्बन्धियोंका सेनासहित परलोकसे आवाहन ... ६४४६
३–(९ लाइन चित्र फरमोंमें)

मौसलपर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१	युधिष्ठिरका अपशकुन देखना, यादवोंके विनाशका समाचार सुनना, द्वारकामें ऋषियोंके शापवश साम्बके पेटसे मूसलकी उत्पत्ति तथा मदिराके निषेधकी कठोर आज्ञा	६४६३
२	द्वारकामें भयंकर उत्पात देखकर भगवान् श्रीकृष्णका यदुवंशियोंको तीर्थयात्राके लिये आदेश देना	६४६५
३	कृतवर्मा आदि समस्त यादवोंका परस्पर संहार	६४६७
४	दारुकका अर्जुनको सूचना देनेके लिये हस्तिनापुर जाना, बभ्रुका देहावसान एवं बलराम और श्रीकृष्णका परमधाम-गमन	६४७०
५	अर्जुनका द्वारकामें आना और द्वा[illegible] श्रीकृष्ण-पत्नियोंकी दशा देखकर दुःख[illegible]	[illegible]
६	द्वारकामें अर्जुन और वसुदेवजीकी बातचीत	६४७५
७	वसुदेवजी तथा मौसल युद्धमें मरे हुए यादवोंका अन्त्येष्टि-संस्कार करके अर्जुनका द्वारकावासी स्त्री-पुरुषोंको अपने साथ ले जाना, समुद्रका द्वारकाको डुबो देना और मार्गमें अर्जुनपर डाकुओंका आक्रमण, अवशिष्ट यादवोंको अपनी राजधानीमें बसा देना	६४७७
८	अर्जुन और व्यासजीकी बातचीत	६४८१

चित्र-सूची

... ... (तिरंगा) ६४७२

१–बलरामजीका परमधाम-गमन ... (सादा) ६४६३

२–साम्बके पेटसे यदुवंश-विनाशके लिये मूसल पैदा होनेका ऋषियोंद्वारा शाप ... (,,) ६४७६

३–वसुदेवजी अर्जुनको यादव-विनाशका वृत्तान्त और श्रीकृष्णका संदेश सुना रहे हैं

४–(६ लाइन चित्र फरमोंमें)

महाप्रस्थानिकपर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१	वृष्णिवंशियोंका श्राद्ध करके प्रजाजनोंकी अनुमति ले द्रौपदीसहित पाण्डवोंका महाप्रस्थान	६४८५
२	मार्गमें द्रौपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन और भीमसेनका गिरना तथा युधिष्ठिरद्वारा प्रत्येकके गिरनेका कारण बताया जाना	६४८८
३	युधिष्ठिरका इन्द्र और धर्म आदिके साथ वार्तालाप, युधिष्ठिरका अपने धर्ममें दृढ़ रहना [illegible] सदेह स्वर्गमें जाना	६४९०

चित्र-सूची

१–अग्निकी प्रेरणासे अर्जुन अपने गाण्डीव धनुष और अक्षय तरकसको जलमें डाल रहे हैं (सादा) ... ६४८५

२–(२ लाइन चित्र फरमोंमें)

स्वर्गारोहणपर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१	स्वर्गमें नारद और युधिष्ठिरकी बातचीत	६४९३
२	देवदूतका युधिष्ठिरको नरकका दर्शन कराना तथा भाइयोंका करुणक्रन्दन सुनकर उनका वहीं रहनेका निश्चय करना	६४९५
३	इन्द्र और धर्मका युधिष्ठिरको सान्त्वना देना तथा युधिष्ठिरका शरीर त्यागकर दिव्य लोकको जाना	६४९९
४	युधिष्ठिरका दिव्यलोकमें श्रीकृष्ण, अर्जुन आदिका दर्शन करना	६५०२
५	भीष्म आदि वीरोंका अपने-अपने मूलस्वरूपमें मिलना और महाभारतका उपसंहार तथा माहात्म्य	६५०[illegible]
१	महाभारत श्रवणविधिः	६५०९
२	महाभारत-माहात्म्य	६५१७

चित्र-सूची

... ... (तिरंगा) ६४९३

१–युधिष्ठिरका अपने आश्रित कुत्तेके लिये त्याग ... (सादा) ६४९७

२–देवदूतका युधिष्ठिरको मायामय नरकका दर्शन कराना

३–(१ लाइन चित्र फरमेमें)

रजि० सं० ए० ८५४.

३२–व्याप... प्रभाव... कौ... डववी...

एक नयी पुस्तिका !

ध्यान और मानसिक पूजा

लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आकार २०×३० सोलहपेजी, पृष्ठ-सं० ३२, भगवान् श्रीमुरलीमनोहर और श्रीविष्णुके दो सुन्दर बहुरंगे चित्र, सोलह सुन्दर भावपूर्ण चित्रोंवाला आर्टपेपरपर छपा मुखपृष्ठ, मू० ≡) मात्र। डाकखर्च अलग।

श्रीगीता-रामायण-प्रचारसङ्घके उपासना-विभागके लिये लिखी हुई इस सुन्दर पुस्तिकामें निर्गुण निराकारका ध्यान, भगवान् श्रीरामका ध्यान, भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान, भगवान् श्रीशिवका ध्यान, भगवान् श्रीविष्णुका ध्यान और मानसिक पूजा एवं भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्ण और श्रीविष्णुकी स्तुति-प्रार्थना और आरती आदिका बड़ा ही भावमय वर्णन है।

नित्य पाठ करने योग्य चार छोटी पुस्तकें !

गङ्गासहस्रनामस्तोत्र (सटीक)

आकार २२×३० बत्तीसपेजी, पृष्ठ ९६, मूल्य =)॥ डाकखर्च अलग।

स्कन्दपुराण काशीखण्डके पूर्वार्द्ध-भागमें वर्णित गङ्गासहस्रनामस्तोत्रके श्लोकोंमें आये हुए तरण-तारिणी भगवती गङ्गाके हजार नामोंका संख्यासहित अर्थ दिया गया है।

श्रीसीतासहस्रनामस्तोत्र (मूलमात्र)

आकार २२×३० बत्तीसपेजी, पृष्ठ ४४, मूल्य –)॥ डाकखर्च अलग।

आदिकाव्य श्रीवाल्मीकीय रामायणके अद्भुतोत्तरकाण्डमें कथित यह श्रीसीतासहस्रनामस्तोत्र भक्तोंके लिये अत्यन्त आनन्ददायक वस्तु है।

श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्र (मूलमात्र)

आकार २२×२९ बत्तीसपेजी, पृष्ठ ४४, मूल्य –)॥ डाकखर्च अलग।

श्रीसीताराम-पद सेवा-धुरन्धर मारुतात्मज श्रीहनुमानजीका यह दिव्य सहस्रनामस्तोत्र अवश्य ही नित्य पाठ करनेयोग्य वस्तु है।

गायत्रीसहस्रनामस्तोत्र (मूलमात्र)

आकार २२×३० बत्तीसपेजी, पृष्ठ ५२, मूल्य –)॥ डाकखर्च अलग।

तत्पदार्थस्वरूपिणी भगवती गायत्रीका यह दिव्य सहस्रनामस्तोत्र नित्य पाठ करनेवालोंके लिये बहुत ही लाभदायक है।

उपर्युक्त पाँचों पुस्तकोंका एक साथ मूल्य ॥=) डाकखर्च रजिस्ट्रीसहित ॥।) कुल १।=)

एक आवश्यक निवेदन

गीताप्रेसके मुद्रक-प्रकाशक श्रीघनश्यामदासजी जालानका गत २४ मईको भगवती जाह्नवीके पवित्र तटपर गीताभवन, ऋषिकेशमें देहावसान हो गया। उनके स्थानपर गोविन्द-भवन-कार्यालय-ट्रस्टबोर्डने श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारको गीताप्रेस एवं मासिक पत्रोंके मुद्रक-प्रकाशक-पदका भार दिया है।

अभीतक कोई-कोई सज्जन श्रीघनश्यामदासजी जालानके व्यक्तिगत नामसे गीताप्रेस, मासिक कल्याण, कल्याण-कल्पतरु या महाभारतसे सम्बन्धित रुपये मनीआर्डरद्वारा भेज देते हैं, जो डाकविभागके नियमानुसार वापिस लौट आते हैं। अतः सविनय निवेदन है कि कोई सज्जन किसी भी अधिकारीके व्यक्तिगत नामसे रुपये न भेजकर उस-उस विभागके "व्यवस्थापक" शब्दको लिखकर भेजनेकी कृपा करेंगे।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)